पालि-ग्रन्थमाला-4

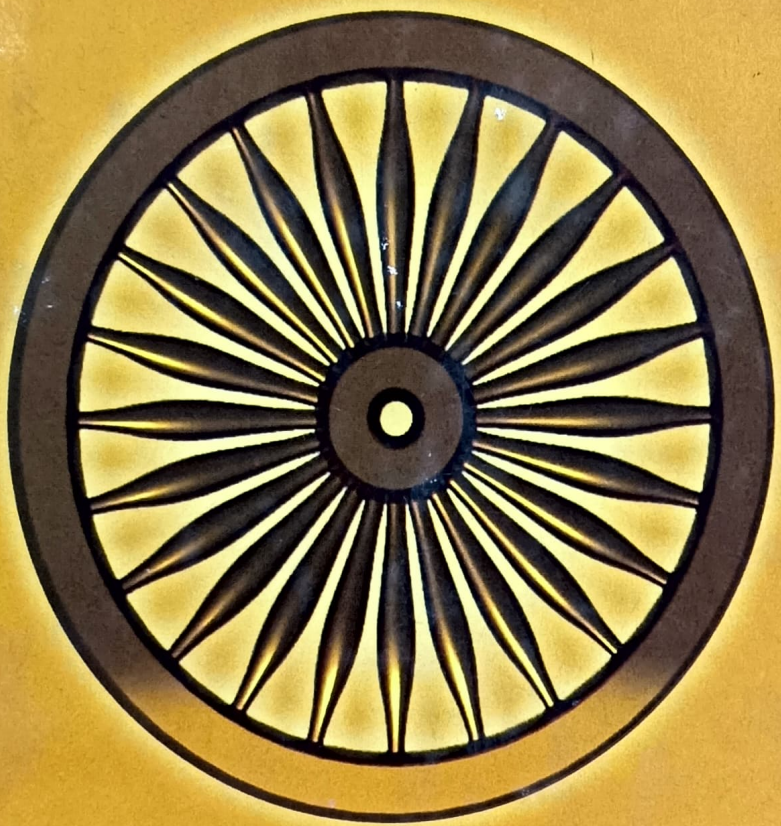
सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये

थेरगाथापालि

एवं

थेरीगाथापालि

(संस्कृतच्छाया-हिन्दी-अनुवादसहिता)



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः)
(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)
लखनऊ-परिसरः

ग्रन्थ के संदर्भ में

थेरगाथा एवं थेरीगाथा खुद्दकनिकाय के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इन दो ग्रन्थों में बुद्धकालीन भिक्षु और भिक्षुणियों के पद्य–बद्ध जीवन संस्मरण है। थेरगाथा में 264 भिक्षुओं के उद्‌गार हैं, जो 1288 गाथाओं में हैं। तथा 21 निपातों में विभक्त हैं। थेरगाथा में अन्तर्जगत के अनुभवों की बहुलता है, जो भिक्षुओं के ध्यान के प्रसंग में ये वर्णन वहाँ स्वभावतः आ गये हैं। थेरगाथा की दो बड़ी विशेषताएँ हैं– भिक्षुओं के आन्तरिक अनुभव का वर्णन और उनका प्रकृति–दर्शन। थेरीगाथा में 73 भिक्षुणियों के उद्‌गार हैं, जो 524 गाथाओं में हैं तथा 16 निपातों में विभक्त हैं, कुछ गाथाएँ भिक्षुणियों की सामूहिक रचनाएँ भी हैं। अतः अलग–अलग गिनती करने पर रचना करने वाली भिक्षुणियों की संख्या कुछ अधिक– लगभग सौ भी हो जाती है। अत्यन्त संगीतात्मक भाषा में, आत्माभि– व्यंजनात्मक गीतिकाव्य की शैली के आधार पर अपने जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए यहाँ बौद्ध भिक्षुणियों ने अपने जीवन–काव्य को गाया है। नैतिक सच्चाई, भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि इन गीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। निर्वाण की परम शान्ति से भिक्षुणियों के उद्‌गारों का एक–एक शब्द उच्छ्वासित है। यहाँ संगीत भी है और जीवन का सच्चा दर्शन भी।

इस ग्रन्थ में मूलपालि, संस्कृतच्छाया एवं हिन्दी अनुवाद दिया गया है।

ISBN : 978-81-924536-3-7

Price : 500.00

Scanned with OKEN Scanner

पालि–ग्रन्थमाला–4

सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये

थेरगाथापालि

एवं

थेरीगाथापालि

(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

संकल्पना मार्गदर्शनं च

प्रो. राधावल्लभत्रिपाठी, कुलपतिः

संस्कृतच्छायाकारः

प्रदीपकुमारद्विवेदी

पालि–अध्ययन–केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित–विश्वविद्यालयः)

(केन्द्रीय–मानव–संसाधन–विकास–मन्त्रालयाधीनम्)

लखनऊ–परिसरः, विशालखण्डः–4, गोमतीनगरम्, लखनऊ (उ.प्र.)

Scanned with OKEN Scanner

पालि–ग्रन्थमाला–4

सुत्तपिटके खुद्दकनिकाये **थेरगाथापालि एवं थेरीगाथापालि**
(संस्कृतच्छाया–हिन्दी–अनुवादसहिता)

प्रकाशक : प्रो0 सुरेन्द्र झा
© प्राचार्य, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान (मानित विश्वविद्यालय)
लखनऊ परिसर, विशाल खण्ड–4, गोमती नगर,
लखनऊ–226010 (उ. प्र.)
दूरभाष : 0522–2393748; फैक्स : 0522–2302993
E-mail : rkslucknow@yahoo.com

सम्पादक : प्रो. विजय कुमार जैन
डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी

सहयोग : डॉ. शुक्ला मुखर्जी, परियोजना अधिकारी
राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान
(मानव संसाधन विकास मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन)
56–57, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, जनकपुरी, नई दिल्ली– 110058
वेबसाईट : www.sanskrit.nic.in

मूल्य : **रु. 500/–**

प्रथम संस्करण– 2012

मुद्रक : शिवम् आर्ट्स, 211, निशातगंज, पांचवी गली, लखनऊ–226007
मो. 94150 61690
email : shivamarts.lko@gmail.com

Scanned with OKEN Scanner

Pāli-Granthamālā-4

Suttapitake Khuddakanikāye

THERAGĀTHĀ PĀLI

&

THERĪGĀTHĀ PĀLI

(With Sanskritacchāyā & Hindi Translation)

Vision & Guidance

Prof. Radhavallabh Tripathi
Vice-Chancellor

Sanskritacchāyākāra

Pradeep Kumar Dwivedi

Pāli Study Centre

Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus,Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)

Scanned with OKEN Scanner

Pāli-Granthamālā-4

Suttapitake Khuddakanikāye **Theragāthā Pāli & Therigāthā Pāli**
(With Sanskritacchāyā & Hindi Translation)

Publisher :

Prof. Surendra Jha
© Principal
Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
Lucknow Campus,Gomti Nagar, Lucknow- 226010 (U.P.)
E-mail : rsksLucknow@yahoo.com

Editor

Prof. Vijay Kumar Jain
Dr. Gurucharan Singh Negi

Assistance :

Dr. Shukla Mukharjee
Project Officer
Rashtriya Sanskrit Sansthan, Deemed University
(Under M/O Human Resource Development, Govt. of India)
56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi-110058

Price :

Rs. 500/

First Edition :

2012

Printer :

Shivam Arts, 211, Nishat Ganj, Vth Gali, Lucknow- 226007
Mob. : 9415061690
email : shivamarts.lko@gmail.com

Scanned with OKEN Scanner

आमुख

मंगलमूर्तिः सततं वितरतु भद्रं परम्पराऽस्माकम्।
पालि–प्राकृत–संस्कृत–भाषासंगमसरस्वतीव।।
मैत्री–मुदिता–करुणोपेक्षाः श्लिष्टाः विभान्तु नित्यं ताः।
चतुष्टयीयं पाली घटयतु सुसंस्कृतं विश्वम्।।

त्रिपिटक में पालि–भाषा में भगवान् बुद्ध के 2550 वर्ष पहले दिए गए उपदेश सर्वाधिक प्रामाणिक रूप से संरक्षित हैं। पालि वही मागधी भाषा है, जिसे बुद्ध–वचनों की संवाहिका होने के कारण थाईलैंड, श्रीलंका, वर्मा, कम्बोडिया आदि दक्षिण एशियाई देशों में पवित्र भाषा का दर्जा दिया जाता है, पालि भाषा का संरक्षण–संवर्धन भी इन एशियाई देशों ने किया। कई शताब्दियों तक हम इस ज्ञान से अपरिचित रहे। योरोप के विद्वानों ने जब पालि टेक्स्ट सोसायटी के माध्यम से इसे उजागर किया तब भारत ने पुनः अपनी पुरानी धरोहर को संरक्षित करने का उपक्रम किया, इस क्रम में हमने पालि के ग्रन्थों के प्रकाशन का निश्चय किया है। भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना के तहत हमने पालि एवं प्राकृत का प्रोजेक्ट स्वीकार किया। उसी कम में लखनऊ में पालि अध्ययन केन्द्र की स्थापना हुई। जिसकी फलश्रुति ये ग्रन्थ हैं। प्राकृत की संस्कृतच्छाया की परम्परा तो सैकड़ों वर्षों से थी। पालि के मात्र धम्मपद एवं मिलिन्दप्रश्न के कुछ अंश की छाया मिलती है। संस्कृतच्छायायुक्त इस संस्करण से भारतीय प्रबुद्ध वर्ग के विचार का यह क्षेत्र बन सकेगा। जो अभी तक बहुत कम थी। हम तो इन प्राचीन भाषाओं की सेवा करना माता की सेवा के समान मानते हैं। पालि के थेरगाथा एवं थेरीगाथा से मैं स्वयं बहुत प्रभावित हूँ।

हम पाते हैं कि संस्कृत, पालि और प्राकृत भाषाओं में लोक जीवन का निरूपण करने वाली कविताएँ रची गईं। लक्ष्मीधर, शरण आदि कवियों की परंपरा लगभग डेढ़ हजार वर्षों तक सक्रिय रही है। इन कवियों ने खेत–खलिहान, पामर (खेत में काम करने वाले दिहाड़ी के मजदूर), गाँव–गिराँव के जीवन और मध्यवर्गीय भारतीय परिवार तथा निम्न वर्गीय समाज के जीवन के यथार्थ का दिग्दर्शन कराने वाली मार्मिक रचनाएँ संस्कृत में प्रस्तुत की हैं। गाँव–गिराँव और खेती–खलिहानी तथा किसानों के जीवन का यथार्थ प्रामाणिक चित्रण संस्कृत की लोकधर्मी परंपरा की कविता में मिलता है। पालि में इस प्रकार की रचनाएँ बहुत कम हैं। थेरीगाथा और थेरगाथा का उल्लेख अवश्य किया जा सकता है, जो खुद्दकनिकाय के अंतर्गत हैं। थेरीगाथा में थेरियाँ अपनी अनुभूतियाँ प्रस्तुत करती हैं। ये गाथाएँ स्त्रियों के आत्मालाप और स्वीकारोक्तियाँ हैं। परिवार और मध्यमवर्गीय समाज के संकीर्ण अभिशापग्रस्त जीवन के त्रास से मुक्त हो कर अनंत से जुड़ने का अनुभव थेरीगाथा की स्त्रियों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया है। विधवा, संतानहीन होने के कारण मिलने वाली प्रताणनाएँ, स्त्री होने के कारण मिलने वाले तरह–तरह के लांछन, इन सब के दुःख की गठरी बटोर कर थेरियाँ बुद्ध के संघ में

Scanned with OKEN Scanner

सम्मिलित हुईं, और अपनी गाथाओं में उन्होंने पिछले जीवन की त्रासदी और वर्तमान में उससे मुक्ति के अनुभव को जो गहन अभिव्यक्ति दी है, वह विश्वसाहित्य में स्त्रीविमर्श की दृष्टि से दुर्लभ है। मुत्ता, इसिदासी, चन्दा, उदकहारी, विमला पुराणभणिका, मेत्तिका, पटाचारा, अड्ढकासिआ, कुंडलकेसी, किसा गोतमी आदि स्त्रियों की गाथाएँ यहाँ भारतीय नारी के जीवन की महागाथा प्रस्तुत करती हैं। परित्यक्ता होना, वेश्या बनने के लिये विवश किया जाना, प्रेमी की हत्या कर के भागना, और परिवार व समाज से तिरस्कार– इन सब के बीच का वजूद यहाँ कायम है और इसकी मुक्ति की खोज भी। मुत्ताथेरी कहती है–

सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि, तीहि खुज्जेहि मुत्तिया।
उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जकेन च।
मुत्ताम्हि जातिमरणा, भवनेत्ति समूहता'' ति।।11।। – थेरीगाथा

स्त्री–मुक्ति की ऐसी गाथा संस्कृत या प्राकृत की मुक्तक कविता में इस रूप में कहीं नहीं मिलती। थेरीगाथा इस दृष्टि से भारतीय साहित्य में अनन्य है। यहाँ दुर्बल और गतयौवना मेत्तिका लाठी के सहारे किसी तरह चलती थी, वह पर्वत की चट्टान पर बैठ कर मुक्ति का राग अलापती दिखती है, तो विमलापुराणभणिका वेश्या बन कर, सज–धज कर द्वार पर खड़ी कामुक प्रेमियों की प्रतीक्षा में कई–कई घड़ियाँ बिताती रही, वह पेड़ की छाँह में बैठ कर चिन्तन करती दिखती है, विधवा और निस्संतान चंदा, जो भीख माँग कर किसी तरह गुजर–बसर करती थी, उदकहारी जो पानी में स्नान करते ब्राह्मणों पर व्यंग्य करती है, पाटलिपुत्र की इसिदासी जो उज्जयिनी के अत्यंत सम्पन्न परिवार में जन्मी, विवाह के पश्चात् ससुराल में सब की सेवा करती रहती है, फिर भी अकारण लांछित की जाती है, पति के त्रास से अतिशय खिन्न हो कर वह पितृगृह में लौट आती है, पिता उसकी वेदना समझ कर दूसरा विवाह कर देते हैं, पर दूसरा विवाह होने पर भी वही नारकीय जीवन। पटचारा, जो पिता के द्वारा निश्चित संबंध में बँधना नहीं चाहती, वह अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है, विवाह के पश्चात् प्रेमी भी उसे छोड़ देता है, उसके दोनों बेटों की जीवनलीला अत्यंत दारुण स्थितियों में निःशेष हो जाती है। अड्ढकासिआ एक श्रेष्ठी की बेटी है, पर बलात् अपहरण के पश्चात् वेश्या होने पर विवश की जाती है। कुडलकेसी का मन एक चोर पर आ जाता है, उसकी जिद पर पिता उसका विवाह चोर से ही कर देते हैं। विवाह के पश्चात् पहाड़ पर मंदिर में पूजा करने के लिये जब वर–वधू जाते हैं, तो वह चोर उससे सारे आभूषण उतार कर सौंपने के लिये कहता है। इस विश्वासघात से आहत कुंडलकेसी उसकी हत्या कर डालती है, फिर भटकाव का अंत संघ में पहुँच कर होता है। किसा गोतमी अत्यंत दरिद्र परिवार में जन्मी, ससुराल में उसकी गरीबी के कारण उसका उपहास किया जाता है। उसका बेटा मर जाता है, किसा गोतमी पागल हो कर भटकती फिरती है। इन सब स्त्रियों को मिले लांछन, प्रताड़नाएँ और वेदनाएँ थेरीगाथा में हैं और उनसे निष्कृति की कथा भी।

थेरगाथा के थेर भी कहीं–कहीं अपनी कथा कहते हैं। वे पूर्व जीवन के प्रपंचों और विसंगतियों की चर्चा करते हैं। सुनीत थेर कहता है कि मैं नीच कुल में उत्पन्न हुआ, दरिद्र था,

Scanned with OKEN Scanner

खाने को नहीं मिलता था, लोग मुझ से घृणा करते थे, मैं अपमानित और तिरस्कृत जीवन बिता रहा था, मेरा मन गिरा हुआ था। फिर मैंने भिक्षु संघ के साथ आते भगवान् बुद्ध के दर्शन किये, मेरे क्लेश दूर हुए।

नीचे कुलम्हि जातोहं, दलिद्दो अप्पभोजनो।
हीनकम्मं ममं आसि, अहोसिं पुप्फछड्डको।।
जिगुच्छितो मनुस्सानं, परिभूतो च वम्मितो।
नीचं मनं करित्वान, वन्दिस्सं बहुकं जनं।।
अथद्दसासिं संबुद्धं, भिक्खुसंघपुरक्खतं।
पविसन्तं महावीरं, मगधानं पुरुत्तमं।।620–622।।

थेरीगाथा तथा थेरगाथा दोनों एक अर्थ में भारतीय दलित समाज की कराह की मार्मिक अभिव्यक्तियाँ भी हैं, पर इसके साथ ये आध्यात्मिक साधना और मुमुक्षुत्व की महागाथाएँ भी हैं।

ईसा–पूर्व तथा ईसा–पश्चात् की हमारे साहित्यिक और सांस्कृतिक इतिहास की कतिपय शताब्दियों में वैदिक, बौद्ध तथा जैन परंपराओं के बीच वाद, विवाद और संवाद की, साहित्यिक आदान–प्रदान की जीवन्त प्रक्रिया घटित हो रही थी। इस संवाद की प्रक्रिया का साक्ष्य संस्कृत साहित्य शास्त्र के आचार्यों ने दिया है। आनंदवर्धन ने तो दो कवियों के बीच संवाद की अवधारणा का सटीक विवेचन किया है। पालि की गाथाएँ और प्राकृत के मुक्तक जन–समाज में लोकप्रिय थे। इस आधार पर राजशेखर ने रचना की गुणवत्ता का एक मानक यह भी स्वीकार किया कि वह जन–जन का कंठहार बने।

पालि, संस्कृतच्छाया हिन्दी अर्थ युक्त खुद्दकनिकाय के खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा, सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग प्रथम चरण में प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है सभी के लिए उपयोगी होगा। शोध–अध्येताओं को साधुवाद देना चाहता हूँ तथा विशेषज्ञों– पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, प्रो. संघसेन सिंह, प्रो. एस. पी. नारंग, प्रो. उमाशंकर व्यास, प्रो. धर्मचंद जैन, प्रो. ब्रह्मदेवनारायण शर्मा (अब स्मृतिशेष), प्रो. ब्रजमोहन पाण्डेय नलिन, प्रो. रामसागर मिश्र, प्रो. वृषभ प्रसाद जैन ने कार्यशालाओं के माध्यम से इसे संशोधित किया है उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ वर्तमान प्राचार्य डॉ. सुरेन्द्र झा तथा बौद्धदर्शन विभाग के प्राध्यापकों का श्रम उल्लेखनीय है। परियोजना अधिकारी एवं मंत्रालय का सहयोग भी भुलाया नहीं जा सकता।

भवतु सब्ब मंगलं।

30, मार्च, 2012

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी
कुलपति

Scanned with OKEN Scanner

प्रकाशकीय

प्रसन्नता का विषय है कि पालि अध्ययन केन्द्र के अध्येताओं– डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. नीलिमा चौहान, श्री जयवन्त खण्डारे, डॉ. राहुल अमृतराज, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी एवं स्वतंत्र रूप से कार्य कर रही डॉ0 श्रीमती राका जैन द्वारा की गई संस्कृतच्छाया–युक्त पालि त्रिपिटक के 9 ग्रन्थ प्रथम चरण में पाँच भागों में प्रकाशित हो रहे हैं। खुद्दकनिकाय के आठ ग्रन्थ– खुद्दकपाठ, उदान, इतिवुत्तक, थेरगाथा, थेरीगाथा, विमानवत्थु, पेतवत्थु तथा सुत्तनिपात एवं संयुत्तनिकाय का सगाथवग्ग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इन ग्रन्थों में भारतीय लोक–जीवन की अच्छी झाँकी मिलती है। संस्कृत, पालि, व्याकरण एवं भाषावैज्ञानिक दृष्टि से भी इनका विशेष महत्त्व है। इस कार्य को उत्तम बनाने के लिए कई बार कार्यशालाएँ की गईं जिनमें देश के मूर्धन्य एवं वयोवृद्ध विद्वान् सम्मिलित हुए। उक्त कार्यशाला के अवसर पर पद्मश्री प्रो. रामशंकर त्रिपाठी जी ने कहा था कि "भारतीय दर्शन परम्परा के विकास में बौद्धों का पूर्वपक्ष के रूप में बहुत बड़ा योगदान रहा है। बीच में बौद्धों का पक्ष कमजोर होने से दर्शन की परम्परा का लेखन रुक गया, क्योंकि पूर्वपक्ष में बौद्धों का अन्य वाङ्मय तो भारतीय दार्शनिकों के समक्ष था, पालि साहित्य नहीं था।"

'पालि' भाषा में निबद्ध त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी है। इसका पूरे विश्व में महत्त्वपूर्ण स्थान है। संस्कृतच्छाया–युक्त ये ग्रन्थ भारतीय मनीषियों के लिए विशेष उपयोगी होंगे। इस कार्य की सफलता में हमारे सम्माननीय कुलपति जी की कृपा एवं दूरदर्शिता रही है। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कार्यशाला में पधारने वाले विद्वज्जनों, सम्पादकों, केन्द्र के अध्येताओं एवं सहयोगी प्राध्यापकों को साधुवाद देता हूँ तथा कामना करता हूँ कि पालि अध्ययन केन्द्र इसी तरह सफलतापूर्वक कार्य करता रहे तथा यह ग्रन्थमाला अनवरत चलती रहे। इस प्रकाशन से हमारे परिसर का भी गौरव बढ़ा है।

लखनऊ
30 मार्च, 2012

प्रो. सुरेन्द्र झा
प्राचार्य

Scanned with OKEN Scanner

सम्पादकीय

पालि त्रिपिटक भगवान् बुद्ध की वाणी को संरक्षित करने वाला सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रन्थ है। पालि त्रिपिटक की प्रामाणिकता उनकी सङ्गीतियों के माध्यम से होती है। भगवान् बुद्ध के समय ही भिक्षु बुद्धवचनों को कंठस्थ कर लिया करते थे। सुत्तधर, विनयधर, जैसे शब्द स्पष्ट करते हैं कि बुद्धवचन मौखिक परम्परा पर आधारित थे। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के तीन माह पश्चात अर्हत् भिक्षुओं ने प्रथम संगीति का आयोजन किया एवं धम्म और विनय का संगायन किया गया। तदन्तर 100 वर्ष बाद द्वितीय संगीति में जब संघभेद हो गया तो स्थविर भिक्षुओं ने **मागधी** में तथा महासांघिकों ने संस्कृत में बुद्धवचनों का सङ्गायन किया। दूसरी संगीति के 135 वर्ष बाद अशोक के समय तीसरी संगीति हुई उसमें त्रिपिटक का संगायन हुआ। सम्राट अशोक ने बुद्धवचनों के प्रचार व प्रसार के लिए सम्पूर्ण एशिया के भिक्षुओं को तथा अपने पुत्र एवं पुत्री को श्रीलंका भेजा। श्रीलंका में भी बुद्धवचन कई वर्ष तक मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहे। पुनः वहाँ चौथी एवं पाँचवी संगीति हुई तथा बुद्धवचनों को पत्थरों में उत्कीर्ण कराया। छट्ठसंगायन जो 1956 ई. में बर्मा में हुआ उसी के आधार पर नवनालन्दा महाविहार से पालि त्रिपिटक देवनागरी में प्रकाशित हुआ, जो आज अनुपलब्ध है। इगतपुरी विपश्यना शोध संस्थान ने सम्पूर्ण त्रिपिटक को अट्ठकथा टीका सहित प्रकाशित किया था जो आज मात्र इण्टरनेट पर ही उपलब्ध है।

हमारे माननीय कुलपति जी की भावना थी कि त्रिपिटक का संस्थान का संस्करण विशेष एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानक का होना चाहिए साथ ही संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित होने के कारण संस्कृत छाया रहे तो और भी अच्छा होगा, क्योंकि मूलानुगामी संस्कृतच्छाया से अर्थबोध करने में सहायता प्राप्त होती है। आज त्रिपिटक का अनुवाद अंग्रेजी, स्यामी, सिंहली, बर्मी में हुआ है किन्तु हिन्दी में आधा अधूरा। संस्कृतच्छाया से पालि–प्राकृत–संस्कृत का अन्तःसम्बन्ध प्रकट हो जाता है, क्योंकि अनुवाद दूसरी भाषाओं से किया जाता है उनकी छाया नहीं हो सकती। छाया उन्हीं भाषाओं की होती है जिनका भाषावैज्ञानिक एवं व्याकरण की दृष्टि से अन्तःसम्बन्ध हो। पालि साहित्य का विशाल भण्डार है। इसमें से 'धम्मपद' एवं 'मिलिन्दप्रश्न' के कुछ अंश की संस्कृतच्छाया पहले से उपलब्ध हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन जी एवं भिक्षु धर्मरक्षित के धम्मपद अनुवाद संस्कृतच्छाया के साथ प्रकाशित हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय से प्रो. संघसेन सिंह का भी 'धम्मपद' की संस्कृतच्छाया प्रकाशित है।

हमारे सम्माननीय कुलपति जी ने मानव संसाधन विकास मंत्रालय की योजना को स्वीकार करते हुए उदीयमान नवयुवकों को यह दायित्व दिया जिसे इन्होंने उत्साहपूर्वक निभाया है। यह सब हमारे दूरदर्शी कुलपति जी की दृढ़ इच्छा, भागीरथ प्रयास एवं उनके कुशल नेतृत्व का परिणाम है कि हम इस दिशा में आगे बढ़ सके। इस योजना में देश के वयोवृद्ध विद्वानों ने मनोयोग से सहायता पहुँचाई। कार्यशालाओं के माध्यम से इस छाया को कई–कई बार परिष्कृत किया गया।

उद्देश्य था कि अर्थ न बदलें तथा छाया मूलानुगामी हो, अनुवाद मात्र नहीं और व्याकरण के नियमों का भी पालन हो। पालि परम्परा एवं अट्ठकथा के अर्थ को भी ध्यान दिया गया। इसी तरह शीर्षक एवं 'नाम' में भी मूल को सुरक्षित रखते हुए छाया की गई है। संस्कृतच्छाया में बौद्धसंस्कृत में प्राप्त पालि शब्दावली का भी सहयोग लिया गया है।

Scanned with OKEN Scanner

पालि से संस्कृतच्छाया करने में जहाँ व्याकरण एवं भाषाविज्ञान से सहयोग लेने में सुगमता हुई वहीं कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां भी आयीं। अतः उच्चरतरीय वार्ता के आधार पर समाधान खोजे गए। यथा–

पालि परम्परा में 'पञ्चम वर्ण' के स्थान पर अनुस्वार का विधान है। संस्कृत में 'पंचम वर्ण' मात्र नही है, कई अन्य व्यवस्थाएं भी हैं, जिन्हें यथासंभव पालन किया गया है।

– संस्कृत में यति का प्रयोग करते हैं, पालि गाथाओं में भी है, अतः यति के लिए कॉमा को विराम मानकर अनुस्वार का पंचम वर्ण कर दिया गया है।

– कुछ पालि शब्द वैदिक संस्कृत से साम्यता रखते हैं। प्रो. जानकी प्रसाद द्विवेदी जी ऐसे शब्दों को परम्परा के आधार पर उसी रूप में रखने के पक्षधर थे लेकिन जहाँ तक लौकिक संस्कृत बन पाई है, वहाँ बनाने का प्रयास किया है।

– बहुत से पालि के शब्द कातन्त्र व्याकरण से सिद्ध होते हैं, अतः उसका भी सहारा लिया गया है। प्रो. रामसागर जी मिश्र ने इसमें अथक सहायता पहुँचाई है।

– प्रचलित शब्दों को छोड़कर पालि नाम एवं शीर्षक को यथावत् स्वीकार करके उनकी संस्कृतच्छाया करने का अनावश्यक प्रयास नहीं किया गया है।

– कुछ अन्य शब्दों तथा 'देशी' शब्दों में भी येन केन प्रकारेण अर्थ बोध कराने की दृष्टि से कहीं मूल शब्द, कहीं संस्कृत भाव प्रकट करने का प्रयास किया गया है।

आशा है "**पालि ग्रन्थमाला**" उपयोगी सिद्ध होगी तथा मंत्रालय, संस्थान तथा सभी विद्वत्जनों का सहयोग इसी तरह मिलता रहेगा तो आगे और परिष्कार हो सकेगा।

पालि अध्ययन केन्द्र की स्थापना से लेकर आज तक सम्पूर्ण परिसर की ओर से अपार स्नेह मिलता रहा है। तत्कालीन कार्यवाहक प्राचार्य प्रो. सर्वनारायण झा के कार्यकाल में महामहिम राज्यपाल उ. प्र. श्री बी.एल. जोशी, कुलपति प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी तथा मानव संसाधन विकास मन्त्रालय में संयुक्त सचिव (भाषा) डॉ. अनीता भटनागर जैन ने इसकी नींव मजबूत रखी थी, जिसके कारण यह फलित हो रही है। इसमें प्राचार्य प्रो. सुरेन्द्र झा का भी पूरा सहयोग रहता है। संस्थान मुख्यालय में परियोजना अधिकारी डॉ. शुक्ला मुखर्जी इसमें पूरे मनोयोग एवं सूक्ष्म चिंतन पूर्वक सहायता पहुँचाती हैं। हम उपर्युक्त महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए परिसर के प्राध्यापकगण– प्रो. सुरेन्द्र पाठक, प्रो. लोकमान्य मिश्र, प्रो. रामलखन पाण्डेय, डॉ. लक्ष्मीनिवास पाण्डेय, डॉ. गजेन्द्र शर्मा, डॉ. धनीन्द्र कुमार झा, डॉ. भारतभूषण त्रिपाठी, डॉ. ब्रजभूषण ओझा, डॉ. पवन कुमार, डॉ. श्यामदेव मिश्र, डॉ. गज़ाला अंसारी, डॉ. अमित कुमार शुक्ल, डॉ. कविता विसारिया एवं विभागीय सहयोगी डॉ. . अवधेश कुमार चौबे के प्रति भी हार्दिक आभार प्रकट करते हैं। डॉ. राका जैन ने इस ज्ञानयज्ञ में विविध प्रकार से सहयोग प्रदान किया है। सबसे बड़े सौभाग्य की बात तो हमारे अध्येताओं की है जिनका कार्य इतने जल्दी प्रकाशित हो रहा है, इन्होंने बहुत श्रम किया है। उस श्रम का यह प्रकाशन सुखद फल है।

लखनऊ
31 मार्च, 2012

विजयकुमार जैन
गुरुचरण सिंह नेगी

Scanned with OKEN Scanner

ग्रंथ के सन्दर्भ में

थेरगाथा एवं थेरीगाथा खुद्दकनिकाय के दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इन दो ग्रन्थों में बुद्धकालीन भिक्षु और भिक्षुणियों के पद्य–बद्ध जीवन संस्मरण है। थेरगाथा में 264 भिक्षुओं के उद्‌गार हैं, जो 1288 गाथाओं में हैं। तथा 21 निपातों में विभक्त हैं। थेरगाथा में अन्तर्जगत के अनुभवों की बहुलता है, जो भिक्षुओं के ध्यान के प्रसंग में ये वर्णन वहाँ स्वभावतः आ गये हैं। थेरगाथा की दो बड़ी विशेषताएँ हैं– भिक्षुओं के अन्तरिक अनुभव का वर्णन और उनका प्रकृति–दर्शन। थेरीगाथा में 73 भिक्षुणियों के उद्‌गार हैं, जो 524 गाथाओं में हैं तथा 16 निपातों में विभक्त हैं, कुछ गाथाएँ भिक्षुणियों की सामूहिक रचनाएँ भी हैं। अतः अलग–अलग गिनती करने पर रचना करने वाली भिक्षुणियों की संख्या कुछ अधिक–लगभग सौ भी हो जाती है। अत्यन्त संगीतात्मक भाषा में, आत्माभिव्यंजनात्मक गीतिकाव्य की शैली के आधार पर अपने जीवनानुभवों को व्यक्त करते हुए यहाँ बौद्ध भिक्षुणियों ने अपने जीवन–काव्य को गाया है। नैतिक सच्चाई, भावनाओं की गहनता और सबसे बढ़कर एक अपराजित वैयक्तिक ध्वनि इन गीतों की मुख्य विशेषताएँ हैं। निर्वाण की परम शान्ति से भिक्षुणियों के उद्‌गारों का एक–एक शब्द उच्छ्वासित है। यहाँ संगीत भी है और जीवन का सच्चा दर्शन भी। इन दोनों ग्रन्थों की मूल पालि का आधार नालन्दासंस्करण है। संस्कृतच्छाया करते समय अट्ठकथा का भी उपयोग किया गया है। भरत सिंह उपाध्याय एवं श्री द्वारिकादास शास्त्रिकृत अनुवाद भी पथ प्रदर्शक रहा है। मूल की सुरक्षा को ध्यान में रखकर थेरों के नाम की संस्कृतच्छाया न करके उन शब्दों को *इटालिक* किया गया है।

आभार–थेरगाथा एवं थेरीगाथा की संस्कृतच्छाया के कार्य में सफलता प्राप्त कराने में मेरे परमपूज्य गुरुजी प्रो. विजयकुमार जैन एवं गुरुमाताजी डॉ. राका जैन, डॉ. अवधेश कुमार चौबे, डॉ. गुरुचरण सिंह नेगी जी का आशीर्वाद सदा मेरे साथ रहा है। साथ ही संस्थान के प्राचार्य, सभी शिक्षक एवं कर्मचारी वर्ग का भी सहयोग अतुलनीय रहा है। मेरे पिताजी श्री शशिकान्त द्विवेदी तथा माताजी श्रीमती रानी द्विवेदी एवं पत्नी रेनू का सहयोग एवं कार्य के प्रति उत्साहवर्धन सदैव बना रहा। मैं सबका आभार प्रकट करता हूँ। मेरे साथ कार्यरत वरिष्ठ एवं कनिष्ठ शोध अध्येताओं डॉ. मोहन मिश्र, डॉ. राहुल अमृतराज, डॉ. वेदव्यास पाण्डेय, श्री जयवंत खण्डारे, डॉ. पत्रिका जैन, डॉ. नीलिमा चौव्हान, श्री प्रिंस कुमार जैन का अत्यधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। मेरे परम मित्र सर्वश्री घनश्याम पाल, प्रदीप शर्मा लुईटेल, अतुल श्रीवास्तव, हरशान्तवीर सिंह, विपिन द्विवेदी, अर्जुन गर्तौला, प्रवीन कुमार तथा टाइपिस्ट विकास जैन एवं कम्प्यूटर टीचर प्रभात सिंह ने सहयोग प्रदान किया। प्रूफरीडिंग के कार्य में सोनल सिंह, प्रियंका द्विवेदी तथा पुष्पलता वर्मा का सहयोग प्राप्त हुआ। इस प्रकार मुझे अनेक प्रकार से सहयोग मिलता रहा तथा कार्य सफल बनाया। मैं पाठकों से ग्रन्थ में रह गये किसी भी दोष एवं त्रुटि के लिए क्षमा प्रार्थना के साथ उचित परामर्श की कामना करता हूँ।

श्री प्रदीप कुमार द्विवेदी

Scanned with OKEN Scanner

विसयानुक्कमणिका

1. थेरगाथापालि 1–268

निदानकथा 1

1. एककनिपातो 2–35

1. सुभूतित्थेरगाथा 2
2. महाकोट्ठिकत्थेरगाथा 2
3. कङ्खारेवतत्थेरगाथा 2
4. पुण्णत्थेरगाथा 3
5. दब्बत्थेरगाथा 3
6. सीतवनियत्थेरगाथा 3
7. भल्लियत्थेरगाथा 4
8. वीरत्थेरगाथा 4
9. पिलिन्दवच्छत्थेरगाथा 4
10. पुण्णमासत्थेरगाथा 5

तस्सुद्दानं

11. चूळवच्छत्थेरगाथा 5
12. महावच्छत्थेरगाथा 5
13. वनवच्छत्थेरगाथा 6
14. सिवकसामणेरगाथा 6
15. कुण्डधानत्थेरगाथा 6
16. बेलट्ठसीसत्थेरगाथा 6
17. दासकत्थेरगाथा 7
18. सिङ्गालपितुत्थेरगाथा 7
19. कुलत्थेरगाथा 7
20. अजितत्थेरगाथा 7

तस्सुद्दानं

21. निग्रोधत्थेरगाथा 8
22. चित्तकत्थेरगाथा 8
23. गोसालत्थेरगाथा 8
24. सुगन्धत्थेरगाथा 9
25. नन्दियत्थेरगाथा 9
26. अभयत्थेरगाथा 9
27. लोमसकङ्गियत्थेरगाथा 9
28. जम्बुगामिकपुत्तत्थेरगाथा 10
29. हारितत्थेरगाथा 10
30. उत्तियत्थेरगाथा 10

तस्सुद्दानं

31. गहवरतीरियत्थेरगाथा 11
32. सुप्पियत्थेरगाथा 11
33. सोपाकत्थेरगाथा 11
34. पोसियत्थेरगाथा 11
35. सामञ्ञकानित्थेरगाथा 12
36. कुमापुत्तत्थेरगाथा 12
37. कुमारपुत्तसहायकत्थेरगाथा 12
38. गवम्पतित्थेरगाथा 12
39. तिस्सत्थेरगाथा 13
40. वड्ढमानत्थेरगाथा 13

तस्सुद्दानं

41. सिरिवड्ढत्थेरगाथा 13
42. खदिरवनित्थेरगाथा 14
43. सुमङ्गलत्थेरगाथा 14
44. सानुत्थेरगाथा 14
45. रमणीयविहारित्थेरगाथा 14
46. समिद्धित्थेरगाथा 15
47. उज्जयत्थेरगाथा 15
48. सञ्जयत्थेरगाथा 15
49. रामणेय्यकत्थेरगाथा 15
50. विमलत्थेरगाथा 16

तस्सुद्दानं

51. गोधिकत्थेरगाथा 16
52. सुबाहुत्थेरगाथा 16
53. वल्लियत्थेरगाथा 17
54. उत्तियत्थेरगाथा 17
55. अञ्जनवनियत्थेरगाथा 17
56. कुटिविहारित्थेरगाथा 17
57. दुतियकुटिविहारित्थेरगाथा 18
58. रमणीयकुटिकत्थेरगाथा 18
59. कोसलविहारित्थेरगाथा 18
60. सीवलित्थेरगाथा 18

तस्सुद्दान

61. वप्पत्थेरगाथा 19
62. वज्जिपुत्तत्थेरगाथा 19
63. पक्खत्थेरगाथा 19
64. विमलकोण्डञ्ञत्थेरगाथा 20
65. उक्खेपकतवच्छत्थेरगाथा 20
66. मेघियत्थेरगाथा 20
67. एकधम्मसवनीयत्थेरगाथा 20
68. एकुदानियत्थेरगाथा 21
69. छन्नत्थेरगाथा 21
70. पुण्णत्थेरगाथा 21

तस्सुद्दानं

Scanned with OKEN Scanner

71. वच्छपालत्थेरगाथा 22
72. आतुमत्थेरगाथा 22
73. माणवत्थेरगाथा 22
74. सुयामनत्थेरगाथा 22
75. सुसारदत्थेरगाथा 23
76. पियञ्जहत्थेरगाथा 23
77. हत्थारोहपुत्तत्थेरगाथा 23
78. मेण्डसिरत्थेरगाथा 23
79. रक्खितत्थेरगाथा 24
80. उग्गत्थेरगाथा 24
तस्सुद्दनं
81. समितिगुत्तत्थेरगाथा 24
82. कस्सपत्थेरगाथा 25
83. सीहत्थेरगाथा 25
84. नीतत्थेरगाथा 25
85. सुनागत्थेरगाथा 25
86. नागितत्थेरगाथा 25
87. पविट्ठत्थेरगाथा 26
88. अज्जुनत्थेरगाथा 26
89. पठमदेवसभत्थेरगाथा 26
90. सामिदत्तत्थेरगाथा 26
तस्सुद्दानं
91. परिपुण्णकत्थेरगाथा 27
92. विजयत्थेरगाथा 27
93. एरकत्थेरगाथा 27
94. मेत्तजित्थेरगाथा 28
95. चक्खुपालत्थेरगाथा 28
96. खण्डसुमनत्थेरगाथा 28
97. तिस्सत्थेरगाथा 28
98. अभयत्थेरगाथा 29
99. उत्तियत्थेरगाथा 29
100. दुतियदेवसभत्थेरगाथा 29
तस्सुद्दानं
101. बेलट्ठानिकत्थेरगाथा 30
102. सेतुच्छत्थेरगाथा 30
103. बन्धुरत्थेरगाथा 30
104. खितकत्थेरगाथा 31
105. मलितवम्भत्थेरगाथा 31
106. सुहेमन्तत्थेरगाथा 31
107. धम्मसवत्थेरगाथा 31
108. धम्मसवपितुत्थेरगाथा 32
109. सङ्घरक्खितत्थेरगाथा 32
110. उसभत्थेरगाथा 32
तस्सुद्दानं
111. जेन्तत्थेरगाथा 33
112. वच्छगोत्तत्थेरगाथा 33
113. वनवच्छत्थेरगाथा 33
114. अधिमुत्तत्थेरगाथा 33
115. महानामत्थेरगाथा 33
116. पारापरियत्थेरगाथा 34
117. यसत्थेरगाथा 34
118. किमिलत्थेरगाथा 34
119. वज्जिपुत्तत्थेरगाथा 34
120. इसिदत्तत्थेरगाथा 35
तस्सुद्दानं

2. दुकनिपातो 35—57

1. उत्तरत्थेरगाथा 35
2. पिण्डोलभारद्वाजत्थेरगाथा 36
3. वल्लियत्थेरगाथा 36
4. गङ्गातीरियत्थेरगाथा 37
5. अजिनत्थेरगाथा 37
6. मेळजिनत्थेरगाथा 38
7. राधत्थेरगाथा 38
8. सुराधत्थेरगाथा 38
9. गोतमत्थेरगाथा 39
10. वसभत्थेरगाथा 39
तस्सुद्दानं
11. महाचुन्दत्थेरगाथा 40
12. जोतिदासत्थेरगाथा 40
13. हेरञ्जकानित्थेरगाथा 41
14. सोममित्तत्थेरगाथा 41
15. सब्बमित्तत्थेरगाथा 42
16. महाकालत्थेरगाथा 42
17. तिस्सत्थेरगाथा 42
18. किमिलत्थेरगाथा 43
19. नन्दत्थेरगाथा 43
20. सिरिमत्थेरगाथा 44
तस्सुद्दानं
21. उत्तरत्थेरगाथा 44
22. भद्दजित्थेरगाथा 45
23. सोभितत्थेरगाथा 45
24. वल्लियत्थेरगाथा 45
25. वीतसोकत्थेरगाथा 46
26. पुण्णमासत्थेरगाथा 46
27. नन्दकत्थेरगाथा 47

Scanned with OKEN Scanner

28. भरतत्थेरगाथा 47
29. भारद्वाजत्थेरगाथा 47
30. कण्हदिन्नत्थेरगाथा 48
तस्सुद्दानं
31. मिगसिरत्थेरगाथा 48
32. सिवकत्थेरगाथा 49
33. उपवाणत्थेरगाथा 49
34. इसिदिन्नत्थेरगाथा 50
35. सम्बुलकच्चानत्थेरगाथा 50
36. नितकत्थेरगाथा 51
37. सोणपोटिरियत्थेरगाथा 51
38. निसभत्थेरगाथा 52
39. उसभत्थेरगाथा 52
40. कप्पटकुरत्थेरगाथा 52
तस्सुद्दानं
41. कुमारकस्सपत्थेरगाथा 53
42. धम्मपालत्थेरगाथा 54
43. ब्रह्मालित्थेरगाथा 54
44. मोघराजत्थेरगाथा 54
45. विसाखपञ्चालपुत्तत्थेरगाथा 55
46. चूळकत्थेरगाथा 55
47. अनुपमत्थेरगाथा 56
48. वज्जित्थेरगाथा 56
49. सन्धितत्थेरगाथा 56
तस्सुद्दानं

3. तिकनिपातो 57–67
1. अङ्गणिकभारद्वाजत्थेरगाथा 57
2. पच्चयत्थेरगाथा 58
3. बाकुलत्थेरगाथा 58
4. धनियत्थेरगाथा 59
5. मातङ्गपुत्तत्थेरगाथा 60
6. खुज्जसोभितत्थेरगाथा 60
7. वारणत्थेरगाथा 61
8. वस्सिकत्थेरगाथा 61
9. यसोजत्थेरगाथा 62
10. साटिमत्तियत्थेरगाथा 63
11. उपालित्थेरगाथा 63
12. उत्तरपालत्थेरगाथा 64
13. अभिभूतत्थेरगाथा 64
14. गोतमत्थेरगाथा 65
15. हारितत्थेरगाथा 66
16. विमलत्थेरगाथा 66
तस्सुद्दानं

4. चतुक्कनिपातो 67–77
1. नागसमालत्थेरगाथा 67
2. भगुत्थेरगाथा 68
3. सभियत्थेरगाथा 69
4. नन्दकत्थेरगाथा 70
5. जम्बुकत्थेरगाथा 71
6. सोनकत्थेरगाथा 71
7. सम्भूतत्थेरगाथा 72
8. राहुलत्थेरगाथा 73
9. चन्दनत्थेरगाथा 74
10. धम्मिकत्थेरगाथा 75
11. सप्पकत्थेरगाथा 75
12. मुदितत्थेरगाथा 76
तस्सुद्दानं

5. पञ्चकनिपातो 77–89
1. राजदत्तत्थेरगाथा 77
2. सुभूतत्थेरगाथा 78
3. गिरिमानन्दत्थेरगाथा 79
4. सुमनत्थेरगाथा 80
5. वड्ढत्थेरगाथा 81
6. नदीकस्सपत्थेरगाथा 82
7. गयाकस्सपत्थेरगाथा 83
8. वक्कलित्थेरगाथा 84
9. विजितसेनत्थेरगाथा 85
10. यसदत्तत्थेरगाथा 86
11. सोणकुटिकण्णत्थेरगाथा 87
12. कोसियत्थेरगाथा 88
तस्सुद्दानं

6. छक्कनिपातो 90–106
1. उरुवेळकस्सपत्थेरगाथा 90
2. तेकिच्छकारित्थेरगाथा 91
3. महानागत्थेरगाथा 92
4. कुल्लहत्थेरगाथा 93
5. मालुक्यपुत्तत्थेरगाथा 94
6. सप्पदासत्थेरगाथा 96
7. कातियानत्थेरगाथा 97
8. मिगजालत्थेरगाथा 98
9. पुरोहितपुत्तजेन्तत्थेरगाथा 99
10. सुमनत्थेरगाथा 100
11. न्हातकमुनित्थेरगाथा 102
12. ब्रह्मदत्तत्थेरगाथा 103
13. सिरिमण्डत्थेरगाथा 104

Scanned with OKEN Scanner

14. सब्बकामित्थेरगाथा 105
तस्सुद्दानं
7. सत्तकनिपातो 107—114
1. सुन्दरसमुद्दत्थेरगाथा 107
2. लकुण्डकभद्दियत्थेरगाथा 108
3. भद्दत्थेरगाथा 110
4. सोपाकत्थेरगाथा 111
5. सरभङ्गत्थेरगाथा 113
तस्सुद्दानं
8. अट्ठकनिपातो 114—119
1. महाकच्चायनत्थेरगाथा 114
2. सिरिमित्तत्थेरगाथा 116
3. महापन्थकत्थेरगाथा 117
तस्सुद्दानं
9. नवकनिपातो 119—121
1. भूतत्थेरगाथा 119
तस्सुद्दानं
10. दसकनिपातो 121—135
1. काळुदायित्थेरगाथा 121
2. एकविहारियत्थेरगाथा 123
3. महाकप्पिनत्थेरगाथा 125
4. चूळपन्थकत्थेरगाथा 127
5. कप्पत्थेरगाथा 129
6. वङ्गन्तपुत्तउपसेनत्थेरगाथा 131
7. अपरगोतमत्थेरगाथा 133
तस्सुद्दानं
11. एकादसनिपातो 135—138
1. सङ्किच्चत्थेरगाथा 135
तस्सुद्दानं
12. द्वादसनिपातो 138—142
1. सीलवत्थेरगाथा 138
2. सुनीतत्थेरगाथा 140
तस्सुद्दानं
13. तेरसकनिपातो 143—145
1. सोणकोळिविसत्थेरगाथा 143
तस्सुद्दानं
14. चुद्दसकनिपातो 145—151
1. खदिरवनियरेवतत्थेरगाथा 145
2. गोदत्तत्थेरगाथा 148
तस्सुद्दानं
15. सोळसकनिपातो 151—157
1. अञ्ञासिकोण्डञ्ञत्थेरगाथा 151
2. उदायित्थेरगाथा 154
तस्सुद्दानं
16. वीसतिनिपतो 157—203
1. अधिमुत्तत्थेरगाथा 157
2. पारापरियत्थेरगाथा 161
3. तेलकानित्थेरगाथा 165
4. रट्ठपालत्थेरगाथा 169
5. मालुक्यपुत्तत्थेरगाथा 173
6. सेलत्थेरगाथा 179
7. काळिगोधापुत्तभद्दियत्थेरगाथा 183
8. अङ्गुलिमालत्थेरगाथा 187
9. अनुरुद्धत्थेरगाथा 193
10. पारापरियत्थेरगाथा 198
तस्सुद्दानं
17. तिंसनिपातो 203—222
1. फुस्सत्थेरगाथा 203
2. सारिपुत्तत्थेरगाथा 209
3. आनन्दत्थेरगाथा 216
तस्सुद्दानं
18. चत्तालीसनिपातो . 222—230
1. महाकस्सपत्थेरगाथा 222
तस्सुद्दानं
19. पञ्ञासनिपातो 230—241
1. तालपुटत्थेरगाथा 230
तस्सुद्दानं
20. सट्ठिनिपातो 241—254
1. महामोग्गल्लानत्थेरगाथा 241
तस्सुद्दानं
21. महानिपातो 254—268
1. वङ्गीसत्थेरगाथा 254
तस्सुद्दानं
2. थेरीगाथापालि 269—376
1. एककनिपातो 269—273
1. अञ्ञतराथेरीगाथा 269
2. मुत्ताथेरीगाथा 269
3. पुण्णाथेरीगाथा 269
4. तिस्साथेरीगाथा 270
5. अञ्ञतरातिस्साथेरीगाथा 270
6. धीराथेरीगाथा 270
7. वीराथेरीगाथा 270
8. मित्ताथेरीगाथा 271
9. भद्राथेरीगाथा 271
10. उपसमाथेरीगाथा 271

Scanned with OKEN Scanner

11. मुत्ताथेरीगाथा 271
12. धम्मदिन्नाथेरीगाथा 272
13. विसाखाथेरीगाथा 272
14. सुमनाथेरीगाथा 272
15. उत्तराथेरीगाथा 272
16. वुड्ढपब्बजितसुमनाथेरीगाथा 272
17. धम्माथेरीगाथा 273
18. सङ्घाथेरीगाथा 273

2. दुकनिपातो 273–277
1. अभिरूपनन्दाथेरीगाथा 273
2. जेन्ताथेरीगाथा 274
3. सुमङ्गलमाताथेरीगाथा 274
4. अड्ढकासिथेरीगाथा 275
5. चित्ताथेरीगाथा 275
6. मेत्तिकाथेरीगाथा 276
7. मित्ताथेरीगाथा 276
8. अभयमातुथेरीगाथा 277
9. अभयाथेरीगाथा 277
10. सामाथेरीगाथा 277

3. तिकनिपातो 278–282
1. अपरासामाथेरीगाथा 278
2. उत्तमाथेरीगाथा 279
3. अपराउत्तमाथेरीगाथा 279
4. दन्तिकाथेरीगाथा 280
5. उब्बिरिथेरीगाथा 281
6. सुक्काथेरीगाथा 281
7. सेलाथेरीगाथा 282
8. सोमाथेरीगाथा 282

4. चतुक्कनिपातो 283–284
1. भद्दाकापिलानीथेरीगाथा 283

5. पञ्चकनिपातो 284–296
1. अञ्ञतराथेरीगाथा 284
2. विमलाथेरीगाथा 285
3. सीहाथेरीगाथा 286
4. सुन्दरीनन्दाथेरीगाथा 287
5. नन्दुत्तराथेरीगाथा 288
6. मित्ताकाळीथेरीगाथा 289
7. सकुलाथेरीगाथा 290
8. सोणाथेरीगाथा 291
9. भद्दाकुण्डलकेसाथेरीगाथा 292
10. पटाचाराथेरीगाथा 293
11. तिंसमत्ताथेरीगाथा 294
12. चन्दाथेरीगाथा 295

6. छक्कनिपातो 297–306
1. पञ्चरातमत्ताथेरीगाथा 297
2. वासेट्ठीथेरीगाथा 298
3. खेमाथेरीगाथा 299
4. सुजाताथेरीगाथा 300
5. अनोपमाथेरीगाथा 301
6. महापजापतिगोतमीथेरीगाथा 303
7. गुत्ताथेरीगाथा 304
8. विजयाथेरीगाथा 305

7. सत्तकनिपातो 306–310
1. उत्तराथेरीगाथा 306
2. चालाथेरीगाथा 308
3. उपचालाथेरीगाथा 309

8. अट्ठकनिपातो 310–312
1. सीसूपचालाथेरीगाथा 310

9. नवकनिपातो 312–314
1. वड्ढमातुथेरीगाथा 312

10. एकादसनिपातो 314–316
1. किसागोतमीथेरीगाथा 314

11. द्वादसनिपातो 316–318
1. उप्पलवण्णाथेरीगाथा 316

12. सोळसनिपातो 318–321
1. पुण्णाथेरीगाथा 318

13. वीसतिनिपातो 322–345
1. अम्बपालीथेरीगाथा 322
2. रोहिनीथेरीगाथा 325
3. चापाथेरीगाथा 330
4. सुन्दरीथेरीगाथा 334
5. सुभाकम्मारधीतुथेरीगाथा 339

14. तिंसनिपातो 345–352
1. सुभाजीवकम्बवनिकाथेरीगाथा 345

15. चत्तालीसनिपातो 352–361
1. इसिदासीथेरीगाथा 352

16. महानिपातो 316–376
1. सुमेधाथेरीगाथा 361

परिशिष्ट 377–399
1. थेरगाथानुक्कमणिका 377
2. थेरीगाथानुक्कमणिका 393

Scanned with OKEN Scanner

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ॥

॥ नमस्तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय ॥

खुद्दकनिकाये

थेरगाथापालि

1.एककनिपातो

मूलपालि-

निदानगाथा

सीहानंव नदन्तानं, दाठीनं गिरिगब्भरे।
सुणाथ भावितत्तानं, गाथा अत्थूपनायिका ॥
तत्थ तत्थ विपस्सित्वा, फुसित्वा अच्चुतं पदं।
कतन्तं पच्चवेक्खन्ता, इममत्थमभासिसुं॥
यथानामा यथागोत्ता, यथाधम्मविहारिनो।
यथाधिमुत्ता सप्पञ्ञा, विहरिंसु अतन्दिता॥

(संस्कृतच्छाया)-

सिंहानामिव नदताम्, दंष्ट्रिणां गिरिगह्वरे।
शृणुत भावितात्मनाम्, गाथार्थोपनायिका:॥
तत्र तत्र विपश्य, स्पृष्ट्वाच्युतं पदम्।
कृतं तत् प्रत्यवेक्षमाणा:, इममर्थमभाषिषु:॥
यथा नामानि यथा गोत्रा:, यथा धर्मविहारिण:।
यथाधिमुक्ता: सप्रज्ञा:, व्यहार्षु: अतन्द्रिता:॥

(हिन्दी)-

पर्वतों की गुफाओं में भयंकर दांत वाले सिंहों के समान नाद करने वाले, संयतेन्द्रिय भिक्षुओं की अर्थपूर्ण (निर्वाण तक पहुँचाने वाली) गाथाएँ सुनें॥

भिक्षुओं ने वहाँ वहाँ ध्यान करते हुए साक्षात्कार कर, अच्युत पद तक पहुँचकर तथा स्वकृत साधना का प्रत्यवेक्षण करते हुए ये साधना में उपयोगी वचन कहे॥

वे भिक्षु अपने नाम, गोत्र, धर्मसाधना, अधिमुक्ति के अनुरूप प्रज्ञा के साथ सावधान हो कर साधना करते थे॥

1. एककनिपातो

1. पठमवग्गो

1. सुभूतित्थेरगाथा-

''छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता, वस्स देव यथासुखं।
चित्तं मे सुसमाहितं विमुत्तं, आतापी विहरामि वस्स देवा''ति॥1॥
इत्थं सुदं आयस्मा सुभूतित्थेरो गाथं अभासित्थाति।

2. महाकोट्ठिकत्थेरगाथा-

''उपसन्तो उपरतो, मन्तभाणी अनुद्धतो।
धुनाति पापके धम्मे, दुमपत्तंव मालुतो''ति॥2॥
इत्थं सुदं आयस्मा महाकोट्ठिको थेरो गाथं अभासित्थाति।

3. कङ्खारेवतत्थेरगाथा-

''पञ्ञं इमं पस्स तथागतानं, अग्गि यथा पज्जलितो निसीथे।
आलोकदा चक्खुददा भवन्ति, ये आगतानं विनयन्ति कङ्खं''ति॥3॥
इत्थं सुदं आयस्मा कङ्खारेवतो थेरो गाथं अभासित्थाति।

(संस्कृतच्छाया)-1. ''छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता, वर्ष देव! (मेघ!) यथासुखम्।
चित्तं मे सुसमाहितं विमुक्तमातापी विहरामि वर्ष देव!"इति॥1॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् सुभूतिस्थविरो गाथामभाषत"इति॥

2. ''उपशान्त उपरतः, मन्त्रभाणी अनुद्धतः।
धुनाति पापकान् धर्मान्, द्रुमपत्रमिव मारुतः"इति॥2॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् महाकोट्ठिकस्थविरो गाथामभाषत"इति।

3. ''प्रज्ञामिमां पश्य तथागतानाम्, अग्निर्यथा प्रज्वलितो निशीथे।
आलोकदाश्चक्षुर्ददा भवन्ति, ये आगतानां विनयन्ति शङ्काम्"इति॥3॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् कङ्खारेवतस्थविरो गाथामभाषत"इति।

(हिन्दी)-"मेरी कुटिया भलीभाँति छायी हुई है। वातरहित होने से सुखप्रदान भी करती है। अतः हे मेघदेवता! अब तुम अपनी इच्छा से बरसो, मेरा चित्त संयत एवं सभी विकारों से मुक्त है, अतः आप यथेच्छ बरसिये॥1॥" इस प्रकार आयुष्मान् सुभूति स्थविर ने यह गाथा कही॥

"शान्तिवृत्ति, विषयभोगों से उपरत (विरक्त), विचारपूर्वक बोलने वाला साधक अपने पाप धर्मों को उसी प्रकार हिला देता है जैसे वायु वृक्ष के पत्तों को हिला देती है॥2॥" इस प्रकार आयुष्मान् महाकाष्ठिक स्थविर ने यह गाथा कही।

तथागतों की इस प्रज्ञा का महत्त्व उसी प्रकार समझो जैसे घनघोर रात्रि में प्रज्ज्वलित अग्नि। आलोक दिखाने वाले एक प्रकार से मार्गदर्शक ही होते हैं; क्योंकि वे सामने आये जिज्ञासु के शंकाओं का निराकरण करते हैं॥3॥"....आयुष्मान् कङ्खारेवत स्थविर ने... ॥

4. पुण्णत्थेरगाथा-

''सम्भिरेव समासेथ, पण्डितेहत्थदस्सिभि।
अत्थं महन्तं गम्भीरं, दुद्दसं निपुणं अणुं।
धीरा समधिगच्छन्ति, अप्पमत्ता विचक्खणा''ति॥4॥
इत्थं सुदं आयस्मा पुण्णो मन्ताणिपुत्तो थेरो गाथं अभासित्थाति।

5. दब्बत्थेरगाथा-

''यो दुद्दमियो दमेन दन्तो, दब्बो सन्तुसितो वितिण्णकङ्खो।
विजितावी अपेतभेरवो हि, दब्बो सो परिनिब्बुतो ठितत्तो''ति॥5॥
इत्थं सुदं आयस्मा दब्बो थेरो गाथं अभासित्थाति।

6. सीतवनियत्थेरगाथा-

''यो सीतवनं उपगा भिक्खु, एको सन्तुसितो समाहितत्तो।
विजितावी अपेतलोमहंसो, रक्खं कायगतासतिं धितिमा''ति॥6॥
इत्थं सुदं आयस्मा सीतवनियो थेरो गाथं अभासित्थाति।

(संस्कृतच्छाया)- 4. ''सद्भिरेव समासीत, पण्डितैरर्थदर्शिभिः।
अर्थं महान्तं गम्भीरम्, दुर्दर्शं निपुणमणुम्।
धीराः समधिगच्छन्ति, अप्रमत्ता विचक्षणाः"इति॥4॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् पूर्णमन्ताणिपुत्रस्थविरः गाथामभाषत"इति॥

5. ''यो दुर्दम्यो दमेन दान्तः, *दब्बो* सन्तुष्टो वितीर्णशङ्कः।
विजयी अपेतभैरवो हि, *दब्बो* स परिनिवृतः स्थितचित्तः(आत्मा)"इति॥5॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् *दब्बस्थविरो* गाथामभाषत"इति॥

6. ''यः शीतवनमुपागाद् भिक्षुः, एकः सन्तुष्टः समाहितचित्तः(आत्मा)।
विजयी अपेतलोमहर्षः, ररक्ष कायगतस्मृतिं धृतिमान्"इति॥6॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् शीतवनीयस्थविरो गाथामभाषत"इति।

(हिन्दी)- अर्थद्रष्टा, बुद्धिमान् को सज्जनों की संगति करनी चाहिये। उनके साथ बैठकर धीर, बुद्धिमान् एवं सावधान चतुर जिज्ञासु उनसे धर्मविषयक सूक्ष्म, गम्भीर एवं दुर्जेय अर्थ को जानने का प्रयास करते हैं॥4॥

...आयुष्मान् पूर्ण स्थविर ने... ॥

जो दब्ब नामक भिक्षु पहले कभी दुर्दमनीय था, आज वह, तथागत के अनुशासन के प्रभाव से दान्त, सन्तुष्ट, ज्ञान के विषय में असन्दिग्ध, इन्द्रियजयी, निर्भीक एवं स्थिरचित्त हो कर निर्वाण तक पहुँच गया है॥5॥"

...आयुष्मान् द्रव्य स्थविर ने... ॥

जो भिक्षु शीतवन में गया और वहाँ एकान्त में बैठकर सर्वथा सन्तोषपूर्वक स्थिर चित्त से इन्द्रियों को संयत कर निर्भीकतापूर्वक एवं धैर्य के साथ कायगत स्मृति की साधना में लग गया है॥6॥

...आयुष्मान् शीतवनीय स्थविर ने... ॥

7. भल्लियत्थेरगाथा-

''योपानुदी मच्चुराजस्स सेनं, नळसेतुंव सुदुब्बलं महोघो।
विजितावी अपेतभेरवो हि, दन्तो सो परिनिब्बुतो ठितत्तो''ति॥7॥
इत्थं सुदं आयस्मा भल्लियो थेरो गाथं अभासित्थाति।

8. वीरत्थेरगाथा-

''यो दुद्दमियो दमेन दन्तो, वीरो सन्तुसितो वितिण्णकङ्खो।
विजितावी अपेतलोमहंसो, वीरो सो परिनिब्बुतो ठितत्तो''ति॥8॥
इत्थं सुदं आयस्मा वीरो थेरो गाथं अभासित्थाति।

9. पिलिन्दवच्छत्थेरगाथा-

''स्वागतं न दुरागतं , नयिदं दुमन्तितं मम।
संविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमिं''ति ॥9॥
इत्थं सुदं आयस्मा पिलिन्दवच्छो थेरो गाथं अभासित्थाति।

(संस्कृतच्छाया)-7. ''योऽपानुदन्मृत्युराजस्य सेनाम्, नडसेतुमिव सुदुर्बलं महौघः।
विजयी अपेतभैरवो हि, दान्तः स परिनिर्वृतः स्थितचित्तः(आत्मा)"इति॥7॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् भल्लियस्थविरो गाथामभाषत"इति॥

8. ''यो दुर्दम्यो दमेन दान्तः, वीरः सन्तुष्टो वितीर्णशङ्कः।
विजयी अपेतरोमहर्षः, वीरः स परिनिर्वृतः स्थितचित्तः(आत्मा)"इति॥8॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् वीरः स्थविरो गाथामभाषत"इति॥

9. ''स्वागतं न दुरागतम्, नेदं दुर्मन्त्रितं मम।
संविभक्तेषु धर्मेषु, यत् श्रेष्ठं तमुपागमम्"इति॥9॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् पिलिन्दवच्छस्थविरो गाथामभाषत"इति।

(हिन्दी)- जिसने मृत्युराज (मार) की सेना को उसी प्रकार सरलता से परास्त कर दिया जैसे भयंकर बाढ़ नड़ों से बने दुर्बल पुल को तोड़ दिया करती है। इस प्रकार मैं भी इन्द्रियविजयी हो कर निर्भयतापूर्वक स्थिर चित्त से परिनिर्वाण पर पहुँच गया हूँ॥7॥" ...आयुष्मान् भाल्लिय स्थविर ने... ॥

जो वीर भिक्षु पहले कभी दुर्दमनीय था, आज वह तथागत ने अनुशासन के प्रभाव से, दान्त, सन्तुष्ट, ज्ञान के विषय में असन्दिग्ध, इन्द्रियविजयी, निर्भीक एवं स्थिरचित्त हो कर निर्वाण में स्थित है॥8॥

...आयुष्मान् वीर स्थिवर ने... ॥

मैंने धर्म का शास्त्रानुसार अभ्यास किया है, ऐसे वैसे के साथ बैठकर दुरभ्यास नहीं। मैंने विविध प्रकार से मन्त्रणा के द्वारा संविभक्त धर्मों में जो श्रेष्ठ लगा उसको स्वीकार किया॥9॥

...आयुष्मान् पिलिन्दवत्स स्थविर ने... ॥

10. पुण्णमासत्थेरगाथा-

''विहरि अपेक्खं इध वा हुरं वा, यो वेदऊऊ समितो यतत्तो।
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो, लोकस्स जञ्ञा उदयब्बयञ्चा''ति॥10॥
इत्थं सुदं आयस्मा पुण्णमासो थेरो गाथं अभासित्थाति।

वग्गो पठमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – सुभूति कोट्ठिको थेरो, कङ्खारेवतसम्मतो।
मन्ताणिपुत्तो दब्बो च, सीतवनियो च भल्लियो।
वीरो पिलिन्दवच्छो च, पुण्णमासो तमोनुदोति॥

2. दुतियवग्गो

1. चूळवच्छत्थेरगाथा-

''पामोज्जबहुलो भिक्खु, धम्मे बुद्धप्पवेदिते।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं''ति॥11॥ ... चूळवच्छो थेरो...।

2. महावच्छत्थेरगाथा-

''पञ्ञाबली सीलवतूपपन्नो, समाहितो झानरतो सतीमा।
यदत्थियं भोजनं भुञ्जमानो, कङ्खेथ कालं इध वीतरागो''ति॥12॥

... महावच्छो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-10. ''विजहार अपेक्षमाण इह परं वा, यो वेदज्ञ: शमित: यतात्मा।
सर्वेषु धर्मेष्वनुपलिप्त:, लोकस्य जानाति उदयं व्ययञ्च" इति॥10॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् पूर्णमासस्थविरो गाथामभाषत"इति।

तस्योद्दानम्- *सुभूति कोट्ठिको* स्थविरौ, *कङ्खारेवत*सम्मत:।
मन्ताणिपुत्तो दब्बो च, *सीतवनियो* च *भल्लियो* ।
वीरो पिलिन्दवच्छो च, *पुण्णमासो* तमोनुद:"इति॥ ●

1. ''प्रामोद्यबहुलो भिक्षु:, धर्मे बुद्धप्रवेदिते।
अधिगच्छेत् पदं शान्तम्, संस्कारोपशमं सुखम्"इति॥11॥

2. ''प्रज्ञाबली शीलव्रतोपपन्न:, समाहित: ध्यानरत: स्मृतिमान्।
यदर्थिकं भोजनं भुञ्जमान:, काङ्क्षेत् कालमिह वीतराग:"इति॥12॥

(हिन्दी)- जिस वेदज्ञ साधक ने अपेक्षा करते हुए इस लोक या परलोक में शान्त एवं संयतचित हो कर साधना की है वही सब सांसारिक धर्मों में अलिप्त रहता हुआ लोक के उत्पन्न एवं नाश को जान सकता है॥10॥इस प्रकार आयुष्मान् पूर्णमास स्थविर ने यह गाथा कही॥

इस वर्ग की सूची- सूभूति, महाकौष्ठिक स्थविर, कङ्खारेवत, पूर्ण स्थविर, द्रव्य स्थविर, शीतवनीय स्थविर, भल्लिय स्थविर, वीर स्थविर, पिलिन्दवत्स स्थविर, एवं पूर्णमास स्थविर॥ ●

बुद्धोपदिष्ट धर्म में अतिशय प्रमोद रखने वाले भिक्षु ही संस्कारों के शामक एवं सुखमय शान्त पद को प्राप्त कर सकता है॥11॥....चूड़वत्स स्थविर .....॥

ज्ञान से बलशाली, शीलव्रत से युक्त, समाहित इन्द्रियों वाला स्मृतिमान् एवं ध्यानी भिक्षु उचित भोजन करता हुआ भी अपने आयु: संस्कार पूर्ण होने की प्रतीक्षा करें॥12॥ ....महावत्स स्थविर....॥

3. वनवच्छत्थेरगाथा-

''नीलब्भवण्णा रुचिरा, सीतवारी सुचिन्धरा।
इन्दगोपकसञ्छन्ना, ते सेला रमयन्ति मं''ति॥13॥ ... वनवच्छो थेरो...॥

4. सिवकसामणेरगाथा-

''उपज्झायो मं अवच, इतो गच्छाम सीवक।
गामे मे वसति कायो, अरञ्ञं मे गतो मनो॥
सेमानकोपि गच्छामि, नत्थि सङ्गो विजानतं''ति॥14॥ ... सिवको सामणेरो...।

5. कुण्डधानत्थेरगाथा-

''पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णोति वुच्चती''ति॥15॥ ... कुण्डधानो थेरो...।

6. बेलट्ठसीसत्थेरगाथा

''यथापि भद्दो आजञ्ञो, नङ्गलावत्तनी सिखी।
गच्छति अप्पकसिरेन, एवं रत्तिन्दिवा मम।
गच्छन्ति अप्पकसिरेन, सुखे लद्धे निरामिसे''ति॥16॥ ... बेलट्ठसीसो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-3. ''नीलाभ्रवर्णा: रुचिरा:, शीतवारिशुचिन्धरा:।
इन्द्रगोपकसंछन्ना:, ते शैला: रमयन्ति माम्"इति॥13॥

4. ''उपाध्यायो मामवोचत्, इतो गच्छाम: सीवक!
ग्रामे मे वसति काय:, अरण्यं मे गतं मन:।
शयानोऽपि गच्छामि, नास्ति सङ्गो विजानतामेति॥14॥

5. ''पञ्च छिन्द्यात् पञ्च जह्यात्, पञ्चोत्तरं भावय।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्षु:, ओघतीर्ण इत्युच्यते"इति॥15॥

6. ''यथाऽपि भद्र आजञ्ञो, नाङ्गलावत्तनी सिखी।
गच्छति अल्पकृच्छ्रेण, एवं रात्रिंदिवा मम।
गच्छन्ति अप्रकर्षेण, सुखे लब्धे निरामिषे"इति॥16॥

(हिन्दी)- नीले आकाश के समान वर्ण वाले, सुन्दर, शीतल जल वाले, इन्द्रगोप (वीरबहूटी) से ढके हुए वे पर्वत मुझको बहुत रमणीय लगते हैं॥13॥ ....वनवत्स स्थविर....॥

मेरे उपाध्याय ने मुझसे कहा— 'सीवक! यहाँ से चलें; क्योंकि मेरा मन ग्राम में वास कर रहा है, इस अरण्य से मेरा मन चला गया है। अत: मैं न चाहता हुआ भी जा रहा हूँ; क्योंकि ज्ञानियों का सङ्ग छोड़ना उचित नहीं॥14॥ ....वनवत्स स्थविर के श्रामणेर ने....॥

पाँच (अधोभागीय संयोजनों) को काट दे, पाँच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को त्याग दे, पाँच (श्रद्धा, स्मृति, वीर्य, समाधि एवं प्रज्ञा) की भावना को आगे बढ़ा। पाँच (रूप, वेदना आदि स्कन्धों) का सङ्ग छोड़कर आगे बढ़ जाने वाला भिक्षु औघतीर्ण कहलाता है॥15॥ .....कुण्डधान स्थविर....॥

जैसे कोई श्रेष्ठ अश्व या हल के आगे चलने वाला बैल कुछ ही कठिनाई से चलता है, इसी प्रकार मेरे रात्रि एवं दिन भी, अभौतिक सुख मिल जाने के बाद, कुछ ही कठिनाई से ही बीत रहे हैं॥16॥

....विल्वास्थिशीर्ष (वेलाट्ठिसीस) स्थविर.....॥

7. दासकत्थेरगाथा-

''मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो''ति॥17॥ ... दासको थेरो...।

8. सिङ्गालपितुत्थेरगाथा-

''अहु बुद्धस्स दायादो, भिक्खु भेसकळावने।
केवलं अट्ठिसञ्ञाय, अफरी पथविं इमं।
मञ्ञेहं कामरागं सो, खिप्पमेव पहिस्सती''ति ॥18॥ ... सिङ्गालपिता थेरो...।

9. कुलत्थेरगाथा-

''उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति सुब्बता''ति॥19॥ ... कुलो थेरो...।

10. अजितत्थेरगाथा-

''मरणे मे भयं नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि, सम्पजानो पटिस्सतो''ति ॥20॥ ... अजितो थेरो ...।

वग्गो दुतियो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)-7. '' मृद्धी यदा भवति महाघसश्च, निद्रायिता संपरिवर्तशायी।
महावराह इव निवापपुष्टः, पुनापुनो गर्भमुपैति मन्द"इति॥17॥

8. ''अभूः बुद्धस्य दायादः, भिक्षुर्भेसकड़ावने।
केवलमस्थिसंज्ञायाम्, अफलत् पृथ्वीमिमाम्।
मन्येऽहं कामरागं सः, क्षिप्रमेव प्रहास्यति"इति॥18॥

9. ''उदकं हि नयन्ति नेतृकाः, इषुकारा नमयन्ति तेजनम्।
दारु नमयन्ति तक्षकाः, आत्मानं दमयन्ति सुव्रताः"इति॥19॥

10. ''मरणे मे भयं नास्ति, निकान्तिः नास्ति जीविते।
संदेहं निःक्षेप्स्यामि, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः"इति॥20॥

(हिन्दी)- जब मनुष्य आलसी बन जाता है तथा अधिक खाने वाला हो जाता है, निद्रा से अभिभूत रहता है, मञ्च पर लेटा हुआ करवट बदलता रहता है, फिर भी उसको निद्रा नहीं आती; तब वह मूर्ख, घर में खाकर मोटे हुए पालित शूकर के समान, इस लोक में बार-बार जन्म लेता रहता है।17॥

मैं बुद्ध का आध्यात्मिक उत्तराधिकारी भिक्षु भेसकड़ावन में केवल अस्थि संज्ञा की भावना द्वारा ही इस समग्र पृथ्वी का प्रत्यवेक्षण करता रहा। इससे मेरा समस्त कामराग शीघ्र ही नष्ट हो जायगा— ऐसा मेरा मानना है॥18॥ ....श्रृगालपिता स्थविर.....॥

जैसे मनुष्य नहरें बनाकर यथास्थान जल ले जाते हैं, बाण के निर्माता टेढे वाण को सीधा कर लेता हैं, बढई भी लकड़ी को अपने उपयोग में लाने योग्य बना लेते हैं; उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष भी आत्मसंयम में तत्पर रहते हैं॥19॥ ....कुलस्थिवर.....॥

मुझको अब मृत्यु से कोई भय नहीं है, न मुझे अपने जीवन में कोई रुचि रह गयी है। अब मैं स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक साधना से अपने सन्देहों को नष्ट कर दूँगा ॥20॥ ...अजित स्थविर ने यह गाथा कही॥

तस्सुद्दानं –

चूळवच्छो महावच्छो, वनवच्छो च सीवको।
कुण्डधानो च बेलट्ठि, दासको च ततोपरि।
सिङ्गालपितिको थेरो, कुलो च अजितो दसाति॥

3. ततियवग्गो

1. निग्रोधत्थेरगाथा-

''नाहं भयस्स भायामि, सत्था नो अमतस्स कोविदो।
यत्थ भयं नावतिट्ठति, तेन मग्गेन वजन्ति भिक्खवो''ति॥21॥... निग्रोधो थेरो...।

2. चित्तकत्थेरगाथा-

''नीला सुगीवा सिखिनो, मोरा कारम्भियं अभिनदन्ति।
ते सीतवातकीळिता , सुत्तं झायं निबोधेन्ती''ति॥22॥ ... चित्तको थेरो...।

3. गोसालत्थेरगाथा-

''अहं खो वेळुगुम्बस्मिं, भुत्वान मधुपायसं।
पदक्खिणं सम्मसन्तो, खन्धानं उदयब्बयं।
सानुं पटिगमिस्सामि, विवेकमनुब्रूहयं''ति॥23॥ ... गोसालो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-

तस्योद्दानम्- *चूळवच्छो महावच्छो, वनवच्छो च सीवको।*
कुण्डधानो च बेलट्ठि, दासको च तत उपरि।
सिङ्गालपितिको स्थविरः, *कुलो च अजितो* दशेति॥ ●

1. ''नाहं भयात् विभेमि, शास्ता नोऽमृतस्य कोविदः।
यत्र भयं नावतिष्ठति, तेन मार्गेण व्रजन्ति भिक्षवः"इति॥21॥

2. ''नीलाः सुग्रीवाः शिखिनः, मयूराः कारम्भि अभिनदन्ति।
ते शीतवातक्रीडिताः, सुसं ध्यायिनं निबोधयन्तीति॥22॥

3. ''अहं खलु वेणुगुल्मे, भुक्त्वा मधुपायसम्।
प्रदक्षिणं संभृशन्, स्कन्धानामुदयव्ययम्।
सानुं प्रतिगमिष्यामि, विवेकमनुब्रूहयमिति॥23॥

(हिन्दी)- इस वर्ग की सूची- चूडवत्स स्थविर, महावत्स स्थविर, वनवत्स स्थविर, वनवत्स स्थविर का श्रामणेर सीवक, कुण्डधान स्थविर, वेलट्ठिसीस स्थविर, दासक स्थविर, श्रृगालपिता स्थविर, कुलस्थविर एवं अजित स्थविर॥ ●

मैं भय से नहीं डरता; क्योंकि मेरे शास्ता अमृत के ज्ञाता हैं। जहाँ भय की कोई सम्भावना नहीं है, भिक्षु जन उसी मार्ग से जाते हैं॥21॥ ...न्योग्रोध स्थविर.....॥

मनोहर ग्रीवा वाले नीलवर्ण मयूर अपने केका स्वर में मधुर ध्वनि कर रहे हैं। वे स्वयं शीत वायु में खेलते हुए भी साधक को सूत्र के ध्यान में प्रोत्साहित ही करते हैं॥22॥ ....चित्रक स्थविर.....॥

मैं वेणुगुम्ब में मधुमिश्रित पायस खा कर चारों ओर से उदय व्यय का विमर्श करता हुआ एकान्त साधना को बढा कर साधना के शिखर तक पहुँच जाऊँगा॥23॥ ...गोशाल स्थविर.....॥

4. सुगन्धत्थेरगाथा-

''अनुवस्सिको पब्बजितो, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥24॥ ... सुगन्धो थेरो...।

5. नन्दियत्थेरगाथा-

''ओभासजातं फलगं, चित्तं यस्स अभिण्हसो।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसी''ति॥25॥ ... नन्दियो थेरो...।

6. अभयत्थेरगाथा-

''सुत्वा सुभासितं वाचं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
पच्चब्यधिं हि निपुणं, वालग्गं उसुना यथा''ति॥26॥ ... अभयो थेरो...।

7. लोमसकङ्गियत्थेरगाथा-

''दब्बं कुसं पोटकिलं, उसीरं मुञ्जपब्बजं।
उरसा पनुदिस्सामि, विवेकमनुब्रूहयं''ति॥27॥ ... लोमसकङ्गियो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''अनुवर्षिकः प्रव्रजितः, दृष्ट्वा धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनमिति॥24॥

5. ''आभासञ्जातं फलगम्, चित्तं यस्य अभीक्ष्णम्।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृत्स्नं दुःखं निर्गच्छति"इति॥25॥

6. ''श्रुत्वा सुभाषितं वाचम्, बुद्धस्यादित्यबन्धोः।
प्रतिवेधे हि निपुणम्, बालाग्रेण इषुना यथा"इति॥26॥

7. ''दर्भं कुशं पोटगलम्, उशीरं मुञ्जप्रब्रज्याम्।
उरसा अपनोदिष्यामि, विवेकमनुवर्द्धयामि"इति॥27॥

(हिन्दी)- इस धर्म की अच्छाई देख कर ही मैंने इस धर्म में वर्षाकाल के बाद प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और दृढता से साधना करते हुए कुछ ही समय में मैंने तीनों विद्याएँ प्राप्त कर लीं और बुद्धानुशसन का भी सम्यक् रीति से पालन किया॥24॥ .....सुगन्ध स्थविर.....॥

जिस भिक्षु का फलस्थ चित्त सदैव प्रकाशमय रहता है वैसे भिक्षु की सङ्गति पा कर साधक का सभी पापमय दुःख नष्ट हो जाता है॥25॥ ..नन्दिय स्थविर ....॥

आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध के देशनावचन सुनकर उनका पालन करते हुए मैंने उसी प्रकार कुशल लक्ष्यभेद किया जैसे कोई दक्ष धनुर्धर अपने बाण से यथार्थ लक्ष्यवेध किया करता है॥26॥ ....अभय स्थविर.....॥

दर्भ, कुश, काश, उशीर, मूँज, बल्बज आदि तृणविशेषों के प्रत्यवेक्षण के माध्यम से मैं अपनी एकान्त साधना में वृद्धि करुँगा॥27॥ ....लोमसकङ्गिय स्थविर.....॥

8. जम्बुगामिकपुत्तत्थेरगाथा-

''कच्चि नो वत्थपसुतो, कच्चि नो भूसनारतो।
कच्चि सीलमयं गन्धं, किं त्वं वायसि नेतरा पजा''ति॥28

...जम्बुगामिकपुत्तो थेरो...।

9. हारितत्थेरगाथा-

''समुन्नमयमत्तानं, उसुकारोव तेजनं।
चित्तं उजुं करित्वान, अविज्जं भिन्द हारिता''ति॥29॥ ... हारितो थेरो...।

10. उत्तियत्थेरगाथा-

''आबाधे मे समुप्पन्ने, सति मे उदपज्जथ।
आबाधो मे समुप्पन्नो, कालो मे नप्पमज्जितुं''ति॥30॥ ... उत्तियो थेरो...।

वग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – निग्रोधो चित्तको थेरो, गोसालथेरो सुगन्धो।
नन्दियो अभयो थेरो, थेरो लोमसकङ्गियो।
जम्बुगामिकपुत्तो च, हारितो उत्तियो इसीति॥

(संस्कृतच्छाया)-8. ''कश्चित् नु वस्त्राप्रसक्तः, कश्चित् न भूषणे रतः।
कश्चित् शीलमयं गन्धम्, किं त्वं वायसि नेतराः प्रजाः"इति॥28॥

9. ''समुन्नतमात्मानम्, इषुकारमिव तेजनम्।
चित्तम् ऋजुं कृत्वा नु, अविद्यां भिन्द हारिता"इति॥29॥

10. ''आबाधे मयि समुत्पन्ने, स्मृतिः मया उपाध्यायत।
आबाधो मह्यं समुत्पन्नः, कालो मया नाप्रमार्जितेयः" इति॥30॥

तस्योद्दानम्- *निग्रोधो चित्तको* स्थविरः, *गोसालस्थविरः सुगन्धो।*
नन्दियो अभयो स्थविरः, स्थविरः *लोमसकङ्गियो*।
जम्बुगामिकपुत्तो च, *हारितो उत्तियो* ऋषिः" इति॥ ●

(हिन्दी)- कोई वस्त्र में आसक्त है, कोई भूषण में आसक्त है, कोई शीलरूप गन्ध में आसक्त है। क्या तेरी आसक्ति, अन्य जनता की तरह, कहीं भी नहीं है॥28॥ ....जम्बूग्रामिकपुत्र स्थविर...॥

जैसे बाण बनाने वाला बाण को तीक्ष्ण कर लेता है; इसी प्रकार मैं हारित भी आत्मसंयम द्वारा चित्त को सरल कर अपनी अविद्या को नष्ट कर दूँगा॥29॥ .... हारित स्थविर...॥

किसी प्रकार का सङ्कट उपस्थित होने पर, मुझे स्मृति का आश्रय लेना चाहिये। क्योंकि मुझको सङ्कट उपस्थित हो गया है, अतः अब प्रमाद करने का मेरा समय नहीं है॥30॥ ....उत्तिय स्थविर... ॥

इस वर्ग की सूची- न्यग्रोध स्थविर, चित्रक स्थविर, गोशाल स्थविर, सुगन्ध स्थविर, नन्दिय स्थविर, अभय स्थविर, लोमसङ्गिय स्थविर, जम्बूग्रामिकपुत्र स्थविर, हारित स्थविर, उत्तिय स्थविर॥ ●

4.चतुत्थवग्गो

1. गह्वरतीरियत्थेरगाथा-

''फुट्ठो डंसेहि मकसेहि, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
नागो संगामसीसेव, सतो तत्राधिवासये''ति॥31॥ ... गह्वरतीरियो थेरो...।

2. सुप्पियत्थेरगाथा-

''अजरं जीरमानेन, तप्पमानेन निब्बुतिं।
निमियं परमं सन्तिं, योगक्खेमं अनुत्तरं'' ति॥32॥ ... सुप्पियो थेरो...।

3. सोपाकत्थेरगाथा-

''यथापि एकपुत्तस्मिं, पियस्मिं कुसली सिया।
एवं सब्बेसु पाणेसु, सब्बत्थ कुसलो सिया''ति॥33॥ ... सोपाको थेरो...।

४. पोसियत्थेरगाथा-

''अनासन्नवरा एता, निच्चमेव विजानता।
गामा अरञ्ञमागम्म, ततो गेहं उपाविसि ।
ततो उट्ठाय पक्कामि, अनामन्तेत्वा पोसियो''ति॥34॥ ... पोसियो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-1. ''स्पृष्टो दंशै: मच्छकै:, अरण्ये बृहद्वने।
नाग: संग्रामशीर्षे इव, शतस्तत्राधिवासाय"इति॥31॥

2. ''अजरं जीर्णमानेन, तर्पमानेन निवृतिम्।
निर्मीय परमां शान्तिम्, योगक्षेमामनुत्तरामिति॥32॥

3. ''यथापि एकपुत्रे, प्रिये कुशली स्यात्।
एवं सर्वेषु प्राणिषु, सर्वत्र कुशल: स्यात्"इति॥33॥

4. ''अनासन्नवरा एता:, नित्यमेव विजानता:।
ग्रामादरण्यमागम्य, ततो गेहमुपाविशम्।
तत उत्थाय प्रक्रमामि, अनामन्त्रित: पोष्य:"इति॥34॥

(हिन्दी)- किसी वृहत् वन में यदि मच्छर मक्खी आदि के दंश से साधना में बाधा उत्पन्न होने लगे तो उसी प्रकार गहन प्रयास करना चाहिए जैसे कोई बलवान् हाथी किसी युद्धक्षेत्र में विजय हेतु किया करता है॥31॥
....गह्वरतीरीयस्थविर.....॥

जीर्ण धर्मों के अनुवीक्षण करने से अजर पद को, तप आदि ज्वलन्त उपायों के माध्यम से निर्वाण को तथा कृत्रिम धर्मों के प्रत्यवेक्षण से अद्वितीय योगक्षेम युक्त परम शान्ति को प्राप्त करूँगा॥32॥ ....सुप्रियस्थविर....॥

जैसे कोई माता अपने एकमात्र प्रिय पुत्र के कुशलक्षेम हेतु मङ्गलकामना करती रहती है; उसी प्रकार साधक को सभी प्राणियों के प्रति कुशल भावना रखनी चाहिये॥33॥ ....श्वपाक स्थविर .....॥

नित्य ज्ञानी के लिये ये कामभोग कभी उपयोग में आने वाले नहीं हैं। मैं ग्राम का त्याग कर अरण्य में आकर भी पुन: गृहस्थ में आ गया। अब मैं इसको सर्वथा छोड़कर इन कामभोगों में अरुचि रखकर इन का सर्वथा त्याग कर पुन: धर्मसाधना में लग जाऊँगा॥34॥ ....पोष्य स्थविर.....॥

5. सामञ्ञकानित्थेरगाथा-

''सुखं सुखत्थो लभते तदाचरं, कित्तिञ्च पप्पोति यसस्स वड्ढति।
यो अरियमट्ठङ्गिकमञ्जसं उजुं, भावेति मग्गं अमतस्स पत्तिया''ति॥35॥

... सामञ्ञकानित्थेरो...।

6. कुमापुत्तत्थेरगाथा-

''साधु सुतं साधु चरितकं, साधु सदा अनिकेतविहारो।
अत्थपुच्छनं पदक्खिणकम्मं, एतं सामञ्ञमकिञ्चनस्सा''ति॥36॥

... कुमापुत्तो थेरो...।

7. कुमापुत्तसहायकत्थेरगाथा- ''नानाजनपदं यन्ति, विचरन्ता असञ्ञता।
समाधिञ्च विराधेन्ति, किंसु रट्ठचरिया करिस्सति।
तस्मा विनेय्य सारम्भं, झायेय्य अपुरक्खतो''ति॥37॥

....कुमापुत्तत्थेरस्स सहायको थेरो..।

8. गवम्पतित्थेरगाथा- ''यो इद्धिया सरभुं अट्ठपेसि, सो गवम्पति असितो अनेजो।
तं सब्बसङ्गातिगतं महामुनिं, देवा नमस्सन्ति भवस्स पारगुं''ति॥38॥

... गवम्पतित्थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-5. ''सुखं सुखार्थी लभते तदाचरत्, कीर्तिञ्च प्राप्यते यशो वर्धते।
योऽऽर्यमष्टाङ्गिकमञ्जसम् ऋजुम्, भावयति मार्गममृतस्य प्राप्तये"इति॥35॥

6. ''साधु श्रुतं साधु आचरितम्, साधु सदा अनिकेतविहारः।
अर्थपृच्छनं प्रदक्षिणकर्म, एतद् श्रामण्यमकिञ्चिनस्य"इति॥36॥

7. ''नानाजनपदं यान्ति, विचरन्ताऽसंयताः।
समाधिञ्च विराधयन्तः, किंस्विद् राष्ट्रचर्यां करिष्यति।
तस्मात् विनयेत् सारम्भं, ध्यायेत् आत्मरक्षकः"इति॥37॥

8. ''येन ऋद्धिना शरमपि स्तब्धम्, स गवाम्पति असितानेजः।
तं सर्वसङ्गातिगतं महामुनिम्, देवाः नमस्यन्ति भवस्य पारगमिति॥38॥

(हिन्दी)- वह सुखार्थी पुरुष वैसा आचरण करता हुआ सुख और कीर्ति प्राप्त करता है तथा देहपात के बाद स्वर्ग में भी चिरकाल तक यशस्वी रहता है, जो अमृत पद की प्राप्ति हेतु सरल एवं सीधे आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना करता है॥35॥ ....श्रामण्यकानिस्थविर .....॥

सत् श्रवण, सत् चरित्र, शून्य स्थानों में सत् निवास, वृद्धों से धर्मजिज्ञासा, उनको प्रणाम प्रदक्षिणा करना— अकिञ्चन साधक का यही श्रामण्य है॥36॥ ....कुमापुत्रस्थविर .....॥

जो साधक असंतेन्द्रिय रहता हुआ अनेक जनपदों में चारिका करता है, उसकी इस चारिक का कोई लाभ न राष्ट्र को ही होता है, न स्वयं को। अतः, सर्वप्रकार की उत्तेजना, कलह एवं विवाद को चित्त में न लाकर दृढता के साथ ध्यानभावना में लगे रहना चाहिये॥37॥ ....कुमापुत्रस्थविर .....॥

जिस महापुरुष ने अपनी ऋद्धि के प्रभाव से सरट (सर्प जाति का एक महाविषधर प्राणी) को भी रोक दिया, ऐसा गवाम्पति असित स्थविर अपनी साधना में स्थिर है। ऐसे उस सर्वविध सङ्गों को अतिक्रान्त करने वाले महामुनि को देवता भी प्रणाम करते हैं; क्योंकि वह भवपारगामी हो चुका है॥38॥...गवाम्पति स्थविर.....॥

9. तिस्सत्थेरगाथा-

''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥39॥ ... तिस्सो थेरो...।

10. वड्ढमानत्थेरगाथा-

''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
भवरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥40॥ ... वड्ढमानो थेरो...।
वग्गो चतुत्थो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – गह्वरतीरियो सुप्पियो, सोपाको चेव पोसियो।
सामञ्ञकानि कुमापुत्तो, कुमापुत्तसहायको।
गवम्पति तिस्सत्थेरो, वड्ढमानो महायसोति॥

5. पञ्चमवग्गो

1. सिरिवड्ढत्थेरगाथा-

''विवरमनुपतन्ति विज्जुता, वेभारस्स च पण्डवस्स च।
नगविवरगतो च झायति, पुत्तो अप्पटिमस्स तादिनो''ति॥41॥ ... सिरिवड्ढो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-9. ''स्मृतेरिव उन्मट्ठ:, दह्यमान इव मस्तके।
भवरागप्रहाणाय, संतो भिक्षु: परिब्रजेत्"इति॥39॥

10. ''स्मृते उन्मट्ठो दह्यमान इव मस्तके।
भवरागप्रहाणाय, भिक्षु: परिब्रजेत्"इति॥40॥

तस्योद्दानम्- *गह्वरतीरियो सुप्पियो, सोपाको* चेव *पोसियो।*
सामञ्ञकानि कुमापुत्तो, कुमापुत्तसहायको ।
*गवम्पति तिस्स*स्थविर:, *वड्ढमानो* महायश: - इति। ●

1. ''विवरमनुपतन्ति विद्युता:, वैभारस्य च पाण्डवस्य च।
नगविवरगतश्च ध्यायति, पुत्रोऽप्रतिमस्य तादिन:"इति॥41॥

(हिन्दी)- स्मृतिमान् भिखु को स्वकीय कामचेतना के प्रहाण हेतु अपनी प्रव्रज्या में उसी प्रकार दृढता से मन लगा देना चाहिये; जैसे कोई अपने शरीर में प्रविष्ट भाले को निकालने के लिए दृढ प्रयास करता है या अन्य पुरुष अपने शरीर में लगी हुई अग्नि को बुझाने के लिए दृढ प्रयास करता है॥39॥ ...तिष्य स्थविर.....॥

स्मृतिमान् भिक्षु का स्वकीय भवचेतना के प्रहाण हेतु अपनी प्रव्रज्या में लगे रहना चाहिये जैसे कोई पुरुष अपने शरीर में प्रविष्ट भाले को निकालने या अपने शरीर में लगी हुई अग्नि को बुझाने का दृढता से प्रयास करता है॥40॥ ....वर्धमान स्थविर .....॥

इस वर्ग की सूची- गह्वरतीरीय, सुप्रिय, श्वपाक, पोष्य, श्रामण्यकानि, कुमापुत्र, कुमापुत्रसहायक, गवाम्पति, तिष्य एवं महायशस्वी वर्धमान स्थविर॥ ●

इन वैभार एवं पाण्डव पर्वतों की गुफाओं पर बिजली कड़कती रहती है; किन्तु वह अप्रतिम ज्ञानी बुद्ध का शिष्य वहाँ उन गुफाओं में बैठकर साधना करता है॥41॥ ...श्रीवृद्ध स्थविर .....॥

2. खदिरवनियत्थेरगाथा-

''चाले उपचाले सीसूपचाले पतिस्सता नु खो विहरथ।
आगतो वो वालं विय वेधी''ति॥42॥ ... खदिरवनियो थेरो...।

3. सुमङ्गलत्थेरगाथा-

''सुमुत्तिको सुमुत्तिको साहु, सुमुत्तिकोम्हि तीहि खुज्जकेहि।
असितासु मया नङ्गलासु, मया खुद्दकुद्दालासु मया॥
यदिपि इधमेव इधमेव, अथ वापि अलमेव अलमेव।
झाय सुमङ्गल झाय सुमङ्गल, अप्पमत्तो विहर सुमङ्गला''ति॥43॥

... सुमङ्गलो थेरो...।

4. सानुत्थेरगाथा-

''मतं वा अम्म रोदन्ति, यो वा जीवं न दिस्सति।
जीवन्तं मं अम्म पस्सन्ती, कस्मा मं अम्म रोदसी''ति॥44॥ ... सानुत्थेरो...।

5. रमणीयविहारित्थेरगाथा-

''यथापि भद्दो आजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
एवं दस्सनसम्पन्नं, सम्मासम्बुद्धसावकं''ति॥45॥ ... रमणीयविहारित्थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-2. ''चाले! उपचाले! शीर्षोपचाले! प्रतिस्मृता नु खलु विहरथ।
आगतो यूयं व्यालमिव वेधिनम्" इति॥42॥

3. ''सुमुक्तिकः सुमुक्तिकः साधुः, सुमुक्तिकोऽस्मि त्रिभिः क्षुद्रकेभिः।
असितेषु मया लाङ्गलेषु, मया क्षुद्रकुद्दालेषु मया॥
यद्यपीहैवेहैव, अथ वापि अलमेवालमेव।
ध्याय सुमङ्गलं ध्याय सुमङ्गलम्, अप्रमत्तो विहर सुमङ्गल!"इति॥43॥

4. ''मृतं दृष्ट्वा (वा) अम्बे! रुदन्ति, यो वा जीवितः (जीवं) दृश्यते।
जीवन्तं मामम्ब! पश्यन्ती, कस्मात्, मामम्बे रोदिषि"इति॥44॥

5. ''यथापि भद्र आजन्यः, स्खलित्वा प्रतितिष्ठति।
एवं दर्शनसम्पन्नं, सम्यक्सम्बुद्धश्रावकमिति॥45॥

(हिन्दी)- अयि चाला, उपचाला तथा शीर्षोपचाला नामक भिक्षुणियो! आप लोग विश्वास पूर्वक धर्मसाधना में लगी रही; क्योंकि आप लोग यह भलीभाँति समझ लो कि आप लोगों के पीछे मार उसी प्रकार लगा हुआ है, जैसे कोई व्याध मृग के पीछे, उसको मारने के लिये, लग जाता है॥42॥ ... खदिरवनीय स्थविर .....॥

मैं तीन क्षुद्र कामविकारों (राग, द्वेष, मोह) से पूर्णतः मुक्त हो चुका हूँ। मैंने अपनी आध्यात्मिक खेती के लिये हल तथा छोटे कुदाल से हलाइयाँ डाल ली हैं। प्रथम तो मैं इसी जन्म में परिनिवृत्त हो जाऊँगा; अन्यथा मैंने इतनी साधना तो पूर्ण कर ली है कि अग्रिम जन्म में निर्वाण तक पहुँच जाऊँगा। अतः, हे सुमङ्गल! तू सावधानी से ध्यानाभ्यास कर॥43॥ ...सुमङ्गल स्थविर .....॥

माता जी! लोक में माताएँ मरे हुए या जीवित अदृश्य पुत्र के लिये रुदन किया करती हैं; परन्तु आप मुझ जीवित पुत्र को देखकर भी रो रही हैं— इसमें क्या कारण है!॥44॥ ... सानु स्थविर ने...पूर्ववत्....॥

जैसे कोई श्रेष्ठ जाति का अश्व ठोकर खाकर यथास्थान खड़ा रहता है इसी प्रकार कोई बुद्धश्रावक भी साधना में कोई स्खलन होने पर उसका प्रत्यवेक्षण कर और उसका निराकरण कर साधनारत रहता है॥45॥

... रमणीयविहारी स्थविर .....॥

6. समिद्धित्थेरगाथा-

''सद्धायाहं पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सति पञ्ञा च मे वुड्ढा, चित्तञ्च सुसमाहितं।
कामं करस्सु रूपानि, नेव मं ब्याधयिस्ससी''ति ॥46॥ ... समिद्धित्थेरो...।

7. उज्जयत्थेरगाथा-

''नमो ते बुद्ध वीरत्थु, विप्पमुत्तोसि सब्बधि।
तुय्हापदाने विहरं, विहरामि अनासवो''ति॥47॥ ... उज्जयो थेरो...।

8. सञ्जयत्थेरगाथा-

''यतो अहं पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
नाभिजानामि सङ्कप्पं, अनरियं दोससंहितं''ति॥48॥ ... सञ्जयो थेरो...।

9. रामणेय्यकत्थेरगाथा-

''चिहचिहाभिनदिते , सिप्पिकाभिरुतेहि च।
न मे तं फन्दति चित्तं, एकत्तनिरतं हि मे''ति॥49॥ ... रामणेय्यको थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-6. ''श्रद्धयाहं प्रव्रजितः, अगारादनागारिकम्।
स्मृतिः प्रज्ञा च मे वृद्धा, चित्तञ्च सुसमाहितम्।
कामं कुरुष्व रूपाणि, नैव मं बाधयिष्यसि"इति॥46॥

7. ''नमस्ते बुद्ध! वीर! विप्रमुक्तोऽसि सर्वथा।
तवापदाने विहरं, विहराम्यनास्रवः"इति॥47॥

8. ''यतोऽहं प्रव्रजितः, अगारादनागारिकम्।
नाभिजानामि सङ्कल्पम्, अनार्यं दोषसंहितमिति॥48॥

9. ''चिहचिहाभिनदिते, शिल्पिकाभिरुतेहि च।
न मे तं स्फन्दति चित्तम्, एकत्रनिरतं हि मे"इति॥49॥

(हिन्दी)- मैंने रत्नत्रय के प्रति श्रद्धा रखते हुए घर छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की। तब साधना के आश्रयण से मेरी स्मृति एवं प्रज्ञा में वृद्धि हुई। चित्त भी समाहित हो गया। अब भले ही ये लौकिक रूप अपना कुछ भी कार्य करते रहें, उससे मेरी साधना में कोई बाधा नहीं आयेगी॥46॥ ... समृद्धि स्थविर .....॥

हे मारविजयि वीर बुद्ध! आप को प्रणाम है। आप सभी प्रकार के चित्तविकारों से मुक्त हैं । आपके ही कृपाप्रताप से मैं भी निर्विघ्न साधनारत हूँ॥47॥... उज्जय स्थविर .....॥

जब से मैं घर छोड़ कर प्रव्रजित हुआ हूँ, तब से मेरे चित्त में ऐसा कोई सङ्कल्प उद्भूत नहीं हुआ जो अनार्य या द्वेषयुक्त हो॥48॥ ... सञ्जय स्थविर .....॥

चिड़ियाओं की चहचहाहट एवं झींगुरों की सुनसुनाहट से मेरे चित्त की साधना में कोई बाधा नहीं होती। मैं उस स्थिति में भी शान्ति से साधनारत रहता हूँ॥49॥... रमणीयक स्थविर .....॥

10. विमलत्थेरगाथा-

''धरणी च सिञ्चति वाति, मालुतो विज्जुता चरति नभे।
उपसमन्ति वितक्का, चित्तं सुसमाहितं ममा''ति॥50॥ ... विमलो थेरो...।

वग्गो पञ्चमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – सिरीवड्ढो रेवतो थेरो, सुमङ्गलो सानुसव्हयो।
रमणीयविहारी च, समिद्धिउज्जयसञ्जया।
रामणेय्यो च सो थेरो, विमलो च रणञ्जहोति॥

6. छट्ठवग्गो

1. गोधिकत्थेरगाथा-

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
चित्तं सुसमाहितञ्च मय्हं, अथ चे पत्थयसि पवस्स देवा''ति॥51॥

... गोधिको थेरो...।

2. सुबाहुत्थेरगाथा-

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
चित्तं सुसमाहितञ्च काये, अथ चे पत्थयसि पवस्स देवा''ति॥52॥... सुबाहुत्थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-10. ''धरणी च सिञ्चति वाति, मारुतो विद्युच्चरति नभसि।
उपशाम्यन्ति वितर्का:, चित्तं सुसमाहितं मम"इति॥50॥

तस्योद्दानम्- *सिरीवड्ढो रेवतो* स्थविर: *सुमङ्गलो* सानुसाह्वय:।
रमणीयविहारी च, *समिद्धिउज्जयसञ्जया* ।
रामणेय्यो स स्थविर:, *विमलो* च रणञ्जह:"इति॥ ●

1. ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मया कुटिका सुखा निवाता।
चित्तं सुसमाहितञ्च मम, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव!"इति॥51॥
2. ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मया कुटिका सुखा निवाता।
चित्तं सुसमाहितञ्च काये, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव!"इति॥52॥

(हिन्दी)- यह भूमि एवं यहाँ की वायु दोनों वर्षा की बूँदों से शीतलता लिये हुए हैं। आकाश में बिजली चमक रही है। ऐसी परिस्थिति में मेरा चित्त स्थिर और शांत है॥50॥...विमल स्थविर .....॥

इस वर्ग की सूची- श्रीवृद्ध स्थविर, खदिरवनीय स्थविर, सुमङ्गल स्थविर, सानु स्थविर, रमणीयविहारी स्थविर, समृद्धि स्थविर, उज्जय स्थविर, सञ्जय स्थविर, रमणीय स्थविर, विमल स्थविर॥●

सङ्गीतमय वर्षा हो रही है। मेरी कुटिया भी सभी प्रकार से छायी हुई तथा सुरक्षित है। तथा मेरा चित्त भी काया में ही स्थिर है। अत: हे जलयुक्त मेघ! तुम यदि चाहते हो तो यथेच्छ बरसो॥51॥...गोधिक स्थविर....॥

सङ्गीतमय वर्षा हो रही है। मेरी कुटिया भी सभी प्रकार से छायी हुई तथा सुरक्षित है। तथा मेरा चित्त भी काया में ही स्थिर है (चंचल नहीं है)। अत: हे जलयुक्त मेघ! तुम यदि चाहते हो तो यथेच्छ बरसो॥52॥

... सुबाहु स्थविर .....॥

3. वल्लियत्थेरगाथा-

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।

तस्सं विहरामि अप्पमत्तो, अथ चे पत्थयसि पवस्स देवा''ति॥53॥.. वल्लियो थेरो..।

4. उत्तियत्थेरगाथा-

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।

तस्सं विहरामि अदुतियो, अथ चे पत्थयसि पवस्स देवा''ति॥54॥... उत्तियो थेरो...।

5. अञ्जनवनियत्थेरगाथा-

''आसन्दिं कुटिकं कत्वा, ओगय्ह अञ्जनं वनं।

तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥55॥... अञ्जनवनियो थेरो...।

6. कुटिविहारित्थेरगाथा-

''को कुटिकायं भिक्खु कुटिकायं, वीतरागो सुसमाहितचित्तो।

एवं जानाहि आवुसो, अमोघा ते कुटिका कता''ति॥56॥... कुटिविहारित्थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-3. ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मया कुटिका सुखा निवाता।

तस्यामहं विहराम्यप्रमत्तः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव!"इति॥53॥

4. ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मया कुटिका सुखा निवाता।

तस्यामहं विहरामि अद्वितीयः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देव!"इति॥54॥

5. ''आसन्दीं कुटिकां कृत्वा, अवगाह्य अञ्जनं वनम्।

तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनमिति॥55॥

6. ''कः कुटिकायां? भिक्षुः कुटिकायाम्, वीतरागः सुसमाहितचित्तः।

एवं जानीहि आयुष्मन्! अमोघा ते कुटिका कृता"इति॥56॥

(हिन्दी)- सङ्गीतमय वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भलीभाँति छायी हुई और सुरक्षित है। उसमें बैठकर मैं सावधानी से साधनारत हूँ। हे जलयुक्त मेघ! यदि तुम चाहते हो तो यथेच्छ बरसो॥53॥..वल्लिय स्थविर....॥

सङ्गीतमय वर्षा हो रही है। मेरी कुटिया भलीभाँति छायी हुई और सुरक्षित है। उसमें बैठकर मैं एकाकी साधनारत हूँ। हे जलयुक्त मेघ! यदि तुम यदि चाहते हो तो यथेच्छ बरसो॥54॥..उत्तिय स्थविर..॥

मैंने अञ्जनवन में कुटिया बनाकर उसमें चौकी पर बैठे हुए साधना की। वहाँ मैंने क्रमशः तीनों विद्याएँ अधिगत कीं तथा बुद्धानुशासन का पालन किया॥55॥ ... अञ्जनवनवासी स्थविर .....।

कुटिया में कौन बैठा है? कुटिया में मैं वीतराग एवं संयतचित्त भिक्षु बैठा हूँ। तब तो आयुष्मान्! तुम समझ लो कि तुम्हारा कुटिया का बनाना सफल हो गया॥56॥ ... कुटविहारी स्थविर .....॥

7. दुतियकुटिविहारित्थेरगाथा-

''अयमाहु पुराणिया कुटि, अञ्ञं पत्थयसे नवं कुटिं।
आसं कुटिया विराजय, दुक्खा भिक्खु पुन नवा कुटी''ति॥57॥

... दुतियकुटिविहारित्थेरो।

8. रमणीयकुटिकत्थेरगाथा-

''रमणीया मे कुटिका, सद्धादेय्या मनोरमा।
न मे अत्थो कुमारीहि, येसं अत्थो तहिं गच्छथ नारियो''ति॥58॥

...रमणीयकुटिको थेरो...।

9. कोसलविहारित्थेरगाथा-

''सद्धायाहं पब्बजितो, अरञ्ञे मे कुटिका कता।
अप्पमत्तो च आतापी, सम्पजानो पतिस्सतो''ति ॥59॥ ... कोसलविहारित्थेरो...।

10.सीवलित्थेरगाथा-''ते मे इज्झिंसु सङ्कप्पा, यदत्थो पाविसिं कुटिं।
विज्जाविमुत्तिं पच्चेसं, मानानुसयमुज्जहं''ति॥60॥... सीवलित्थेरो...।

वग्गो छट्ठो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)-7. ''इमामाहुः पुराणिका कुटी, अन्यां प्रार्थयसे नवां कुटीम्।
आशां कुट्यां विराजय, दुःखा भिक्षो! पुनर्नवा कुटी"इति॥57॥

8. ''रमणीया मे कुटिका, श्रद्धादेया मनोरमा।
न मे अर्थः कुमारीभिः, येभ्योऽर्थस्तत्र गच्छत नार्यः"इति॥58॥

9. ''श्रद्धयाहं प्रव्रजितः, अरण्ये मे कुटिका कृता।
अप्रमत्तश्च आतापी, सम्प्रजानन् प्रतिस्मृतः"इति॥59॥

10. ''ते मे आर्ध्यन् सङ्कल्पाः, यदर्थः प्राविक्षं कुटीम्।
विद्याविमुक्तिं प्रत्यैच्छम्, मानानुशयमुदजहामिति॥60॥

(हिन्दी)- साधक लोग इसे पुराण कुटी कहते हैं, वे नयी कुटी की इच्छा करते हैं। मैं कहता हूँ कि इसी कुटी में बैठकर साधना करते हुए संसार से विरक्ति प्राप्त करो। भिक्षु! नई कुटी के निर्माण में अनेक कष्ट है॥57॥

... द्वितीय कुटिविहारी स्थविर .....॥

मेरी कुटी ही मुझे अच्छी लगती है, क्योंकि यह किसी ने श्रद्धा से बनाकर दी है। यह मेरे अनुकूल है। मुझे कुमारियों से कोई प्रयोजन नहीं, जिनको प्रयोजन हो वे स्त्रियाँ वहाँ जायँ॥58॥

... रमणीयकुटिक स्थविर .....॥

मैं श्रद्धा से प्रव्रजित हुआ था। और अरण्य में कुटी बनायी। वहाँ मैंने सावधानीपूर्वक स्मृति एवं सम्प्रजन्य के साथ साधना में आगे बढ़ने का प्रयास किया॥59॥... कोसलविहार स्थविर .....॥

वे मेरे सभी सङ्कल्प पूर्ण हो गये, जिनकी पूर्ति के लिये मैं इस कुटी में प्रविष्ट हुआ था। मैंने विद्यात्रयी एवं विमुक्ति का साक्षात्कार कर लिया। तथ मानानुशय का क्षय कर लिया॥60॥....सिवलि स्थविर ने यह गाथा कही॥

तस्सुद्दानं – गोधिको च सुबाहु च, वल्लियो उत्तियो इसि।
अञ्जनवनियो थेरो, दुवे कुटिविहारिनो।
रमणीयकुटिको च, कोसलव्हयसीवलीति॥

7. सत्तमवग्गो

1. वप्पत्थेरगाथा-

''पस्सति पस्सो पस्सन्तं, अपस्सन्तञ्च पस्सति।
अपस्सन्तो अपस्सन्तं, पस्सन्तञ्च न पस्सती''ति॥61॥... वप्पो थेरो...।

2. अवज्जिपुत्तत्थेरगाथा-

''एकका मयं अरञ्ञे विहराम, अपविद्धंव वनस्मिं दारुकं।
तस्स मे बहुका पिहयन्ति, नेरयिका विय सग्गगामिनं''ति॥62॥.वज्जिपुत्तो थेरो..।

3. पक्खत्थेरगाथा-

''चुता पतन्ति पतिता, गिद्धा च पुनरागता।
कतं किच्चं रतं रम्मं, सुखेनन्वागतं सुखं''ति॥63॥ ... पक्खो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-

तस्योद्दानम्- *गोधिको* च *सुबाहु* च, *वल्लियो उत्तियो* ऋषि:।
अञ्जनवनियो स्थविर:, द्वौ *कुटिविहारिणौ* ।
रमणीयकुटिको च, *कोसलह्वयसीवली*ति। ●

1. ''पश्यति पश्यन् पश्यन्तम्, अपश्यन्तञ्च पश्यति।
अपश्यन् अपश्यन्तम्, पश्यन्तञ्च न पश्यतीति॥61॥

2. ''एकका: वयम् अरण्ये विहराम्, अपविद्धमिव वने दारुकम्।
तस्य मे बहुका: स्पृहयन्ति, नैरयिका इव स्वर्गगामिनम्"इति॥62॥

3. ''च्युता: पतन्ति पतिता:, गृद्धाश्च पुनरागता:।
कृतं कृत्यं रतं रम्यम्, सुखेनान्वागतं सुखमिति॥63॥

(हिन्दी)- इस वर्ग की सूची- गोधिक, सुबाहु, वल्लिय, उत्तिय स्थविर, अञ्जनवनवासी, प्रथम कुटिविहारी, द्वितीय कुटिविहारी, रमणीयकुटिक, कौसलविहारी एवं सीवलि स्थविर॥ ●

यर्थाथ द्रष्टा ज्ञानी ही यथार्थ एवं अयथार्थ द्रष्टा— दोनों प्रकार के साधकों की प्रत्यभिज्ञा (परिज्ञान=पहचान) कर सकता है; परन्तु स्वयं अयथार्थद्रष्टा साधक यथार्थद्रष्टा और अयथार्थद्रष्टा— उभयविध ज्ञानियों के परिज्ञान में असमर्थ होता है॥61॥ ... वप्र स्थविर ने...पूर्ववत्....॥

मैं किसी अरण्य में एकान्त वनप्रदेश में फेंकी गयी किसी लकड़ी के समान बैठा हुआ जब साधना करता हूँ तो बहुत से साधारण साधक मुझसे उसी प्रकार स्पृहा करते हैं जैसे किसी स्वर्गवासी पुण्यात्मा के साथ नरक में पड़े हुए लोग किया करते हैं॥62॥... वज्जिपुत्र स्थविर .....॥

जो साधना से च्युत हो गये उन पतितों का पुन: पतन अवश्यम्भावी है। परन्तु जिन साधकों ने अपना रम्य साधनाकृत पूर्ण कर लिया है, वे सुखस्वरूप निर्वाण को सहजता से प्राप्त कर लेते हैं॥63॥ ...पक्ष स्थविर..॥

4. विमलकोण्डञ्ञत्थेरगाथा-

''दुमव्हयाय उप्पन्नो, जातो पण्डरकेतुना।
केतुहा केतुनायेव, महाकेतुं पधंसयी''ति॥64॥ ... विमलकोण्डञ्ञो थेरो...।

5. उक्खेपकतवच्छत्थेरगाथा-

''उक्खेपकतवच्छस्स, सङ्कलितं बहूहि वस्सेहि।
तं भासति गहट्ठानं, सुनिसिन्नो उळारपामोज्जो''ति॥65॥

... उक्खेपकतवच्छो थेरो...।

6. मेघियत्थेरगाथा-

''अनुसासि महावीरो, सब्बधम्मान पारगू।
तस्साहं धम्मं सुत्वान, विहासिं सन्तिके सतो।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥66॥... मेघियो थेरो...।

7. एकधम्मसवनीयत्थेरगाथा-

''किलेसा झापिता मय्हं, भवा सब्बे समूहता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥67॥... एकधम्मसवनीयो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''द्रुमाहवातव्ययोत्पन्नः, जातः पाण्डुरकेतौः।
केतुहा केतुनैव, महाकेतुं प्राध्वंसत"इति॥64॥

5. ''उत्क्षेपकृतवत्सेन, सङ्कलितं बहूभिः वर्षेभिः।
तं भाषते गृहस्थेभ्यः, सुनिषिण्ण उदारप्रमोदः"इति॥65॥

6. ''अन्वशिषत् महावीरः, सर्वधर्मेषु पारङ्गतः।
तस्याहं धर्मं श्रुत्वा, व्याहर्षं सन्तिके स्मृतः।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥66॥

7. ''क्लेशाः दाहिताः मम, भवाः सर्वे: समवहताः।
विक्षीणो जातिसंसारः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः"इति॥67॥

(हिन्दी)- मैं जिस द्रुम के श्वेत केतु से उत्पन्न हुआ उसी केतु से केतु को काटकर महाकेतु को मैंने प्रध्वस्त कर दिया॥64॥ ... विमलकौण्डिन्य स्थविर .....॥

कभी बहिर्निष्कासित वत्स स्थविर ने साधना द्वारा जो धर्मसार संगृहीत किया था, उस धर्मसार का उसने गृहस्थ श्रावकों के लिये अतिशय उदार प्रमोद के साथ सुनाया॥65॥...वत्स स्थविर.....॥

सभी धर्मों में पारङ्गत, महाबलशाली बुद्ध ने मुझ को धर्मोपदेश किया। उसको सुनकर मैंने एकान्त में बैठकर तदनुसार साधना की। उस साधना के बल पर मैंने तीनों विद्याएँ अधागत कीं। साथ ही मैंने बुद्धानुशासन का पालन भी किया॥66॥... मेघिय स्थविर .....॥

मेरे सभी क्लेश दग्ध हो चुके। सभी भव नष्ट हो गये। मेरी जन्म-मरणपरम्परा भी क्षीण हो गयी। अतः अब मेरा पुनर्जनम नहीं होगा॥67॥... एकधर्मश्रवणीय स्थविर .....॥

8. एकुदानियत्थेरगाथा-

''अधिचेतसो अप्पमज्जतो, मुनिनो मोनपथेसु सिक्खतो।
सोका न भवन्ति तादिनो, उपसन्तस्स सदा सतीमतो''ति॥68॥..एकुदानियो थेरो..।

9. छन्नत्थेरगाथा-

''सुत्वान धम्मं महतो महारसं, सब्बञ्ञुतञ्ञाणवरेन देसितं।
मग्गं पपज्जिं अमतस्स पत्तिया, सो योगक्खेमस्स पथस्स कोविदो''ति॥69॥
...छन्नो थेरो।

10. पुण्णत्थेरगाथा-

''सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु, सीलपञ्ञाणतो जयं''ति॥70॥ ... पुण्णो थेरो...।
वग्गो सत्तमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – वप्पो च वज्जिपुत्तो च, पक्खो विमलकोण्डञ्ञो।
उक्खेपकतवच्छो च, मेघियो एकधम्मिको।
एकुदानियछन्ना च, पुण्णत्थेरो महब्बलोति॥

(संस्कृतच्छाया)-8. ''अधिचित्तवतोऽप्रमाद्यत:, मुने: मौनपथेसु शिक्ष्यमाणस्य।
शोका: न भवन्ति तादिन:, उपशान्तस्य सदा स्मृतिमत:"इति॥68॥

9. ''श्रुत्वा धर्मं महतो महारसम्, सर्वज्ञताज्ञानवरेणोपदिष्टम्।
मार्गं प्रापद्यममृतस्य प्राप्तये, स योगक्षेमस्य पथस्य कोविद:"इति॥69॥

10. ''शीलमेवेहाग्रम्, प्रज्ञावान् पुनरुत्तम:।
मनुष्येषु च देवेषु, शीलप्रज्ञाभ्यां जयम्"इति॥70॥

तस्योद्दानम्- *वप्पो* च *वज्जिपुत्तो* च, *पक्खो विमलकोण्डञ्ञो।*
उक्खेपकतवच्छो च, मेघियो एकधम्मिको।
एकुदानियछन्ना च, पुण्णस्थविरो महाबल:"इति॥ ●

(हिन्दी)- मुनि (बुद्ध) के उपदिष्ट साधनामार्ग के अभ्यास में मानसिक रूप से कोई भी प्रमाद न करते हुए मुझ शान्तवृत्ति एवं स्मृतिमान् ज्ञानी के सभी सांसारिक शोक विनष्ट हो चुके हैं॥68॥... एकोदानीय स्थविर.....॥
महान् सर्वज्ञ ज्ञानी सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट अतिशय सारभूत धर्मोपदेश को सुन कर, मैंने अमृत पद की प्राप्त हेतु आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का अवलम्बन किया; क्योंकि ये सम्यक्सम्बुद्ध इस योगक्षेमप्रदाता मार्ग के पूर्ण ज्ञाता हैं॥69॥ ... छन्न स्थविर .....॥
इस धर्मसाधना में शील ही प्रमुख है, तथा प्रज्ञा सर्वोत्तम है। इस लोक एवं देवलोक में शीलवान् एवं प्रज्ञावान् की ही जय होती है॥70॥ ... पूर्ण स्थविर ने यह गाथा कही॥
इस वर्ग की सूची- वप्रस्थविर, वज्जिपुत्र, पक्ष, विमलकौण्डिन्य, उत्क्षेपकृत वत्स, मेघिय स्थविर, एकधार्मिक, एकोदानीय, छन्न, एवं पूर्णस्थविर।●

8. अट्ठमवग्गो

1. वच्छपालत्थेरगाथा

''सुसुखुमनिपुणत्थदस्सिना, मतिकुसलेन निवातवुत्तिना।
संसेवितवुद्धसीलिना , निब्बानं न हि तेन दुल्लभं''ति॥71॥... वच्छपालो थेरो...।

2. आतुमत्थेरगाथा-

''यथा कळीरो सुसु वड्ढितग्गो, दुन्निक्खमो होति पसाखजातो।
एवं अहं भरियायानिताय, अनुमञ्ञं मं पब्बजितोम्हि दानी''ति॥72॥
... आतुमो थेरो...।

3. माणवत्थेरगाथा-

''जिण्णञ्च दिस्वा दुखितञ्च ब्याधितं, मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खयं।
ततो अहं निक्खमितून पब्बजिं, पहाय कामानि मनोरमानी''ति॥73॥
... माणवो थेरो...।

4. सुयामनत्थेरगाथा-

''कामच्छन्दो च ब्यापादो, थिनमिद्धञ्च भिक्खुनो।
उद्धच्चं विचिकिच्छा च, सब्बसोव न विज्जती''ति॥74॥... सुयामनो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-1. ''सुसूक्ष्मनिपुणार्थदर्शिना, मतिकुशलेन निवातवृत्तिना।
संसेवितबुद्धशीलिना, निर्वाणं न हि तेन दुर्लभम्''इति॥71॥

2. ''यथा करीर: शिशु: वर्धिताग्रे:, दुर्निष्क्रमो भवति प्रशाखजात:।
एवमहं भार्ययाऽनीतया, अनुमन्य मम प्रव्रजितोऽस्मि इदानीम्''इति॥72॥

3. ''जीर्णञ्च दृष्ट्वा दु:खितञ्च व्याधितम्, मृतञ्च दृष्ट्वा गतमायुसंक्षयम्।
ततोऽहं निक्रम्य प्राव्राजिषम्, प्रहाय कामान् मनोरमान्''इति॥73॥

4. ''कामच्छन्दश्च व्यापाद:, स्त्यानमृद्धञ्च भिक्षो:।
औद्धत्यं विचिकित्सा च, सर्वश एव न विद्यते''इति॥74॥

(हिन्दी)- अतिशय सूक्ष्म एवं दक्ष अर्थद्रष्टा, मतिकुशल, संयत चित्तवृत्ति वाले तथा बुद्धोपदिष्ट शील का आचरण करने वाले साधक के लिये निर्वाण दुर्लभ नहीं है॥71॥ ....वत्सपाल स्थविर...।

जैसे किसी छोटे करीर वृक्ष का धीरे धीरे शाखा-प्रशाखायुक्त होते हुए साधारणत: समूल उच्छिन्न होना कठिन हो जाता है; उसी प्रकार मैं भी अब अपनी अनिता नामक भार्या से अनुमति लेकर प्रव्रजित हो रहा हूँ। अत: अब मेरा इस साधना से च्युत होना कठिन है॥72॥ ... आत्म स्थविर .....॥

मैंने लोक में मनुष्यों को जीर्ण, रोगी, दु:खी एवं मृत देखकर तथा इनका आयु: संस्कार क्षीण होता हुआ समझकर, गृहत्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की। इससे पूर्व मैंने सभी लौकिक कामभोगों का त्याग कर दिया था॥73॥... माणव स्थविर .....॥

1. कामच्छन्द, 2. व्यापाद, 3. स्त्यानमृद्ध, 4. औद्धत्य कौक्त्य एवं 5. विचिकित्सा— ये पाँचों ही नीवरण मुझमें लेशमात्र भी नहीं रह गये हैं॥74॥ ... सुयामन स्थविर .....॥

5. सुसारदत्थेरगाथा-

''साधु सुविहितान दस्सनं, कङ्खा छिज्जति बुद्धि वड्ढति।
बालम्पि करोन्ति पण्डितं, तस्मा साधु सतं समागमो''ति॥75॥... सुसारदो थेरो...।

6. पियञ्जहत्थेरगाथा-

''उप्पतन्तेसु निपते, निपतन्तेसु उप्पते।
वसे अवसमानेसु, रममानेसु नो रमे''ति॥76॥ ... पियञ्जहो थेरो...।

7. हत्थारोहपुत्तत्थेरगाथा-

''इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो''ति॥77॥
... हत्थारोहपुत्तो थेरो...।

8. मेण्डसिरत्थेरगाथा-

''अनेकजातिसंसारं , सन्धाविस्सं अनिब्बिसं।
तस्स मे दुक्खजातस्स, दुक्खक्खन्धो अपरद्धो''ति॥78॥... मेण्डसिरो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-5. ''साधु सुविहितानं दर्शनम्, कांक्षा छिनत्ति बुद्धिर्वर्धते।
बालमपि कुर्वन्ति पण्डितम्, तस्मात् साधु सतां समागम:"इति॥75॥

6. ''उत्पतन्तेषु निपतेत्, निपतन्तेष्वुत्पतेत्।
वसेदवसमानेसु, रममानेसु नो रमेत्"इति॥76॥

7. ''इदं पुरे चित्तमचारीत् चारिकाम्, यत्रेच्छिकं यत्रकामं यथासुखम्।
तदद्याहं निग्रहीष्यामि योनिश:, हस्तिंप्रभिन्नमिवाङ्कुशग्रह:"इति॥77॥

8. ''अनेकजातिसंसारम्, समधावीम् अनिर्विशन्।
तस्य मे दु:खजातस्य, दु:खस्कन्धोऽप्रारब्ध:"इति॥78॥

(हिन्दी)- सम्यक् प्रकार से साधना पूर्ण किये हुए स्थविरों के दर्शन मङ्गलमय होते हैं। इनके दर्शन से जिज्ञासु के धर्मविषयक सन्देह विनष्ट होते हैं, बुद्धि धर्मज्ञान में तीव्र होती है। यह स्थविरदर्शन मूर्ख जिज्ञासु को भी पण्डित बना देता है; अत: स्थविरों का दर्शन मङ्गलमय होता है॥75॥.....सुशारद स्थविर .....॥

मेरे जो अकुशल धर्म वृद्धि प्राप्त कर रहे हैं, उनको साधना द्वारा नीचे गिराता हूँ। तथा जो कुशल धर्म कम हो रहे हैं, उनको ऊपर उठाता हूँ । जो इन्द्रियाँ निगृहीत नहीं हैं उनको निगृहीत करता हूँ और जिन लौकिक धर्मों में मेरा चित्त रमण करना चाहता है, मैं उसको उनमें रमण नहीं करने देता॥76॥... प्रियञ्जह स्थविर .....॥

पहले मेरा यह चित्त जहाँ चाहता था या जहाँ सुख मानता था वहीं चला जाता था। अब मैं उसको, धर्म का सूक्ष्म चिन्तन करता हुआ, उसी तरह निगृहीत (संयत) कर लूँगा जैसे कोई महावत किसी दुर्दम्य हाथी को अंकुश से निगृहीत कर लेता है॥77॥ ... हस्त्यारोहपुत्र स्थविर .....॥

मैं पहले अनेक जन्मों में संसरण करता हुआ इधर उधर, निरर्थक ही दौड़ लगाता रहा। अब मैं अपने इस दु:खसमूह के आधारभूत दु:खस्कन्ध का अवरोध करूँगा॥78॥... भेड़ जैसे शिर वाले स्थविर .....॥

9. रक्खितत्थेरगाथा-

''सब्बो रागो पहीनो मे, सब्बो दोसो समूहतो।
सब्बो मे विगतो मोहो, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो''ति॥79॥ ... रक्खितो थेरो...।

10. उग्गत्थेरगाथा-

''यं मया पकतं कम्मं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
सब्बमेतं परिक्खीणं, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥80॥ ... उग्गो थेरो...।

वग्गो अट्ठमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – वच्छपालो च यो थेरो, आतुमो माणवो इसि।
सुयामनो सुसारदो, थेरो यो च पियञ्जहो।
आरोहपुत्तो मेण्डसिरो, रक्खितो उग्गसव्हयोति॥

9. नवमवग्गो

1. समितिगुत्तत्थेरगाथा-

''यं मया पकतं पापं, पुब्बे अञ्ञासु जातिसु।
इधेव तं वेदनीयं, वत्थु अञ्ञं न विज्जती''ति॥81॥ ... समितिगुत्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-9. ''सर्वे रागाः प्रहीणाः मे, सर्वे दोषाः समवहताः।
सर्वे मे विगताः मोहाः, शीतिभूतोऽस्मि निर्वृतः"इति॥79॥

10. ''यं मया प्रकृतं कर्मम्, अल्पं वा यदि वा बहु।
सर्वमेतत् परिक्षीणम्, नास्तीदानीं पुनर्भवः"इति॥80॥

तस्योद्दानम्- *वच्छपालो* च यः स्थविरः, *आतुमो माणवो* ऋषिः।
सुयामनो सुसारदो, स्थविरो यश्च *पियञ्जहो।*
*आरोहपुत्तो मेण्डसिरो, रक्खितो उग्ग*सह्वय इति॥ ●

1. ''यं मया प्रकृतं पापम्, पूर्वे अन्यासु जातिसु।
इहैव तं वेदनीयम्, वस्त्वन्यन्न विद्यते"इति॥81॥

(हिन्दी)- मेरा समस्त सांसारिक राग प्रहीण हो चुका है, द्वेष नष्ट हो चुका है, मोह समाप्त हो चुका है। इस प्रकार मैं शान्तवृत्ति होकर निर्वाण प्राप्त कर चुका हूँ॥79॥... रक्षित स्थविर .....॥

मैंने जो भी अपराधजन्य कर्म किये हैं, फिर भले ही वे अल्प हों या अधिक, वे सभी, मेरी धर्म-साधना के प्रभाव से, क्षीण हो चुके हैं। अब, पुनर्जन्म नहीं होगा॥80॥...उग्र स्थविर ने यह गाथा कही॥

इस वर्ग की सूची- वत्सपाल स्थविर, आत्म स्थविर, माणव स्थविर, सुयामन स्थविर, सुशारद स्थविर, प्रियञ्ज स्थविर, हस्त्यारोहपुत्र स्थविर, भेड़ जैसे शिर वाला स्थविर, रक्षित स्थविर, एवं उग्र स्थविर॥ ●

समितिगुप्त स्थविर-मैंने अपने पूर्वजन्मों में जो भी कर्म किये हैं, उनका फल मुझको यहीं भोगना पड़ेगा। कोई अन्य उसके प्रति उत्तरदायी नहीं है॥81॥ ...समितिगुप्त स्थविर .....॥

2. कस्सपत्थेरगाथा-

''येन येन सुभिक्खानि, सिवानि अभयानि च।
तेन पुत्तक गच्छस्सु, मा सोकापहतो भवा''ति॥82॥... कस्सपो थेरो...।

3. सीहत्थेरगाथा-

''सीहप्पमत्तो विहर, रत्तिन्दिवमतन्दितो।
भावेहि कुसलं धम्मं, जह सीघं समुस्सयं''ति॥83॥ ... सीहो थेरो...।

4. नीतत्थेरगाथा-

''सब्बरत्तिं सुपित्वान, दिवा सङ्गणिके रतो।
कुदास्सु नाम दुम्मेधो, दुक्खस्सन्तं करिस्सती''ति॥84॥ ... नीतो थेरो...।

5. सुनागत्थेरगाथा-

''चित्तनिमित्तस्स कोविदो, पविवेकरसं विजानिय।
झायं निपको पतिस्सतो, अधिगच्छेय्य सुखं निरामिसं''ति॥85॥... सुनागो थेरो...।

6. नागितत्थेरगाथा-

''इतो बहिद्धा पुथु अञ्ञवादिनं, मग्गो न निब्बानगमो यथा अयं।
इतिस्सु सङ्घं भगवानुसासति, सत्था सयं पाणितलेव दस्सयं''ति॥86॥
... नागितो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-2. ''यत्र यत्र सुभिक्षानि, शिवानि अभयानि च।
तत्र पुत्रक! गच्छ, मा शोकापहतो भवः"इति॥82॥

3. ''सिंह! अप्रमत्तो विहर, रात्रिंदिवमतन्द्रितः।
भावय कुशलं धर्मम्, जहीहि शीघ्रं समुच्छ्रयम्"इति॥83॥

4. ''सर्वरात्रौ स्वपित्वा, दिवा सङ्गणिके रतः।
कदास्विन्नाम दुर्मेधः, दुःखस्यान्तं करिष्यति"इति॥84॥

5. ''चित्तनिमित्तस्य कोविदः, प्रविवेकरसं विज्ञाय।
ध्यायन् निपक्वः प्रतिस्मृतः, अधिगच्छेत् सुखं निरामिषम्"इति॥85॥

6. ''इतो बहिर्धा पृथ्वन्यवादीनाम्, मार्गो न निर्वाणगमो यथा अयम्।
इति स्म सङ्घं भगवाननुशास्ति, शास्ता स्वयं पाणितल इव दर्शयन्"इति॥86॥

(हिन्दी)- पुत्र! जहाँ जहाँ सुभिक्ष हो, या जो स्थान मङ्गलमय हो, या जो स्थान भयरहित हो, वहाँ वहाँ तुम निश्चिन्त हो कर जाओ। इसके लिये तुम शोक से उद्विग्न न होना॥82॥...काश्यप स्थविर....॥

रात दिन सिंह के समान सावधान तथा अप्रमादी रहकर कुशल धर्मों की साधना में लग जाओ! तथा मन में राशिभूत इन विकारों का सर्वथा एवं शीघ्र ही त्याग कर दो॥83॥ ... सिंह स्थविर .....॥

अरे दुर्बुद्धि! तुम समस्त रात्रि सोये रह कर दिन में अपने असन्मित्रों का कुसङ्ग करते हो! इन हीन क्रियाओं से तुम अपने दुःखों का अन्त कैसे और कब कर पाओगे॥84॥ ...नीतस्थविर .....॥

चित्त के लक्षणों के ज्ञाता तथा एकान्त साधना के आस्वाद से परिचित तुम दक्षता एवं विचारपूर्वक साधना करते हुए अभौतिक सुख प्राप्त करो॥85॥ ... सुनाग स्थविर .....॥

इस मार्ग से अतिरिक्त अन्य मतवादियों का निर्वाण तक जाने का मार्ग नहीं है, जैसा यह मार्ग है। भगवान् ने स्वयं संङ्घ को इसका ऐसा उपदेश किया था। उन्होंने इसको हाथ पर रखे हुए फल के समान प्रत्यक्ष के सदृश दिखाया था॥86॥ ...नागित स्थविर.....॥

7. पविट्ठत्थेरगाथा-

''खन्धा दिट्ठा यथाभूतं, भवा सब्बे पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥87॥ ... पविट्ठो थेरो...।

8. अज्जुनत्थेरगाथा-

''असक्खिं वत अत्तानं, उद्धातुं उदका थलं।
वुय्हमानो महोघेव, सच्चानि पटिविज्झहं'' ति॥88॥... अज्जुनो थेरो...।

9. पठमदेवसभत्थेरगाथा-

''उत्तिण्णा पङ्कपलिपा, पाताला परिवज्जिता।
मुत्तो ओघा च गन्था च, सब्बे माना विसंहता''ति॥89॥ ... देवसभो थेरो...।

10. सामिदत्तत्थेरगाथा-

''पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥90॥... सामिदत्तो थेरो...।

वग्गो नवमो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)-7. ''स्कन्धा: दृष्टा: यथाभूतम्, भवा: सर्वे प्रदारिता:।
विक्षीणो जातिसंसार:, नास्तीदानीं पुनर्भव:"इति॥87॥

8. ''अशक्नों वत आत्मानम्, उद्धरितुमुदकात् स्थलम्।
उह्यमानो महौघेव, सत्यानि प्रत्यवेदमहम्"इति॥88॥

9. ''उत्तीर्णा: पङ्कप्रलेपा:, पाताला: परिवर्जिता:।
मुक्त औघेभ्यो ग्रन्थेभ्यश्च, सर्वे माना: विसंहता:"इति॥89॥

10. ''पञ्चस्कन्धा: परिज्ञाता:, तिष्ठन्ति छिन्नमूलका:।
विक्षीणो जातिसंसार:, नास्तीदानीं पुनर्भव:"इति॥90॥

(हिन्दी)- मैंने स्कन्धों की यथार्थता जान ली है। समस्त भव का विनाश कर लिया है। मेरी जन्म-मरण परम्परा नष्ट हो चुकी है। अत: अब तेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥87॥... प्रविष्ट स्थविर.....॥

मैंने आर्यसत्यों के ज्ञान के माध्यम से आत्मवाद को जल से स्थल पर उसी प्रकार फैंक दिया जैसे नदी में आयी बाढ नदीस्थित वस्तुओं को किनारे पर फैंक देती है॥88॥ ... अर्जुन स्थविर .....॥

मैंने सभी मानसिक कीचड़ युक्त दलदल पार कर लिये हैं; पाताल त्याग दिये हैं, औघ एवं ग्रन्थों का नाश कर दिया है। सभी प्रकार के लौकिक मानों से भी मैं दूर हो गया हूँ॥89॥... प्रथमदेवसभ स्थविर .....॥

सामिदत्त स्थविर-मैंने पाँचों स्कन्धों की वास्तविकता जान ली है। अब वे मेरे लिये छिन्नमूल हो चुके हैं। मेरा जन्म-मरण संसार विनष्ट हो चुका है। अत: अब मेरे पुनर्जन्म की कोई सम्भावना नहीं है॥90॥

... सामिदत्त स्थविर .....॥

तस्सुद्दानं – थेरो समितिगुत्तो च, कस्सपो सीहसव्हयो।
नीतो सुनागो नागितो, पविट्ठो अज्जुनो इसि।
देवसभो च यो थेरो, सामिदत्तो महब्बलोति॥

10. दसमवग्गो

1. परिपुण्णकत्थेरगाथा-

''न तथा मतं सतरसं, सुधन्नं यं मयज्ज परिभुत्तं।
अपरिमितदस्सिना गोतमेन, बुद्धेन देसितो धम्मो''ति॥91॥ ... परिपुण्णको थेरो...।

2. विजयत्थेरगाथा-

''यस्सासवा परिक्खीणा, आहारे च अनिस्सितो।
सुञ्ञता अनिमित्तो च, विमोक्खो यस्स गोचरो।
आकासेव सकुन्तानं, पदं तस्स दुरन्नयं'' ति॥92॥... विजयो थेरो...।

3. एरकत्थेरगाथा-

''दुक्खा कामा एरक, न सुखा कामा एरक।
यो कामे कामयति, दुक्खं सो कामयति एरक।
यो कामे न कामयति, दुक्खं सो न कामयति एरका''ति॥93॥ ... एरको थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-

तस्योद्दानम्- स्थविरः *समितिगुतो च, कस्सपो सीह*सह्वयः।
नीतो सुनागो नागितो, पविट्ठो अज्जुनो ऋषिः।
देवसभो च यः स्थविरः *सामिदत्तो* महाबलः इति॥ ●

1. ''न तथा मतं सतरसम्, सुधान्यं यं मयाद्य परिभुक्तम्।
अपरिमितदर्शिनाः गौतमेन, बुद्धेन देशितो धर्मः"इति॥91॥

2. ''यस्यास्रवाः परिक्षीणाः, आहरे चानाश्रितः।
शून्यतोऽनिमित्तश्च, विमोक्षो यस्य गोचरः।
आकाशेव शकुन्तानाम्, पदं तस्य हि दुर्नयम्"इति॥92॥

3. ''दुःखाः कामा एरक!, न सुखाः कामा *एरक!*
यः कामान् कामयति, दुःखं स कामयति *एरक!*
यः कामान् न कामयति, दुःखं स न कामयत्येरकः" इति॥93॥

(हिन्दी)- इस वर्ग की सूची- स्थविर समितिगुप्त, काश्यप स्थविर, सिंह स्थविर, नीत स्थविर, सुनाग स्थविर, नागित स्थविर, प्रविष्ट स्थविर, अर्जुन स्थविर, प्रथम देवसभ स्थविर, सामिदत्त स्थविर। ●

मुझे, आज खाया गया अच्छे धान का मधुर भोजन भी उतना प्रिय नहीं लगा; जितना अपरिमित ज्ञानद्रष्टा भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म का श्रवण प्रिय लगा है॥91॥... परिपूर्णक स्थविर .....॥

जिसके आश्रव क्षीण हो चुके हैं, तथा जो आहार को भी विशेष महत्त्व नहीं देता; जिसने शून्यता, अनिमित्त एवं विमोक्ष को साक्षात् कर लिया है; वैसे साधक का साधनाक्रम उसी प्रकार दुर्निरीक्ष होता है जैसे आकाश में उडते हुए पक्षियों का उड्डयनक्रम॥92॥ ... विजय स्थविर.....॥

एरक! ये कामभोग दुःखमय हैं, सुखमय नहीं। एरक! जो इन कामभोगों की कामना करता है, वह एक प्रकार से अपने लिये दुःखप्राप्ति की इच्छा करता है। एरक! जो इन कामभोगों की कामना नहीं करता वह मानो दुःखों की कामना नहीं करता॥93॥ ....एरक स्थविर .... ॥

4. मेत्तजित्थेरगाथा-

''नमो हि तस्स भगवतो, सक्यपुत्तस्स सिरीमतो।
तेनायं अग्गप्पत्तेन, अग्गधम्मो सुदेसितो''ति॥94॥ ... मेत्तजि थेरो...।

5. चक्खुपालत्थेरगाथा-

''अन्धोहं हतनेत्तोस्मि, कन्तारद्धानपक्खन्दो ।
सयमानोपि गच्छिस्सं, न सहायेन पापेना''ति॥95॥ ... चक्खुपालो थेरो...।

6. खण्डसुमनत्थेरगाथा-

''एकपुप्फं चजित्वान, असीति वस्सकोटियो।
सग्गेसु परिचारेत्वा, सेसकेनम्हि निब्बुतो''ति॥96॥ ... खण्डसुमनो थेरो...।

7. तिस्सत्थेरगाथा-

''हित्वा सतपलं कंसं, सोवण्णं सतराजिकं।
अग्गहिं मत्तिकापत्तं, इदं दुतियाभिसेचनं''ति॥97॥ ... तिस्सो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''नमो हि तस्मै भगवते, शाक्यपुत्राय श्रीमते:।
तेनायमग्रप्राप्तेन, अग्रधर्म: सुदेशित:"इति॥94॥

5. ''अन्धोऽहं हतनेत्रोऽस्मि, कान्तारध्वन् प्रस्क्रन्द:।
शयमानोऽपि गच्छेयम्, न सहायेन पापिना"इति॥95॥

6. ''एकपुष्पं समर्प्य, अशीति: वर्षकोटय:।
स्वर्गेषु परिचार्य, शेषकेनास्मि निर्वृत:"इति॥96॥

7. ''त्यक्त्वा शतपलं कांस्यम्, स्वर्णं शतराजिकम्।
अग्रसम मृत्तिकापात्रम्, इदं द्वितीयाभिसेचनम्"इति॥97॥

(हिन्दी)- उन श्रीमान् शाक्यपुत्र भगवान् को प्रणाम है। उन श्रेष्ठता प्राप्त पुरुष ने इस उत्तम धर्म का बहुजनहिताय बहुजनसुखाय सदुपदेश किया है॥94॥ ... मैत्रजित् स्थविर .....॥

यद्यपि नेत्र चले जाने के कारण मैं अन्धा हो चुका हूँ। मुझे इस जंगल के लम्बे मार्ग पर आगे चलना भी है; तो भी मैं यहीं पड़ा रह जाऊँ— यह मुझे स्वीकार्य है; परन्तु मैं मार्गगमन में किसी पापी की सहायता नहीं लूँगा॥95॥ ... चक्षुष्पाल स्थविर .....॥

(काश्यप बुद्ध के स्तूप पर) एक पुष्प चढाकर उसके प्रभाव से अस्सी करोड़ वर्षों तक अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ मैं इस अन्तिम जन्म में परिनिर्वृत हो गया॥96॥ ... खण्डसुमन स्थविर .....॥

मैंने सौ पलभार का कांस्य पात्र एवं शतश: शोभायमान सुवर्णपात्र को छोड़कर मृत्तिकापात्र ही स्वीकार किया— यह मेरा द्वितीय अभिषेक हुआ॥97॥ ... तिष्यस्थविर .....॥

8. अभयत्थेरगाथा-

''रूपं दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसिकरोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तञ्च अज्झोस तिट्ठति।
तस्स वड्ढन्ति आसवा, भवमूलोपगामिनो''ति ॥98॥ ... अभयो थेरो...।

9. उत्तियत्थेरगाथा-

''सद्दं सुत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसिकरोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तञ्च अज्झोस तिट्ठति।
तस्स वड्ढन्ति आसवा, संसारं उपगामिनो''ति॥99॥... उत्तियो थेरो...।

10. दुतिय देवसभत्थेरगाथा-

''सम्मप्पधानसम्पन्नो, सतिपट्ठानगोचरो।
विमुत्तिकुसुमसञ्छन्नो, परिनिब्बिस्सत्यनासवो''ति॥100॥ ... देवसभो थेरो...।

वग्गो दसमो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)-8. ''रूपं दृष्ट्वा स्मृतिर्मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसिऽकुरुत।
सारक्तचित्तः वेदयति, तञ्चाध्यवसाय तिष्ठति।
तस्य वर्धन्ते आस्रवाः, भवमूलोपगामिनः"इति॥98॥

9. ''शब्दं श्रुत्वा स्मृतिर्मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसिऽकुरुत।
सारक्तचित्तो वेदयति, तञ्चाध्यवसाय तिष्ठति।
तस्य वर्धन्ते आस्रवाः, संसारमुपगामिनः"इति॥99॥

10. ''सम्यक्प्रधानसम्पन्नः, स्मृतिप्रस्थानगोचरः।
विमुक्तिकुसुमसञ्छन्नः, परिनिर्वृतिष्यत्यनास्रवः"इति॥100॥

(हिन्दी)- लौकिक, प्रिय रूपविषयों में मन के निरन्तर आसक्त रहने से जिस की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है तथा उनमें ही राग हो जाता है, अतः उनमें ही आसक्त हो कर उसका समस्त क्रियाकलाप आरम्भ होने लगता है; ऐसे पुरुष के चित्तविकार बढ़ने लगते हैं, जिससे इस भव (संसार) की जड़ें अधिक दृढ़ हो जाती हैं॥98॥

... अभय स्थविर .....॥

लौकिक, प्रिय शब्दविषयों में मन के निरन्तर आसक्त रहने से जिस की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है तथा उनमें ही राग हो जाता है, अतः उनमें ही आसक्त हो कर उसका समस्त क्रियाकलाप आरम्भ होने लगता है; ऐसे पुरुष के चित्तविकार बढ़ने लगते हैं, जिससे इस भव (संसार) की जड़ें अधिक दृढ़ हो जाती हैं॥99॥

... उत्तिय स्थविर .....॥

चार सम्यक्प्रधानों से युक्त, चारों स्मृतिप्रस्थानों से समन्वित, विमुक्तिरूप पुष्पों से आच्छादित साधक भिक्षु विकार रहित हो कर शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लेगा॥100॥... देवसभ स्थविर .....॥

तस्सुद्दानं – परिपुण्णको च विजयो, एरको मेत्तजी मुनि।
चक्खुपालो खण्डसुमनो, तिस्सो च अभयो तथा।
उत्तियो च महापञ्ञो, थेरो देवसभोपि चाति॥

11. एकादसमवग्गो

1. बेलट्ठानिकत्थेरगाथा-

''हित्वा गिहित्तं अनवोसितत्तो, मुखनङ्गली ओदरिको कुसीतो।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो''ति॥101॥

... बेलट्ठानिको थेरो...।

2. सेतुच्छत्थेरगाथा-

''मानेन वञ्चितासे, सङ्खारेसु संकिलिस्समानासे।
लाभालाभेन मथिता, समाधिं नाधिगच्छन्ती''ति॥102॥ ... सेतुच्छो थेरो...।

3. बन्धुरत्थेरगाथा-

नाहं एतेन अत्थिको, सुखितो धम्मरसेन तप्पितो।
पित्वा रसग्गमुत्तमं, न च काहामि विसेन सन्थवं''ति॥103॥... बन्धुरो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-

तस्योद्दानम्- *परिपुण्णको च विजयो, एरको मेत्तजी* मुनिः।
चक्खुपालो खण्डसुमनो, *तिस्सो च अभयो* तथा।
उत्तियो च महापञ्ञो, स्थविरो *देवसभो*ऽपि चेति॥ ●

1. ''त्यक्त्वा गृहस्थम् अनेवोसित्वात, मुखनङ्गली औदारिकः कुसीतः।
महाबराह इव निवापपृष्टः, पुनर्पुनः गर्भमुपैति मन्दः"इति॥101॥

2. ''मानेन वञ्चितासे, संस्कारेषु संक्लिस्यमानासे।
लाभालाभेन मथिता, समाधिं नाधिगच्छन्तीति॥102॥

3. ''नाहम् एतेन अर्थकः, सुखितो धर्मरसेन तर्पितः।
पीत्वा रसाग्रमुत्तमम्, न च करिष्यामि विषेन संस्तवम्"इति॥103॥

(हिन्दी)- इस वर्ग की सूची- परिपूर्णक स्थविर, विजय स्थविर, एरक स्थविर, मैत्रजित्स्थविर, चक्षुष्पाल स्थविर, खण्डसुमनस्थविर, तिष्यस्थविर, अभयस्थविर, उत्तियस्थविर, द्वितीय देवसभ स्थविर॥ ●

गृहस्थ धर्म त्याग कर प्रव्रज्या लेकर भी जिसने आत्मसंयम नहीं किया, मुख से हल सा चलाता हुआ पेटू बना रहता है, साधना में आलस्य करता है, घरेलू सूअर के समान घर के उच्छिष्ट भोजन पर पलता रहता है, ऐसे निकृष्ट साधक की जन्ममरणपरम्परा कभी नष्ट नहीं होती॥101॥...बिल्वस्थानिक स्थविर.....॥

जो मान से ठगे गये हैं, संस्कारों के कारण जिनका चित्त क्लान्त है, जो लौकिक लाभालाभ में ही मथे जा रहे हैं, ऐसे साधक समाधि (साधना) नहीं कर पाते॥102॥... सेतुच्छ स्थविर .....॥

मुझे अब लौकिक अर्थों से कोई प्रयोजन नहीं रह गया; मैं तो धर्मरस पीकर ही सुखी हूँ, तृप्त हूँ। मैं उत्तम श्रेष्ठ रस पीकर अब विष से किसी भी प्रकार का सम्पर्क नहीं रखना चाहता॥103॥...बन्धुर स्थविर .....॥

4. खितकत्थेरगाथा-

''लहुको वत मे कायो, फुट्ठो च पीतिसुखेन विपुलेन।
तूलमिव एरितं मालुतेन, पिलवतीव मे कायो''ति॥104॥ ... खितको थेरो...।

5. मलितवम्भत्थेरगाथा-

''उक्कण्ठितोपि न वसे, रममानोपि पक्कमे।
न त्वेवानत्थसंहितं, वसे वासं विचक्खणो''ति॥105॥ ... मलितवम्भो थेरो...।

6. सुहेमन्तत्थेरगाथा-

''सतलिङ्गस्स अत्थस्स, सतलक्खणधारिनो।
एकङ्गदस्सी दुम्मेधो, सतदस्सी च पण्डितो''ति॥106॥... सुहेमन्तो थेरो...।

7. धम्मसवत्थेरगाथा-

''पब्बजिं तुलयित्वान, अगारस्मानगारियं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥107॥ ... धम्मसवो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''लघुको वत मे कायः, स्पृष्टश्च प्रीतिसुखेन विपुलेन।
तूलमिव एरितं मारुतेन, प्लवतीव मे कायः"इति॥104॥

5. ''उत्कण्ठितोऽपि न वशे, रम्यमाणोऽपि प्रक्रमे।
न त्वेवानर्थसंहितम्, वशे वासं विचक्षणः"इति॥105॥

6. ''शतलिङ्गस्य अर्थस्य, शतलक्षणधारिणः।
एकाङ्गदर्शी दुर्मेधः, शतदर्शी च पण्डितः"इति॥106॥

7. ''प्राव्रजत् तुलयित्वा, अगारादनगारिकम्।
तिस्रो विद्याऽनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥107॥

(हिन्दी)- मेरा छोटा सा शरीर विपुल बुद्धप्रीति-सुख से भरा हुआ है। अब इसकी स्थिति ऐसी हो गयी है, जैसे कोई रूई का खण्ड वायु में उड़ा जा रहा हो॥104॥ ... क्षितक स्थविर .....॥

मैं कभी इनके प्रति उत्कण्ठित होता हुआ भी इन (लौकिक कामभोगों) के साथ सम्पर्क नहीं करता। रमण चाहता हुआ भी एतदर्थ उद्योग नहीं करता। क्योंकि ये लौकिक कामभोग अनर्थ से सम्पृक्त हैं, अतः बुद्धिमान् पुरुष को ऐसे हीन धर्मों का साथ नहीं करना चाहिये॥105॥ ... मलितवम्भ स्थविर .....॥

जिस शतधा चिह्नित पद के सौ प्रकार के अर्थ हों, सौ लक्षण हों उनका एक अर्थ मानने वाले मूर्ख कहलाता है तथा एक पद में सौ अर्थ की कल्पना करने वाला ही बुद्धिमान् कहलाता है॥106॥ ...सुहेमन्त स्थविर.....॥

मैं अपना समस्त हिताहित विचार कर, घर से बेघर होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। तथा साधना करते करते तीनों विद्याएँ अधिगत कर लीं और बुद्धानुशासन का पालन भी किया॥107॥ इस प्रकार आयुष्मान् धर्मस्रव स्थविर ने यह गाथा कही॥

8. धम्मसवपितुत्थेरगाथा-

''स वीसवस्ससतिको, पब्बजिं अनगारियं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥108॥ ... धम्मसवपितु थेरो...।

9. सङ्घरक्खितत्थेरगाथा-

''न नूनायं परमहितानुकम्पिनो, रहोगतो अनुविगणेति सासनं।
तथाहयं विहरति पाकतिन्द्रियो, मिगी यथा तरुणजातिका वने''ति॥109॥
... सङ्घरक्खितो थेरो...।

10. उसभत्थेरगाथा-

''नगा नगग्गेसु सुसंविरूळ्हा, उदग्गमेघेन नवेन सित्ता।
विवेककामस्स अरञ्ञसञ्ञिनो, जनेति भिय्यो उसभस्स कल्यतं''ति॥110॥
... उसभो थेरो...।
वग्गो एकादसमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – बेलट्ठानिको सेतुच्छो, बन्धुरो खितको इसि।
मलितवम्भो सुहेमन्तो, धम्मसवो धम्मसवपिता।
सङ्घरक्खितत्थेरो च, उसभो च महामुनीति॥

(संस्कृतच्छाया)-8. ''स विंशवर्षशतिकः, प्राव्राजिषमनगारिकम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्''इति॥108॥
9. ''न नूनायं परमहितानुकम्पि, रहगतोऽनुविगणयति शासनम्
तथा ह्ययं विहरति प्रकटेन्द्रियः, मृगी यथा तरुणजातिका वने॥109॥
10. ''नगाः नगाग्रेषु सुसंविरुढहाः, उदग्रमेघेन नवेन सिक्ता।
विवेककामस्य अरण्यसंज्ञिनः, जायते भूयो वृषभस्य कल्यत्वम्''इति॥110॥

तस्योद्दानम्- *बेलट्ठानिको सेतुच्छो, बन्धुरो खितको* ऋषिः।
मलितवम्भो सुहेमन्तो, धम्मसवो धम्मसवपिता।
सङ्घरक्खितस्थविरश्च, उसभो च महामुनीति॥ ●

(हिन्दी)- मेरी उस समय 120 वर्ष की आयु थी, जब मैंने घर से बेघर हो कर प्रव्रज्या ग्रहण की। तदनन्तर, मैंने साधना के बल पर तीनों विद्याएँ अधिगत कीं तथा बुद्धानुशासन का पालन किया॥108॥
... धर्मस्रवपिता स्थविर.....॥

यह गृस्थ पुरुष के समान कोई इन्द्रियभोगी ही ज्ञात होता है; क्योंकि यह एकान्त में बैठकर कभी परमहितानुकम्पी भगवान् बुद्ध के धर्म का चिन्तन एवं पालन नहीं करता। यह तो संसार में इस तरह उछलता कूदता फिर रहा है जैसे वन में कोई युवती हरिणी उछल कूद रही हो॥109॥ ... सङ्घरक्षित स्थविर .....॥

शिखरों से शोभित ये विशाल पर्वत, जिन पर अभी अभी विशाल मेघों ने वर्षा की है, अरण्यसंज्ञा की भावना करने वाले एकान्तसाधनाप्रेमी वृषभ स्थविर को साधना में दक्षता प्रदान करते हैं॥ ... वृषभ स्थविर ने यह गाथा कही॥110॥

इस वर्ग की सूची- बिल्वस्थानिक स्थविर, सेतुच्छ स्थविर, बन्धुर स्थविर, क्षितक स्थविर, मलितवम्भ स्थविर, सुहेमन्त स्थविर, धर्मस्रव स्थविर, धर्मस्रवपिता स्थविर, सङ्खरक्षित स्थविर एवं वृषभ स्थविर॥ ●

12. द्वादसमवग्गो

1. जेन्तत्थेरगाथा-

''दुप्पब्बज्जं वे दुरधिवासा गेहा, धम्मो गम्भीरो दुरधिगमा भोगा।
किच्छा वुत्ति नो इतरीतरेनेव, युत्तं चिन्तेतुं सततमनिच्चतं''ति॥111॥..जेन्तो थेरो...।

2. वच्छगोत्तत्थेरगाथा-

''तेविज्जोहं महाझायी, चेतोसमथकोविदो।
सदत्थो मे अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥112॥ ... वच्छगोत्तो थेरो...।

3. वनवच्छत्थेरगाथा-

''अच्छोदिका पुथुसिला,गोनङ्गुलमिगायुता।
अम्बुसेवालसञ्छन्ना, ते सेला रमयन्ति मं'' ति॥113॥ ... वनवच्छो थेरो...।

4. अधिमुत्तत्थेरगाथा-

''कायदुट्ठुल्लगरुनो, हिय्यमानम्हि जीविते।
सरीरसुखगिद्धस्स, कुतो समणसाधुता''ति॥114॥ ... अधिमुत्तो थेरो...।

5. महानामत्थेरगाथा-

''एसावहिय्यसे पब्बतेन, बहुकुटजसल्लकिकेन ।
नेसादकेन गिरिना, यसस्सिना परिच्छदेना''ति॥115॥ ... महानामो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-1. ''दु:प्रव्रज्यं वै दुरधिवासा: गेहा:, धर्मो गम्भीरो दुरधिगमा: भोगा:।
कृच्छा: वृत्ति: नो इतरेतरेणैव, युक्तं चिन्तयितुं सततमनित्यम्"इति॥111॥

2. ''त्रैविद्योऽहं महाध्यायी, चेतोशमथकोविद:।
सदर्थ: मेऽनुप्राप्त:, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥112॥

3. ''अच्छोदिका पृथुशिला, गौनङ्गूलमृगायुक्ता।
अम्बुशैवालसञ्छन्ना, ते शैला: रमयन्ति मम"इति॥113॥

4. ''कायदुष्ठुलगरुण:, हीयमाने जीविते।
शरीरसुखगृद्धस्य, कुत: श्रमणसाधुता"इति॥114॥

5. ''एषावहीयसे पर्वतेन्, बहुकुटजसल्लकिकेन।
नैषोदकेन गिरिणा, यशस्विना परिच्छेदना"इति॥115॥

(हिन्दी)- जैसे प्रव्रज्या का पालन बहुत कठिन है, उसी प्रकार कामभोगों की प्राप्ति भी अतिशय कठिन है। ये दोनों ही वृत्तियाँ परस्परापेक्षया बहुत कठिन हैं। अत: साधक के लिये यही उचित है कि वह निरन्तर अनित्यसंज्ञा की भावना करता रहे॥111॥ ... जयन्त स्थविर .....॥

मैं तीनों विद्याएँ अधिगत कर चुका हूँ। अतिशय ध्यानाभ्यासी हूँ। चित्तशासन विधि का ज्ञाता हूँ। मैंने बुद्ध-धर्म का भलीभाँति पालन किया है॥112॥... वत्सगोत्र स्थविर .....॥

स्वच्छ जल के झरनों से युक्त, चमरी गौ एवं मृगों के झुण्ड जहाँ स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं, मनोरम शिलाओं वाले जल एवं काई से ढके हुए ये पर्वत मेरे मन को बहुत प्रिय लगते हैं॥113॥..वनवत्सस्थविर..॥

जबकि हमारी इस काया से निरन्तर दुश्चरित होते रहते हैं, जीवन निरन्तर क्षीण होता जा रहा है, शरीरसुख का हमें अधिक से अधिक प्रलोभन रहता है; ऐसी स्थिति में हम किसी भी श्रमण की पूर्ण साधुता में कैसे विश्वास कर सकते हैं॥114॥ ... अधिमुक्त स्थविर .....॥

बहुत से कुटज एवं सल्लकी वनस्पतियों से युक्त कोई पर्वत स्थिर, यशस्वी एवं हरियाली से भरे-पूरे पर्वत द्वारा बहुत पीछे छोड़ दिया गया है॥115॥... महानाम स्थविर .....॥

6. पारापरियत्थेरगाथा-

''छफस्सायतने हित्वा, गुत्तद्वारो सुसंवुतो।
अघमूलं वमित्वान, पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥116॥ ... पारापरियो थेरो ...।

7. यसत्थेरगाथा-

''सुविलित्तो सुवसनो,सब्बाभरणभूसितो।
तिस्सो विज्जा अज्झगमिं, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥117॥ ... यसो थेरो...।

8. किमिलत्थेरगाथा-

''अभिसत्तोव निपतति, वयो रूपं अञ्ञमिव तथेव सन्तं।
तस्सेव सतो अविप्पवसतो, अञ्ञस्सेव सरामि अत्तानं''ति॥118॥...किमिलो थेरो।

9. वज्जिपुत्तत्थेरगाथा-

''रुक्खमूलगहनं पसक्किय, निब्बानं हदयस्मिं ओपिय।
झाय गोतम मा च पमादो, किं ते बिळिबिळिका करिस्सती''ति॥119॥
... वज्जिपुत्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-6. ''षट्स्पर्शायतने त्यक्त्वा, गुप्तद्वारः सुसंवृतः।
अघमूलं वमित्वा, प्राप्तो मे आस्रवक्षयः"इति॥116॥

7. ''सुविलिप्तः सुवसनः, सर्वाभरणभूषितः।
तिस्रो विद्याध्यगमम्, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥117॥

8. ''अभिसक्त इव निपतति, वयो रूपमन्यमिव तथैव शान्तम्।
तस्यैव सत अविप्रवसतः, अन्यस्यैव स्मरामि आत्मानम्"इति॥118॥

9. ''वृक्षमूलगहनं प्रसक्रिय, निर्वाणं हृदये आप्लाविय।
ध्याय गौतम! मा च प्रमद, किं तान् बिडिबिडिका करिष्यती"इति॥119॥

(हिन्दी)- छह स्पर्शायतनों को छोड़कर, संवृत-इन्द्रियद्वार हो कर, भलीभाँति संयत हो कर तथा पापमूलों का वमन कर मैं आश्रववक्षय प्राप्त कर चुका हूँ॥116॥ ... पारावारीण स्थविर .....॥

मैंने अपने शरीर पर चन्दन आदि का लेप कर तथा अच्छे वस्त्र पहन कर भी साधना तथा तीनों विद्याएँ अधिगत कीं, तथा बुद्धकृत अनुशासन का पालन किया॥117॥... यश स्थविर .....॥

जो साधक अन्य (सांसारिक) पुरुषों के समान ही अपने रूप और वय के प्रति आसक्त रहता है उसका पतन अवश्यम्भावी है। परन्तु मैं स्मृतिमान् एवं कहीं भी आसक्त न होता हुआ अन्य (स्थविर साधकों) के समान साधनारत रहता हुआ आत्मा की ही समीक्षा करता रहता हूँ।118॥... किमिल स्थविर .....॥

गहन अरण्य में वृक्षसमूह में स्थित हो कर, हृदय में निर्वाण की भावना करते हुए और भगवान् बुद्ध का स्मरण (ध्यान) करने में किसी प्रकार का प्रमाद न करते हुए साधनारत रहने वाले साधक के लिये साधारण पुरुषों की चहल-पहल (विळिबिळिका) क्या हानि कर पायेगी॥119॥...वात्सीपुत्र(वज्जि)स्थविर...॥

10. इसिदत्तत्थेरगाथा-

''पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।
दुक्खक्खयो अनुप्पत्तो,पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥120॥ ... इसिदत्तो थेरो...।

वग्गो द्वादसमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – जेन्तो च वच्छगोत्तो च, वच्छो च वनसव्हयो।
अधिमुत्तो महानामो, पारापरियो यसोपि च।
किमिलो वज्जिपुत्तो च, इसिदत्तो महायसोति॥ एकक निपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – वीसुत्तरसतं थेरा, कतकिच्चा अनासवा।
एककेव निपातम्हि, सुसङ्गीता महेसिभीति॥

2. दुकनिपातो

1. पठमवग्गो

1. उत्तरत्थेरगाथा-

''नत्थि कोचि भवो निच्चो, सङ्खारा वापि सस्सता।
उप्पज्जन्ति च ते खन्धा, चवन्ति अपरापरं॥121॥

(संस्कृतच्छाया)-10. ''पञ्चस्कन्धा: परिज्ञाता:, तिष्ठन्ति छिन्नमूलका:।
दु:खक्षयोऽनुप्राप्त:, प्राप्तो मे आस्रवक्षय:"इति॥120॥

तस्योद्दानम्– *जेन्तो च वच्छगोत्तो च, वच्छो च वन*सह्वय:।
अधिमुत्तो महानामो, पारापरियो यसोपि च।
किमिलो वज्जिपुत्तो च, इसिदत्तो महाशय: इति॥

तत्रोद्दानम्- विंशुत्तरशतं स्थविरा:, कृतकृत्या अनास्रवा:।
एककैव निपातस्मिन्, सुसङ्गीता: महर्षिभि:"इति॥ ●

1. ''नास्ति कश्चिद् भवो नित्य:, संस्कारा: वापि शाश्वता:।
उत्पद्यन्ते च ते स्कन्धा:, च्यवन्तेऽपरापरम्॥121॥

(हिन्दी)- मैंने पाँचों स्कन्धों की वास्तविकता जान ली है, तथा मैंने उनको मूलत: नष्ट कर दिया है। इस प्रकार मुझको साधना के बल से दु:खक्षय एवं आश्रयवक्षय दोनों ही प्राप्त हो चुके हैं॥120॥...ऋषिदत्त स्थविर.॥ इस वर्ग की सूची- जयन्त स्थविर, वत्सगोत्र स्थविर, वनवत्स स्थविर, अधिमुक्त स्थविर, महानाम स्थविर, पारावारीण स्थविर, यश स्थविर, किमिल स्थविर, वज्जिपुत्र (वात्सीपुत्र स्थविर) एवं महायशस्वी ऋषिदत्त स्थविर।

इस निपात का संक्षिप्त विवरण- इस एकक निपात में एक सौ बीस (120) कृतकृत्य एवं अनाश्रव महर्षि स्थविरों द्वारा गायी गयी एक एक गाथाओं का वर्णन है॥

कोई भी भव नित्य नहीं है, न कोई संस्कार ही शाश्वत है। जितने भी स्कन्ध उत्पन्न होते हैं, उन सभी को आगे-पीछे नष्ट होना ही है॥121॥

''एतमादीनं ञत्वा, भवेनम्हि अनत्थिको।
निस्सटो सब्बकामेहि, पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥122॥
इत्थं सुदं आयस्मा उत्तरो थेरो गाथायो अभासित्थाति।

2. पिण्डोलभारद्वाजत्थेरगाथा-

''नयिदं अनयेन जीवितं, नाहारो हृदयस्स सन्तिको।
आहारट्ठितिको समुस्सयो, इति दिस्वान चरामि एसनं॥123॥
''पङ्कोति हि नं पवेदयुं, यायं वन्दनपूजना कुलेसु।
सुखुमं सल्लं दुरुब्बहं, सक्कारो कापुरिसेन दुज्जहो''ति॥124॥
इत्थं सुदं आयस्मा पिण्डोलभारद्वाजो थेरो गाथायो अभासित्थाति।

3. वल्लियत्थेरगाथा-

''मक्कटो पञ्चद्वारायं, कुटिकायं पसक्किय।
द्वारेन अनुपरियेति, घट्टयन्तो मुहुं मुहुं॥125॥

(संस्कृतच्छाया)- ''एतमादीनवं ज्ञात्वा, भवे नास्म्यनर्थिकः।
निसृष्टः सर्वकामेभ्यः, प्राप्तो मे आस्रवक्षयः"इति॥122॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् उत्तरः स्थविरो गाथामभाषत"इति॥

2. ''नैदमनयेन जीवितम्, नाहारो हृदयस्य शान्तिकः।
आहारस्थितिकः समुच्छ्रयः, इति दृष्ट्वा चरामि एषणाम्॥123॥
''पङ्क इति हि नं प्रावेदिषुः, यायं वन्दनपूजना कुलेषु।
सूक्ष्मं शल्यं दुरुहम्, सत्कारः कापुरुषेण दुर्जहः" इति॥124॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् पिण्डोलभारद्वाजस्थविरो गाथामभाषत" इति॥

3. ''मर्कटः पञ्चद्वारायाम्, कुटिकायां प्रशक्य।
द्वारेणानुपर्येति, घट्टयन्तो मुहुर्मुहुः॥125॥

(हिन्दी)- भावों में यह दोष देखकर, मेरे लिये ये सब निरर्थक हो गये हैं। मैं सभी कामभोगों को त्याग चुका हूँ; क्योंकि अब मैंने साधना के बल पर अपने सभी आश्रवों को क्षीण कर लिया है॥122॥ इस प्रकार आयुष्यमान् उत्तर स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं ॥

अनीतिपूर्वक जीवन निकृष्ट जीवन होता है। आहार हृदय को कोई आध्यात्मिक शान्ति नहीं पहुँचाता। यह मेरा शरीर भी आहार पर निर्भर है— ऐसा चिन्तन करता हुआ मैं आध्यात्मिक गवेषणा में लगा रहता हूँ॥123॥

गृहस्थ परिवारों से मिलने वाले वन्दना एवं अर्चना वस्तुतः 'पङ्क' (कीचड़) ही है। दुष्ट पुरुषों की संगति तथा उनसे मिलने वाला सत्कार भी सूक्ष्म शल्य (काँटा) है, जिसका उद्धार कठिनता से ही हो पाता है॥124॥ इस प्रकार आयुष्यमान् पिण्डोल भारद्वाज स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

यह मर्कट रूप मार मेरी इस पाँच द्वारों वाली कुटी शरीर में बलात् किसी भी द्वार से प्रवेश करने का प्रयास करता रहता है। यदि प्रवेश नहीं कर पाता तो बाहर से बार-बार खटखटाता रहता है॥125॥

''तिट्ठ मक्कट मा धावि, न हि ते तं यथा पुरे।
निग्गहीतोसि पञ्ञाय, नेव दूरं गमिस्सती''ति॥126॥... वल्लियो थेरो...।

4. गङ्गातीरियत्थेरगाथा-

''तिण्णं मे तालपत्तानं, गङ्गातीरे कुटी कता।
छवसित्तोव मे पत्तो, पंसुकूलञ्च चीवरं॥127॥
''द्विन्नं अन्तरवस्सानं, एका वाचा मे भासिता।
ततिये अन्तरवस्सम्हि, तमोखन्धो पदालितो''ति॥128॥ ... गङ्गातीरियो थेरो...।

5. अजिनत्थेरगाथा-

''अपि चे होति तेविज्जो, मच्चुहायी अनासवो।
अप्पञ्ञातोति नं बाला, अवजानन्ति अजानता॥129॥
''यो च खो अन्नपानस्स, लाभी होतीध पुग्गलो।
पापधम्मोपि चे होति, सो नेसं होति सक्कतो''ति॥130॥... अजिनो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''तिष्ठ मर्कट मा धाव, न हि ते तं यथा पुरे।
निगृहीतोऽसि प्रज्ञया, नैव दूरं गमिष्यति"इति॥126॥

4. ''त्रयाणां तालपत्राणाम्, गङ्गातीरे कुटी कृता।
शवसिक्तमिव मे पात्रम्, पंसुकूलञ्च चीवरम्॥127॥
''द्वयोरन्तरवर्षयो:, एका वाचा मया भाषिता।
तृतीयेऽन्तरवर्षे, तमस्स्कन्ध: प्रदारित:"इति॥128॥

5. ''अपि चेद् भवति त्रैविध:, मृत्युहारी अनास्रव:।
अप्रज्ञात इति नं (तं) बाला, अवजानन्ति अजानता॥129॥
''यश्च खल्वन्नपानस्य, लाभी भवतीह पुद्गल:।
पापधर्मोऽपि चेद् भवति, स तेषां भवति सत्कृत:"इति॥130॥

(हिन्दी)- अरे मर्कट ! ठहर, भाग मत ! मैं तेरे लिये अब वह नहीं रह गया हूँ जो पहले था। मैंने प्रज्ञा के बल पर तुझको पकड़ लिया है। अब तू अधिक दूर नहीं जा पायगा॥126॥.....वल्लिय स्थविर ने.....॥

मैंने गंगातीर पर ताड़ वृक्ष के तीन पत्तों से अपनी कुटिया बना रखी है। नर-कपाल मेरा पात्र है। पांसुकूल मेरे चीवर हैं॥127॥

मैंने दो वर्ष के अन्तराल में एक ही वाणी बोली हैं तीसरे वर्ष के मध्य में, साधना के बल पर, अपना समस्त अज्ञानान्धकार विनष्ट कर दिया॥128॥ इस प्रकार, गंगातीरवासी स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

भले ही कोई साधक स्थविर 'त्रैविद्य' हो चुका हो, जन्म-मरण की वास्तविकता जान चुका हो, 'अनाश्रव'- हो चुका हो, तो भी उससे यदि जनता अपरिचित है तो वह उसकी अवमानना ही करती है॥129॥

इसी प्रकार, भले ही कोई साधक जनता से अधिक से अधिक अन्नपान प्राप्त करता हो, परन्तु स्वयं पापधर्मों में निरत हो, परिचित होने के कारण, जनता उसका सम्मान ही करती है॥130॥ इस प्रकार, अजिन स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

6. मेळजिनत्थेरगाथा-

''यदाहं धम्ममस्सोसिं, भासमानस्स सत्थुनो।
न कङ्खमभिजानामि, सब्बञ्ञूअपराजिते॥131॥
''सत्थवाहे महावीरे, सारथीनं वरुत्तमे।
मग्गे पटिपदायं वा, कङ्खा मय्हं न विज्जती''ति॥132॥... मेळजिनो थेरो...।

7. राधत्थेरगाथा-

''यथा अगारं दुच्छन्नं, वुट्ठी समतिविज्झति।
एवं अभावितं चित्तं, रागो समतिविज्झति॥133॥
''यथा अगारं सुच्छन्नं, वुट्ढी न समतिविज्झति।
एवं सुभावितं चित्तं, रागो न समतिविज्झती''ति॥134॥ ... राधो थेरो...।

8. सुराधत्थेरगाथा-

''खीणा हि मय्हं जाति, वुसितं जिनसासनं।
पहीनो जालसङ्खातो, भवनेत्ति समूहता॥135॥

(संस्कृतच्छाया)-6. ''यदाहं धर्ममश्रौषम्, भाषमानस्य शास्तुः।
न शङ्कामभिजानामि, सर्वज्ञेऽपराजिते॥131॥
''सार्थवाहे महावीरे, सारथीनां वरोत्तमे।
मार्गे प्रतिपदायां वा, शङ्का मां न विद्यते"इति॥132॥

7. ''यथागारं दुश्छन्नम्, वृष्टिः समतिविद्यति।
एवमभावितं चित्तं, रागः समतिविद्यति॥133॥
''यथागारं सुच्छन्नम्, वृष्टिर्न समतिविद्यति।
एवं सुभावितं चित्तम्, रागो न समतिविद्यति"इति॥134॥

8. ''क्षीणाः हि मम जाति, उषितं जिनशासनम्।
प्रहीणो जालसंस्कारः, भवनेत्रि समूलं हताः॥135॥

(हिन्दी)- अब मैंने, उपदेश करते हुए शास्ता के श्रीमुख से, धर्मश्रवण किया तदनन्तर मेरे मन में उन सर्वज्ञ एवं अपराजित शास्ता के प्रति कोई सन्देह नहीं रह गया॥131॥

इसी प्रकार, समूह के मार्गनिर्देशक, उत्तमसारथिरसदृश उन महावीर बुद्ध द्वारा प्रवेदित धर्ममार्ग एवं साधनाविधि के प्रति मेरे मन में कोई सन्देह नहीं रह गया॥132॥ इस प्रकार, मेड़जिन स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

जैसे कोई तृणाच्छादित कुटी, जो बीच-बीच में कुछ छिद्र छोड़कर छायी गयी हो, वर्षा का आघात नहीं सह सकती; उसी प्रकार, अभावित चित्त रागादि विकारों के आघात नहीं सह सकता॥133॥

परन्तु, इसके विपरती जैसे किसी भले प्रकार से छायी हुई पर्णकुटी में वर्षा का जल प्रविष्ट नहीं हो पाता; उसी प्रकार, साधना द्वारा परिपुष्ट निर्मल चित्त पर भी रागादि विकारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता॥134॥ इस प्रकार, राध स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

मेरी जन्मपरम्परा क्षीण हो चुकी है, मैंने बुद्धोपदिष्ट धर्म का पालन पूर्ण कर लिया है, मेरा चैतसिक मोहजाल विनष्ट हो चुका है, संसार से जोड़नेवाली वासना रूपी डोर कट चुकी है॥135॥

''यस्सत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो''ति॥136॥ ... सुराधो थेरो...।

9. गोतमत्थेरगाथा-

''सुखं सुपन्ति मुनयो, ये इत्थीसु न बज्झरे।
सदा वे रक्खितब्बासु, यासु सच्चं सुदुल्लभं॥137॥
''वधं चरिम्ह ते काम, अनणा दानि ते मयं।
गच्छाम दानि निब्बानं, यत्थ गन्त्वा न सोचती''ति॥138॥ ... गोतमो थेरो...।

10. वसभत्थेरगाथा-

''पुब्बे हनति अत्तानं, पच्छा हनति सो परे।
सुहतं हन्ति अत्तानं, वीतंसेनेव पक्खिमा॥139॥
''न ब्राह्मणो बहिवण्णो, अन्तो वण्णो हि ब्राह्मणो।
यस्मिं पापानि कम्मानि, स वे कण्हो सुजम्पती''ति॥140॥ ... वसभो थेरो...।

वग्गो पठमो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्यार्थाय प्रव्रजित:, अगारादनागारिकम्।
स मेऽर्थोऽनुप्राप्त:, सर्वसंयोजनक्षय:"इति॥136॥

9. ''सुखं स्वपन्ति मुनय:, ये स्त्रीसु न बध्यन्ते।
सदा वै रक्षितव्यासु,यासु सत्यं सुदुर्लभम्॥137॥
''वधं अचारिषुस्ते काममम्, अऋणा इदानीं ताभ्यो वयम्।
गच्छाम इदानीं निर्वाणम्, यत्र गत्वा न शोचति"इति॥138॥

10. ''पूर्वं हन्त्यात्मानम्, पश्चात् हन्ति स परे।
सुहतं हन्त्यात्मानम् आत्मानम्, वीतंसेनेव पक्षिमा॥139॥
''न ब्राह्मणो बाह्यवर्ण:, अन्तर्वर्णो हि ब्राह्मण:।
यस्मिन् पापानि कर्माणि, स वै कृष्ण: सुजम्पति" इति॥140॥

(हिन्दी)- जिस प्रयोजन के लिये मैंने गृहस्थ धर्म छोड़कर प्रव्रज्या ली थी मेरा वह प्रयोजन पूर्ण हो चुका है। मेरे सभी संयोजनों का क्षय हो चुका है॥136॥ इस प्रकार, सुराध स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

वे मुनि सुख की नींद सोते हैं, जो स्त्रियों के जंजाल में नहीं फँसते; क्योंकि सदा सुरक्षा में रहने वाली स्त्रियों की भी चारित्रिक सत्यता दुर्लभ होती है॥137॥

वे भले ही हमारी हत्या कर दें परन्तु हम उनसे ऋणमुक्त हो चुके हैं। अब हम निर्वाण की ओर चल पड़े हैं, जहाँ पहुँचने पर कोई शोक नहीं रह जाता॥138॥ इस प्रकार, गौतम स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

हत्या करने वाला पहले अपनी ही हत्या कर लेता है, तब दूसरे की हत्या में प्रवृत्त होता है; जैसे कोई कटे पंख वाला पक्षी॥139॥

बाह्य वर्ण से कोई ब्राह्मण नहीं कहलाता, अपितु वह आभ्यान्तर वर्ण स्वच्छ होने पर ही, ब्राह्मण कहलाता है। जिसने बहुलता से पापकर्म किये हैं, हे सुजापति! (इन्द्र!) वह काला ही कहलाता है॥140॥'' इस प्रकार, वृषभ स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

तस्सुद्दानं – उत्तरो चेव पिण्डोलो, वल्लियो तीरियो इसि।
अजिनो च मेळजिनो, राधो सुराधो गोतमो।
वसभेन इमे होन्ति, दस थेरा महिद्धिकाति॥

2. दुतियवग्गो

1. महाचुन्दत्थेरगाथा-

''सुस्सूसा सुतवद्धनी, सुतं पञ्ञाय वद्धनं।
पञ्ञाय अत्थं जानाति, ञातो अत्थो सुखावहो॥141॥
''सेवेथ पन्तानि सेनासनानि, चरेय्य संयोजनविप्पमोक्खं।
सचे रतिं नाधिगच्छेय्य तत्थ, सङ्घे वसे रक्खितत्तो सतिमा''ति॥142॥

... महाचुन्दो थेरो...।

2. जोतिदासत्थेरगाथा-

''ये खो ते वेठमिस्सेन, नानत्तेन च कम्मुना।
मनुस्से उपरुन्धन्ति, फरुसूपक्कमा जना।
तेपि तत्थेव कीरन्ति, न हि कम्मं पनस्सति॥143॥

(संस्कृतच्छाया)-

तस्योद्दानम्- *उत्तरो* चैव *पिण्डोलो, वल्लियो तीरियो* ऋषिः।
अजिनो च मेळजिनो, राधो सुराधो गोतमो।
वसभेन इमे भवन्ति, दशस्थविराः महर्द्धिका इति॥ ●

1. ''शुश्रूषा श्रुतवर्धनी, श्रुतं प्रज्ञायाः वर्धनम्।
प्रज्ञया अर्थं जानाति, ज्ञातोऽर्थः सुखावहः॥141॥
''सेवेत प्रान्तानि शयनासनानि, चरेत संयोजनविप्रमोक्षम्।
सचेत् रतिं नाधिगच्छेत् तत्र, सङ्घे वशे रक्षितव्यः स्मृतिमान्''इति॥142॥

2. ''ये खलु ते वेष्टमिश्रेण, नानात्वेन च कर्मणा।
मनुष्यान् उपरुन्धन्ति, परुषोपक्रमाः जनाः।
तेऽपि तत्रैव किरन्ति, न हि कर्म प्रणश्यति॥143॥

(हिन्दी)- इस वर्ग की सूची- इस वर्ग में दश महर्धिक स्थविरों की गाथाओं का चयन है- उत्तर, पिण्डोल भारद्वाज, वल्लिय स्थविर, गंगातीरवासी स्थविर, अजित स्थविर, मेडजिन, राध स्थविर, सुराध स्थविर, गौतम स्थविर, वृषभ स्थविर॥ ●

धर्म श्रवण की इच्छा सुने हुए धर्म की वृद्धि करती है, सुना हुआ धर्म प्रज्ञा की वृद्धि करता है। बढ़ी हुई प्रज्ञा से अर्थ ज्ञात होता है, ज्ञात अर्थ सुख प्रदान करता है॥141॥

अतः एकान्त शयनासन में वास करो, सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास करो। यदि उस एकान्तवास में साधना हेतु तुम्हार चित्त स्थिर न हो सके तो संघ में रहकर स्मृतिमान् होकर इनिद्रयसंयम करो॥142॥ इस प्रकार, महाचुन्द स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

जो पुरुष मनुष्यों को कठोर वाणी से संसार में उलझाने वाले और नानात्व दृष्टियुक्त कर्मों में फँसाता है, वह स्वयं भी उन कर्मों में फँस जाता है; क्योंकि कर्म कभी नष्ट नहीं होता॥143॥

''यं करोति नरो कम्मं, कल्याणं यदि पापकं।
तस्स तस्सेव दायादो, यं यं कम्मं पकुब्बती''ति॥144॥ ... जोतिदासो थेरो...।

3. हेरञ्ञकानित्थेरगाथा-

''अच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं उपरुज्झति।
आयु खीयति मच्चानं, कुन्नदीनंव ओदकं॥145॥
''अथ पापानि कम्मानि, करं बालो न बुज्झति।
पच्छास्स कटुकं होति, विपाको हिस्स पापको''ति॥146॥ ... हेरञ्ञकानित्थेरो...।

4. सोममित्तत्थेरगाथा-

''परित्तं दारुमारुय्ह, यथा सीदे महण्णवे।
एवं कुसीतमागम्म, साधुजीवीपि सीदति।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, कुसीतं हीनवीरियं॥147॥
''पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायिभि।
निच्चं आरद्धवीरियेहि, पण्डितेहि सहावसे''ति॥148॥ ... सोममित्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''यत् करोति नरः कर्म, कल्याणं यदि पापकम्।
तस्य तस्यैव दायादः, यत् यत् कर्म प्रकुर्वति" इति॥144॥

3. ''अत्ययन्ति अहोरात्राः, जीवितमुपरुध्यति।
आयुः क्षीयते मर्त्यानाम्, कुनदीनामिवोदकम्॥145॥
''अथ पापानि कर्माणि, कृतः बालो न बुध्यते।
पश्चादस्य कटुकं भवति, विपाको ह्यस्य पापकः" इति॥146॥

4. ''परित्रं दारुमारुह्य, यथा सीदति महार्णवे।
एवं कुसीतमगम्य, साधुजीवी अपि सीदति॥
तस्मात् ते परिव्रजेत्, कुसीतं हीनवीर्यम्॥147॥
''प्रविविक्तैरार्यैः, प्रेषितैः ध्यायिभिः।
नित्यमारब्धवीर्यैः, पण्डितैः सहावासेत्"इति॥148॥

(हिन्दी)- जो मनुष्य जैसा भी कल्याणमय या पापमय कर्म करता है, तो उस कृत कर्म का फलभोक्ता भी वही होता है॥144॥ इस प्रकार, ज्योतिर्दास स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

क्षुद्र नदी के जल के समान मनुष्यों की आयु क्षीण होती रहती है, जीवन अल्प होता रहता है, रात-दिन भी कम होते रहते हैं॥145॥

पाप कर्म करता हुआ मूर्ख मनुष्य यह नहीं समझता कि भविष्य में इस पाप कर्म का परिणाम कितना कठोर होगा! इसका परिणाम भी पापमय ही होगा॥146॥ हैरण्यकायनि स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

जैसे किसी क्षुद्र काष्ठ फलक का सहारा लेने वाला समुद्र में डूब जाता है; उसी प्रकार, आलसी पुरुष सत्कर्म करना चाहता हुआ भी सुखी नहीं रहता। अतः ऐसे पुरुष का संग छोड़ देना चाहिये जो आलसी एवं उद्योगहीन हो॥147॥

उस साधक को ऐसे आर्यजनों का संग करना चाहिये जो एकान्तवासी हों, ध्यानाभ्यासी हों, संयतेन्द्रिय हों तथा धर्मसाधना में सतत उद्योगरत हों॥148॥ इस प्रकार, सोममित्र स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

5. सब्बमित्तत्थेरगाथा-

''जनो जनम्हि सम्बद्धो , जनमेवस्सितो जनो।
जनो जनेन हेठीयति, हेठेति च जनो जनं॥149॥
''को हि तस्स जनेनत्थो, जनेन जनितेन वा।
जनं ओहाय गच्छं तं, हेठयित्वा बहुं जनं''ति॥150॥ ... सब्बमित्तो थेरो...।

6. महाकाळत्थेरगाथा-

''काळी इत्थी ब्रहती धङ्करूपा, सत्थिञ्च भेत्वा अपरं च सत्थिं।
बाहं च भेत्वा अपरं च बाहं, सीसं च भेत्वा दधिथालकंव।
एसा निसिन्ना अभिसन्दहित्वा॥151॥
''यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्दो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, माहं पुन भिन्नसिरो सयिस्सं''ति ॥152॥
... महाकाळो थेरो...।

7. तिस्सत्थेरगाथा-

''बहू सपत्ते लभति, मुण्डो सङ्घाटिपारुतो।
लाभी अन्नस्स पानस्स, वत्थस्स सयनस्स च॥153॥

(संस्कृतच्छाया)-5. ''जनो जने सम्बद्धः, जनमेवाश्रितो जनः।
जनो जनेन हेठीयते, हेठयति च जनो जनम्॥149॥
''को हि तस्य जनेनार्थः, जनेन जनितेन वा।
जनमपहाय गच्छन्तम्, हेठयित्वा बहुं जनम्॥150॥

6. ''काडी स्त्री बृहती ध्वाङ्क्षरूपा, सक्थिञ्च भेत्वा अपरञ्च सक्थिम्।
बाहुञ्च भेत्वा अपरञ्च बाहुम्, शीर्षञ्च भेत्वा दधिथालकमिव।
ता निषिण्णा अभिसन्दहित्य॥151॥
''यो वै अविद्वान् उपधिं करोति, पुनर्पुनः दुःखमुपैति मन्दः।
तस्मात् प्रज्ञानमुपधिं न कुर्यात्, माहं पुनः भिन्नशिरः शयिष्ये"इति॥152॥

7. ''बहून् सपत्नान् लभते, मुण्डः सङ्घाटीप्रावृतः।
लाभी अन्नस्य पानस्य, वस्त्रस्य शयनस्य च॥153॥

(हिन्दी)- मनुष्य मनुष्य से ही सम्बद्ध है, मनुष्य मनुष्य पर ही आश्रित है। इसी प्रकार, मनुष्य ही मनुष्य को कष्ट पहुँचाता है, मनुष्य ही मनुष्य से कष्ट पाता है॥149॥

मनुष्य का किसी अन्य पुरुष से या उसके द्वारा जनित पुत्र आदि से उसका क्या प्रयोजन है !वह उन सबकी उपेक्षा कर (साधना द्वारा) अकेला आगे बढ़ता है॥150॥इस प्रकार, सर्वमित्र स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

यह विशाल काली स्त्री, काले कौए के समान, जांघ से जांघ पृथक् कर, बाहु से बाहु पृथक् कर, तथा अपने शिर को दधिपात्र के समान लेकर खड़ी है॥151॥

जो मूर्ख इस विषय में अपने चित्त में कोई विकार लाता है वह अपने लिये पुनः पुनः दुःख ही उद्भूत करता है। अतः बुद्धिमान् आदमी, जानते बूझते, इस के विषय में कोई चित्त-विकार न उद्भूत होने दे। मैं तो ऐसे करके अपना शिर नहीं फुड़ाना चाहूँगा॥152॥ इस प्रकार, महाकाल स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

जो भिक्षु मुण्डितशिर एवं संघाटी धारण कर भी अपने लिये आवश्यकता से अधिक अन्न, पान, चीवर एवं शयनासन का लाभ खोजता है, लोक में उसके बहुत से शत्रु हो जाते हैं॥153॥

''एतमादीनवं ञत्वा, सक्कारेसु महब्भयं।
अप्पलाभो अनवस्सुतो, सतो भिक्खु परिब्बजे''ति॥154॥ ... तिस्सो थेरो...।

8. किमिलत्थेरगाथा-

''पाचीनवंसदायम्हि , सक्यपुत्ता सहायका।
पहायानप्पके भोगे, उञ्छापत्तागते रता॥155॥
''आरद्धवीरिया पहितत्ता, निच्चं दळ्हपरक्कमा।
रमन्ति धम्मरतिया, हित्वान लोकियं रतिं''ति॥156॥ ... किमिलो थेरो...।

9. नन्दत्थेरगाथा-

''अयोनिसो मनसिकारा, मण्डनं अनुयुञ्जिसं।
उद्धतो चपलो चासिं, कामरागेन अट्टितो॥157॥
''उपायकुसलेनाहं, बुद्धेनादिच्चबन्धुना।
योनिसो पटिपज्जित्वा, भवे चित्तं उदब्बहिं''ति॥158॥ ... नन्दो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''एतमादीनवं ज्ञात्वा, सत्कारेषु महाभयम्।
अप्यलाभोऽनवशृत:, स्मृतो भिक्षु: परिव्रजेत्"इति॥154॥

8. ''प्राचीनवंशदाये, शाक्यपुत्रा: सहायका:।
प्रहायानल्पकं भोगम्, उञ्छापत्रागते रता:॥155॥
''आरब्धवीर्या: प्रहितात्मा, नित्यं दृढपराक्रमा:।
रमन्ति धर्मरत्याम्, हित्वा लौकिकीं रतिम्"इति॥156॥

9. ''अयोनिशो मनसिकारात्(अयथार्थेन विचारेण), मण्डनमनुयुञ्जितम्।
उद्धतश्चपलश्चाभूवम्, कामरागेनार्तित: ॥157॥
''उपायकुशलेनाहम्, बुद्धेनादित्यबन्धुना।
योनिश: प्रतिप्रव्रज्य, भवे चित्तमुदावहम्"इति॥158॥

(हिन्दी)- अतः ऐसे संग्रह में यह दोष देखकर, तथा समाज द्वारा प्राप्त होने वाले सत्कार में भय मानते हुए, लाभ की अनिच्छा रखते हुए तथा तृष्णाविहीन हो कर ही स्मृतिमान् भिक्षु को प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये॥154॥ इस प्रकार, तिष्य स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

हमारे साथी सहायक शाक्यपुत्र (बौद्ध भिक्षु) (कौसाम्बी नगर के समीप) प्राचीन वंशदाव में, अतिशय कामभोगों को त्याग कर, केवल उच्छवृत्ति या भिक्षाचर्या से जीवननिर्वाह करते हुए साधनारत रहते हैं॥155॥

वे संयतेन्द्रिय, नित्य दृढपराक्रम के साथ लौकिक सुखके प्रति अरुचि रखते हुए धर्मरतिपूर्वक साधनारत रहते हैं॥156॥ इस प्रकार, किमिल स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

पहले मैं, अयोनिशः मनस्कार के कारण, अपने शरीर के मण्डन तथा अलंकार में ही लगा रहता था। इस कारण मैं उद्धत एवं चपल था, और कामराग में निरन्तर लगा रहता था॥157॥

पुनः एक समय आया कि सांसारिक विरक्ति के उपाय में कुशल आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध ने मुझको साधना द्वारा चित्तविकारों का योनिशः मनस्कार (सूक्ष्म चिन्तन) करना सिखाया। उसके बलपर मेरा चित्त संसार के प्रति विरक्त हो गया॥158॥ इस प्रकार, नन्द स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

10. सिरिमत्थेरगाथा-

''परे च नं पसंसन्ति, अत्ता चे असमाहितो।
मोघं परे पसंसन्ति, अत्ता हि असमाहितो॥159॥
''परे च नं गरहन्ति, अत्ता चे सुसमाहितो।
मोघं परे गरहन्ति, अत्ता हि सुसमाहितो''ति॥160॥ ... सिरिमा थेरो...।

तस्सुद्दानं– चुन्दो च जोतिदासो च, थेरो हेरञ्ञकानि च।
सोममित्तो सब्बमित्तो, कालो तिस्सो च किमिलो।
नन्दो च सिरिमा चेव, दस थेरा महिद्धिकाति॥ वग्गो दुतियो निट्ठितो।

3. ततियवग्गो

1. उत्तरत्थेरगाथा-

''खन्धा मया परिञ्ञाता, तण्हा मे सुसमूहता।
भाविता मम बोज्झङ्गा, पत्तो मे आसवक्खयो॥161॥
''सोहं खन्धे परिञ्ञाय, अब्बहित्वान जालिनिं।
भावयित्वान बोज्झङ्गे, निब्बायिस्सं अनासवो''ति॥162॥ ... उत्तरो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-10. ''परे च नु प्रशंसन्ति, आत्मना च असमाहितम्।
मोघं परं प्रशंसन्ति, आत्मानं ह्यसमाहितम्॥159॥
''परे च नु गर्हन्ति, आत्मना च सुसमाहितम्।
मोघं परं गर्हन्ति, आत्मानं हि सुसमाहितम्॥160॥

तस्योद्दानम्- *चुन्दो च जोतिदासो* च, स्थविरो *हेरञ्ञकानि* च।
सोममित्तो सब्बमित्तो, कालो तिस्सो च *किमिलो।*
नन्दो च *सिरिमा* चैव, दश स्थविराः महर्षिका इति॥ ●

1. ''स्कन्धाः मया परिज्ञाताः, तृष्णा मे सुसमवहता।
भाविताः मया बोध्यङ्गाः, प्राप्तः मम आस्रवक्षयः॥161॥
''सोऽहं स्कन्धान् परिज्ञाय, अभ्याहत्य जालिनीम्।
भावयित्वा बोध्यङ्गान्, निर्व्रजिष्याम्यनास्रवः"इति॥162॥

(हिन्दी)- यदि कोई किसी असंयतेन्द्रिय पुरुष की प्रशंसा करते हैं तो उनकी वह प्रशंसा व्यर्थ ही है; क्योंकि वह असंयतेन्द्रिय है (अतः वह प्रशंसापात्र कैसे हो सकता है!)॥159॥
और यदि कोई किसी संयतेन्द्रिय पुरुष की निन्दा करते हैं तो उनके द्वारा की गयी वह निन्दा भी व्यर्थ ही है; क्योंकि वह संयतेन्द्रिय है॥160॥ इस प्रकार, श्रीमान् स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥
इस वर्ग की सूची- महाचन्द स्थविर, ज्योतिर्दास स्थविर, हैरण्यकायनि स्थविर, सौममित्र स्थविर, सर्वमित्र स्थविर, महाकाल स्थविर, तिष्य स्थविर, किमिल स्थविर, नन्द स्थवरि, एवं श्रीमान (सिरिमा) स्थविर। ये सभी दस स्थविर महर्धिक थे॥ ●
मैंने पाँचों स्कन्धों का वास्तविक परिचय पा लिया है, मेरी तृष्णा नष्ट हो चुकी है तथा मैंने सातों बोध्यङ्गों का पूर्ण अभ्यास कर लिया है। अतः मेरे सभी आश्रव क्षीण हो चुके हैं॥161॥
इस प्रकार, मैं स्कन्धों का परिज्ञान कर, तृष्णा का नाश कर, सातों बोध्यङ्गों का अभ्यास कर, आश्रवरहित निर्वाण प्राप्त करूँगा॥162॥ इस प्रकार, उत्तर स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

''पनादो नाम सो राजा, यस्स यूपो सुवण्णयो।
तिरियं सोळसुब्बेधो, उब्भमाहु सहस्सधा॥163॥
''सहस्सकण्डो सतगेण्डु, धजालु हरितामयो।
अनच्चुं तत्थ गन्धब्बा, छसहस्सानि सत्तधा''ति॥164॥ ... भद्दजित्थेरो...।

3. सोभितत्थेरगाथा-

''सतिमा पञ्ञवा भिक्खु, आरद्धबलवीरियो।
पञ्च कप्पसतानाहं, एकरत्तिं अनुस्सरिं॥165॥
''चत्तारो सतिपट्ठाने, सत्त अट्ठ च भावयं।
पञ्च कप्पसतानाहं, एकरत्तिं अनुस्सरिं''ति॥166॥ ... सोभितो थेरो...।

4. वल्लियत्थेरगाथा-

''यं किच्चं दळ्हवीरियेन, यं किच्चं बोद्धुमिच्छता।
करिस्सं नावरज्झिस्सं, पस्स वीरियं परक्कम॥167॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रणादो नाम स राजा, यस्य यूपः सुवर्णमयः।
त्रिज्या षोडषोदवेधाः, ऊर्ध्वमाहुः सहस्रधा॥163॥
''सहस्रकुण्डः शतगेन्दुः, ध्वजाली हरितामयी।
अनृत्यन् तत्र गन्धर्वाः, षट्सहस्राणि शतधा"इति॥164॥

3. ''स्मृतिमान् प्रज्ञावान् भिक्षु, आरब्धबलवीर्यः।
पञ्च कल्पशतमहम्, एकरात्रिरिवानुस्मरन्॥165॥
''चतुस्स्मृतिप्रस्थानान्, सप्तमष्टं च भावयम्।
पञ्च कल्पशतमहं, एकरात्रिमनुस्मरन्"इति॥166॥

4. ''यत् कृत्यं दृढवीर्येण, यत् कृत्यं बोद्धुमिच्छता।
करिष्यामि नावर्जिष्यामि, पश्य वीर्यं पराक्रमम्॥167॥

(हिन्दी)- वह प्रणाद नामक राजा था, जिसका यज्ञस्तम्भ सुवर्णमय था। उसका व्यास (चौड़ाई) सोलह उद्वेध (प्रमाणविशेष) तथा उच्चता एक हजार उद्वेध थी॥163॥

उसका आकार एक हजार काण्ड था, तथा उसमें एक सौ वृत्त घिरे हुए थे। उस पर हरी ध्वजा फहरा रही थी। उस पर छह हजार गन्धर्व सैकड़ों प्रकार से नाच रहे थे॥164॥ इस प्रकार, भद्रजित स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

मैंने पाँच सौ कल्प तक स्मृतिमान् एवं प्रज्ञावान् हो कर, बलवीर्यपूर्वक भिक्षुसाधना एक रात्रि के समान की॥165॥

इसी प्रकार, मैंने पाँच सौ कल्प तक, चारों स्मृतिप्रस्थानों का अभ्यास, सात बोध्यङ्ग एवं आठ विमोक्षों की साधना भी, एक रात्रि के समान की॥166॥ इस प्रकार, शोभित स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

साधना में जो कुछ भी किसी दृढवीर्य साधक के द्वारा या किसी जिज्ञासु के द्वारा किया जा सकता है वह मैं भी करूँगा। मेरा पराक्रम भी देखिये॥167॥

''त्वञ्च मे मग्गमक्खाहि, अञ्जसं अमतोगधं।
अहं मोनेन मोनिस्सं, गङ्गासोतोव सागरं''ति॥168॥ ... वल्लियो थेरो...।

5. वीतसोकत्थेरगाथा-

''केसे मे ओलिखिस्सन्ति, कप्पको उपसङ्कमि।
ततो आदासमादाय, सरीरं पच्चवेक्खिसं॥169॥
''तुच्छो कायो अदिस्सित्थ, अन्धकारो तमो ब्यगा।
सब्बे चोळा समुच्छिन्ना, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥170॥ ... वीतसोको थेरो...।

6. पुण्णमासत्थेरगाथा-

''पञ्च नीवरणे हित्वा, योगक्खेमस्स पत्तिया।
धम्मादासं गहेत्वान, ञाणदस्सनमत्तनो॥171॥
''पच्चवेक्खिं इमं कायं, सब्बं सन्तरबाहिरं।
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, तुच्छो कायो अदिस्सथा''ति॥172॥ ... पुण्णमासो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''त्वं च मे मार्गमाख्याहि, अञ्जसम् *अमतोगधं* (अमृतपदम्)।
अहं मननेन मानयिष्यामि, गङ्गास्रोत इव सागरम्" इति॥168॥

5. ''केशान् मे अवलेखिष्यमीति, कल्पक उपसङ्क्रमीत्।
तत आदर्शमादाय, शरीरं प्रत्यवेक्षितम्॥169॥
''तुच्छं कायमपश्यम्, अन्धकारस्तमो व्यगात्।
सर्वे चोला: समुच्छिन्ना, नास्ति इदानीं पुनर्भव:"इति॥170॥

6. ''पञ्च नीवरणान् हित्वा, योगक्षेमस्य प्राप्तये।
धर्मादर्शं गृहीत्वा, ज्ञातदर्शनमात्मन:॥171॥
''प्रतिव्यैच्छमिमं कायम्, सर्वं सान्तर्बाह्यकम्।
अध्यात्मञ्च वहिर्धाञ्च, तुच्छं कायमपश्यम्"इति॥172॥

(हिन्दी)- आप मुझे केवल उस साधना का सरल एवं निर्वाण तक पहुचने वाला मार्गबोध कीजिये। मैं उस मार्ग का मौनपूर्वक आचरण करूगा, जैसे कि गंगा का प्रवाह मौनपूर्वक समुद्र में जा मिलता है॥168॥...वल्लिय स्थविर॥

मेरे केश-कर्तन हेतु कोई नाई आया। उसने मेरा क्षौर कर्म किया। तब मैंने उससे लेकर दर्पण में अपनी आकृति देखी॥169॥

तब मुझे अपने शरीर की तुच्छता का बोध हुआ। उसी समय मेरा अज्ञान-अन्धकार विनष्ट हुआ। तदनन्तर मैंने इतनी धर्मसाधना की, कि उसके बल से मेरा जन्मपरम्परा का क्षय होने से अब मेरा पुनर्जन्म होना असम्भव है॥170॥ इस प्रकार, वीत स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

पाँच नीवरणों का प्रहाण कर मैंने योगक्षेम की प्राप्ति से धर्मादर्श को ग्रहण करके, आत्मदर्शन कर लिया॥171॥

तदनन्तर, मैंने अपनी इस काया को आभ्यन्तर एवं बाह्य रूप से देखा तो मुझे अपनी काया की तुच्छता का भान हुआ॥172॥ इस प्रकार, पौर्णमास स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

7. नन्दकत्थेरगाथा-

''यथापि भद्दो आजञ्ञो, खलित्वा पतितिट्ठति।
भिय्यो लद्धान संवेगं, अदीनो वहते धुरं॥173॥
''एवं दस्सनसम्पन्नं, सम्मासम्बुद्धसावकं।
आजानीयं मं धारेथ, पुत्तं बुद्धस्स ओरसं''ति॥174॥ ... नन्दको थेरो...।

8. भरतत्थेरगाथा-

''एहि नन्दक गच्छाम, उपज्झायस्स सन्तिकं।
सीहनादं नदिस्साम, बुद्धसेट्ठस्स सम्मुखा॥175॥
''याय नो अनुकम्पाय, अम्हे पब्बाजयी मुनि।
सो नो अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो''ति॥176॥ ... भरतो थेरो...।

9. भारद्वाजत्थेरगाथा-

''नदन्ति एवं सप्पञ्ञा, सीहाव गिरिगब्भरे।
वीरा विजितसङ्गामा, जेत्वा मारं सवाहनिं ॥177॥

(संस्कृतच्छाया)-7. ''यथापि भद्र आजन्यः, स्खलित्वा प्रतितिष्ठति।
भूयो लब्धा संवेगम्, अदीनो वहते धुरम्॥173॥
''एवं दर्शनसम्पन्नम्, सम्यक्सम्बुद्धश्रावकम्।
आज्ञाय मां धारयेत्, पुत्रं बुद्धस्य औरसम्"इति॥174॥

8. ''एहि नन्दक! गच्छाम, उपाध्यायस्य सान्तिकम्।
सिंहनादं नदिष्यामः, बुद्धश्रेष्ठस्य सम्मुखम्॥175॥
''यया अस्मासु अनुकम्पया, अस्मान् प्राव्राजयत् मुनिः।
स नोऽर्थोऽनुप्राप्तः, सर्वसंयोजनक्षयः" इति॥176॥

9. ''नन्दन्ति एवं सप्रज्ञाः, सिंह इव गिरिगह्वरे।
वीराः विजितसङ्ग्रामाः, जित्वा मारं सवाहनम्॥177॥

(हिन्दी)- जैसे कोई श्रेष्ठ जाति के अश्व की गति कहीं ठोकर खाने से रुक जाती है, परन्तु वह कुछ क्षण बाद संवेग प्राप्त कर पूर्ववत् सोत्साह गतिमान् हो जाता है॥173॥

इसी प्रकार, मुझ सम्यग्दृष्टियुक्त बुद्धशिष्य (भिक्षु) को भी उसी श्रेष्ठ जाति के अश्व के समान ही समझो॥ इस प्रकार, नन्दक स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥174॥

आओ, नन्दक! उपाध्याय के समीप चलें। वहाँ हम उन बुद्धश्रेष्ठ के सम्मुख सिंहनाद करेंगे॥175॥

जिस प्रयोजन हेतु अनुकम्पापूर्वक उन मुनि ने हमको प्रव्रज्या दीक्षा दी थी, हमारा वह मनोरथ पूर्ण हो गया और हमने सर्वसंयोजनक्षय प्राप्त कर लिया॥176॥ इस प्रकार, भरत स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

प्रज्ञावान् साधक मारसेना को जीत कर उसी प्रकार प्रसन्न रहते हैं, जैसे वनराज सिंह पर्वत गुफा में, या कोई वीर युद्ध जीत कर रणक्षेत्र में सहर्ष गर्जन किया करता है॥177॥

''सत्था च परिचिण्णो मे, धम्मो सङ्घो च पूजितो।
अहञ्च वित्तो सुमनो, पुत्तं दिस्वा अनासवं''ति॥178॥ ... भारद्वाजो थेरो...।

10. कण्हदिन्नत्थेरगाथा-

''उपासिता सप्पुरिसा, सुता धम्मा अभिण्हसो।
सुत्वान पटिपज्जिस्सं, अञ्जसं अमतोगधं॥179॥
''भवरागहतस्स मे सतो, भवरागो पुन मे न विज्जति।
न चाहु न च मे भविस्सति, न च मे एतरहि विज्जती''ति॥180॥

... कण्हदिन्नो थेरो..।
वग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – उत्तरो भद्दजित्थेरो, सोभितो वल्लियो इसि।
वीतसोको च यो थेरो, पुण्णमासो च नन्दको।
भरतो भारद्वाजो च, कण्हदिन्नो महामुनीति॥

4. चतुत्थवग्गो

1. मिगसिरत्थेरगाथा-

''यतो अहं पब्बजितो, सम्मासम्बुद्धसासने।
विमुच्चमानो उग्गच्छिं, कामधातुं उपच्चगं॥181॥

(संस्कृतच्छाया)- ''शास्ता च परिचरितो मया, धर्मः सङ्घश्च पूजितः।
अहं च वित्तः सुमनः, पुत्रं दृष्ट्वा अनास्रवम्" इति॥178॥
10. ''उपासिताः सत्पुरुषाः, श्रुताः धर्मा अभीक्ष्णम्।
श्रुत्वा प्रतिप्राप्तम्, अञ्जसम् अमृतोद्गवम्॥179॥
''भवरागहतस्य मे सतः, भवरागः पुनः मे न विद्यते।
न चाभूत् न च मे भविष्यति, न च मे एतर्हि विद्यते"इति॥180॥

तस्योद्दानम्- *उत्तरो भद्दजि*स्थविरः, *सोभितो वल्लियो* ऋषिः।
वीतसोको च यः स्थविरः, *पुण्णमासो* च *नन्दको*।
भरतो भारद्वाजो च, *कण्हदिन्नो* महामुनिः" इति॥ ●

1. ''यतोऽहं प्रव्रजितः, सम्यक्सम्बुद्धशासने।
विमुक्तमान उदगच्छम्, कामधातुमुपात्यगम्॥181॥

(हिन्दी)- मैं शास्ता की अर्चना कर चुका हूँ, धर्म एवं सङ्घ की भी पूजा कर चुका हूँ। मैं आज अपने को आस्रवक्षीण शास्ता के पुत्र को देखकर अतिशय प्रसन्न हूँ॥178॥ भारद्वाज स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥
मैंने सत्पुरुषों की उपासना पूर्ण कर ली है, धर्म का भी अतिशय श्रवण किया है। उस धर्मश्रवण के प्रभाव से मैं उस सरल परन्तु गम्भीर अमृत पद (निर्वाण) प्राप्त कर चुका॥179॥
मुझ भवरागप्रहीण को अब पुनः भवराग उत्पन्न होने की आशा नहीं है। न वह पहले था, न आगे कभी होगा, न वर्तमान में ही है।180॥ इस प्रकार, कृष्णदत्त स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥
इस वर्ग की सूची- उत्तर स्थविर, भद्रजित् स्थविर, शोभित स्थविर, वल्लिय स्थविर, वीतशोक स्थविर, पौर्णमास स्थविर, नन्दक स्थविर, भरत स्थविर, भारद्वाज स्थविर एवं महामुनि कृष्णदत्त स्थविर॥●
जबसे मैं इन भगवान् बुद्ध के शासन में प्रवजित हुआ हूँ, विकारों से मुक्त होता हुआ साधना में प्रगति ही कर रहा हूँ। आज मैं कामराग को अतिक्रान्त कर चुका हूँ॥181॥

''ब्रह्मुनो पेक्खमानस्स, ततो चित्तं विमुच्चि मे।
अकुप्पा मे विमुत्तीति, सब्बसंयोजनक्खया''ति॥182॥ ... मिगसिरो थेरो...।

2. सिवकत्थेरगाथा-

''अनिच्चानि गहकानि, तत्थ तत्थ पुनप्पुनं।
गहकारं गवेसन्तो, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥183॥
''गहकारक दिट्ठोसि, पुन गेहं न काहसि।
सब्बा ते फासुका भग्गा, थूणिका च विदालिता।
विमरियादिकतं चित्तं, इधेव विधमिस्सती''ति॥184॥ ... सिवको थेरो...।

3. उपवाणत्थेरगाथा-

''अरहं सुगतो लोके, वातेहाबाधितो मुनि।
सचे उण्होदकं अत्थि, मुनिनो देहि ब्राह्मण॥185॥
''पूजितो पूजनेय्यानं, सक्करेय्यान सक्कतो।
अपचितोपचेय्यानं, तस्स इच्छामि हातवे''ति॥186॥ ... उपवाणो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''ब्रह्मण: प्रेक्षमाणस्य, ततो चित्तं व्यमुचत् मे।
अकुप्या मे विमुक्तीति, सर्वसंयोजनक्षयात्"इति॥182॥

2. ''अनित्यानि गृहकार्याणि, तत्र तत्र पुनापुन:।
गृहकार्यं गवेष्यन्त:, दु:खं जातं पुनापुन:॥183॥
''गृहकारक! दृष्टोऽसि, पुनर्गेहं न करिष्यसि।
सर्वास्ते पार्श्विका: भग्ना, स्थूणिका च विदारिता।
विमर्यादादिकृतं चित्तम्, इहैव विध्यमाष्यामीति॥184॥

3. ''अर्हत् सुगत: लोके, वातै इह आवाधितो मुनि:।
सचेत् उष्णोदकमात्ति, मुनये! देहि ब्राह्मण!॥185॥
''पूजित: पूजनीयानाम्, सत्कारिणां सत्कृत:।
अर्चितोऽर्चनीयानाम्, तस्येच्छामि हातवे (मुक्तये)"इति॥186॥

(हिन्दी)- ब्रह्म (निर्वाण) का साक्षात्कार करने से मेरा चित्त (सभी विकारों से) मुक्त हो गया। सर्वविध संयोजनों के क्षीण होने से मेरी चित्तविमुक्ति स्थिर हो गयी॥182॥ इस प्रकार, मृगशिरा स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

गृहकार्य अनित्य हैं, फिर भी बार-बार गृहस्थ के जंजालों के निर्माता की गवेषणा में अनेक कष्टों का जन्म होता है॥183॥

हे मार! अब मैंने तुमको पहचान लिया है! अब तूँ अपना सांसारिक जाल मुझ पर नहीं फैला सकता; क्योंकि अब मैंने तेरी सब पसुलियाँ तोड़ दी हैं तथा तेरे सभी आधारस्तम्भ नष्ट कर दिये हैं और मेरा चित्त स्थिर हो चुका है। अब मैं तुझको यहीं नष्ट किये विना विश्राम नहीं करूँगा॥184॥....शिवक स्थविर.....।

ब्राह्मण! लोक में प्रथम ज्ञानी सुगत के रूप से प्रख्यात भगवान् बुद्ध आज वात रोग से पीडित हैं, अतः यदि आप के पास उष्ण जल हो तो कृपया उनके लिये दीजिये॥185॥

वे (भगवन् बुद्ध) पूजनीयों द्वारा पूजित, सत्कार्य जनों द्वारा सत्कृत एवं अर्चनीयों द्वारा अर्चित हैं। उनको रोगमुक्त देखने हेतु मैं यह याचना कर रहा हूँ॥186॥... उपवाण स्थविर...॥

4. इसिदिन्नत्थेरगाथा-

''दिट्ठा मया धम्मधरा उपासका, कामा अनिच्चा इति भासमाना।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च ते अपेक्खा॥187॥
''अद्धा न जानन्ति यतोध धम्मं, कामा अनिच्चा इति चापि आहु।
रागञ्च तेसं न बलत्थि छेत्तुं, तस्मा सिता पुत्तदारं धनञ्चा''ति॥188॥

...इसिदिन्नो थेरो...।

5. सम्बुलकच्चानत्थेरगाथा-

''देवो च वस्सति देवो च गळगळायति,
एकको चाहं भेरवे बिले विहरामि।
तस्स मय्हं एककस्स भेरवे बिले विहरतो,
नत्थि भयं वा छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा॥189॥
''धम्मता ममसा यस्स मे, एककस्स भेरवे बिले।
विहरतो नत्थि भयं वा, छम्भितत्तं वा लोमहंसो वा''ति॥190॥...सम्बुलकच्चानो थेरो..।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''दृष्टा मया धर्मधरा उपासकाः, कामा अनित्या इति भाषमाणाः।
सरागरक्ताः मणिकुण्डलेषु, पुत्रेषु दारासु च तैरपेक्षते॥187॥
''अर्धं न जानन्ति यत इह धर्मम्, कामा अनित्या इति चापि आहु।
रागञ्च तेषां न वलमस्ति छेतुम्, तस्मात् सिता पुत्रेषु दारासु धनेषु च"इति॥188॥

5. ''देवश्च वर्षति देवश्च गडगडायते(गर्जयति),
एकश्चाहं भैरवे बिले विहरामि॥
तदस्माकमेकैकस्य भैरवस्य बिले विहरतः,
नास्ति भयं वा स्तम्भनं वा लोमहर्षं वा॥189॥
''धर्मता मामैषा यस्य मे, एकैकस्य भैरवे बिले।
विरहतो नास्ति भयं वा, स्तम्भनं वा लोमहर्षं वा"इति॥190॥

(हिन्दी)- मैंने ऐसे बहुत से धर्मधर उपासक देखे हैं जो मुख से यह कहते फिरते हैं कि कामभोग अनित्य है; परन्तु वे स्वयं मणि, कुण्डल आदि अलंकारों में तथा पुत्र स्त्री आदि में अनुरक्त रहते हैं॥187॥

वे धर्म के विषय में कुछ नहीं जानते, फिर भी ' कामभोग अनित्य है' - ऐसा कहते रहते हैं। वस्तुतः उनका उन काम भोगों के प्रति राग नष्ट नहीं हुआ है, अतः वे अपने स्त्री पुत्र आदि एवं धनादि में पूर्णतः अनुरक्त हैं॥188॥ इस प्रकार, ऋषिदत्त स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

प्रलयंकर वर्षा हो रही है, मेघ भी गर्ज रहे हैं; परन्तु मैं इस स्थिति में भी भयानक गुफा में बैठा हुआ एकान्त साधना कर रहा हूँ। इस स्थिति में भी एकान्त साधना करते हुए मुझको न कोई भय है, न कोई स्तब्धता और न किसी प्रकार का रोमहर्ष ही है॥189॥

यह तो मेरा स्वभाव ही है कि मैं इस भयानक स्थिति में भी ऐसी शान्त साधना कर लेता हूँ। ऐसी साधना करते हुए भी मुझको न कोई भय होता है, न कोई स्तब्धता और न किसी प्रकार का रोमहर्ष ही॥ इस प्रकार, सम्बुल कात्यायन स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥190॥

6. नितकत्थेरगाथा-

''कस्स सेलूपमं चित्तं, ठितं नानुपकम्पति।
विरत्तं रजनीयेसु, कुप्पनीये न कुप्पति।
यस्सेवं भावितं चित्तं, कुतो तं दुक्खमेस्सति॥191॥
''मम सेलूपमं चित्तं, ठितं नानुपकम्पति।
विरत्तं रजनीयेसु, कुप्पनीये न कुप्पति।
ममेवं भावितं चित्तं, कुतो मं दुक्खमेस्सती''ति॥192॥ ... नितको थेरो...।

7. सोणपोटिरियत्थेरगाथा-

''न ताव सुपितुं होति, रत्ति नक्खत्तमालिनी।
पटिजग्गितुमेवेसा, रत्ति होति विजानता॥193॥
''हत्थिक्खन्धावपतितं , कुञ्जरो चे अनुक्कमे।
सङ्गामे मे मतं सेय्यो, यञ्चे जीवे पराजितो''ति॥194॥ ... सोणो पोटिरियो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)-6. ''कस्य शैलोपमं चित्तम्, स्थितं नानुप्रकम्पते।
विरक्तं रंजनीयेषु, क्रोधनीय न क्रुध्यति।
यस्यैवं भावितं चित्तम्, कुतस्तं दु:खमीहिष्यते॥191॥
''मम शैलोपमं चित्तम्, स्थितं नानुप्रकम्पते।
विरक्तं रञ्जनीयेषु, क्रोधनीये न क्रुध्यति।
ममैवं भावितं चित्तम्, कुतो मां दु:खमेष्यति॥192॥

7. ''न तावत् स्वपितुं भवति, रात्रिर्नक्षत्रमालिनी।
प्रतिजागरितुमेवेषा, रात्रिर्भवति विजानत:॥193॥
''हस्थिस्कन्धावपतितम्, कुञ्जरस्य चानुक्रमे।
सङ्ग्रामे मे मृत: श्रेय:, यत्र जीवितादपि पराजितात्"इति॥194॥

(हिन्दी)- किसका पर्वतसदृश स्थिर चित्त विचलित नहीं होता? जिसका चित्त रागदायी धर्मों में विरक्त रहता है, स्थिर धर्मों में विचलित नहीं होता, ऐसा जिसका साधनाभ्यस्त चित्त है, वह साधना में दु:ख कैसे प्राप्त कर सकता है॥191॥

मेरा पर्वतोपम चित्त साधना में किसी कारण से कम्पित नहीं होता; क्योंकि मेरा चित्त रागदायी धर्मों से विरक्त रहता है, क्रोधनीय पर क्रोध नहीं होता। क्योंकि मेरा चित्त ऐसा साधनाभ्यास्त है; अतः मुझे दु:ख कैसे होगा!॥192॥ इस प्रकार, नितक स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

यह नक्षत्रों से जगमगाती चाँदनी रात सो कर व्यर्थ गँवाने के लिए नहीं है; इसको तो बुद्धिमान साधक द्वारा साधना करते हुए व्यतीत करना चाहिये॥193॥

यदि युद्धरत कोई योद्धा युद्ध में पराजित हो जीवित रहे- इसकी अपेक्षा हाथी की पीठ से वह गिर जाय और उसके पैरों से कुचला जाय तो यही अच्छा है॥194॥.... सोणपोटिरिय स्थविर.....।

8. निसभत्थेरगाथा-

''पञ्च कामगुणे हित्वा, पियरूपे मनोरमे।
सद्धाय घरा निक्खम्म, दुक्खस्सन्तकरो भवे॥195॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो''ति॥196॥... निसभो थेरो...।

9. उसभत्थेरगाथा-

''अम्बपल्लवसङ्कासं, अंसे कत्वान चीवरं।
निसिन्नो हत्थिगीवायं, गामं पिण्डाय पाविसिं॥197॥
''हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह, संवेगं अलभिं तदा।
सोहं दित्तो तदा सन्तो, पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥198॥ ... उसभो थेरो...।

10. कप्पटकुरत्थेरगाथा-

''अयमिति कप्पटो कप्पटकुरो, अच्छाय अतिभरिताय।
अमतघटिकायं धम्मकटमत्तो, कतपदं झानानि ओचेतुं॥199॥

(संस्कृतच्छाया)-8. ''पञ्च कामगुणान् त्यक्त्वा, प्रियरूपान् मनोरमान्।
श्रद्ध्या गृहान्निष्क्रमणम्, दुःखस्यान्तकरं भवेत्॥195॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकाङ्क्षामि, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः"इति॥196॥

9. ''आम्रपल्लवसङ्काशम्, अंसे कृत्वा चीवरम्।
निषण्णो हस्तिग्रीवायाम्, ग्रामं पिण्डाय प्राविशम्॥197॥
''हस्तिस्कन्धादवरुह्य, संवेगमलभे तदा।
सोऽहं दीप्तस्तदा शान्तः, प्राप्तो मे आस्रवक्षयः"इति॥198॥

10. ''अयमिति कर्पटः कर्पटक्रूरः, स्वच्छाया अतिभरिताया:।
अमृतघटिकायः धर्मकृतमात्रः, कृतपदं ध्यानेनावचेतुम्॥199॥

(हिन्दी)- पञ्चविध प्रिय एवं अभीष्ट कामगुणों का त्यागकर, श्रद्धा के कारण घर छोड़कर प्रव्रज्या लेकर दुःखों का अन्त कर लिया जाय॥195॥

मैं न अपनी मृत्यु का अभिनन्दन करता हूँ, न अपने जीवन का ही। मैं तो स्मृति सम्प्रजन्य के साथ (साधनारत रहकर) समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ॥196॥इस प्रकार, नृषभ स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

मैं कन्धे पर आम्र के पीले पत्ते के समान चीवर रखकर, हाथी के कन्धे पर चढ़कर ग्राम में भिक्षा करने निकला॥197॥

हाथी के कन्धे से उतर कर मुझे चित्त में धर्मसंवेग प्राप्त हुआ और मेरी चित्तवृत्ति शान्त हो गयी। और मैंने आश्रवक्षय प्राप्त कर लिया॥198॥ इस प्रकार, वृषभ स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं।

इस कर्पट स्थविर ने स्वच्छ एवं पूर्ण (धर्म-) अमृतघट से अल्पमात्र धर्म लेकर उसके आधार पर ध्यानभावना के संग्रह का निश्चय किया है॥199॥

''मा खो त्वं कप्पट पचालेसि, मा त्वं उपकण्णम्हि ताळेस्सं।
न हि त्वं कप्पट मत्तमञ्ञासि, सङ्घमज्झम्हि पचलायमानोति॥200॥

... कप्पटकुरो थेरो...।
वग्गो चतुत्थो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं– मिगसिरो सिवको च, उपवानो च पण्डितो।
इसिदिन्नो च कच्चानो, नितको च महावसी।
पोटिरियपुत्तो निसभो, उसभो कप्पटकुरोति॥

5. पञ्चमवग्गो

1. कुमारकस्सपत्थेरगाथा-

''अहो बुद्धा अहो धम्मा, अहो नो सत्थु सम्पदा।
यत्थ एतादिसं धम्मं, सावको सच्छिकाहि''ति॥201॥
''असङ्खेय्येसु कप्पेसु, सक्कायाधिगता अहू।
तेसमयं पच्छिमको, चरिमोयं समुस्सयो।
जातिमरणसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥202॥ ... कुमारकस्सपो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''मा खलु त्वं कर्पट प्रचले:, मा त्वमुपकर्णे ताडये:।
न हि त्वं कर्पट मन्यसे, सङ्घमध्ये प्रचलायमान:"इति॥200॥

तस्योद्दानम्- *मिगसिरो सिवको* च, *उपवानो* च पण्डित:।
इसिदिन्नश्च कच्चान:, *नितकश्च* महावसी।
पोटिरियपुत्तो निसभो, उसभो कप्पटकुरो" इति॥ ●

1. ''अहो बुद्ध अहो धर्म, अहो नो शास्तृ सम्पदा।
यत्रैतादृशं धर्मम्, श्रावक: साक्षात्करिष्यति॥201॥
''असङ्ख्येषु कल्पेषु, सत्कायाधिगता अभूवन्।
तेषामयं पश्चिमक:, चरिमोऽयं समुच्छ्रय:।
जातिमरणसंसार:, नास्त्यिदानीं पुनर्भव:" इति॥202॥

(हिन्दी)- कर्पट! तू चंचल न हो। ऐसा न हो कि मुझे तेरे कान पर चपेटा (थप्पड़) मारना पड़े। अतः तू सङ्घ के मध्य बैठकर प्रमत्त (असावधान) न होना॥200॥कर्पटक्रूर स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस वर्ग की सूची- मृगशिरा स्थविर, शिवक स्थविर, उपवाण स्थविर, ऋषिदत्त स्थविर, सम्बुल कात्यायनस्थविर, नितकस्थविर, सोणपोटिरियस्थविर, वृषभस्थविर, वृषभस्थविर, कर्पूटक्रूर स्थविर॥●

अरे! ये बुद्ध, इनके द्वारा उपदिष्ट धर्म, इनकी उपदेश-सम्पत्ति-सभी कुछ तो अपूर्व एवं आश्चर्यमय है! जहाँ ऐसा धर्म उनके शिष्यों द्वारा साधना के बल पर साक्षात् कर लिया जाता है॥201॥

वे शिष्य असंख्य कल्पों तक सत्कायदृष्टि से लिप्त रहे। परन्तु उनका, साधना के बल पर, अन्तिम जन्म है। उनका आगे न कोई जन्म होगा, न मरण, न संसार में आना जाना; क्योंकि अब उनके पुनर्जन्म की सम्भावना ही नहीं है॥202॥ इस प्रकार, कुमार स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

2. धम्मपालत्थेरगाथा-

''यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
जागरो स हि सुत्तेसु , अमोघं तस्स जीवितं॥203॥
''तस्मा सद्धञ्च सीलञ्च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं''ति॥204॥ ... धम्मपालो थेरो...।

3. ब्रह्मालित्थेरगाथा-

''कस्सिन्द्रियानि समथङ्गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि कस्स पिहयन्ति तादिनो''ति॥205॥
''मय्हिन्द्रियानि समथङ्गतानि, अस्सा यथा सारथिना सुदन्ता।
पहीनमानस्स अनासवस्स, देवापि मय्हं पिहयन्ति तादिनो''ति॥206॥
... ब्रह्मालि थेरो...।

4. मोघराजत्थेरगाथा-

''छविपापक चित्तभद्दक, मोघराज सततं समाहितो।
हेमन्तिकसीतकालरत्तियो, भिक्खु त्वंसि कथं करिस्ससि''॥207॥

(संस्कृतच्छाया)-2. ''यो हि वै दहरो भिक्षुः, युञ्जति बुद्धशासने।
जागर्ति स हि सुप्तेषु, अमोघं तस्य जीवितम्॥203॥
''तस्मात् श्रद्धाञ्च शीलञ्च, प्रसादं धर्मदर्शनम्।
अनुयुञ्जेत् मेधावी, सरन् बुद्धानां शासनम्"इति॥204॥

3. ''कस्येन्द्रियाणि समथङ्गतानि, अश्वाः यथा सारथिना सुदन्ताः।
प्रहीणमानस्यानास्रवस्य, देवा अपि कस्मै स्पृहयन्ति तादिनः"इति॥205॥
''ममेन्द्रियाणि समथङ्गतानि, अश्वाः यथा सारथिना सुदन्ताः।
प्रहीणमानस्यानास्रवस्य, देवा अपि मह्यं स्पृहयन्ति तादिनः"इति॥206॥

4. ''छविपापक! चित्तभद्रक!, मोघराज! सततं समाहितः।
हैमन्तिकशीतकालरात्रौ, भिक्षुः कस्त्वमसि कथं करिष्यसि?॥207॥

(हिन्दी)- जो भिक्षु, अपनी युवावस्था में ही, बुद्धोपदिष्ट धर्मसाधना में लग जाता है, वह सुप्त पुरुषों में जाग्रत् पुरुष कहलाता है और उसका ही जीवन सफल कहलाता है॥203॥

अतः बुद्धिमान् पुरुष को सम्यक्सम्बुद्ध के आदेशों का पालन करते हुए निरन्तर रत्नत्रय के प्रति श्रद्धा, शील, स्नेह एवं धर्मसाधना में लगे रहना चाहिये॥204॥इस प्रकार, धर्मपाल स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

कुशल सारथि द्वारा शिक्षित अश्व के समान किस साधक की चित्तवृत्तियाँ शान्त हो चुकी हैं? हीन होते हुए चित्तविकारों वाले किस ज्ञानी भिक्षु से देवता भी स्पृहा करते हैं?॥205॥

मेरी चित्तवृत्तियाँ शान्त हो चुकी हैं। हीन होते हुए चित्तविकारों वाले मुझ आश्रवहीन ज्ञानी से देवता भी स्पृहा करते हैं॥206॥ इस प्रकार, ब्रह्मालि स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

हे भद्रचित्त मोघराज! निरन्तर साधना में रत रहने से तुम्हारे शरीर की त्वचा झुलस गयी है। इस हेमन्त ऋतु की शीतकाल की रात्रियों में, भिक्षु! तुम अपने शरीर की रक्षा कैसे करते हो?॥207॥

''सम्पन्नसस्सा मगधा, केवला इति मे सुतं।
पलालच्छन्नको सेय्यं, यथञ्ञे सुखजीविनो''ति॥ 208॥ ... मोघराजा थेरो...।

5. विसाखपञ्चालपुत्तत्थेरगाथा-

''न उक्खिपे नो च परिक्खिपे परे, ओक्खिपे पारगतं न एरये।
न चत्तवण्णं परिसासु ब्याहरे, अनुद्धतो सम्मितभाणि सुब्बतो॥209॥
''सुसुखुमनिपुणत्थदस्सिना, मतिकुसलेन निवातवुत्तिना।
संसेवितवुद्धसीलिना, निब्बानं न हि तेन दुल्लभं''ति॥210॥

... विसाखो पञ्चालपुत्तो थेरो ...।

6. चूळकत्थेरगाथा-

''नदन्ति मोरा सुसिखा सुपेखुणा, सुनीलगीवा सुमुखा सुगज्जिनो।
सुसद्दला चापि महामही अयं, सुब्यापितम्बु सुवलाहकं नभं॥211॥
''सुकल्लरूपो सुमनस्स झायतं, सुनिक्कमो साधु सुबुद्धसासने।
सुसुक्कसुक्कं निपुणं सुदुद्दसं, फुसाहि तं उत्तममच्चुतं पदं'' ति॥ 212॥

... चूळको थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''सम्पन्नशस्याः मगधाः, केवला इति मे श्रुतम्।
पलालाच्छन्नकः शयीय, यथा अन्ये सुखजीविनः"इति॥208॥

5. ''नोत्क्षिपेत् न च परिक्षिपेत् परम्, नावक्षिपे पारगतं न अर्यात्।
न चात्मवर्णनं परिषदि व्याहरेत्, अनुद्धतः सम्मितभाणिः सुव्रतः॥209॥
''सुसूक्ष्मनिपुणार्थदर्शिनः, मतिकुशलेन निर्विवादोक्तिभिः।
संसेवितबुद्धशालिनः, निर्वाणं न हि तत्र दुर्लभमिति॥210॥

6. ''नदन्ति मयूराः सुशिखाः पक्षिणः, सुनीलग्रीवाः सुमुखाः सुगर्जिनः।
सुशाद्वला चापि महामहीयम्, सुव्यासाम्बु सुवलाहकं नभः॥211॥
''सुकल्यरूपः सुमनस्य ध्यायतम्, सुनिष्क्रमः साधुः सुबुद्धशासने।
सुशुक्लशुक्लं निपुणं सुदुर्दशम्, स्पर्शैः तमुत्तममच्चुतं पदमिति॥212॥

(हिन्दी)- केवल मगध देश में ही धान बहुलता से नहीं होती, अपितु सर्वत्र होती है- ऐसा मैंने सुना है। अतः चारिका करता हुआ जहाँ भी मैं जाता हूँ वहाँ धान का पुआल विछाकर तथा ओढकर शीत वायु से शरीर की रक्षा कर सुख से सोता हूँ॥208॥ इस प्रकार, मोघराज स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

परिषद में बैठकर न किसी की अधिक प्रशंसा करना चाहिये, न अधिक निन्दा ही करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष को किसी के लिये प्रयुक्त प्रशंसा या निन्दा का अतिरेक नहीं करना चाहिये। और परिषद् में बैठकर आत्मप्रशंसा भी नहीं करनी चाहिये। अपितु वह वहाँ उद्दन्डता रहित एवं सम्मतभाणी होकर ही बैठे॥209॥

सूक्ष्म एवं कुशल अर्थद्रष्टा, निरन्तर बुद्धि का उपयोग करता हुआ, मौन भाव से सभा में उपस्थित वृद्धों का सम्मान करता हुआ ही किसी परिषद् में बैठे। ऐसे कुशल भिक्षु के लिये निर्वाणप्राप्ति दुर्लभ नहीं होती॥210॥इस प्रकार, विशाख पाञ्चालपुत्र स्थविर ने ये दो गाथाएँ कहीं॥

सुन्दर शिखा, सुन्दर नेत्र, नील ग्रीवा, सुन्दर मुख एवं ध्वनि वाले मयूर हरित घासयुक्त भूमि पर मनोहर नृत्य कर रहे हैं, तथा आकाश भी जलपूर्ण मेघों से आच्छादित है॥211॥

ध्यानाभ्यासी साधकों का चित्त भी धर्मसाधना में भलीभाँति लगा हुआ है। शुक्ल धर्मों का साक्षात्कार कर साधकजन उत्तम पद तक पहुँचने की स्थिति में आ गये हैं॥212॥...चूडक स्थविर....।

7. अनूपमत्थेरगाथा-

''नन्दमानागतं चित्तं, सूलमारोपमानकं।
तेन तेनेव वजसि, येन सूलं कलिङ्गरं॥213॥
''ताहं चित्तकलिं ब्रूमि, तं ब्रूमि चित्तदुब्भकं।
सत्था ते दुल्लभो लद्धो, मानत्थे मं नियोजयी''ति॥ 214॥ ... अनूपमो थेरो...।

8. वज्जितत्थेरगाथा-

''संसरं दीघमद्धानं, गतीसु परिवत्तिसं।
अपस्सं अरियसच्चानि, अन्धभूतो पुथुज्जनो॥215॥
''तस्स मे अप्पमत्तस्स, संसारा विनळीकता।
सब्बा गती समुच्छिन्ना, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥216॥ ... वज्जितो थेरो...।

9. सन्धितत्थेरगाथा-

''अस्सत्थे हरितोभासे, संविरूळ्हम्हि पादपे।
एकं बुद्धगतं सञ्ञं, अलभित्थं पतिस्सतो॥217॥

(संस्कृतच्छाया)-7. ''नन्दमानागतं चित्तम्, शूलमारोपमाणकम्।
तेन तेनैव व्रजसि, येन शूलं कालिङ्गरम्॥213॥
''ततोऽहं चित्तकलिं ब्रवीमि, तं ब्रवीमि चित्तदुर्भक(ग)म्।
शास्ता तव दुर्लभो लब्धः, मानर्थे मं न्ययुजदिति॥214॥

8. ''संसरं दीर्घमध्वानम्, गतीसु पर्यवर्तिष्ये।
अपश्यमार्यसत्यानि, अन्धभूतः पृथक्जनः॥215॥
''तस्य मेऽप्रमत्तस्य, संसाराः विनष्टीकृताः।
सर्वाः गतयः समुच्छिन्नाः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः"इति॥216॥

9. ''अश्वत्थे हरितोभासे, संविरुढे पादपे।
एकं बुद्धगतं सञ्ज्ञाम्, अलभे प्रत्यक्षतः॥217॥

(हिन्दी)- लौकिक प्रसन्नतादायक इन पंचविध कामभोगों में तेरा चित्त लगा हुआ है, इस कारण तू अपने को उधर लगा रहा है, जिधर से रोका जा रहा है। ऐसा करके तू फाँसी के तख्ते की ओर ही बढ़ रहा है॥213॥
तेरे इस कर्म को मैं पापग्रस्त ही मानता हूँ, रे चित्त! यह मेरे प्रति विश्वासघात है। अरे! तुझको अब एक दुर्लभ धर्मानुशासन मिल चुका है, तो भी तू मुझको अनर्थ में क्यों डाल रहा है॥214॥....अनुपम स्थविर....।
दीर्घकाल से इस संसार में विचरण करते हुए मैंने अनेक गतियाँ प्राप्त की। परन्तु, अन्त में, यद्यपि मैं शास्त्र के विषय में अन्धा एवं साधारण ज्ञान ही रखता हूँ, मैंने आर्यसत्यों के विषय में जाना॥215॥
मैंने अप्रमत्त हो कर साधना करते हुए अपने चित्त से संसार के गुण धर्मों को विनष्ट कर दिया है। अतः मेरा सब संसार की किसी भी योनि में जाना रुक गया है। अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥216॥... वर्जित स्थविर...।
हरे भरे एवं सघन अश्वत्थ वृक्ष के नीचे बैठे हुए मैंने विचारपूर्वक एकमात्र बुद्धसंज्ञा प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त की॥217॥

''एकतिंसे इतो कप्पे, यं सञ्ञमलभिं तदा।
तस्सा सञ्ञाय वाहसा, पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥218॥ ... सन्धितो थेरो...।
वग्गो पञ्चमो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – कुमारकस्सपो थेरो, धम्मपालो च ब्रह्मालि।
मोघराजा विसाखो च, चूळको च अनूपमो।
वज्जितो सन्धितो थेरो, किलेसरजवाहनोति॥

तत्रुद्दानं – गाथादुकनिपातम्हि, नवुति चेव अट्ठ च।
थेरा एकूनपञ्ञासं, भासिता नयकोविदाति॥ दुकनिपातो निट्ठितो।

3. तिकनिपातो

1. अङ्गणिकभारद्वाजत्थेरगाथा-

''अयोनि सुद्धिमन्वेसं, अग्गिं परिचरिं वने।
सुद्धिमग्गं अजानन्तो, अकासिं अमरं तपं॥219॥
''तं सुखेन सुखं लद्धं, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥220॥

(संस्कृतच्छाया)- ''एकत्रिंशति इतः कल्पे, यं सञ्ज्ञामलप्सि तदा।
तस्याः सञ्ज्ञायाः वाह्यत्:, प्राप्तः मे आस्रवक्षयः"इति॥218॥

तस्योद्दानम्- *कुमारकस्सपो* स्थविरः, *धम्मपालो च ब्रह्मालि।*
मोघराजा विसाखो च, *चूळको च अनूपमो।*
वज्जितो सन्धितो स्थविरः, क्लेशरजवाहनोति॥

तस्योद्दानम्- गाथादुकनिपाते, नवुति चैव अष्ट च।
स्थविराः एकोनपञ्चाशत्, भाषिताः नयकोविदाः" इति। ●

1. ''अयोनि शुद्धिमन्वेषम्, अग्निं परिचर्यं वने।
शुद्धिमार्गम् अजानन्तः, अकार्षममरं तपम्॥219॥
''तं सुखेन सुखं लब्धम्, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥220॥

(हिन्दी)- आज से इकत्तीस कल्प पूर्व मैंने जब यह बुद्ध संज्ञा प्राप्त की थी, तब इस संज्ञा के ध्यान के कारण (बल पर) मैंने अपने चित्तविकारों का पूर्णतः क्षय प्राप्त कर लिया॥218॥... सन्धित स्थविर....।

इस वर्ग की सूची- कुमारकाश्यप स्थविर, धर्मपाल, ब्राह्मालि, मोघराज स्थविर, विशाख स्थविर, चूडक स्थविर, अनुपम स्थविर, वर्जित स्थविर एवं सन्धित स्थविर। इन सभी स्थविरों ने अपने चित्त से क्लेशरूप रज (धूल) का परिमार्जन किया। द्विक निपात सम्पन्न॥

इस निपात की सूची- इस स्थविरगाथापालि ग्रन्थ के द्विक निपात में अट्ठानवे गाथा कही गयी हे॥ तथा इसमें उनचास गाथाभाणक स्थविरों का वर्णन है- ऐसा शास्त्रज्ञों ने कहा है॥●

मैंने पहले मनःशुद्धि के अपवित्र उपाय खोजते हुए वन में रहकर विविध प्रकार से अग्निपूजा की। शुद्धि का मार्ग न जानते हुए दूसरे प्रकार के तप भी किये॥219॥

परन्तु जब मैंने इस सद्धर्म की सुधर्मता जानकर इसकी सरलता से सुखपूर्वक साधना की तो मैंने इसके आश्रय से तीन विद्याएँ प्राप्त कर लीं और *बुद्धप्रोक्त* धर्म का अधिक से अधिक पालन किया॥220॥

''ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं, इदानि खोम्हि ब्राह्मणो।
तेविज्जो न्हातको चम्हि, सोतियो चम्हि वेदगू''ति॥221॥..अङ्गणिकभारद्वाजो थेरो..।

2. पच्चयत्थेरगाथा-

''पञ्चाहाहं पब्बजितो, सेखो अप्पत्तमानसो।
विहारं मे पविट्ठस्स, चेतसो पणिधी अहु॥222॥
''नासिस्सं न पिविस्सामि, विहारतो न निक्खमे।
नपि पस्सं निपातेस्सं, तण्हासल्ले अनूहते॥223॥
''तस्स मेवं विहरतो, पस्स वीरियपरक्कमं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥ 224 ॥ ... पच्चयो थेरो...।

3. बाकुलत्थेरगाथा-

''यो पुब्बे करणीयानि, पच्छा सो कातुमिच्छति।
सुखा सो धंसते ठाना, पच्छा च मनुतप्पति॥225॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ब्रह्मबन्धुः पुरे अभूवम्, इदानीं खल्वस्मि ब्राह्मणः।
त्रैविद्यः स्नातकश्चास्मि, श्रोत्रियः चास्मि वेदज्ञः" इति॥221॥

2. ''पञ्चाहो अहं प्रव्रजितः, शैक्ष्यः अप्राप्तमानसः।
विहारं मे प्रविष्टस्य, चेतसः प्रणिधी अभूत्॥222॥
''नानश्यं न पिविष्यामि, विहारतो न न्यक्रमिष्यम्।
नाप्यपश्यं न्यपतिष्ये, तृष्णाशल्ये अनूहते॥223॥
''तस्य मैवं विहरतः, पश्य वीर्यपराक्रमम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥224॥

3. ''यः पूर्वे करणीयानि, पश्चात् स कर्तुमिच्छति।
सुखात् स ध्वंसते स्थानात्, पश्चात् च अनुतर्पयति॥225॥

(हिन्दी)- मैं पहले प्राक्गधर्म का अनुगमन करता था; किन्तु अब मैं वस्तुतः तीनों विद्याएँ प्राप्त कर विद्यास्नातक हो कर वास्तविक वेदज्ञ, अतएव श्रोत्रिय ब्राह्मण हो गया॥221॥...आयुष्मान आङ्गणिक स्थविर...। मुझको सद्धर्म में प्रव्रजित हुए पाँच दिन हुए थे, अतः मेरा चित्त चंचल ही था। इसके लिये मुझको बहुत कुछ सीखना था। तब मैंने अपने मन में यह दृढ संकल्प किया-॥222॥

मैं जब तक अपने तृष्णाशल्य को मूलतः उच्छिन्न न कर लूँगा तब तक न भोजन करूँगा, न जल पीऊँगा, न इस साधनागृह से ही बाहर निकलूँगा; न ही कुछ देखूँगा॥223॥

इस संकल्प के साथ दृढ साधना करते हुए मेरा वीर्य-पराक्रम देखो कि आज मुझको तीनों विद्याएँ अधिगत हो गयीं, तथा बुद्धादेश के अनुसार मैं साधना में भी प्रगति कर रहा हूँ॥224॥ इस प्रकार आयुष्मान प्रत्ययस्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

जो पूर्व करणीय कार्यों को बाद में करता है, तथा बाद में करने योग्य कर्मों को पहले करता है उसकी सुखमय स्थिति ध्वस्त हो जाती है और साथ ही इसके लिये उसको पश्चाताप भी करना पड़ता है॥225॥

''यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता॥226॥
''सुसुखं वत निब्बानं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
असोकं विरजं खेमं, यत्थ दुक्खं निरुज्झती''ति॥227॥ ... बाकुलो थेरो...।

4. धनियत्थेरगाथा-

''सुखं चे जीवितुं इच्छे, सामञ्ञस्मिं अपेक्खवा।
सङ्घिकं नातिमञ्ञेय्य, चीवरं पानभोजनं॥228॥
''सुखं चे जीवितुं इच्छे, सामञ्ञस्मिं अपेक्खवा।
अहि मूसिकसोब्भंव, सेवेथ सयनासनं॥229॥
''सुखं चे जीवितुं इच्छे, सामञ्ञस्मिं अपेक्खवा।
इतरीतरेन तुस्सेय्य, एकधम्मञ्च भावये''ति॥ 230॥... धनियो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''यं हि कुर्यात् तं हि वदे, यं न कुर्यात् न तं वदे।
अकुर्वन्तं भाषमानम्, परिजानन्ति पण्डिता:॥226॥
''सुसुखं वत निर्वाणम्, सम्यक् सम्बुद्धदेशितम्।
अशोकं विरजं क्षेमम्, यत्र दु:खं निरुद्ध्यतीति॥227॥

4. ''सुखञ्चेत् जीवितुम् इच्छेत्, श्रामण्ये अपेक्षवान्।
साङ्घिकं नातिमन्येत्, चीवरं पानभोजनम्॥228॥
''सुखञ्चेत् जीवितुं इच्छेत्, श्रामण्ये अपेक्षवान्।
अहि मूषिकश्वभ्रमिव, सेवेथा: शयनासनम्॥229॥
''सुखञ्चेत् जीवितुं इच्छेत्, श्रामण्ये अपेक्षवान्।
इतरेतरेण तुष्येत्, एकधर्मञ्च भावयेदिति॥230॥

(हिन्दी)- अतः जो करते हो वही बोलो तथा जो न करते हो वह न बोलो। न किये हुए को कहते समय बुद्धिमान् लोग तो उसकी वास्तविकता समझ ही लेते हैं॥226॥

अरे भाई! सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण मार्ग की साधना सरल है। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म ही शोकनाशक, मलनाशक, कल्याणप्रद एवं दुःखनिरोध करने में सर्वथा समर्थ है॥227॥....वाकुल स्थविर...।

तुम यदि सुखपूर्वक जीना चाहते हो तो तथा स्वयं के लिये श्रामण्य की इच्छा है, तो सङ्घ में प्राप्त चीवर, भोजन - पान आदि का तिरस्कार न करो॥228॥

तुम यदि सुखपूर्वक जीना चाहते हो तो तथा स्वयं के लिये श्रामण्य की इच्छा है तो अपने शयनासन को चूहों और सांपों से भरा हुआ समझो॥229॥

तुम यदि सुखपूर्वक जीना चाहते हो तो तथा स्वयं के लिये श्रामण्य की इच्छा है तो जो कुछ चीवर, भोजन आदि समय से मिले उसी से सन्तुष्ट रहो॥230॥इस प्रकार आयुष्मान धनिय स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

5. मातङ्गपुत्तत्थेरगाथा-

''अतिसीतं अतिउण्हं, अतिसायमिदं अहु।
इति विस्सट्ठकम्मन्ते, खणा अच्चेन्ति माणवे॥231॥
''यो च सीतं च उण्हं च, तिणा भिय्यो न मञ्ञति।
करं पुरिसकिच्चानि, सो सुखा न विहायति॥232॥
''दब्बं कुसं पोटकिलं, उसीरं मुञ्जपब्बजं।
उरसा पनुदिस्सामि, विवेकमनुब्रूहयं'' ति॥ 233॥... मातङ्गपुत्तो थेरो...।

6. खुज्जसोभितत्थेरगाथा-

'ये चित्तकथी बहुस्सुता, समणा पाटलिपुत्तवासिनो।
तेसञ्ञतरोयमायुवा, द्वारे तिट्ठति खुज्जसोभितो॥234॥
''ये चित्तकथी बहुस्सुता, समणा पाटलिपुत्तवासिनो।
तेसञ्ञतरोयमायुवा, द्वारे तिट्ठति मालुतेरितो॥235॥

(संस्कृतच्छाया)-5. ''अतिशीतमत्युष्णम्, अतिसायमिदम् अभूत्।
इति विसृष्टकर्मान्ते, क्षणा अत्ययन्ति माणवका:॥231॥
''यश्च शीतञ्चोष्णञ्च, तृणाद् भूयो न मन्यते।
कुर्वन् पुरुषकृत्यानि, स सुखात् न विहायति॥232॥
''दर्भं कुशं पोटकिलम्, उशीरं मुञ्जप्रब्रजम्।
उरसा प्रनुदिष्यामि, विवेकमनुब्रूह्यम्" इति॥233॥

6. ''ये चित्रकथी बहुश्रुता:, श्रमणा: पाटलिपुत्रवासिन:।
तेषामन्यतरोऽयमायुवान्, द्वारे तिष्ठति कुब्जशोभित:॥234॥
''ये चित्रकथी बहुश्रुता:, श्रमणा: पाटलिपुत्रवासिन:।
तेषामन्यतरोऽयमायुवान्, द्वारे तिष्ठति मारुतेरित:॥235॥

(हिन्दी)- अभी बहुत शीत पड़ रहा है, अभी बहुत गर्मी है, अभी सायंकाल है अतः देखा जायगा- आदि बातें करते हुए साधना कार्य में बहाना करने वाले मनुष्य का वह कार्यसाधक समय व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है॥231॥

जो भयंकर सर्दी एवं गर्मी को कार्यसाधना के समय तृण के समान तुच्छ समझता है, और अपने कार्य में तन्मय रहता है वह सुख से कभी विरत नहीं होता॥232॥

एकान्तसाधना करते समय जो भी पदार्थ, फिर भले ही वह धन हो या फिर छोटे-बड़े काँस तृण मूंज या उसीर सामने पड़ेगा उसको मैं बलपूर्वक मन से ग्रहण करने की इच्छा त्याग दूंगा॥233॥ इस प्रकार आयुष्मान मातंग स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

पाटलिपुत्र के वासी, बहुश्रुत, चित्ताह्लादकारी धार्मिक तथा कथा करने वाले जितने श्रमण हैं उनमें एक यह वृद्ध कुब्जशोभित भी है॥234॥

पाटलिपुत्र के वासी, बहुश्रुत, चित्ताह्लादकारी धार्मिक तथा जीवन की आंधी से कंपाया हुआ आयुवाला श्रमण द्वार पर खड़ा है॥235॥

''सुयुद्धेन सुयिट्ठेन, सङ्गामविजयेन च।
ब्रह्मचरियानुचिण्णेन, एवायं सुखमेधती''ति॥236॥... खुज्जसोभितो थेरो...।

7. वारणत्थेरगाथा-

''योध कोचि मनुस्सेसु, परपाणानि हिंसति।
अस्मा लोका परम्हा च, उभया धंसते नरो॥237॥
''यो च मेत्तेन चित्तेन, सब्बपाणानुकम्पति।
बहुञ्हि सो पसवति, पुञ्ञं तादिसको नरो॥238॥
''सुभासितस्स सिक्खेथ, समणूपासनस्स च।
एकासनस्स च रहो, चित्तवूपसमस्स चा''ति॥239॥ ... वारणो थेरो...।

8. वस्सिकत्थेरगाथा-

''एकोपि सद्धो मेधावी, अस्सद्धानीध ञातिनं।
धम्मट्ठो सीलसम्पन्नो, होति अत्थाय बन्धुनं॥240॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सुयुद्धेन सुयष्ट्या, सङ्ग्रामविजयेन च।
ब्रह्मचर्यानुचीर्णेन, एवायं सुखमेधतेति॥236॥

7. ''य इध कश्चित् मनुष्येषु, परप्राणानि हिंसति।
अस्मात् लोकात् परस्माच्च, उभौ ध्वंसते नरः॥237॥
''यश्च मित्रचित्तेन, सर्वप्राणानुकम्पते।
बहुं हि सः प्रसवति, पुण्यं तादृशकः नरः॥238॥
''सुभाषितस्य शिक्षेत, श्रमणोपासनस्य च।
एकासनस्य च रहः, चित्तोपशमस्य च"इति॥239॥

8. ''एकोऽपि श्रद्धाः मेधावी, अश्रद्धानामिह ज्ञातीनाम्।
धर्मस्थः शीलसम्पन्नः, भवति अर्थाय बन्धूनाम्॥240॥

(हिन्दी)- मैंने धर्मसाधना द्वारा चित्तदोषों से युद्ध किया है, उसमें पूर्ण सफलता पायी है, तथा अन्त में, मैं संग्रामविजयी हो कर तथा ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा अपने सुख में वृद्धि कर रहा हूँ॥ इस प्रकार आयुष्मान कुब्जशोभित स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥236॥

जो पुरुष इस संसार में दूसरों की हत्या करता है, वह अपने इस लोक या परलोक-दोनों को ही नष्ट कर लेता है॥237॥

जो मैत्री चित्त से सभी प्राणियां पर दयाभाव रखता है वैसा साधक पुरुष अपने लिये बहुत पुण्य-संग्रह कर लेता है॥238॥

साधक को चार बातें अवश्य सीखनी चाहिये- 1. दूसरों से मधुर वाणी बोलना, 2. श्रमण की सेवा, सुश्रूषा, 3. एकान्त में रहने का अभ्यास तथा 4. चित्तवृत्तियों पर निग्रह रखना॥239॥ ...वारण स्थविर...।

यदि कोई एक भी बुद्धिमान् पुरुष श्रद्धालु हो तो वह धर्म पर स्थिर रहता हुआ, सदाचरण करता हुआ अपने अश्रद्धालु बन्धुओं के बहुत अर्थवान् प्रयोजन का साधक होता है॥240॥

''निग्गय्ह अनुकम्पाय, चोदिता ञातयो मया।
ञातिबन्धवपेमेन, कारं कत्वान भिक्खुसु॥241॥
''ते अब्भतीता कालङ्कता, पत्ता ते तिदिवं सुखं।
भातरो मय्हं माता च, मोदन्ति कामकामिनो''ति॥242॥... वस्सिको थेरो...।

9.यसोजत्थेरगाथा-

''कालपब्बङ्गसङ्कासो, किसो धमनिसन्थतो।
मत्तञ्ञू अन्नपानम्हि, अदीनमनसो नरो''॥243॥
''फुट्ठो डंसेहि मकसेहि, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
नागो सङ्गामसीसेव, सतो तत्राधिवासये॥244॥
''यथा ब्रह्मा तथा एको, यथा देवो तथा दुवे।
यथा गामो तथा तयो, कोलाहलं ततुत्तरिं'' ति॥245॥... यसोजो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''निर्गृह्य अनुकम्पाय, चोदिता ज्ञातय: मया।
ज्ञातिबान्धवप्रेमण:, कार्यं कृत्वा भिक्षुषु॥241॥
''ते अभ्यतीता कालंकृता, प्राप्ता: ते त्रिदिवं सुखम्।
भ्रातर: मम माता च, मोदन्ते कामकामिन"इति॥242॥

9. ''कालपर्वाङ्गसङ्कास:, कृश: धमनिसन्थत:।
मात्रज्ञ: अन्नपानेषु, अदीनमनस: नर:॥243॥
''स्पृष्ट: दंशै: मक्षिकै:, अरण्ये बृहत् वने।
नाग: सङ्ग्रामशीर्ष इव, स्मृत: तत्राधिवासयेत्॥244॥
''यथा ब्रह्म: तथा एक:, यथा देव: तथा द्वे।
यथा ग्राम: तथा त्रय:, कोलाहलं तत्परिम्"इति॥245॥

(हिन्दी)- मैंने अपने उन सम्बन्धिजनों पर कृपा करते हुए उन को दुष्कर्मों से दूर हटाये रख कर, बान्धन सनेह के कारण, भिक्षुओं की सेवा में लगाया॥241॥

वे इस प्रकार भिक्षुओं की सेवा करते हुए जो मरण भाव को प्राप्त हुए वे आज स्वर्ग में दिव्य सुख भोग रहे हैं और लौकिक कामभोगी मेरे भाई तथा मेरी माता सभी यहाँ सुख भोग रहे हैं॥242॥

इस प्रकार आयुष्मान वार्षिक स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

मैं जोड़ जोड़ (पर्व पर्व) पर काले एवं दुर्बल तथा उभरी हुई धमनियों वाले शरीर वाला, परन्तु अन्न पान की मात्रा जानने वाला, किसी के भी सम्मुख दीन वचन न बोलने वाला॥243॥

स्थान-स्थान पर मच्छर मक्खियों से डसा जाने वाला, बड़े वृक्षों से घिरे हुए इस महान् अरण्य में, जैसे हाथी संग्राम में सावधान रहता है, वैसे ही रहता हूँ॥244॥

यदि कोई एकाकी रहता है तो वह ब्रह्मा के समान है, यदि दो रहते हैं तो देवता के समान हैं। यदि कोई तीन रहते हैं तो वे ग्रामवासी के समान हैं। यदि इससे अधिक के आने जाने या रहने के कारण कोलाहल होता है, तो साधना में विघ्न होने के कारण उसको क्या कहा जाय॥245॥...आयुष्मान यशोज स्थविर....।

10. साटिमत्तियत्थेरगाथा-

''अहु तुय्हं पुरे सद्धा, सा ते अज्ज न विज्जति।
यं तुय्हं तुय्हमेवेतं, नत्थि दुच्चरितं मम॥246॥
''अनिच्चा हि चला सद्दा, एवं दिट्ठा हि सा मया।
रज्जन्तिपि विरज्जन्ति, तत्थ किं जिय्यते मुनि॥247॥
''पच्चति मुनिनो भत्तं, थोकं थोकं कुले कुले।
पिण्डिकाय चरिस्सामि, अत्थि जङ्घबलं ममा''ति॥248॥... साटिमत्तियो थेरो...।

11. उपालित्थेरगाथा-

''सद्धाय अभिनिक्खम्म, नवपब्बजितो नवो।
मित्ते भजेय्य कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते॥249॥
''सद्धाय अभिनिक्खम्म, नवपब्बजितो नवो।
सङ्घस्मिं विहरं भिक्खु, सिक्खेथ विनयं बुधो॥250॥

(संस्कृतच्छाया)-10. ''अभूत् तुभ्यं पुरे श्रद्धा, सा ते अद्य न विद्यते।
यं तुभ्यं तुभ्यमेवेतम्, नास्ति दुश्चरितं मम॥246॥
''अनित्या: हि चला: शब्दा:, एवं दृष्टा हि सा मया।
रज्यन्त्यपि विरज्यन्ते, तत्र किं जीयते मुनि:॥247॥
''पच्यते मुनये भक्तम्, स्थोकं स्थोकं कुले कुले।
पिण्डकाय चरिष्यामि, अस्ति जङ्घाबलं मम"इति॥248॥

11. ''श्रद्धया अभिनिष्क्रम्य, नवप्रव्रजित: नव:।
मित्राणि भजेत् कल्याणानि, शुद्धाजीवान् अतन्द्रितान्॥249॥
''श्रद्धया अभिनिष्क्रम्य, नवप्रव्रजित: नव:।
सङ्घे विहरं भिक्षु, शिक्षेत् विनयं बुध:॥250॥

(हिन्दी)- तुम्हारी जो पहले मुझमें या धर्म में श्रद्धा थी, वह अब नहीं है। जो तुम्हारा है वह तुम्हारा ही है - इसमें मेरा क्या दोष है॥246॥

बोले जाने वाले शब्द अनित्य हैं, चल हैं -वाणी को मैं ऐसा ही मानता हूँ। ये किसी को प्रसन्न भी कर सकते हैं, अप्रसन्न भी कर सकते हैं, इससे कोई मुनि कैसे व्यग्र हो सकता है॥247॥

ऐसे साधक के लिये प्रत्येक घर में भिक्षा हेतु थोड़ा थोड़ा पकता ही है। मैं चारिक द्वारा भिक्षा कर लूंगा, मेरे पैरों में अभी चलने का समर्थ्य है॥248॥...शाटिमात्रक स्थविर...।

घर से निकल कर धर्म में श्रद्धालु नव प्रव्रजित पुरुष को शुद्ध आजीविका वाले तथा जीवनचर्या में सावधान पुरुषों को ही कल्याणमित्र बनाना चाहिये॥249॥

तथा उस बुद्धिमान् को सङ्घ में विचरण करते हुए, स्थविर भिक्षुओं से विनय की शिक्षा ग्रहण करते रहना चाहिये॥250॥

''सद्धाय अभिनिक्खम्म, नवपब्बजितो नवो।
कप्पाकप्पेसु कुसलो, चरेय्य अपुरक्खतो''ति॥ 251॥... उपालित्थेरो...।

12. उत्तरपालत्थेरगाथा-

''पण्डितं वत मं सन्तं, अलमत्थविचिन्तकं।
पञ्च कामगुणा लोके, सम्मोहा पातयिंसु मं॥252॥
''पक्खन्दो मारविसये, दळ्हसल्लसमप्पितो।
असक्खिं मच्चुराजस्स, अहं पासा पमुच्चितुं॥253॥
''सब्बे कामा पहीना मे, भवा सब्बे पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥254॥... उत्तरपालो थेरो...।

13. अभिभूतत्थेरगाथा-

''सुणाथ ञातयो सब्बे, यावन्तेत्थ समागता।
धम्मं वो देसयिस्सामि, दुक्खा जाति पुनप्पुनं॥255॥

(संस्कृतच्छाया)- ''श्रद्धया अभिनिष्क्रम्य, नवप्रव्रजितः नवः।
कल्पिताकल्पितेषु कुशलः, चरेत् अपुरस्कृतः"इति॥251॥

12. ''पण्डितं वत मां शान्तम्, अलमर्थविचिन्तकम्।
पञ्च कामगुणाः लोके, सम्मोहात् अपातयन्त माम्॥252॥
''प्रस्कन्दः मारविषये, दृढशल्यसमर्पितः।
अशक्यं मृत्युराजस्य, अहं पाशाः प्रमुच्चितुम्॥253॥
''सर्वे: कामाः प्रहीणाः मे, भवाः सर्वे: प्रदारिताः।
विक्षीणः जातिसंसारः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः"इति॥254॥

13. ''शृण्वन्तु ज्ञातयः सर्वे:, यावन्तात्र समागताः।
धर्मं वः देशष्यामि, दुःखाः जाति पुनर्पुनः॥255॥

(हिन्दी)- घर से निकल कर धर्म में श्रद्धालु नवपप्रव्रजित साधक को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ध्यान रखते हुए अपने मान अपमान का ध्यान रखे विना ही जीवन बिताना चाहिये॥251॥....आयुष्मान उपालि स्थविर....।

पहले भी यद्यपि मैं पण्डित एवं सभी कार्यों के सूक्ष्म विवेचन में समर्थ था, किन्तु ये लौकिक कामगुण मुझसे नहीं छूट रहे थे और इन्होंने मुझको सांसारिक मोहजाल में फंसा रखा था॥252॥

मैं मार के क्षेत्र में ही उछल कूद मचाता रहता था, इस प्रकार उसके द्वारा कृत गम्भीर आघातों से पीडित था और उस मृत्युराज के पाशबन्धन से मुक्त नहीं हो पा रहा था॥253॥

आज मेरे लौकिक कामगुण प्रहीण हो चुके हैं। संसार में मेरे जन्म-मृत्यु का क्रम भी समाप्त हो चुका है। मेरी जन्मपरम्परा भी क्षीण हो चुकी है। अतः अब मेरा यहाँ पुनर्जन्म कभी नहीं होगा॥ इस प्रकार आयुष्मान उत्तरपाल स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥254॥

यहाँ एकत्र आप सभी सम्बन्धिजन मेरा कथन सुनें। मैं आप लोगों को धर्म का रहस्य समझाऊँगा; क्योंकि इस संसार में पुनः पुनः जन्म लेना ही सबसे कठोर दुःख है॥255॥

''आरम्भथ निक्कमथ, युञ्जथ बुद्धसासने।
धुनाथ मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥256॥
''यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति ।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सती''ति॥257॥ ... अभिभूतो थेरो...।

14.गोतमत्थेरगाथा-

''संसरं हि निरयं अगच्छिस्सं, पेतलोकमगमं पुनप्पुनं।
दुक्खमम्हिपि तिरच्छानयोनियं, नेकधा हि वुसितं चिरं मया॥258॥
''मानुसोपि च भवोभिराधितो, सग्गकायमगमं सकिं सकिं।
रूपधातुसु अरूपधातुसु, नेवसञ्ञिसु असञ्ञिसुट्ठितं॥259॥
''सम्भवा सुविदिता असारका, सङ्खता पचलिता सदेरिता।
तं विदित्वा महत्तसम्भवं, सन्तिमेव सतिमा समज्झगं''ति॥260॥...गोतमो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''आरम्भत निष्क्रमत, युञ्जत बुद्धशासने।
धुनोत मृत्योः सेनाम्, नलागारमिव कुञ्जरः॥256॥
''य अस्मिन् धर्मविनये, अप्रमत्तः विहष्यति।
प्रहाय जातिसंसारम्, दुःखस्यान्तं करिष्यतीति॥257॥

14. ''संसरं हि निरयमगमिष्यम्, प्रेतलोकमगमं पुनर्पुनः।
दुःखमहमपि तिर्यञ्चयोनौ, अनेकधा हि उषितं चिरं मया॥258॥
''मानुसोऽपि च भवोऽभिराधितः, स्वर्गकायमगमं स किं स किं।
रूपधातुषु अरूपधातुषु, नैवसंज्ञिषु असंज्ञिषु स्थितम्॥259॥
''सम्भवाः सुविदिता असारकाः, संस्कृताः प्रचलिताः सदेरिताः।
तं विदित्वा महामात्यसम्भवम्, शान्तिमेव स्मृतिमान् समध्यगम्"इति॥260॥

(हिन्दी)- अतः तुम धर्माभ्यास आरम्भ करो, और उसका आश्रवण लेकर इस दुःखजाल से निकल जाओ। इसके लिये बुद्धोपदिष्ट धर्म का दृढ़ता से अभ्यास करो। इससे तुम मारसेना को उसी प्रकार परास्त कर दो जैसे कोई बलवान् हाथी अपने शरीर एवं सूड के मर्दन से नड के पुंज को भ्रष्ट कर देता है॥256॥

जो साधक इस धर्मसाधना का सावधानी से निरन्तर अभ्यास करेगा वह इसके प्रभाव से अपनी जन्म-मरण परम्परा को विनष्ट करता हुआ अपने सभी दुःखसमूह का कभी न कभी अन्त कर ही लेगा॥ इस प्रकार आयुष्मान् अभिभूत स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥257॥

मैं इस जन्म-मरण के चक्र में पड़कर नरकयोनि में गिरा, बार बार प्रेतयोनि में गया। अतिशय कष्टप्रद पशुयोनि में गया, और वहाँ अनेक बार बहुत समय तक रहा॥258॥

मनुष्य योनि में रहकर भी मैंने अनेक सुख दुःख भोगे, तथा कभी कभी स्वर्गसुख भी भोगने गया। इसी प्रकार मुझको अनेक रूपधातु, अनेक अरूपधातु, अनेक नैवसंज्ञिनासंज्ञी तथा अनेक असंज्ञी देवताओं के साथ रहने का अवसर भी मिला॥259॥

ऐसे में ये प्रख्यात सभी जन्म तुच्छ थे, संस्कृत, अस्थिर, सदा इधर से उधर चलायमान थे। इस जन्म-मरण की परम्परा को मैंने स्मृतिमान् हो कर जान लिया, इससे मुझको स्थिर शान्ति प्राप्त हुई॥260॥ इस प्रकार आयुष्मान गौतम स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

15. हारितत्थेरगाथा-

''यो पुब्बे करणीयानि, पच्छा सो कातुमिच्छति।
सुखा सो धंसते ठाना, पच्छा च मनुतप्पति॥261॥
''यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता॥262॥
''सुसुखं वत निब्बानं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
असोकं विरजं खेमं, यत्थ दुक्खं निरुज्झती''ति॥263॥... हारितो थेरो...।

16. विमलत्थेरगाथा-

''पापमित्ते विवज्जेत्वा, भजेय्युत्तमपुग्गलं।
ओवादे चस्स तिट्ठेय्य, पत्थेन्तो अचलं सुखं॥264॥
''परित्तं दारुमारुय्ह, यथा सीदे महण्णवे।
एवं कुसीतमागम्म, साधुजीवीपि सीदति।
तस्मा तं परिवज्जेय्य, कुसीतं हीनवीरियं॥265॥

(संस्कृतच्छाया)-15. ''यः पूर्वे करणीयानि, पश्चात् सः कर्तुमिच्छति।
सुखा सः ध्वंसते स्थाना, पश्चात् स अनुतर्पयति॥261॥
''यं हि कुर्यात् तं हि वदेः, यं न कुर्यात् न तं वदेः।
अकुर्वन्तं भाषमानम्, परिजानन्ति पण्डिताः॥262॥
''सुसुखं वत निर्वाणम्, सम्यक् सम्बुद्धदेशितम्।
अशोकं विरजं क्षेमम्, यत्र दुःखं निरुद्ध्यतीति॥263॥

16. ''पापमित्रे विवर्ज्य, भजेदुत्तमपुद्गलम्।
अववादे चास्य तिष्ठेत्, प्रार्थयन्तः अचलं सुखम्॥264॥
''परित्तं दारुमारुह्य, यथा सीदे महार्णवे।
एवं कुसीदमागम्य, साधुजीवी अपि सीदति।
तस्मात् तं परिवर्जत् कुसीदं हीनवीर्यम्॥265॥

(हिन्दी)- जो पुरुष पूर्व करणीय कार्यों को बाद में करता है, तथा बाद में करने योग्य कर्मों को पहले ही करने लगता है उसकी सुखमय स्थिति ध्वस्त हो जाती है और साथ ही इसके लिये उसको पश्चाताप भी करना पड़ता है॥261॥

अतः जो करो हो वही बोलो, तथा जो न करो हो वह न बोलो। न किये हुए को कहते समय बुद्धिमान् लोग तो उसकी वास्तविकता समझ ही लेते हैं॥262॥

सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट निर्वाण मार्ग की साधना सरल है। उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म ही शोकनाशक, मलनाशक एवं कल्याणप्रद है जिसकी सच्ची साधना दुःखनिरोध करने में सर्वथा समर्थ है॥263॥ इस प्रकार आयुष्मान वाकुल स्थविर ने ये तीन गाथाएँ कहीं॥

पापमित्रों की संगति त्याग कर, उत्तम सत्पुरुषों की संगति करनी चाहये। तथा इनके अनुशासन में रहना चाहिये। इस संगति के प्रभाव से अचल सुख प्राप्त होगा- ऐसी आशा (इच्छा) करनी चाहिये॥264॥

जैसे आश्रय के रूप में किसी लघु काष्ठखण्ड को पकड़कर महासमुद्र को पार करने के प्रयास में कोई पुरुष धोखा खा जाता है; उसी प्रकार दुष्ट पुरुष के संसर्ग से किसी साधु पुरुष को भी धोखा हो सकता है। अतः ऐसे पुरुष का संसर्ग सर्वथा त्याग देना चाहिये॥265॥

''पविवित्तेहि अरियेहि, पहितत्तेहि झायिभि।
निच्चं आरद्धवीरियेहि, पण्डितेहि सहावसे''ति॥266॥... विमलो थेरो...।

तिकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – अङ्गणिको भारद्वाजो, पच्चयो बाकुलो इसि।
धनियो मातङ्गपुत्तो, सोभितो वारणो इसि॥
वस्सिको च यसोजो च, साटिमत्तियुपालि च।
उत्तरपालो अभिभूतो, गोतमो हारितोपि च॥
थेरो तिकनिपातम्हि, निब्बाने विमलो कतो।
अट्ठतालीस गाथायो, थेरा सोळस कित्तिताति॥

4. चतुकनिपातो

1. नागसमालत्थेरगाथा-

''अलङ्कता सुवसना, मालिनी चन्दनुस्सदा।
मज्झे महापथे नारी, तुरिये नच्चति नट्टकी॥267॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रविविक्तै: आर्यै:, प्रेषितै: ध्यायिभि:।
नित्यम् आरब्धवीर्यै:, पण्डितै: सहावासेदिति॥266॥

तत्रोद्दानम् – *अङ्गणिको भारद्वाजो, पच्चयो बाकुलो* ऋषि:।
धनियो मातङ्गपुत्तो, सोभितो वारणो ऋषि:॥
वस्सिको च *यसोजो* च, *साटिमत्तियुपालि* च।
उत्तरपालो अभिभूतो, गोतमो हारितो अपि च॥
स्थविर: त्रिकनिपाते, निर्वाणे *विमलो* कृत:।
अष्टचत्वारिंशत् गाथाया:, स्थविरा: षोडष कीर्तितेति॥ ●

1. ''अलङ्कृता सुवसना, मालिनी चन्दनोत्सदा।
मध्ये महापथे नारी, तूर्ये नृत्यति नर्तकी॥267॥

(हिन्दी)- आत्महितकामी पुरुष को एकान्ताभ्यासी, श्रेष्ठ, जितेन्द्रिय, ध्यानी, साधना में अपनी सम्पूर्ण शक्ति निरन्तर लगाये रखने वाले बुद्धिमान पुरुषों का संसर्ग ही करना चाहिये॥266॥...आयुष्मान विमल स्थविर...।

इस निपात की सूची- आङ्गणिक भारद्वाज, प्रत्यय, बाकुल, धनिय, मातङ्गपुत्र, शोभित, वारण, वार्षिक, यशोज, शाटिमात्रक, उपालि, उत्तरपाल, अभिभूत, गौतम, हारित एवं विमल स्थविर- इस त्रिक निपात में इन उपर्युक्त 16 स्थविरों ने निर्वाण विषयक हृदयोद्गार प्रकट किये हैं॥ इस (त्रिकनिपात) में 48 गाथाएँ तथा 16 स्थविर वर्णित हैं॥●

किसी राजपथके चैराहे पर कोई सुन्दर आभूषण, सुन्दर स्वच्छ वस्त्र एवं सुगंधित मालाएँ धारण की हुई सुन्दर नर्तकी नृत्य एवं गायन कर रही थी॥267॥

''पिण्डिकाय पविट्ठोहं, गच्छन्तो नं उदिक्खिसं।
अलङ्कतं सुवसनं, मच्चुपासंव ओड्डितं॥268॥
''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ॥269॥
''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥270॥... नागसमालो थेरो...।

2. भगुत्थेरगाथा-

''अहं भिद्धेन पकतो, विहारा उपनिक्खमिं।
चङ्कमं अभिरुहन्तो, तत्थेव पपतिं छमा॥271॥
''गत्तानि परिमज्जित्वा, पुनपारुय्ह चङ्कमं।
चङ्कमे चङ्कमिं सोहं, अज्झत्तं सुसमाहितो॥272॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पिण्डिकायां प्रविष्टोऽहम्, गच्छन्तः तम् उदकृषि।
अलङ्कृतं सुवसनम्, मृत्युपाशमिव ओलण्डितम्॥268॥
''ततो मे मनसिकारः, योनिश उदपद्यत।
आदीनवः प्रादुरभूत्, निर्वेदः समप्रतिष्ठत्॥269॥
''ततः चित्तं व्यमुञ्चत् मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥270॥

2. ''अहं भिद्धेन प्रकटितः, विहारादुपनिष्क्राम्यम्।
चङ्क्रममभिरुहन्तः, तत्रैव पपात क्षमायाम्॥271॥
''गात्राणि परिमार्ज्य, पुनरारुह्य चङ्क्रमम्।
चङ्क्रमे अचङ्क्राम्यम् सोऽहम्, अध्यात्मं सुसमाहितः॥272॥

(हिन्दी)- भिक्षा के लिये जाते हुए मैंने उस स्त्री को उस रूप में देखा। उसे देखकर मैंने कल्पना की कि मानो साक्षात् मृत्युपाश, सुन्दर अलंकार एवं वस्त्रों से सुसज्जित हो कर, नाच रही है॥268॥
तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि हो गयी॥269॥
तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए उस नर्तकी के क्रियाकलाप से अपने मन को हटाया। इस सद्धर्म के उत्तरोत्तर चिन्तन के प्रभाव से एक समय आया कि मैंने धर्मप्रतिपादित तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त हो गया॥270॥...नागसमाल स्थविर.।
मैं आलस्याभिभूत हो कर विहार से निकला और चंक्रमण-स्थल पर गया। चंक्रमण पर आरोहण करते हुए मैं वहीं भूमि पर गिर पड़ा॥271॥
शरीर से धूल झाड़ कर मैंने पुनः चंक्रमण-स्थल पर आरोहण किया, तब मैं समाहितेन्द्रिय हो कर चंक्रमण करता रहा॥272॥

''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ॥273॥
''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥274॥... भगुत्थेरो...।

3. सभियत्थेरगाथा-

''परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा॥275॥
''यदा च अविजानन्ता, इरियन्त्यमरा विय।
विजानन्ति च ये धम्मं, आतुरेसु अनातुरा॥276॥
''यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठं च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं॥277॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ततो मे मनसिकारः, योनिश उदद्यत।
आदीनवः प्रादुरभूत्, निर्वेदः समप्रतिष्ठत्॥273॥
''ततः चित्तं व्यमुञ्चत् मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥274॥

3. ''परे च न विजानन्ति, वयमत्र यास्यामः।
ये च तत्र विजानन्ति, ततः शाम्यन्ति मेधगाः॥275॥
''यदा च अविजानन्ताः, ईरयन्त्यमरा इव।
विजानन्ति च ये धर्मम्, आतुरेषु अनातुराः॥276॥
''यत् किंचित् शिथिलं कर्म, संक्लिष्टञ्च यद् व्रतम्।
सशङ्कितं ब्रह्मचर्यम्, न तद् भवति महत्फलम्॥277॥

(हिन्दी)- तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि हो गयी॥273॥

तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए उस नर्तकी के क्रियाकलाप से अपने मनको हटाया। इस सद्धर्म के उत्तरोत्तर चिन्तन के प्रभाव से एक समय आया कि मैंने धर्मप्रतिपादित तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त हो गया॥274॥.....भृगु स्थविर .....॥

(विवेकी पुरुषों के अतिरिक्त) दूसरे लोग नहीं समझते कि एक दिन सभी को नष्ट होना है। जो बुद्धिमान्, विवेकी, पण्डितजन इस उपर्युक्त बात को समझते हैं उनके विद्यमान कलह शान्त हो जाते हैं॥275॥

कुछ लोग ऐसा न समझते हुए देवताओं के समान स्वयं को अमर मान कर अपना समग्र लौकिक व्यवहार चलाते हैं। परन्तु जो ऐसा समझते हुए अपना लौकिक व्यवहार सावधानी से चलाते हैं वे वैसे ही हैं जैसे बहुत से रोगी जनों में कुछ नीरोग जन॥276॥

जो कार्य शिथिलता से किया जाता है, तथा जो व्रत क्लेशयुक्त हैं, एवं जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध हैं- इन तीनों ही कर्मों का फल अच्छा नहीं होता॥277॥

''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
आरका होति सद्धम्मा, नभं पुथविया यथा''ति॥278॥... सभियो थेरो...।

4. नन्दकत्थेरगाथा-

''धिरत्थु पूरे दुग्गन्धे, मारपक्खे अवस्सुते।
नवसोतानि ते काये, यानि सन्दन्ति सब्बदा॥279॥
''मा पुराणं अमञ्ञित्थो, मासादेसि तथागते।
सग्गेपि ते न रज्जन्ति, किमङ्गं पन मानुसे॥280॥
''ये च खो बाला दुम्मेधा, दुम्मन्ती मोहपारुता।
तादिसा तत्थ रज्जन्ति, मारखित्तम्हि बन्धने॥281॥
''येसं रागो च दोसो च, अविज्जा च विराजिता।
तादी तत्थ न रज्जन्ति, छिन्नसुत्ता अबन्धना''ति॥282॥... नन्दको थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य सब्रह्मचारिषु, गौरवः नोपलभ्यते।
आरात् भवति सद्धर्मात्, नभः पृथिव्याः यथा" इति॥278॥

4. ''धिगस्तु पूर्णे दुर्गन्धे, मारपक्षे अवश्रुते।
नवस्रोतांसि ते काये, यानि स्यन्दन्ति सर्वदा॥279॥
''मा पुराणमवमन्यस्व, मावसादय तथागतम्।
स्वर्गेऽपि ते न रज्यन्ते, किमङ्गं पुन मानुषे॥280॥
''ये च खलु बालाः दुर्मेधाः, दुर्मतयः मोहप्रावृताः।
तादृशाः तत्र रज्यन्ते, मारक्षिप्ते हि बन्धने॥281॥
''येषां रागश्च दोषश्च, अविद्याश्च विराजिता।
तादृशा तत्र न रज्यन्ते, छिन्नसूत्रा अबन्धनाः"इति॥282॥

(हिन्दी)- जिसके हृदय में अपने सब्रह्मचारियों के प्रति गौरव नहीं है वह इस सद्धर्म में उसी प्रकार दूर रहता है जैसे गगन पृथ्वी से॥278॥ ...सभिय स्थविर .....॥

तुम्हारे धिक्कारास्पद, दुर्गन्ध से पूर्ण, मृत्यु से सम्बद्ध एवं छिद्रयुक्त इस शरीर में नौ (9) स्रोत हैं जो सदा बहते रहते हैं॥279॥

वृद्ध भिक्षुओं को अपमानित न करो, न तथागत को अवहेलना की दृष्टि से देखे। वे स्वर्ग में भी कोई आसक्ति नहीं रखते, फिर मानव शरीर में आसक्ति की तो बात ही क्या है॥280॥

जो मूर्ख हैं, कुबुद्धि हैं, सांसारिक मोह में फंसे हुए हैं, वैसे ही लोग इस काया के रंग ढंग पर आसक्त हो सकते हैं जो कि वस्तुतः मार के द्वारा फैंके गये पाश-बन्धन के सदृश है॥281॥

परन्तु जिन का राग, द्वेष एवं अविद्या सर्वथा विनष्ट हो चुके हैं,जो ज्ञानवान् हो चुके हैं, वे ऐसी हीन काया में आसक्त नहीं हुआ करते; क्योंकि उनका सांसारिक मायाजाल कट चुका है तथा वे सर्वथा बन्धनमुक्त हो चुके हैं॥282॥...नन्दक स्थविर.....॥

5. जम्बुकत्थेरगाथा-

''पञ्चपञ्ञासवस्सानि, रजोजल्लमधारयिं।
भुञ्जन्तो मासिकं भत्तं, केसमस्सुं अलोचयिं॥283॥
''एकपादेन अट्ठासिं, आसनं परिवज्जयिं।
सुक्खगूथानि च खादिं, उद्देसञ्च न सादियिं॥284॥
''एतादिसं करित्वान, बहुं दुग्गतिगामिनं।
वुय्हमानो महोघेन, बुद्धं सरणमागमं॥285॥
''सरणगमनं पस्स, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥286॥... जम्बुको थेरो...।

6. सेनकत्थेरगाथा-

''स्वागतं वत मे आसि, गयायं गयफग्गुया।
यं अद्दसासिं सम्बुद्धं, देसेन्तं धम्ममुत्तमं॥287॥

(संस्कृतच्छाया)-5. ''पञ्चपञ्चाशतवर्षाणि, रजोजल्यमधारयम्।
भुञ्जान: मासिकं भक्तम्, केशमश्रुम् अलुञ्चयम्॥283॥
''एकपादेन अस्थाम्, आसनं पर्यवर्जयम्।
शुष्कगूथं च अखादिषम्, उद्देशं (भक्तं) च न आस्वादयम्॥284॥
''एतादृशं कृत्वा, बहु दुर्गतिगामिनम्।
उह्यमान: महौघेन, बुद्धं शरणमागमम्॥285॥
''शरणागमनं पश्य, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥286॥

6. ''स्वागतं वत मे आसीत्, गयायां गयाफल्गौ।
यम् अद्राक्षं सम्बुद्धम्, देशयन्तं धर्ममुत्तमम्॥287॥

(हिन्दी)-5. मैंने पचपन वर्ष अपने शरीर पर धूल लपेटी, उस समय मैं एक मास में एक ही बार भोजन करता था। और अपने शिर एवं दाढ़ी के बाल नोचता था॥283॥

मैं उस समय एक पैर पर निरन्तर खड़ा ही रहता था, कभी बैठता नहीं था। मैंने उस समय भोजन के नाम पर शुष्कमल का भक्षण किया, फिर भी मैं अपनी तपस्या का कोई फल न प्राप्त कर सका॥284॥

इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण कार्यों से मेरी दुर्गति ही होती रही। जब मैं भव-प्रवाह में बहते बहते थक गया तो अन्त में मैं भगवान् बुद्ध की शरण में आया॥285॥

मेरा इस बुद्ध की शरण में जाने का प्रभाव देखो! तथा इस सद्धर्म की महत्ता देखो, मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त किया, और बुद्धानुशासन को किया॥286॥ ...जम्बुक स्थविर ....॥

6. गया नगर की गयाफल्गु नदी के तट पर मेरा पहुँचना मेरे लिये बहुत ही मंगलमय हो गया कि मैंने वहाँ जिज्ञासु जनों को धर्मोपदेश करते हुए भगवान् बुद्ध के साक्षात् दर्शन किये॥287॥

''महप्पभं गणाचरियं, अग्गपत्तं विनायकं।
सदेवकस्स लोकस्स, जिनं अतुलदस्सनं॥288॥
''महानागं महावीरं, महाजुतिमनासवं।
सब्बासवपरिक्खीणं, सत्थारमकुतोभयं॥289॥
''चिरसंकिलिट्ठं वत मं, दिट्ठिसन्दानबन्धितं ।
विमोचयि सो भगवा, सब्बगन्थेहि सेनकं'' ति॥290॥... सेनको थेरो...।

7. सम्भूतत्थेरगाथा-

''यो दन्धकाले तरति, तरणीये च दन्धये।
अयोनिसो संविधानेन, बालो दुक्खं निगच्छति॥291॥
''तस्सत्था परिहायन्ति, काळपक्खेव चन्दिमा।
आयसक्यञ्च पप्पोति, मित्तेहि च विरुज्झति॥292॥

(संस्कृतच्छाया)- ''महाप्रभं गणाचार्यम्, अग्रप्राप्तं विनायकम्।
सदेवकस्य लोकस्य, जिनम् अतुलदर्शनम्॥288॥
''महानागं महावीरम्, महाद्युतिमानस्रवम्।
सर्वास्रवपरिक्षीणम्, शास्तारमकुतोभयम्॥289॥
''चिरसंक्लिष्टं वत माम्, दृष्टिसंदामबद्धम् ।
व्यमोचयत् सः भगवान्, सर्वग्रन्थैः सेनकम्" इति॥290॥

7. ''यः तन्द्रिकाले तरति, तरणीये च तन्द्रयेत्।
अयोनिशः संविधानेन, बालो दुःखं निर्गच्छति॥291॥
''तस्यार्थाः परिहीयन्ते, कालपक्षे इव चन्द्रमा।
आयशस्क्यञ्च प्राप्नोति, मित्रैश्च विरुणद्धि॥292॥

(हिन्दी)- उनका प्रभामण्डल आकर्षक था, वे विशाल भिक्षुसंघ के आचार्य (धर्मोपदेष्टा) एवं देव सहित समस्त लोक के पथ-प्रदर्शक थे, वे स्वयं ज्ञान का साक्षात् कर चुके थे और उनका दर्शन अतुलनीय था॥288॥

वे अतिशय निष्पाप एवं महावीर थे। महान् द्युतिमान् एवं सभी चित्तविकार क्षीण होने से निर्मल एवं निर्भीक शास्ता थे॥289॥

उन्होंने दोषों से अतिशय मलिन एवं मिथ्यादृष्टियों में आबद्ध मुझ सेनक को धर्मोपदेश द्वारा सभी सांसारिक बन्धनों से मुक्त किया॥290॥ ...सेनक स्थविर .....॥

7. जो निद्रा के समय जागता है, तथा जागने के समय सोता है, ऐसा मूर्ख परिणाम में दुःख ही प्राप्त करता है॥291॥

उसके प्रयोजन भी उसी प्रकार क्षीण होते जाते हैं, जैसे कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा क्षीण होता रहता है। तथा लोक में उसको अपमान ही मिलता है तथा साथ ही समय समय पर उसको इस कारण अपने मित्रों से भी विरोध सहन करना पड़ता है॥292॥

''यो दन्धकाले दन्धेति, तरणीये च तारये।
योनिसो संविधानेन, सुखं पप्पोति पण्डितो॥293॥
''तस्सत्था परिपूरेन्ति, सुक्कपक्खेव चन्दिमा।
यसो कित्तिञ्च पप्पोति, मित्तेहि न विरुज्झती''ति॥294॥ ... सम्भूतो थेरो...।

8. राहुलत्थेरगाथा-

''उभयेनेव सम्पन्नो, राहुलभद्दोति मं विदू।
यञ्चम्हि पुत्तो बुद्धस्स, यञ्च धम्मेसु चक्खुमा॥295॥
''यञ्च मे आसवा खीणा, यञ्च नत्थि पुनब्भवो।
अरहा दक्खिणेय्योम्हि, तेविज्जो अमतद्दसो॥296॥
''कामन्धा जालपच्छन्ना, तण्हाछादनछादिता।
पमत्तबन्धुना बद्धा, मच्छाव कुमिनामुखे॥297॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यः तन्द्रा तन्द्रायते, तरणीये च तारयेत्।
योनिशः संविधानेन, सुखं प्राप्नोति पण्डितः॥293॥
''तस्यार्थाः परिपूरयन्ति, शुक्लपक्षे इव चन्द्रमा।
यशः कीर्तिञ्च प्राप्नोति, मित्रैः न विरुणद्धि" इति॥294॥

8. ''उभयेनैव सम्पन्नः, राहुलभद्र इति मां विदुः।
यश्चास्मि पुत्रः बुद्धस्य, यश्च धर्मेषु चक्षुष्मान्॥295॥
''यच्च मे आस्रवाः क्षीणाः, यच्च नास्ति पुनर्भवः।
अर्हत् दाक्षिणेयोऽस्मि, त्रैविद्य अमृतदृक्॥296॥
''कामान्धाः जालप्रच्छन्नाः, तृष्णाच्छादनछादिताः।
प्रमत्तबन्धुना बद्धाः, मत्स्या इव कृमिणामुखे (कण्टकामुखे)॥297॥

(हिन्दी)- जो निद्रा के समय सोता है, तथा जागने के समय जागता है, ऐसा पण्डित परिणाम में सुख प्राप्त करता है॥293॥

उसके सब प्रयोजन भी उसी प्रकार सफल होते रहते हैं जैसे शुक्लपक्ष में चन्द्रमा वृद्धिंगत होता है। तथा लोक में उसकी कीर्ति एवं यश प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है तथा मित्रों से भी उसका कभी विरोध नहीं होता॥294॥....सम्भूत स्थविर.....॥

दो बातों से युक्त मुझ को लोक में 'राहुल भद्र' नाम से जाना जाता है। मैं भगवान बुद्ध का पुत्र भी हूँ, तथा धर्मों के विषय में मेरी दृष्टि बहुत तीक्ष्ण है, अर्थात् मैं सब धर्मों का ज्ञाता हूँ॥295॥

मेरे सभी आश्रव क्षीण हो चुके हैं, और मेरा अब पुनर्जन्म नहीं होगा। अतः अब मैं ज्ञानी होने के कारण दक्षिणायोग्य हो चुका हूँ और मैंने तीनों विद्याओं तथा अमृत पद का साक्षात्कार कर लिया है॥296॥

इस लोक में जो काम से अन्धे होकर भवजाल में जकड़े हुए हैं, तृष्णा के आवरण से ढके हुए हैं, उनको प्रमादियों के साथी (मार) ने उसी प्रकार बाँध रखा है जैसे मछलियाँ किसी जाल में बंधी हुई हों॥297॥

''तं कामं अहमुज्झित्वा, छेत्वा मारस्स बन्धनं।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, सीतिभूतोस्मि निब्बुतो''ति॥298॥

9. चन्दनत्थेरगाथा-

''जातरूपेन सञ्छन्ना, दासीगणपुरक्खता।
अङ्केन पुत्तमादाय, भरिया मं उपागमि॥299॥
''तञ्च दिस्वान आयन्तिं, सकपुत्तस्स मातरं।
अलङ्कतं सुवसनं, मच्चुपासंव ओड्डितं॥300॥
''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ॥301॥
''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥302॥... चन्दनो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''तं कामम् अहमुज्झित्वा, छित्वा मारस्य बन्धनम्।
समूलां तृष्णामवोह्य उद्वाह्य, शान्तभूतोऽस्मि निर्वृतः"इति॥298॥

9. ''जातरूपेण सञ्छन्ना, दासीगणपुरस्कृता।
अङ्केन पुत्रमादाय, भार्या मम उपागमत्॥299॥
''ताञ्च दृष्ट्वा आयन्तीम्, स्वकपुत्रस्य मातरम्।
अलङ्कृतां सुवसनाम्, मृत्युपाशमिव अवक्षिसम्॥300॥
''तन्मे मनस्कारः, योनिश उदयत।
आदीनवः प्रादुरभूत्, निर्वेदः समतिष्ठत्॥301॥
''ततः चित्तं व्यमुञ्चत मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥302॥

(हिन्दी)- ऐसे उस काम का सर्वथा त्याग कर और इस प्रकार मार के बन्धनों को काट कर तथा तृष्णा को मूलसहित उच्छिन्न कर मैं सर्वथा शान्त हो चुका हूँ और निर्वाण-मार्गारूढ हूँ॥298॥ ...राहुल स्थविर.....॥
सुवर्ण एवं चाँदी के अलंकारों से भूषित, दासीगणों द्वारा सम्मानित मेरी धर्मपत्नी अपने पुत्र को गोद में लिये हुए कभी मेरे सम्मुख आयी॥299॥
उसको आती हुई देखकर, जो कि मेरे पुत्र की माता थी, उसके लिये मैंने ऐसी कल्पना की कि मानो साक्षात् मृत्यु ही आभूषणों से सज-धज कर मेरे सम्मुख आ रही हो॥300॥
तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि (वैराग्य) हो गयी॥301॥
तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए मैंने तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त हो गया॥302॥

10. धम्मिकत्थेरगाथा-

''धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिं, धम्मो सुचिण्णो सुखमावहति।
एसानिसंसो धम्मे सुचिण्णे, न दुग्गतिं गच्छति धम्मचारी॥303॥
''नहि धम्मो अधम्मो च, उभो समविपाकिनो।
अधम्मो निरयं नेति, धम्मो पापेति सुग्गतिं॥304॥
''तस्मा हि धम्मेसु करेय्य छन्दं, इति मोदमानो सुगतेन तादिना।
धम्मे ठिता सुगतवरस्स सावका, नीयन्ति धीरा सरणवरग्गगामिनो॥305॥
''विप्फोटितो गण्डमूलो, तण्हाजालो समूहतो।
सो खीणसंसारो न चत्थि किञ्चनं, चन्दो यथा दोसिना पुण्णमासियं''ति॥306॥...
.....धम्मिको थेरो...।

11. सप्पकत्थेरगाथा-

''यदा बलाका सुचिपण्डरच्छदा, काळस्स मेघस्स भयेन तज्जिता।
पलेहिति आलयमालयेसिनी, तदा नदी अजकरणी रमेति मं॥307॥

(संस्कृतच्छाया)-10 ''धर्मः हवै रक्षति धर्मचारिणम्, धर्मः सुचीर्णः सुखमावहति।
एषानिशंसः धर्मे सुचीर्णे, न दुर्गतिं गच्छति धर्मचारी॥303॥
''न हि धर्म अधर्मश्च, उभौ समविपाकिनौ।
अधर्मो निरयं नयति, धर्मः प्रापयति सुगतिम्॥304॥
''तस्माद्धि धर्मेषु कुर्यात् छन्दः, इति मोदमानः सुगतेन तादिना।
धर्मे स्थिताः सुगतवरस्य श्रावकाः, नीयन्ते धीरा शरणवराग्रगामिनः॥305॥
''विस्फोटितः गण्डमूलः, तृष्णाजालः समवहतः।
सः क्षीणः संसारः, न चास्ति किञ्चन,
चन्द्रो यथा दोषेण पूर्णमासम्" इति॥306॥

11. ''यदा बलाका शुचिपाण्डरच्छदा, कालस्य मेघस्य भयेन तर्जिता।
पलायति आलयमालयेषिणी, तदा नदी अजकर्णी रमयति माम्॥307॥

(हिन्दी)- धर्म ही धर्माचरण करने वाले की रक्षा करता है। सम्यक् प्रकार से अभ्यस्त धर्म सुखप्रदायक होता है। धर्माचरण का यही विशेष माहात्म्य है कि ऐसे धर्माचरण करने वाले साधक की कभी दुर्गति नहीं होती॥303॥

धर्म एवं अधर्म-दोनों का फल समान नहीं होता; क्योंकि अधर्माचरण से पुरुष का नरकपात होता है और धर्माचरण से सदा सुगति ही मिलती है॥304॥

अतः 'सभी श्रावक धर्माचरा में रुचि रखें - ऐसा ज्ञानी बुद्ध ने श्रावकों से प्रसन्न होकर कहा है। धैर्यपूर्वक धर्माचरण करने वाले सभी बुद्धशिष्य श्रेष्ठ आश्रयस्थल पर पहले पहुँचने वाले होते हैं॥305॥

मैंने चित्त के सभी व्रण फोड़ कर नष्ट कर दिये हैं, तृष्णा का भी समूल उच्छेद कर दिया है। भव-परम्परा का क्षय कर दिया है, अब उसका कोई अस्तित्व नहीं रह गया है। जैसे कि कृष्णपक्ष की अमावस्या के दिन चन्द्रमा का कोई अस्तित्व नहीं रहता॥306॥ ...धार्मिक स्थविर ने....॥

जब स्वच्छ श्वेत पंखों वाले सारस पक्षी काले मेघों की गर्जना से भयभीत होकर किसी सुरक्षित शरणस्थल की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर उस पर उड़ने लगते हैं, तब बाढ़ में शब्द करती, अजकर्णी नदी मुझको बहुत प्रिय लगती है॥307॥

''यदा बलाका सुविसुद्धपण्डरा, काळस्स मेघस्स भयेन तज्जिता।
परियेसति लेणमलेणदस्सिनी, तदा नदी अजकरणी रमेति मं॥308॥
''कं नु तत्थ न रमेन्ति, जम्बुयो उभतो तहिं।
सोभेन्ति आपगाकूलं, मम लेणस्स पच्छतो॥309॥
''ता मतमदसङ्घसुप्पहीना,भेका मन्दवती पनादयन्ति।
नाज्ज गिरिनदीहि विप्पवाससमयो,खेमा अजकरणी सिवा सुरम्मा'''ति॥310॥
... सप्पको थेरो...।

12.मुदितत्थेरगाथा-

''पब्बजिं जीविकत्थोहं, लद्धान उपसम्पदं।
ततो सद्धं पटिलभिं, दळ्हवीरियो परक्कमिं॥311॥
''कामं भिज्जतुयं कायो, मंसपेसी विसीयरुं।
उभो जण्णुकसन्धीहि, जङ्घायो पपतन्तु मे॥312॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यदा बलाका सुविशुद्धपाण्डरा, कालस्य मेघस्य भयात् तर्जिता।
पर्येष्यति लयनमलयनदर्शिनी, तदा नदी अजकर्णी रमते माम्॥308॥
''कं नु तत्र न रमन्ते, जम्बुव: उभत: तत्र।
शोभन्ते आपगाकूलम्, मम लयनस्य पश्चत:॥309॥
''ता अमृतमदसङ्घसुप्रहीणा, भेका: मन्दवत्य: प्रनदन्ति।
नाद्य गिरिनदीभ्य: विप्रवाससमय:, क्षेमा अजकर्णी शिवा सुरम्या"इति॥310॥

12. ''प्राव्रजं जीवकार्थोऽहम्, लब्ध्वा उपसम्पदाम्।
तत: श्रद्धां प्रत्यलप्सि, दृढवीर्य: पराक्राम्यम्॥311॥
''कामं भिनत्तु अयं काय:, माँसपेश्य: विशीर्येरन्।
उभाभ्यां जानुकसन्धिभ्याम्, जङ्घा: प्रपतन्तु मे॥312॥

(हिन्दी)- जब सफेद पंखों वाले सारस पक्षी काले मेघों की गर्जना से भयभीत होकर किसी सुरक्षित शरणस्थल की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर उस पर पड़ने लगते हैं, तब बाढ़ में शब्द करती, अजगर की गति से बहती हुई वह नदी मुझको बहुत प्रिय लगती है॥308॥

इसी प्रकार, मेरे आश्रयस्थल के पीछे उस नदी के तट के दोनों ओर जहाँ तहाँ उगे हुए जामुन वृक्ष किसे प्रिय नहीं लगते॥309॥

अपने साथियों से भली प्रकार बिछुड़ी हुई मेंढकियां भी अपनी धीमी आवाज में 'टर्र टर्र' कर रही है।अब यह समय, जब कि जल की यहां बहुलता है, पहाड़ एवं नदियों से पृथक् रहने का नहीं है। यह क्षेमकर अजकर्णी नदी सभी को रमणीय एवं मंगलमय लगती है॥310॥.....सम्पर्क स्थविर ने.....॥

यद्यपि मैं इस सद्धर्म में किसी प्रकार जीवनयापन हेतु ही दीक्षित हुआ था, परन्तु प्रव्रज्या ग्रहण करने के बाद मुझको इसमें श्रद्धा हो गयी और तब मैंने श्रमपूर्वक दृढता से धर्म का अभ्यास किया॥311॥

और तब मैंने दृढ़संकल्प लिया -'भले ही मेरा यह शरीर नष्ट हो जाय, इसकी मांसपेशियां बिखर जाय, या दोनों जानुगों से मेरी जंघाएं पृथक हो जायें॥312॥

''नासिस्सं न पिविस्सामि, विहारा च न निक्खमे।
नपि पस्सं निपातेस्सं, तण्हासल्ले अनूहते॥313॥
''तस्स मेवं विहरतो, पस्स वीरियपरक्कमं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥314॥ ...मुदितो थेरो...।

चतुक्कनिपातो निट्ठितो

तत्रुद्दानं – नागसमालो भगु च, सभियो नन्दकोपि च।
जम्बुको सेनको थेरो, सम्भूतो राहुलोपि च॥
भवति चन्दनो थेरो, दसेते बुद्धसावका।
धम्मिको सप्पको थेरो, मुदितो चापि ते तयो।
गाथायो द्वे च पञ्ञास, थेरा सब्बेपि तेरसाति॥

5. पञ्चकनिपातो

1. राजदत्तत्थेरगाथा-

''भिक्खु सिवथिकं गन्त्वा, अद्दस इत्थिमुज्झितं।
अपविद्धं सुसानस्मिं, खज्जन्तिं किमिही फुटं॥315॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नाशीष्यामि न पास्यामि, विहारतः च न निष्क्रमिष्यामि।
नापि पाष्णिम् निपातिष्यामि, तृष्णाशल्ये अनवहृते॥313॥
''तस्य मे एवं विहरतः, पश्य वीर्यपराक्रमम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥314॥

तत्रोद्दानम्- *नागसमलो भगु* च, *सभियो नन्दको* अपि च।
जम्बुको सेनको स्थविरः, *सम्भूतो राहुलो* अपि च॥
भवति *चन्दनो* स्थविरः, दशैते बुद्धश्रावकाः।
धम्मिको सप्पको स्थविरः, *मुदितो* चापि ते त्रयः।
गाथा द्विपञ्चाशत्, स्थविराः सर्वेऽपि त्रयोदशाः"इति॥ ●

1. ''भिक्षु *सिवथिकं* (श्मशानं) गत्वा, अद्राक्षं स्त्रीमुज्झितम्।
अपविद्धं श्मशाने, खादन्ति कृमयः स्फुटम्॥315॥

(हिन्दी)- मैं जब तक अपने तृष्णाशल्य को मूलतः उच्छिन्न न कर लूँगा तब तक न भोजन करूँगा, न जल पीऊँगा, न इस साधनागृह से ही बाहर निकलूँगा; न ही कुछ देखूँगा॥313॥
इस संकल्प के साथ दृढ साधना करते हुए मेरा वीर्य-पराक्रम देखो कि आज मुझको तीनों विद्याएँ अधिगत हो गयीं, तथा बुद्धादेश के अनुसार मैं साधना में भी प्रगति कर रहा हूँ॥314॥...मुदित स्थविर ने ये गाथाएं कहीं॥
इस निपात में वर्णित भिक्षुओं तथा गाथाओं की सूची- नागसमाल, भृगु, सभिय, नन्दक, जम्बुक, सेनक, सम्भूत, राहुल, एवं चन्दन स्थविर-ये नौ बुद्ध शिष्य हैं। धार्मिक, सर्पक स्थविर एवं मुदित -ये तीन भी हैं।इस निपात में 52 गाथाएं और स्थविर सब मिलाकर कर बारह है।●
भिक्षु होने के बाद मैंने श्मशान में एक स्त्री के शव को देखा जो कि श्मशान में फेंका गया था और उसे कीड़े खा रहे थे॥315॥

''यञ्हि एके जिगुच्छन्ति, मतं दिस्वान पापकं।
कामरागो पातुरहु, अन्धोव सवती अहुं॥316॥
''ओरं ओदनपाकम्हा, तम्हा ठाना अपक्कमिं।
सतिमा सम्पजानोहं, एकमन्तं उपाविसिं॥317॥
''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ॥318॥
''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥319॥ ... राजदत्तो थेरो...।

2. सुभूतत्थेरगाथा-

''अयोगे युञ्जमत्तानं, पुरिसो किच्चमिच्छको ।
चरं चे नाधिगच्छेय्य, 'तं मे दुब्भगलक्खणं'॥320॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यं हि एके जुगुप्सन्ते, मृतं दृष्ट्वा पापकम्।
कामरागः प्रादुरभूत्, अन्ध इव स्रवति अभवम्॥316॥
''अवरम् ओदनपाकात्, तस्मात् स्थानात् अपाक्राम्यम्।
स्मृतिमान् सम्प्रजानोऽहम्, एकमन्तम् उपाविशम्॥317॥
''ततो मे मनसिकारः, योनिश उदपद्यत।
आदीनवः प्रादुरभूत्, निर्वेदः समतिष्ठत्॥318॥
''ततो चित्तं व्यमुञ्चत मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥319॥

2. ''अयोगे युञ्जनात्मानम्, पुरुषः कृत्यमिच्छकः।
चरन् चेत् नाधिगच्छेत्, तन्मे दुर्भाग्यलक्षणम्॥320॥

(हिन्दी)- जिस मृत को देखना ही कुछ लोग पाप समझते हैं वहाँ उस शव को देखकर उसमें मेरा कामराग उत्पन्न हो गया। कामान्ध का कहाँ पतन न हो जाय॥316॥

मैंने भिक्षा करने से पहले ही उस स्थान से चल दिया। तथा स्मृतिमान् एवं सावधान होकर एकान्त में जा बैठ गया॥317॥

तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि हो गयी॥318॥

तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए उस नर्तकी के क्रियाकलाप से अपने मन को हटाया। इस सद्धर्म के उत्तरोत्तर चिन्तन के प्रभाव से एक समय आया कि मैंने धर्मप्रतिपादित तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त हो गया॥319॥...राजदत्त स्थविर...।

अनुचित कार्य में स्वयं को व्यापृत करने वाला, तथा उचित कार्य में व्यापृत न करने वाला मैं स्वकीय प्रयोजन का त्याग कर तात्कालिक प्रिय विषयों का ग्राही होता हूँ तो वह मेरे दुर्भाग्य का ही चिह्न है॥320॥

''अब्बूळ्हं अघगतं विजितं, एकञ्चे ओस्सजेय्य कलीव सिया।
सब्बानिपि चे ओस्सजेय्य अन्धोव सिया, समविसमस्स अदस्सनतो॥321॥
''यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे, यं न कयिरा न तं वदे।
अकरोन्तं भासमानं, परिजानन्ति पण्डिता॥322॥
''यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो॥323॥
''यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सुगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो''ति॥324॥ ... सुभूतो थेरो...।

3. गिरिमानन्दत्थेरगाथा-

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि वूपसन्तो, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥325॥

(संस्कृतच्छाया)- ''आबृढम् अघगतं विजितम्, एकञ्चेत् अवस्रजेत् कालकर्णी इव स्यात्।
सर्वाणि अपि चेत् अवस्रजेत्, अन्ध इव स्यात् समविषमोऽदर्शनतः॥321॥
''यद्धि कुर्यात् तत् हि वदेत्, यं न कुर्यात् न तत् वदेत्।
अकुर्वन्तं भाषमाणम्, परिजानन्ति पण्डिताः॥322॥
''यथापि रुचिरं पुष्पम्, वर्णवन्तम् अगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाचा, अफला भवति अकुर्वतः॥323॥
''यथापि रुचिरं पुष्पम्, वर्णवन्तम् सुगन्धकम्।
एवं सुभाषिता वाचा, सफला भवति कुर्वतः" इति॥324॥

3. ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्यां विहरामि उपशान्तः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देवः॥325॥

(हिन्दी)- असमायोजित या कर्मानुसार गले पड़े हुए यदि एक पाप को ढील दी जाती है तो वह उचित अनुचित का ज्ञान न होने के कारण, अन्य पुरुष के समान, सभी पापकर्मों में ढील देने लगता है॥321॥

जो करते हो वही बोलो तथा जो न करते हो वह न बोलो। न किये हुए को कहते समय बुद्धिमान् लोग तो उसकी वास्तविकता समझ ही लेते हैं॥322॥

जैसे सुन्दर अच्छे रंग से युक्त पुष्प, गन्धहीन होने के कारण, मनुष्य के लिये निष्फल एवं निरर्थक होता है; वैसे ही सुभाषित वाणी का आचरण न किया जाय तो वह निष्फल एवं निरर्थक ही होती है॥323॥

जैसे सुन्दर एवं अच्छे रंग से युक्त पुष्प यदि सुगन्धयुक्त भी हो तो वह मनुष्यों का अत्यधिक लाभप्रद होता है; वैसे ही सुभाषित वाणी, यदि उस पर आचरण भी किया जाय तो वह उन मनुष्यों के लिए अतिशय सफल होती है॥324॥ ...सुभूत स्थविर ने ...पूर्ववत्..॥

रिमझिम की सुमधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भी भलीभाँति आच्छादित है, उसमें मैं शान्तिपूर्वक बैठ कर साधना कर रहा हूँ। ऐसे समय में, हे मेघ! तुम पुनः बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो॥325॥

''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि सन्तचित्तो, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥326॥
''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि वीतरागो, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥327॥
''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि वीतदोसो, अथ चे पत्थयसी पवस्स देव॥328॥
''वस्सति देवो यथा सुगीतं, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्सं विहरामि वीतमोहो,अथ चे पत्थयसी पवस्स देवा''ति॥329॥

... गिरिमानन्दो थेरो...।

4. सुमनत्थेरगाथा-

''यं पत्थयानो धम्मेसु, उपज्झायो अनुग्गहि।
अमतं अभिकङ्खन्तं, कतं कत्तब्बकं मया॥330॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्यां विहरामि शान्तचित्तः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देवः॥326॥
''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्यां विहरामि वीतरागः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देवः॥327॥
''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्यां विहरामि वीतदोषः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देवः॥328॥
''वर्षति देवो यथा सुगीतम्, छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता।
तस्यां विहरामि वीतमोहः, अथ चेत् प्रार्थयसे प्रवर्ष देवः" इति॥329॥

4. ''यत् प्रार्थमाणो धर्मेषु, उपाध्याय अन्वग्रहीत्।
अमृतम् अभिकांक्षन्तम्, कृतं कर्त्तव्यकं मया॥330॥

(हिन्दी)- रिमझिम की सुमधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भलीभाँति आच्छादित है, उसमें मैं शान्तचित्त से साधन रत हूँ। ऐसे समय में, हे मेघ! तुम बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो॥326॥
रिमझिम की सुमधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भी भलीभाँति आच्छादित है, उसमें मैं रागरहित होकर साधनारत हूँ। ऐसे समय में, हे मेघ! तुम बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो॥327॥
रिमझिम की सुमधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भी भलीभाँति आच्छादित है, उसमें मैं द्वेषरहित होकर साधनारत हूँ। ऐसे समय में, हे मेघ! तुम बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो॥328॥
रिमझिम की सुमधुर ध्वनि के साथ वर्षा हो रही है, मेरी कुटिया भी भलीभाँति आच्छादित है, उसमें मैं मोहरहित होकर साधनारत हूँ। ऐसे समय में, हे मेघ! तुम बरसना चाहते हो तो अच्छी तरह बरस लो॥329॥....गिरिमानन्द स्थविर ने...पूर्ववत्...॥
मैंने अपने उपाध्याय से धर्म के विषय में जो भी जिज्ञासा की, उन्होंने मुझ पर अनुग्रह करते हुए उन जिज्ञासाओं को शान्त किया। तब मैंने, अमृत पद की प्राप्ति के लिये जो भी मेरा कर्तव्य था, उसको पूर्ण किया॥330॥

''अनुप्पत्तो सच्छिकतो, सयं धम्मो अनीतिहो।
विसुद्धिञाणो निक्कङ्खो, ब्याकरोमि तवन्तिके॥331॥
''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं।
सदत्थो मे अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं॥332॥
''अप्पमत्तस्स मे सिक्खा, सुस्सुता तव सासने।
सब्बे मे आसवा खीणा, नत्थि दानि पुनब्भवो॥333॥
''अनुसासि मं अरियवता, अनुकम्पि अनुग्गहि।
अमोघो तुय्हमोवादो, अन्तेवासिम्हि सिक्खितो''ति॥334॥ ... सुमनो थेरो...।

5. वड्ढत्थेरगाथा-

''साधू हि किर मे माता, पतोदं उपदंसयि।
यस्साहं वचनं सुत्वा, अनुसिट्ठो जनेतिया।
आरद्धवीरियो पहितत्तो, पत्तो सम्बोधिमुत्तमं॥335॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अनुप्राप्तः साक्षिकृतः, स्वयं धर्म अनीतिहः।
विशुद्धज्ञानो निष्कांक्षः, व्याकरोमि, तवान्तिके॥331॥
''पूर्वेनिवासं जानामि, दिव्यचक्षुः विशोधितम्।
सदर्थो मे अनुप्राप्तः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥332॥
''अप्रमत्तस्य मे शिक्षा, सुश्रुता तव शासने।
सर्वे मे आस्रवाः क्षीणाः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः॥333॥
''अन्वशिषत् माम् आर्यवृतैः, अनुकम्पिष्ट अन्वग्रहीत्।
अमोघः तव अववादः, अन्तेवासी अस्मि शिक्षितः''इति॥334॥

5. ''साधुः हि किल मे माता, प्रतोदम् उपादर्शयत्।
यस्याहं वचनं श्रुत्वा, अनुशिष्टः जनयित्र्याः।
आरब्धवीर्यः प्रहितात्मा, प्राप्तः सम्बोधिमुत्तमम्॥335॥

(हिन्दी)- इस प्रकार मैंने इस धर्म को स्वयं साक्षात् कर प्राप्त कर लिया और उसको अपने अनुभव में उतार लिया। वह धर्म ज्ञानविशुद्ध एवं असन्दिग्ध है, उसी को मैं आपके सम्मुख कहने जा रहा हूँ॥331॥
मैं अपने पूर्वजन्मों के विषय में सब कुछ जान गया हूँ। मुझ को निर्मल दिव्य चक्षु प्राप्त हो गया है। मैंने सदर्थ प्राप्त कर लिया है। और बुद्धोपदिष्ट साधना का अभ्यास पूर्ण कर लिया है॥332॥
सावधान होकर मैंने कभी आपके श्रीमुख से निःसृत शिक्षा सम्यक् प्रकार से सुनी थी उसके आधार पर मैंने साधनाभ्यास किया, फलस्वरूप मेरे सभी चितविकार क्षीण हो गये, अतः अब इस संसार में पुनर्जन्म असम्भव है॥333॥
आप श्रेष्ठ गुरु ने मुझ पर अनुकम्पा एवं अनुग्रह करते हुए जो उपदेश किया था, वह उपदेश अमोघ है -ऐसी मेरी धारणा है॥334...सुमन स्थवरि ने....पूर्ववत्॥
मेरी माता को मेरा साधुवाद है कि जिन्होंने मुझ को अपने धर्मानुशासन चाबुक से कुपथ से नियन्त्रित रखा। माता के इस अनुशासन के प्रभाव से ही मैंने प्रयत्नपूर्वक धर्माभ्यास करते हुए उत्तम बोधि प्राप्त की॥335॥

''अरहा दक्खिणेय्योम्हि, तेविज्जो अमतद्दसो।
जेत्वा नमुचिनो सेनं, विहरामि अनासवो॥336॥
''अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, ये मे विञ्जिंसु आसवा।
सब्बे असेसा उच्छिन्ना, न च उप्पज्जरे पुन॥337॥
''विसारदा खो भगिनी, एतमत्थं अभासयि।
'अपिहा नून मयिपि, वनथो ते न विज्जति'॥338॥
''परियन्तकतं दुक्खं, अन्तिमोयं समुस्सयो।
जातिमरणसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥339॥ ... वड्ढो थेरो...।

6. नदीकस्सपत्थेरगाथा-

''अत्थाय वत मे बुद्धो, नदिं नेरञ्जरं अगा।
यस्साहं धम्मं सुत्वान, मिच्छादिट्ठिं विवज्जयिं॥340॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अर्हत् दाक्षिणयोऽस्मि, त्रैविद्य अमृतदृशः।
जित्वा नमुचिनः सेनाम्, विहरामि अनास्रवः॥336॥
''अध्यात्मञ्च बहिर्धा च, ये मे अविद्यन्त आस्रवाः।
सर्वे अशेषा उच्छिन्नाः, न च उपेदिरे पुनः॥337॥
''विशारदा खलु भगिनी, एतमर्थम् अभाषयत।
अस्पृहाः नूनं मय्यपि, वनथः ते न विद्यते॥338॥
''पर्यन्तकृतं दुःखम्, अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः।
जातिमरणसंसारः, नास्तीदानीं पुनर्भवः'' इति॥339॥
6. ''अर्थाय वत मे बुद्धः, नदीं नेरञ्जराम् अगात्।
यस्याहं धर्मं श्रुत्वा, मिथ्यादृष्टिं व्यवर्जयम्॥340॥

(हिन्दी)- आज मैं दक्षिणेय अर्हत् हो चुका हूँ। इस कारण मुझ को तीनों विद्याएं भी अधिगत हो चुकी हैं, मैं अमृत पद का साक्षात्कार कर चुका हूँ। तथा मारसेना पर विजय प्राप्त कर क्षीणाश्रव हो कर साधनारत हूँ॥336॥

मुझ में जो आध्यात्मिक एवं बाह्य चित्तविकार थे वे सभी क्षीण हो चुके हैं, अब उनके पुनः उत्पन्न होने की सम्भावना नहीं है॥337॥

मेरी धर्मकुशल बहन ने भी मुझ से यही कहा था कि जब तुम्हारा मुझ में भी मोहभंग हो चुका है तो तुम अब सर्वथा तृष्णारहित हो चुके हो॥338॥

मैंने अपने सभी दुःखों को सर्वथा नष्ट कर दिया है। जन्म मरण एवं संसार की ओर मेरी यह प्रवृत्ति अन्तिम है; क्योंकि अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥339॥..वृद्ध स्थविर ने...।

भगवान् बुद्ध का नेरञ्जना नदी पर आगमन मानो मेरी ही कार्यसिद्धि हेतु हुआ था कि जिनका धर्मोपदेश सुनकर मैं अपनी मिथ्यादृष्टियों का त्याग कर सका॥340॥

''यजिं उच्चावचे यञ्ञे, अग्गिहुत्तं जुहिं अहं।
''एसा सुद्धी'ति मञ्ञन्तो, अन्धभूतो ॥341॥
''दिट्ठिगहनपक्खन्दो, परामासेन मोहितो।
असुद्धिं मञ्ञिसं सुद्धिं, अन्धभूतो अविद्दसु॥342॥
''मिच्छादिट्ठि पहीना मे, भवा सब्बे पदालिता।
जुहामि दक्खिणेय्यग्गिं, नमस्सामि तथागतं॥343॥
''मोहा सब्बे पहीना मे, भवतण्हा पदालिता।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥344॥ ...नदीकस्सपो थेरो...।

7. गयाकस्सपत्थेरगाथा-

''पातो मज्झन्हिकं सायं, तिक्खत्तुं दिवसस्सहं।
ओतरिं उदकं सोहं, गयाय गयफग्गुया॥345॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अयजम् उच्चावचा: यज्ञान्, अग्निहोत्रम् अजुहोम् अहम्।
एषा शुद्धि इति मन्य:, अन्धभूतः (पृथक्जनः)॥341॥
''दृष्टिगहनप्रस्कन्दः, परामर्शेन मोहितः।
अशुद्धिम् अमन्यं शुद्धिम्, अन्धभूतं अवित्सि॥342॥
''मिथ्यादृष्टिः प्रहीण मे, भवाः सर्वेः प्रदारिताः।
जुहोमि दाक्षिणेयाग्निम्, नस्यामि तथागतम्॥343॥
''मोहाः सर्वेः प्रहीणाः मे, भवतृष्णाः प्रदारिताः।
विक्षीण: जातिसंसारः, नास्तीदानीं पुनर्भवः''इति॥344॥
7. ''प्रातः मध्याह्नके सायम्, त्रिकृत्वा दिवसस्याहम्।
अवातारिषम् उदके सोऽहम्, गयायां गयाफल्गौ॥345॥

(हिन्दी)- पहले मैने छोटे बड़े बहुत से यज्ञ किये, अग्निहोत्र कर्म भी मैं प्रतिदिन करता था। वह सब इसलिये कि मैं एक मूर्ख, पृथग्जन के समान, इन्हीं कर्मों से आभ्यन्तर एवं बाह्य शुद्धि मानता था॥341॥

उस समय मैं मिथ्यादृष्टियों के एवं शीलव्रत परामर्श के गहन अन्धकार में ऐसा दिग्भ्रान्त था कि अशुद्धि के उपायों को शुद्धि के उपाय मान बैठा था; क्योंकि मुझ मूर्ख की बुद्धि पर अज्ञान का आवरण पड़ा हुआ था॥342॥

मेरी मिथ्यादृष्टि प्रहीण हो चुकी है। तथा मेरे जन्मादिक विलीन हो चुके हैं। तथा दक्षिणायोग्य तथागतरूप अग्नि में हवन करता हूँ॥343॥

मेरे सर्वविध मोह भंग हो चुके हैं, मेरी भवतृष्णा विगलित हो चुकी है। मेरा जन्म संसार भी क्षीण हो चुका है। अब इस संसार में मेरा जन्म कभी नहीं होगा॥344॥...नदीकाश्यप स्थविर ने...॥

पहले मैं गया नगरी की गयाफल्गु नदी में प्रातः सायं एवं मध्याह्न -इस प्रकार तीन बार स्नान हेतु उतरता था॥345॥

''यं मया पकतं पापं, पुब्बे अञ्ञासु जातिसु।
तं दानीध पवाहेमि', एवंदिट्ठि पुरे अहुं॥346॥
''सुत्वा सुभासितं वाचं, धम्मत्थसहितं पदं।
तथं याथावकं अत्थं, योनिसो पच्चवेक्खिसं॥347॥
''निन्हातसब्बपापोम्हि, निम्मलो पयतो सुचि।
सुद्धो सुद्धस्स दायादो, पुत्तो बुद्धस्स ओरसो॥348॥
''ओगय्हट्ठङ्गिकं सोतं, सब्बपापं पवाहयिं।
तिस्सो विज्जा अज्झगमिं, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥349॥ ... गयाकस्सपो थेरो...।

8. वक्कलित्थेरगाथा-

''वातरोगाभिनीतो त्वं, विहरं काननने वने।
पविट्ठगोचरे लूखे, कथं भिक्खु करिस्ससि॥350॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यत् मया प्रकृतं पापम्, पूर्वे अन्यासु जातिषु।
तत् इदानीमिह प्रवाहयामि, एवं दृष्टिः पुरेऽभवम्॥346॥
''श्रुत्वा सुभाषितां वाचाम्, धर्मार्थसहितं पदम्।
तथ्यं यथावत् अर्थम्, योनिशः प्रत्यवैक्षषम्॥347॥
''निर्धूतसर्वपापोऽस्मि, निर्मलः प्रयतः शुचिः।
शुद्धः शुद्धस्य दायादः, पुत्रः बुद्धस्य औरसः॥348॥
''अवग्राह्याष्टाङ्गिकं स्रोतः, सर्वपापं प्रावाहयम्।
तिस्रो विद्या अध्यगमम्, कृतं बुद्धस्य शासनम्''इति॥349॥

8. ''वातरोगाभिनीतः त्वम्, विहरन् काननने वने।
प्रविष्टगोचरे रुक्षे, कथं भिक्षोः करिष्यसि॥350॥

(हिन्दी)- उसके विषय में उस समय मेरा यह विचार था कि मैंने अतीत में या वर्तमान में, इस जन्म में या अन्य जन्मों में जितने भी पाप किये हैं, उन सबको मैं इस स्नान से धो डालूंगा॥346॥

धर्म एवं अर्थ से सम्पृक्त उन (बुद्ध) के वचनोपदेश सुनकर उन वचनों के यथातथ अर्थ पर जब मैंने सूक्ष्म चिन्तन किया॥347॥

तब मैं सब पापों से मुक्त हुआ हूँ। अब मैं निर्मल हूँ, संयत, शुद्ध एवं पवित्र हूँ। अपि च, मैं स्वयं तो शुद्ध हूँ ही, साथ ही शुद्ध साधक का उत्तराधिकारी भी हूँ। बुद्ध का औरस पुत्र भी हूँ॥348॥

मैंने आष्टांगिक मार्ग के स्रोत में अवगाहन कर सभी पापों को धो डाला। तीनों विद्याएं अधिगत कर ली और अब बुद्धोपदेश के अनुसार साधना कर रहा हूँ॥349॥ ...गयाकाश्यप स्थविर ने...॥

किसी ने मुझसे पूछा -तुम वात रोग से पीड़ित रहते हो और वह वीहड़ वन में रूखे सूखे भोजन के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा, भिक्षु! तब कैसे साधना करोगे?॥350॥

''पीतिसुखेन विपुलेन, फरमानो समुस्सयं।
लूखम्पि अभिसम्भोन्तो, विहरिस्सामि काननेे॥351॥
''भावेन्तो सतिपट्ठाने, इन्द्रियानि बलानि च।
बोज्झङ्गानि च भावेन्तो, विहरिस्सामि काननेे॥352॥
''आरद्धवीरिये पहितत्ते, निच्चं दळ्हपरक्कमे ।
समग्गे सहिते दिस्वा, विहरिस्सामि काननेे॥353॥
''अनुस्सरन्तो सम्बुद्धं, अग्गं दन्तं समाहितं।
अतन्दितो रत्तिन्दिवं, विहरिस्सामि काननेे''ति॥354॥ ... वक्कलित्थेरो...।

9. विजितसेनत्थेरगाथा-

''ओलग्गेस्सामि ते चित्त, आणिद्वारेव हत्थिनं।
न तं पापे नियोजेस्सं, कामजालसरीरज ॥355॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रीतिसुखेन विपुलेन, स्फुरन् समुच्छ्रयम्।
रूक्षमपि अभिसम्भवन् , विहरिष्यामि काननेे॥351॥
''भावयन् स्मृतिप्रस्थानान्, इन्द्रियाणि बलानि च।
बोध्यङ्गान् च भावयन्, विहरिष्यामि काननेे॥352॥
''आरब्धवीर्यान् प्रहितात्मनः, नित्यं दृढपराक्रमान्।
समग्रान् स्वहिते दृष्ट्वा, विहरिष्यामि काननेे॥353॥
''अनुस्मरन् सम्बुद्धम्, अग्रे दान्तं समाहितम्।
अतन्द्रितः रात्रिंदिवम्, विहरिष्यामि काननेे''इति॥354॥

9. ''अवलगिष्यामि त्वां चित्त, आणिद्वारे इव हस्तिनम्।
न त्वां पापे नियोजयिष्यामि, कामजालशरीरजम्॥355॥

(हिन्दी)- मैंने उत्तर दिया- मैं विपुल प्रीतिसुख का अपने हृदय में अनुभव करते हुए सम्मुख आने वाले समस्त संकटसमूह को सहन करता हुआ उस रूक्ष भोजन से ही जीवनयापन कर लूँगा। इस प्रकार मैं यहाँ साधनारत रहूँगा॥351॥

स्मृतिप्रस्थान की भावना तथा इन्द्रिय, बल एवं बोध्यंगों की भावना करता हुआ मैं यहाँ साधनारत रहूँगा॥352॥

संयतेन्द्रिय हो कर तथा प्रयत्नपूर्वक नित्य दृढ़ पराक्रम करता हुआ उस समग्र विपत्तिसमूह को स्वहित में देखता हुआ मैं यहाँ साधना में लगूँगा॥353॥

बुद्धानुस्मृति का अनुस्मरण करता हुआ, सावधानीपूर्वक दिनरात श्रेष्ठ, संयत एवं समाहित आचरण करता हुआ मैं यहाँ साधना में लगूँगा॥354॥ ....वक्कलि स्थविर ने....

कामसमूह के मूर्तरूप चित्त! मैं तुझको उसी प्रकार खूँटे से बाँध दूँगा, जैसे हाथी को बाँधा जाता है। मैं तुझको पापक्रिया में प्रवृत्त नहीं होने दूँगा॥355॥

''त्वं ओलग्गो न गच्छसि, द्वारविवरं गजोव अलभन्तो।
न च चित्तकलि पुनप्पुनं, पसक्क पापरतो चरिस्ससि॥356॥
''यथा कुञ्जरं अदन्तं, नवग्गहमङ्कुसग्गहो।
बलवा आवत्तेति अकामं, एवं आवत्तयिस्सं तं॥357॥
''यथा वरहयदमकुसलो, सारथि पवरो दमेति आजञ्ञं।
एवं दमयिस्सं तं, पतिट्ठितो पञ्चसु बलेसु॥358॥
''सतिया तं निबन्धिस्सं, पयुत्तो ते दमेस्सामि।
वीरियधुरनिग्गहितो, न यितो दूरं गमिस्ससे चित्ता''ति॥359॥ ....विजितसेनो थेरो...।

10. यसदत्तत्थेरगाथा-

''उपारम्भचित्तो दुम्मेधो, सुणाति जिनसासनं।
आरका होति सद्धम्मा, नभसो पथवी यथा॥360॥

(संस्कृतच्छाया)- ''त्वम् अवलग्नो न गच्छसि, द्वारविवरं गज इव अलभमानः।
न च चित्तकर्णि! पुनर्पुनः, प्रशक्य पापरतः चरिष्यसि॥356॥
''यथा कुंजरम् अदान्तम्, नवगृहीतमङ्कुशाग्रहः।
बलवान् आवर्तयति अकामम्, एवम् आवर्तयिष्यामि त्वाम्॥357॥
''यथा वरहयदमकुशलः, सारथि प्रवरः दाम्यति आजन्यम्।
एवं दमिष्यामि त्वाम्, प्रतिष्ठितः पञ्चसु बलेषु॥358॥
''स्मृत्या त्वां निभन्त्स्यामि, प्रयुक्तः त्वां दमिष्यामि।
वीर्यधुरनिग्रहीतः, न यतो दूरं गमिष्यसि चित्त!''इति॥359॥
10. ''उपारम्भचित्तो दुर्मेधः, शृणोति जिनशासनम्।
आरकात् भवति सद्धर्मात्, नभसः पृथ्वी यथा॥360॥

(हिन्दी)- इस प्रकार बँधा हुआ तूँ कहीं नही जा पायगा; जैसे बँधा हुआ हाथी द्वार न मिलने के कारण कहीं नहीं जा पाता। पापी चित्त! इसी तरह मैं तुझ को बाँध लूँगा॥356॥

जैसे वन से पकड़े हुए किसी नये अशिक्षित एवं असंयत हाथी को अंकुश हाथ में लिया हुआ कोई बलवान् महावत स्वच्छन्द नहीं घूमने देता, वैसे ही तुझको भी मैं जहाँ तहाँ विचरने से साधना की ओर लौटा लूँगा॥357॥

जैसे कोई कुशल सारथि उच्च जाति के अश्व को दमन करता हुआ शिक्षित कर लेता है वैसे ही चित्त! मैं तेरा दमन कर लूँगा; क्योंकि पाँचों बलों के प्रयोग में दक्ष हूँ॥358॥

मैं स्मृति से तुझको बाँध लूँगा; इस प्रकार सावधान रहता हुआ मैं तेरा नियन्त्रण करता रहूँ। चित्त! तू तब वीर्यरूप धुरे से बँधा हुआ यहाँ से दूर न जा पायेगा॥359॥....विजितसेन स्थविर ने....॥

जो बुद्ध के प्रति मन में निन्दाभाव रखता हुआ बुद्धवचन सुनता है, वह सद्धर्म से उतना ही दूर रहता है; जैसे पृथ्वी नभ से दूर रहती है॥360॥

''उपारम्भचित्तो दुम्मेधो, सुणाति जिनसासनं।
परिहायति सद्धम्मा, काळपक्खेव चन्दिमा॥361॥
''उपारम्भचित्तो दुम्मेधो, सुणाति जिनसासनं।
परिसुस्सति सद्धम्मे, मच्छो अप्पोदके यथा॥362॥
''उपारम्भचित्तो दुम्मेधो, सुणाति जिनसासनं।
न विरूहति सद्धम्मे, खेत्ते बीजंव पूतिकं॥363॥
''यो च तुट्ठेन चित्तेन, सुणाति जिनसासनं।
खेपेत्वा आसवे सब्बे, सच्छिकत्वा अकुप्पतं।
पप्पुय्य परमं सन्तिं, परिनिब्बातिनासवो''ति॥364॥... यसदत्तो थेरो...।

11. सोणकुटिकण्णत्थेरगाथा-

''उपसम्पदा च मे लद्धा, विमुत्तो चम्हि अनासवो।
सो च मे भगवा दिट्ठो, विहारे च सहावसिं॥365॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपारम्भचित्तः दुर्मेधः, शृणोति जिनशासनम्।
परिहायति सद्धर्मात्, कालपक्षे इव चन्द्रमा॥361॥
''उपारम्भचित्तः दुर्मेधः, शृणोति जिनशासनम्।
परिशुष्यति सद्धर्मे, मत्स्य अल्पोदके यथा॥362॥
''उपारम्भचित्तो दुर्मेधः, शृणोति जिनशासनम्।
न विरोहति सद्धर्मे, क्षेत्रे बीजमिव पूतिकम्॥363॥
''यश्च तुष्टेन चित्तेन, शृणोति जिनशासनम्।
क्षिपित्वा आस्रवान् सर्वान्, साक्षीकृत्य अकुप्यताम्।
प्राप्नुयात् परमां शान्तिम्, परिनिर्वात्यनास्रवः''इति॥364॥

11. ''उपसम्पदा च मे लब्धा, विमुक्तः चास्मि अनास्रवः।
सश्च मे भगवान् दृष्टः, विहारे च सहावात्सम्॥365॥

(हिन्दी)- जो बुद्ध के प्रति मन में निन्दाभाव रखता हुआ बुद्धवचन सुनता है, वह सद्धर्म से उसी प्रकार क्षीण होता जाता है, जैसे कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा क्षीण होता जाता है॥361॥

जो बुद्ध के प्रति मन में निन्दाभाव रखता हुआ बुद्धवचन सुनता है, उसकी सद्धर्म में वही गति होती है; जैसे किसी सरोवर के सूखने पर मछली की होती है॥362॥

जो बुद्ध के प्रति मन में निन्दाभाव रखता हुआ बुद्धवचन सुनता है, उसका सद्धर्म में उसी प्रकार रोपण नहीं होता जैसे किसी खेत में सड़े-गले बीज का रोपण नहीं होता॥363॥

परन्तु जो बुद्ध के प्रति श्रद्धालु चित्त हो कर बुद्धवचन सुनता है वह अपने सभी चित्तमल क्षीण कर स्थिर पद को साक्षात् कर तथा उच्चतम शान्ति प्राप्त कर क्षीणाश्रव हो कर ही परिनिर्वृत होता है॥364॥

.... यशदत्त स्थविर ने....॥

मैंने उपसम्पदा प्राप्त की। तथा मैं सभी मलों से विमुक्त अत एव आश्रवरहित हो गया। तब मैंने उन भगवान् के दर्शन किये तथा उन की ही कुटिया में साधना हेतु विश्राम किया॥365॥

''बहुदेव रत्तिं भगवा, अब्भोकासेतिनामयि।
विहारकुसलो सत्था, विहारं पाविसी तदा॥366॥
''सन्थरित्वान सङ्घाटिं, सेय्यं कप्पेसि गोतमो।
सीहो सेलगुहायंव, पहीनभयभेरवो॥367॥
''ततो कल्याणवाक्करणो, सम्मासम्बुद्धसावको।
सोणो अभासि सद्धम्मं, बुद्धसेट्ठस्स सम्मुखा॥368॥
''पञ्चक्खन्धे परिञ्ञाय, भावयित्वान अञ्जसं।
पप्पुय्य परमं सन्तिं, परिनिब्बिस्सत्यनासवो''ति॥369॥... सोणो कुटिकण्णथेरो...।

12. कोसियत्थेरगाथा-

''यो वे गरूनं वचनञ्ञु धीरो, वसे च तम्हि जनयेथ पेमं।
सो भत्तिमा नाम च होति पण्डितो, ञत्वा च धम्मेसु विसेसि अस्स॥370॥

(संस्कृतच्छाया)- ''बहु रात्रिम् एव भगवान्, अभ्यावकाशे अत्यनामयत्।
विहारकुशलः शास्ता, विहारं प्राविक्षत् तदा॥366॥
''संस्तार्य सङ्घाटीम्, शय्यामकल्पत् गौतमः।
सिंहः शैलगुहायामिव, प्रहीणभयभैरवः॥367॥
''ततः कल्याणवाक्करणः सम्यक्सम्बुद्धश्रावकः।
सोण अभाषयत् सद्धर्मम्, बुद्धश्रेष्ठस्य सम्मुखम्॥368॥
''पञ्चस्कन्धान् परिज्ञाय, भावयित्वा अञ्जसम्॥
प्राप्य परमां शान्तिम्, परिनिर्वाष्यत्यनास्रवः''इति॥369॥

12. ''यो वै गुरूणां वचनज्ञः धीरः, वसेत् च तस्मिन् जनयेत् प्रेम।
सो भक्तिमान् नाम च भवति पण्डितः, ज्ञात्वा च धर्मेषु विशेषी स्यात्॥370॥

(हिन्दी)- उस दिन बहुत रात्रि बीतने तक खुले आकाश के नीचे बैठे हुए ही साधना करते रहे। अन्त में साधनादक्ष वे शास्ता वहाँ से उठकर कुटी में पधारे॥366॥

वहाँ अपनी संघाटि विछाकर शासता गौतम ने उसी प्रकार शयन किया जैसे कोई सिंह निर्भय हो कर किसी पर्वत की गुफा में शयन किया करता है॥367॥

(प्रातः) मैं श्रोण मधुर एवं मंगलमय वाणी से भगवान् के सम्मुख सद्धर्म का पाठ सुनाने लगा॥368॥

तब भगवान् ने मेरे विषय में भविष्यवाणी की, कि मैं पाँचों स्कन्धों की वास्तविकता जान कर सरल अष्टांगिक मार्ग की भवना करते हुए परमशान्त पद प्राप्त करके ही निर्वाण प्राप्त करूँगा॥369॥

.....श्रोण कुटिकर्ण स्थविर ने....॥

जो अपने गुरुजनों के वचनों को धैर्यपूर्वक समझता है, उनके अधीन रहने में अपना स्नेह प्रकट करता है। वह पण्डित एवं भक्तिमान् कहलाता है और धर्मों का वैशिष्ट्य जान कर इनका विशेषज्ञ कहलाता है॥370॥

''यं आपदा उप्पतिता उळारा, नक्खम्भयन्ते पटिसङ्खयन्तं।
सो थामवा नाम च होति पण्डितो, ञत्वा च धम्मेसु विसेसि अस्स॥371॥
''यो वे समुद्दोव ठितो अनेजो, गम्भीरपञ्ञो निपुणत्थदस्सी।
असंहारियो नाम च होति पण्डितो, ञत्वा च धम्मेसु विसेसि अस्स॥372॥
''बहुस्सुतो धम्मधरो च होति, धम्मस्स होति अनुधम्मचारी।
सो तादिसो नाम च होति पण्डितो, ञत्वा च धम्मेसु विसेसि अस्स॥373॥
''अत्थञ्च यो जानाति भासितस्स, अत्थञ्च ञत्वान तथा करोति।
अत्थन्तरो नाम स होति पण्डितो, ञत्वा च धम्मेसु विसेसि अस्सा''ति॥374॥

... कोसियो थेरो...।
पञ्चकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – राजदत्तो सुभूतो च, गिरिमानन्दसुमना।
वड्ढो च कस्सपो थेरो, गयाकस्सपवक्कली॥
विजितो यसदत्तो च, सोणो कोसियसव्हयो।
सट्ठि च पञ्च गाथायो, थेरा च एत्थ द्वादसाति॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यम् उत्पन्नाः उदाराः, न स्कभ्नोन्ति प्रतिसङ्खयन्तम्।
सः स्थामवान् नाम च भवति पण्डितः, ज्ञात्वा च धर्मेषु विशेषी स्यात्॥371॥
''यः वै समुद्र इव स्थित अनेजः, गम्भीरप्रज्ञः निपुणार्थदर्शी।
असंहार्यो नाम च भवति पण्डितः, ज्ञात्वा च धर्मेषु विशेषी स्यात्॥372॥
''बहुश्रुतो धर्मधरश्च भवति, धर्मस्य भवति अनुधर्मचारी।
सः तादृशः नाम च भवति पण्डितः, ज्ञात्वा च धर्मेषु विशेषी स्यात्॥373॥
''अर्थञ्च यः जानाति भाषितस्य, अर्थञ्च ज्ञात्वा तथा करोति।
अर्थान्तरो नाम स भवति पण्डितः, ज्ञात्वा च धर्मेषु विशेषी स्यात्''इति॥374॥

तत्रोद्दानम्- *राजदत्तो सुभूतो च, गिरिमानन्दसुमना* ।
वड्ढो च कस्सपो स्थविरः, *गयाकस्सपवक्कली* ॥
*विजितो यसदत्तो च, सोणो कोसिय*सह्वयः।
षष्टिश्च पञ्च गाथाः, स्थविरश्च अत्र द्वादशेति॥ ●

(हिन्दी)- जिसको धर्म-विचार करते समय बड़ी से बड़ी आकस्मिक आपत्ति भी विचलित नहीं कर पातीं, ऐसे सामर्थ्यशाली को ही लोग 'पण्डित' कहते हैं। वही धर्मों का वैशिष्ट्य जान कर इनका विशेषज्ञ कहलाता है॥371॥

जो अपनी जीवनचर्या में स्थिर तथा अचंचल रहता है, गम्भीर प्रज्ञा वाला एवं धर्म का यथार्थतः मर्मज्ञ होता है। वही धर्मों का वैशिष्ट्य जान कर इनका विशेषज्ञ कहलाता है॥372॥

जो बहुश्रुत है और धर्म को जानता है, तथा उस धर्म के अर्थ को जान कर तदनुसार आचरण करता है वह 'धर्मधर' कहलाता है और धर्मों का वैशिष्ट्य जान कर इसका विशेषज्ञ भी कहलाता है॥373॥

जो अर्थ को जानता है, तथा उस अर्थ को जान कर तदनुसार आचरण करता है वह 'अर्थधर' कहलाता है, और धर्मों का वैशिष्ट्य जान कर इसका विशेषज्ञ भी कहलाता है॥374॥.....कोसिय स्थविर ने....॥

इस निपात की सूची- राजदत्त, सुभूत, गिरिमानन्द, सुमन, वृद्ध, नन्दीकाश्यप, गयाकाश्यप, वक्कलि, विजितसेन, यशदत्त, श्रोण कुटिकर्ण एवं कोसिय स्थविर॥ इस निपात में 65 गाथा एवं 12 परिगणित स्थविर हैं॥●

6. छक्कनिपातो

1. उरुवेळकस्सपत्थेरगाथा-

''दिस्वान पाटिहीरानि, गोतमस्स यसस्सिनो।
न तावाहं पणिपतिं, इस्सामानेन वञ्चितो॥375॥
''मम सङ्कप्पमञ्ञाय, चोदेसि नरसारथि।
ततो मे आसि संवेगो, अब्भुतो लोमहंसनो॥376॥
''पुब्बे जटिलभूतस्स, या मे सिद्धि परित्तिका।
ताहं तदा निराकत्वा, पब्बजिं जिनसासने॥377॥
''पुब्बे यञ्ञेन सन्तुट्ठो, कामधातुपुरक्खतो।
पच्छा रागं च दोसं च, मोहं चापि समूहनिं॥378॥
''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं।
इद्धिमा परचित्तञ्ञू, दिब्बसोतञ्च पापुणिं॥379॥

(संस्कृतच्छाया)-1. ''दृष्ट्वा प्रातिहार्याणि, गौतमस्य यशस्विनः।
न तावदहं प्रण्यपतम्, ईर्यमाणाभ्यां वञ्चितः॥375॥
''मम सङ्कल्पमाज्ञाय, अचोदयत् नरसारथिः।
ततो मे आसीत् संवेगः, अद्भुतः लोमहर्षणः॥376॥
''पूर्वे जटिलभूतस्य, यो मे सिद्धिः प्ररिक्तका।
तामहं तदा निराकृत्य, प्राव्राजिषम् जिनशासने॥377॥
''पूर्वे यज्ञेन सन्तुष्टः, कामधातुपुरस्कृतः।
पश्चात् रागञ्च दोषञ्च, मोहञ्चापि समन्वहनम्॥378॥
''पूर्वेनिवासं जानामि, दिव्यचक्षु विशोधितम्।
ऋद्धिमान् परिचित्तज्ञः, दिव्यश्रोतञ्च प्राप्नवम्॥379॥

(हिन्दी)- मैं उन यशस्वी गौतम के चमत्कार देख कर भी उनके सम्मुख नहीं झुका; क्योंकि मेरा हृदय में उनके प्रति ईर्ष्या एवं वृथाभिमान अवशिष्ट था॥375॥
मेरे मन की बात समझ कर उन पुरुषनियन्ता भगवान् ने मुझको प्रेरित किया, तब मुझको व्यग्रता हुई, साथ ही अद्भुत रोमांच भी॥376॥
पहले जब मैं जटिल परिव्राजक था, तब मुझ में अल्प ही सिद्धि थी। तब मैं, उस जटिलों वाली साधना का परित्याग कर इस बुद्धप्रतिपादित धर्म में प्रव्रजित हुआ॥377॥
पहले मैं उस धना में कामभोगों की पूर्ति हेतु किये जाने वाले यज्ञों से ही सन्तुष्ट था; परन्तु अब इस धर्मसाधना द्वारा मैंने अपने चित्तस्थित राग द्वेष एवं मोह को भी विनष्ट कर लिया॥378॥
अब मैं अपने पूर्वजन्मों के प्रति सब कुछ जानता हूँ। मुझको अब विशुद्ध दिव्यचक्षु भी प्राप्त हैं, जिस के कारण मैं ऋद्धिमान् भी हूँ तथा परचित्त के ज्ञान में भी दक्ष हो चुका हूँ। मुझे दिव्य श्रोत्र भी अधिगत है॥379॥

''यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो''ति॥380॥ ... उरुवेळकस्सपो थेरो...।

2. तेकिच्छकारित्थेरगाथा-

''अतिहिता वीहि, खलगता साली।
न च लभे पिण्डं, कथमहं कस्सं॥381॥
''बुद्धमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो।
पीतिया फुटसरीरो होहिसि सततमुदग्गो॥382॥
''धम्ममप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो।
पीतिया फुटसरीरो होहिसि सततमुदग्गो॥383॥
''सङ्घमप्पमेय्यं अनुस्सर पसन्नो।
पीतिया फुटसरीरो होहिसि सततमुदग्गो॥384॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य चार्थाय प्रव्रजितः, अगारादनागारिकम्।
सः मेऽर्थ अनुप्राप्तः, सर्वसंयोजनक्षयः''इति॥380॥

2. ''अतिहताः व्रीहिः, खलगता शालिः।
न च लभेयं पिण्डम्, कथमहम् अकृषम्॥381॥
''बुद्धमप्रमेयम् अनुसरन् प्रसन्नः।
प्रीत्या स्पृष्टशरीरो भविष्यसि सततमुदग्रः॥382॥
''धर्ममप्रमेयम् अनुसरन् प्रसन्नः।
प्रीत्या स्पृष्टशरीरो भविष्यसि सततमुदग्रः॥383॥
''सङ्घमप्रमेयम् अनुसरन् प्रसन्नः।
प्रीत्या स्पृष्टशरीरः भविष्यसि सततमुदग्रः॥384॥

(हिन्दी)- तथा जिस विशेष प्रयोजन से मैं गृहत्याग कर प्रव्रजित हुआ था वह प्रयोजन भी पूर्ण हो गया है। और सभी सांसारिक बन्धनों का क्षय हो गया॥380॥... ऊरुवेलकाश्यप स्थविर ने....॥

घर में धान भी नहीं रखा हुआ है, शालि चावल भी खेत में चले गये हैं। अब तुझको भोजन कैसे मिलेगा? अब मैं कृषि करने योग्य भी कहाँ रह गया॥381॥

तब मैंने अप्रमेय बुद्ध का अनुस्मरण करते हुए उनके प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न की। उस श्रद्धा के कारण मेरा शरीर हर्ष से उत्फुल हो गया और मैं प्रसन्नचित्त होकर रहने लगा॥382॥

तब मैंने अप्रमेय धर्म का अनुस्मरण करते हुए उनके प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न की। उस श्रद्धा के कारण मेरा शरीर हर्ष से उत्फुल हो गया और मैं प्रसन्नचित्त रहने लगा॥383॥

तब मैंने अप्रमेय संघ का अनुस्मरण करते हुए उनके प्रति अपने मन में श्रद्धा उत्पन्न की। उस श्रद्धा के कारण मेरा शरीर हर्ष से उत्फुल हो गया और मैं प्रसन्नचित्त रहने लगा॥384॥

''अब्भोकासे विहरसि, सीता हेमन्तिका इमा रत्यो।
मा सीतेन परेतो विहञ्ञित्थो, पविस त्वं विहारं फुसितग्गळं॥385॥
''फुसिस्सं चतस्सो अप्पमञ्ञायो, ताहि च सुखितो विहरिस्सं।
नाहं सीतेन विहञ्ञिस्सं, अनिञ्जितो विहरन्तो''ति॥386॥ ... तेकिच्छकारी थेरो...।

3. महानागत्थेरगाथा-

''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
परिहायति सद्धम्मा, मच्छो अप्पोदके यथा॥387॥
''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
न विरूहति सद्धम्मे, खेत्ते बीजंव पूतिकं॥388॥
''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
आरका होति निब्बाना, धम्मराजस्स सासने॥389॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अभ्यवकाशे विहरसि, शीताः हैमन्तिका इमा रात्रयः।
मा शीतेन परेतः विहन्यथ, प्रविश त्वं विहारं स्पृष्टार्गलम्॥385॥
''स्प्रक्ष्यामि चतुर अप्रामाण्यान्, तैः हि च सुखितो विहरिष्यामि।
नाहं शीतेन विहन्यिष्यामि, अनिञ्जितः विहरन्''इति॥386॥

3. ''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरवः नोपलभ्यते।
परिहायति सद्धर्मात्, मत्स्य अल्पोदके यथा॥387॥
''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरवो नोपलभ्यते।
न विरोहति सद्धर्मे, क्षेत्रे बीजमिव पूतिकम्॥388॥
''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरव नोपलभ्यते।
आरकात् भवति निर्वाणात्, धर्मराजस्य शासने॥389॥

(हिन्दी)- उस समय किसी ने मुझसे कहा -'अरे! खुले आकाश के नीचे क्यों साधना में बैठे हो। ये हेमन्त ऋतु की ठण्डी रातें हैं। ऐसा न हो कि तुम इस शीत के आघात से मरणभाव को प्राप्त हो जाओ। अच्छा होगा कि तुम विहार में जाकर बैठो और भीतर से अर्गला लगा लो॥385॥

उसका उत्तर देते हुए मैंने कहा -मैं चारों अप्रामाण्यों की साधना करूँगा, उसके प्रभाव से मैं सुखपूर्वक साधना कर सकूँगा, और इस शीत से भी बाधित न होऊँगा। तथा किसी भी बाधा के विना साधना कर सकूँगा॥386॥
.... चिकित्स्यकारी स्थविर ने....॥

जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रति गौरव भाव नहीं है, उसकी सद्धर्म में हानि ही होती है। जैसे अल्प जल वाले सरोवर में मछली कष्ट ही पाती है॥387॥

जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रति गौरव भाव नहीं है, उसकी सद्धर्म में दृढ़ स्थिति नहीं हो पाती; जैसे सड़ा-गला बीज खेत में नहीं उग पाता॥388॥

जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रति गौरव भाव नहीं है, वह इस बुद्धशासन में निर्वाण से दूर ही रह जाता है॥389॥

''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो उपलब्भति।
न विहायति सद्धम्मा, मच्छो बव्होदके यथा॥390॥
''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो उपलब्भति।
सो विरूहति सद्धम्मे, खेत्ते बीजंव भद्दकं॥391॥
''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो उपलब्भति।
सन्तिके होति निब्बानं, धम्मराजस्स सासने''ति॥॥392॥ ... महानागो थेरो...।

4. कुल्लत्थेरगाथा-

''कुल्लो सिवथिकं गन्त्वा, अद्दस इत्थिमुज्झितं।
अपविद्धं सुसानस्मिं, खज्जन्तिं किमिही फुटं॥393॥
''आतुरं असुचिं पूतिं, पस्स कुल्ल समुस्सयं।
उग्घरन्तं पग्घरन्तं, बालानं अभिनन्दितं॥394॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरवो नोपलभ्यते।
न विहायति सद्धर्मे, मत्स्यः बहूदके यथा॥390॥
''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरव उपलभ्यते।
सः विरोहति सद्धर्मे, क्षेत्रे बीजमिव भद्रकम्॥391॥
''यस्मिन् सब्रह्मचारीषु, गौरव उपलभ्यते।
सन्तिके भवति निर्वाणम्, धर्मराजस्य शासने''इति॥392॥

4. ''कुल्यः श्मशानं गत्वा, अद्राक्षीत् स्त्रीमुज्झितम्।
अपविद्धं श्मशाने, खाद्यमानां कृमिभिः स्पृष्टाम्॥393॥
''आतुरम् अशुचिं पूतिम्, पश्य कुल्यः समुच्छ्रयम्।
उदघरन्तं (उक्षरन्तं) प्रघरन्तम् (प्रक्षरन्तम्), बालेभ्य अभिनन्दितम्॥394॥

(हिन्दी)- जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रति गौरव भाव है उसकी सद्धर्म में हानि नहीं होती; जैसे किसी अपरिमित जल वाले सरोवर में मछली सुखपूर्वक रहती है॥390॥

जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रत गौरव भाव है उसकी सद्धर्म में दृढ़ स्थिति ही बनती जाती है जैसे किसी खेत में उगा हुआ शुद्ध बीज वृद्धि ही प्राप्त करता जाता है॥391॥

जिस भिक्षु का अपने सहपाठियों के प्रति गौरव भाव है वह बुद्धशासन में निर्वाण के समीप ही पहुँचता है॥392॥ .... महानाग स्थविर ने....॥

कुल्य स्थविर ने श्मशान में जाकर वहाँ एक स्त्री के शव को देखा। जो कि वहाँ फेंका हुआ था और उस को कीड़े खा रहे थे॥393॥

कुल्य! इस उन्नत राशि को देखो जो रोगी, अपवित्र, दुर्गन्धयुक्त है और जिसमें स्थान स्थान पर मलिन स्राव हो रहा है। यह केवल मूर्खों के लिए ही प्रसन्नताधायक है॥394॥

''धम्मादासं गहेत्वान, ञाणदस्सनपत्तिया।
पच्चवेक्खिं इमं कायं, तुच्छं सन्तरबाहिरं॥395॥
''यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
यथा अधो तथा उद्धं, यथा उद्धं तथा अधो॥396॥
''यथा दिवा तथा रत्तिं, यथा रत्तिं तथा दिवा।
यथा पुरे तथा पच्छा, यथा पच्छा तथा पुरे॥397॥
''पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, न रती होति तादिसी।
यथा एकग्गचित्तस्स, सम्मा धम्मं विपस्सतो''ति॥॥398॥... कुल्लो थेरो...।

5. मालुक्यपुत्तत्थेरगाथा-

''मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मि वानरो॥॥399॥
''यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवट्ठंव बीरणं॥॥400॥

(संस्कृतच्छाया)- ''धर्मादर्शं गृहीत्वा, ज्ञानदर्शनप्राप्तये।
प्रत्यवैक्षम् इमं कायम्, तुच्छं सान्तरबाह्यम्॥395॥
''यथा इदं तथा एतत्, यथा एतत् तथा इदम्।
यथा अधः तथा ऊर्ध्वम्, यथा ऊर्ध्वं तथा अधः॥396॥
''यथा दिवा तथा रात्रिः, यथा रात्रिः तथा दिवा।
यथा पुरे तथा पश्चात्, यथा पश्चात् तथा पुरे॥397॥
''पञ्चाङ्गिकेन तूर्येण, न रतिः भवति तादृशी।
यथा एकाग्रचित्तस्य, सम्यक् धर्मं विपश्यतः'' इति॥398॥

5. ''मनुजस्य प्रमत्तचारिणः, तृष्णा वर्धते मालुका इव।
स प्लवते इतस्ततः, फलमिच्छन्निव वने वानरः॥399॥
''यम् एषा सहते जाल्मी, तृष्णा लोके विषाक्तिका।
शोकाः तस्य प्रवर्धन्ते, अभिवृद्धमिव वीरणम्॥400॥

(हिन्दी)- मैंने ज्ञानमय दृष्टि प्राप्त करने के लिये धर्मरूप दर्पण के आश्रयण से इस काय को देखा तो यह मुझ को अन्तर और बाह्य-दोनों ही स्थानों में निःसार दिखायी दिया॥395॥
जैसा यह वैसा वह, जैसा वह वैसा यह; जैसा नीचे वैसा ऊपर, जैसा ऊपर वैसा नीचे॥396॥
जैसा दिन वैसी रात्रि, जैसी रात्रि वैसा दिन; जैसा आगे वैस पीछे, जैसा पीछे वैसा ही आगे है॥397॥
मुझको पाँच अंगों वाले नृत्य, गायन एवं वाद्य में वैसी रुचि नहीं होती जैसी एकाग्रचित्त होकर धर्म के समीचीन सूक्ष्म चिन्तन में होती है॥398॥.... कुल्य स्थविर ने....॥
प्रमादपूर्वक जीवन यापन करने वाले पुरुष की तृष्णा मालुवा लता के समान बढ़ती ही रहती है॥399॥
वह फल की कामना से इधर उधर उसी प्रकार उछलकूद मचाये रहता है जैसे किसी वृक्ष पर कोई बन्दर उछलकूद मचाया करता है॥400॥

''यो चेतं सहते जम्मिं, तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति, उदबिन्दूव पोक्खरा॥401॥
''तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ, उसीरत्थोव बीरणं।
मा वो नळंव सोतोव, मारो भञ्जि पुनप्पुनं॥402॥
''करोथ बुद्धवचनं, खणो वो मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता॥403॥
''पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो।
अप्पमादेन विज्जाय, अब्बहे सल्लमत्तनो''ति॥404॥... मालुक्यपुत्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''यश्चैतां सहते जाल्मीम्, तृष्णां लोके दुरत्ययाम्।
शोकाः तस्मात् प्रपतन्ति, उदकविन्दुरिव पुष्करात्॥401॥
''तद् वो वदामि भद्रं वः, यावन्तोऽत्र समागताः।
तृष्णायाः मूलं खनथ, उशीरार्थक इव वीरणम्।
मा वो नाडमिव स्रोत इव, मारो भाङ्क्षीत् पुनर्पुनः॥402॥
''कुरुत बुद्धवचनम्, क्षणं वै मा उपात्यगात्।
क्षणातीताः हि शोचन्ति, निरये समर्पिताः॥403॥
''प्रमादो रजः प्रमादः, प्रमादानुपपन्नः रजः।
अप्रमादेन विद्यया, आवृहेत् शल्यमात्मनः''इति॥404॥

(हिन्दी)- जो लोग कठिनाई से दूर हटाये जा सकने योग्य इस नीच तृष्णा के अधीन रहते हैं उनके चित्त से शोक उसी प्रकार टपकता रहता है, जैसे किसी कमलपत्र से जल की बूँद टपकती रहती है॥401॥

अतः मैं आप सब लोगों को, जो यहाँ एकत्र हैं, एक हितकारी उपदेश करता हूँ कि आप लोग इस तृष्णा का मूल उसी प्रकार खोद डालिये जैसे खस के लिये उसकी जड़ को खोद लिया जाता है। ऐसा न हो कि आप लोग उसके कारण मार के द्वारा बार बार उसी प्रकार उखाड़े जायँ जैसे जल का प्रबल वेग नड़ (सरकण्डा) को उखाड़ देता है॥402॥

आप लोग भगवान् बुद्ध के इन आदेशों का पलन करें, इस में एक क्षण का भी विलम्ब न हो। जो यह अवसर चूक जाते हैं उनका नरकपात अवश्यम्भावी है॥403॥

प्रमाद मैली धूल के समान है। प्रमाद करने वाला भी धूल के समान है। अतः अप्रमादपूर्वक विद्या प्राप्त कर उसके माध्यम से अपने पापकण्टक को उखाड़ फैंकिये॥404॥ .... मालुक्यपुत्र स्थविर ने....॥

6. सप्पदासत्थेरगाथा-

''पण्णवीसतिवस्सानि , यतो पब्बजितो अहं।
अच्छरासङ्घातमत्तम्पि, चेतोसन्तिमनज्झगं॥405॥
''अलद्धा चित्तस्सेकग्गं, कामरागेन अट्टितो ।
बाहा पग्गय्ह कन्दन्तो, विहारा उपनिक्खमिं ॥406॥
''सत्थं वा आहरिस्सामि, को अत्थो जीवितेन मे।
कथं हि सिक्खं पच्चक्खं, कालं कुब्बेथ मादिसो॥407॥
''तदाहं खुरमादाय, मञ्चकम्हि उपाविसिं।
परिनीतो खुरो आसि, धमनिं छेत्तुमत्तनो॥408॥
''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ॥409॥

(संस्कृतच्छाया)-6. ''पञ्चविंशतिवर्षाणि, यतः प्रव्रजितोऽहम्।
*अच्छरासङ्घातमात्रमपि, चेतश्शान्तिमनध्यगम्॥405॥
''अलभ्य चित्तस्यैकाग्र्यम्, कामरागेण अर्तितः।
बाहां प्रगह्य कृन्दन्, विहारात् उपन्यक्रमिषम्॥406॥
''शस्त्रं वा आहरिष्यामि, कोऽर्थः जीवितेन मे।
कथं हि शिक्षां प्रत्याख्यायन्, कालं कुर्यात् मा दृशः॥407॥
''तदाहं क्षुरमादाय, मञ्चके उपाविशम्।
परिणीतः क्षुर आसीत्, धमनिं छेत्तुमात्मनः॥408॥
''ततो मे मनसिकारः, योनिश उदपद्यत।
आदीनवः प्रादुरभूत, निर्वेदः समतिष्ठत॥409॥

(हिन्दी)- जब से मैं प्रव्रजित हुआ था तब से पच्चीस वर्ष तक मुझ को चुटकी बजाने जितने समय तक भी चित्त में शान्ति न प्राप्त हो सकी थी॥405॥
चित्त की एकाग्रता न होने से मैं निरन्तर कामराग से त्रस्त होकर एक दिन बाँह पकड़ कर रोता कलपता साधनास्थल से यह सोच कर बाहर निकला॥406॥
अब मेरा जीवित रहने का क्या लाभ? अब मैं कहीं से शस्त्र प्राप्त करूँगा, जिसके सहारे मैं मृत्यु का वरण कर सकूँ। मेरे जैसे साधक शिक्षा का प्रत्याख्यान कर अपना समय व्यर्थ कैसे नष्ट कर सकता है!॥407॥
तब मैं कहीं से छुरा प्राप्त कर आत्महत्या हेतु मंच पर बैठा। फिर मैंने अपनी रक्तवाहिनी धमनियों को काटने के लिये छुरा तैयार किया॥408॥
तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि (वैराग्य) हो गयी॥409॥

* बौ. सं.

''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥410॥ ... सप्पदासो थेरो...।

7. कातियानत्थेरगाथा-

''उट्ठेहि निसीद कातियान, मा निद्दाबहुलो अहु जागरस्सु।
मा तं अलसं पमत्तबन्धु, कूटेनेव जिनातु मच्चुराजा॥411॥
''सेय्यथापि महासमुद्दवेगो, एवं जातिजरातिवत्तते तं।
सो करोहि सुदीपमत्तनो त्वं, न हि ताणं तव विज्जतेव अञ्ञं॥412॥
''सत्था हि विजेसि मग्गमेतं, सङ्गा जातिजराभया अतीतं।
पुब्बापररत्तमप्पमत्तो, अनुयुञ्जस्सु दळ्हं करोहि योगं॥413॥
''पुरिमानि पमुं च बन्धनानि, सङ्घाटिखुरमुण्डभिक्खभोजी।
मा खिड्डारतिं च मा निद्दं, अनुयुञ्जित्थ झाय कातियान॥414॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ततः चित्तं व्यमुञ्चत् मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्''इति॥410॥

7. ''उत्तिष्ठ, निसीद, कात्यायन, मा निद्राबहुलो भव जागृहि।
मा त्वाम् अलसं प्रमत्तबन्धु, कूटेनैव जयतु मृत्युराजः॥411॥
''तद्यथापि महासमुद्रवेगः, एवं जातिजरेऽतिवर्तते त्वाम्।
त्वं कुरु सुदीपमात्मनः त्वम्, न हि त्राणं तव विद्यते इव अन्यम्॥412॥
''शास्ता हि व्यजयत् मार्गमेतम्, सङ्गात् जातिजराभयादतीतम्।
पूर्वापररात्रिमप्रमत्तः, अनुयुञ्जस्व दृढं कुरु योगम्॥413॥
''पुरिमानि प्रमुञ्चस्व बन्धनानि, सङ्घाटिक्षुरमुण्डभिक्षभोजी।
मा क्रीडारतिञ्च मा निद्राम्, अनुयुञ्जस्व ध्याय कात्यायन॥414॥

(हिन्दी)- तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए उस नर्तकी के क्रियाकलाप से अपने मनको हटाया। इस सद्धर्म के उत्तरोत्तर चिन्तन के प्रभाव से एक समय आया कि मैंने धर्मप्रतिपादित तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त रहा॥410॥ .... सर्पदास स्थविर ने....॥

कात्यायन! उठो! तुम अधिक निद्रा लेने वाले न बनो; जागो! ऐसा न हो कि तुम को आलस्य में उन्मत्त देख कर प्रमाद का पक्षधर मृत्युराज धोखे से तुम पर विजय प्राप्त कर ले॥411॥

जैसे समुद्र का वेग (ज्वारभाटा) प्रबल कष्टकारी होता है; उसी प्रकार तुम अपने जन्म एवं जरा के वेग को भी समझो। अतः तुम पहले से ही अपने रक्षा-स्थान की व्यवस्था कर लो। तुम्हारा कोई अन्य शरणस्थल दृष्टिगोचर नहीं होता॥412॥

शास्ता ही ऐसा मार्ग जानते हैं जो जाति तथा जरा के भय को अतिक्रान्त कर सकता है। अतः तुम रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में सावधान हो कर उनके द्वारा उपदिष्ट योगमार्ग में दृढ़ता से लग जाओ॥413॥

पूर्व के बन्धनों को त्याग दो, केवल संघाटी, मुण्डित शिर एवं भिक्षा के भोजन पर सन्तुष्ट रहो। सांसारिक क्रीड़ारतियों के प्रपंच में न फंसो, कात्यायन! तुम अपना प्रमुख कर्तव्य समझकर ध्यानाभ्यास में लगे रहो॥414॥

''झायाहि जिनाहि कातियान, योगक्खेमपथेसु कोविदोसि।
पप्पुय्य अनुत्तरं विसुद्धिं, परिनिब्बाहिसि वारिनाव जोति॥415॥
''पज्जोतकरो परित्तरंसो, वातेन विनम्यते लताव।
एवं पि तुवं अनादियानो, मारं इन्दसगोत्त निद्धुनाहि।
सो वेदयितासु वीतरागो, कालं कङ्ख इधेव सीतिभूतो''ति॥416॥.. कातियानो थेरो...।

8. मिगजालत्थेरगाथा-

''सुदेसितो चक्खुमता, बुद्धेनादिच्चबन्धुना।
सब्बसंयोजनातीतो, सब्बवट्टविनासनो॥417॥
''निय्यानिको उत्तरणो, तण्हामूलविसोसनो।
विसमूलं आघातनं, छेत्वा पापेति निब्बुतिं॥418॥
''अञ्ञाणमूलभेदाय , कम्मयन्तविघाटनो।
विञ्ञाणानं परिग्गहे, ञाणवजिरनिपातनो॥419॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ध्याय जय कात्यायन, योगक्षेमपथेषु कोविदोऽसि।
प्राप्य अनुत्तरां विशुद्धिम्, परिनिर्वास्यसि वारिण इव ज्योतिः॥415॥
''प्रज्योतकरः प्ररिक्तरश्मिः, वातेन विनम्यते लतापि।
एवमपि त्वम् अनुपादानः, मारम् इन्द्रसगोत्र! निर्धूनु।
सः वेदयितृषु वीतरागः, कालं काङ्क्षस्व इधैव शीतिभूतः''इति॥416॥

8. ''सुदेशितः चक्षुष्मता, बुद्धेनादित्यबन्धुना।
सर्वसंयोजनातीतः, सर्ववर्तविनाशनः॥417॥
''नैर्याणिकः उत्तारकः, तृष्णामूलविशोषकः।
विषमूलम् आघातनम्, छित्वा प्राप्नोति निर्वृतिम्॥418॥
''अज्ञानमूलभेदाय, कर्मयन्त्रविघाटकः।
विज्ञानानां परिग्रहे, ज्ञानवज्रनिपातकः॥419॥

(हिन्दी)- कात्यायन ! तुम ध्यानाभ्यास करो, तुम तो योगक्षेम पथ के कुशल ज्ञाता हो। अतः तुम उस में अद्वितीय सिद्धि प्राप्त कर उसी प्रकार परिनिर्वृत हो जाओ, जैसे जल से अग्नि शान्त हो जाती है॥415॥

सूर्य अपनी रश्मियों से सब को प्रकाशित करता है। वनस्थ लताएँ भी वायु के कारण झुक जाती हैं। इसी तरह हे इन्द्रसगोत्र! तुम भी अपने चित्तमलों को नष्ट कर अपरिग्रह व्रत रखते हुए निर्वाण प्राप्त कर सब विषयों में वीतराग रहते हुए समय की प्रतीक्षा करो॥416॥ .... कात्यायन स्थविर ने....॥

आदित्यबन्धु एवं चक्षुष्मान् भगवान् बुद्ध द्वारा भली प्रकार से उपदेश प्राप्त पुद्गल सभी सांसारिक बन्धनों से दूर रहता हुआ सभी प्रकार के चक्रों का विनाश कर॥417॥

मुक्तिद्वार तक पहुँचने वाला, तृष्णा को समूल उखाड़ कर फेंक देने वाला, तथा विषस्वरूप वध स्थल को उजाड़ कर निर्वाण तक पहुँच जाता है॥418॥

अज्ञान के समूल उच्छेदन हेतु कर्मों के नाश में उत्साही होकर तथा विज्ञानों के परिग्रह पर ज्ञानवज्र का पात करने वाला॥419॥

''वेदनानं विञ्ञापनो, उपादानप्पमोचनो।
भवं अङ्गारकासुंव, ञाणेन अनुपस्सनो ॥420॥
''महारसो सुगम्भीरो, जरामच्चुनिवारणो।
अरियो अट्ठङ्गिको मग्गो, दुक्खूपसमनो सिवो॥421॥
''कम्मं कम्मं ति ञत्वान, विपाकं च विपाकतो।
पटिच्चुप्पन्नधम्मानं, यथावालोकदस्सनो।
महाखेमङ्गमो सन्तो, परियोसानभद्दको''ति॥422॥ ... मिगजालो थेरो...।

9. पुरोहितपुत्तजेन्तत्थेरगाथा-

''जातिमदेन मत्तोहं, भोगइस्सरियेन च।
सण्ठानवण्णरूपेन, मदमत्तो अचारिहं॥423॥
''नात्तनो समकं कञ्चि, अतिरेकं च मञ्ञिसं।
अतिमानहतो बालो, पत्थद्धो उस्सितद्धजो॥424॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वेदनानां विज्ञापकः, उपादानप्रमोचकः।
भवम् अङ्गारकार्षुरिव, ज्ञानेन अनुपश्यकः॥420॥
''महारसः सुगम्भीरः, जरामृत्युनिवारकः।
आर्योऽष्टाङ्गिकः मार्गः, दुःखोपशमनः शिवः॥421॥
''कर्म कर्मेति ज्ञात्वा, विपाकञ्च विपाकतः।
प्रतीत्युत्पन्नधर्माणाम्, यथावदालोकदर्शनः।
महाक्षेमङ्गमः शान्तः, पर्यवसानभद्रकः''इति॥422॥

9. ''जातिमदेन मत्तोऽहम्, भोगऐश्वर्याभ्याञ्च।
संस्थानवर्णरूपेण, मदमत्तोऽचारिषमहम्॥423॥
''नात्मनः समकं कञ्चित्, अतिरेकं चामन्यम्।
अतिमानहतो बालः, प्रस्तब्ध उच्छ्रितध्वजः॥424॥

(हिन्दी)- वेदनाओं का अनुभव कराने वाला, उपादानों से मुक्त कराने वाला भवरूप प्रज्जवलित अङ्गारों को ज्ञान के द्वारा दिखाने वाला॥420॥

विपुल रस वाला, गम्भीर, जन्म-मृत्यु का निवारक यह आर्य आष्टांगिक मार्ग सर्वदुःखोपशामक एवं मंगलमय है॥421॥

कर्म को कर्म ही समझने वाले, विपाक से विपाक को जान कर, प्रतीत्युत्पन्न धर्मों को यथार्थतः जानने वाले, अतिशय कल्याणमार्ग की ओर जाने वाले शान्त पुरुष का अन्त मंगलमय होता है॥422॥

.... मृगजाल स्थविर ने....॥

मैं पहले (गृहस्थाश्रम) में जातिद, भोग, ऐश्वर्यमद, सुष्ठ शरीरमद एवं रूपमद से उन्मत्त हो कर लोक में विचरण करता था॥423॥

उस समय मैं अपने समान भी किसी को नहीं समझता था, अपने से बढ़कर समझने की बात तो बहुत दूर ही थी। इस प्रकार अतिमान में गर्वित मैं मूर्ख दूसरों के प्रति कठोर हो कर आत्मप्रशंसा करता हुआ घूमता था॥424॥

''मातरं पितरञ्चापि, अञ्ञेपि गरुसम्मते।
न कञ्चि अभिवादेसिं, मानत्थद्धो अनादरो॥425॥
''दिस्वा विनायकं अग्गं, सारथीनं वरुत्तमं।
तपन्तमिव आदिच्चं, भिक्खुसङ्घपुरक्खतं॥426॥
''मानं मदञ्च छड्डेत्वा, विप्पसन्नेन चेतसा।
सिरसा अभिवादेसिं, सब्बसत्तानमुत्तमं॥427॥
''अतिमानो च ओमानो, पहीना सुसमूहता।
अस्मिमानो समुच्छिन्नो, सब्बे मानविधा हता''ति॥428॥

... जेन्तो पुरोहितपुत्तो थेरो...।

10. सुमनत्थेरगाथा-

''यदा नवो पब्बजितो, जातिया सत्तवस्सिको।
इद्धिया अभिभोत्वान, पन्नगिन्दं महिद्धिकं॥429॥

(संस्कृतच्छाया)- ''मातरं पितरञ्चापि, अन्यानपि गुरुसम्मतान्।
न कञ्चित् अभ्यवादयम्, मानस्तब्ध अनादरः॥425॥
''दृष्ट्वा विनायकम् अग्रम्, सारथीनां वरमुत्तमम्।
तपन्तमिव आदित्यम्, भिक्षुसङ्घपुरष्कृतम्॥426॥
''मानं मदञ्च त्यक्त्वा, विप्रसन्नेन चेतसा।
शिरसा अभ्यवादिषम्, सर्वसत्त्वानामुत्तम्॥427॥
''अतिमानश्च अवमानः, प्रहीणाः सुसमवहताः।
अस्मिमानः समुच्छिन्नः, सर्वे मानविधाः हताः''इति॥428॥

10. ''यदा नव प्रव्रजितः, जात्या सप्तवर्षकः।
ऋद्ध्या अभिभूय, पन्नगेन्द्रं महर्धिकम्॥429॥

(हिन्दी)- यहाँ तक कि मैं उस समय अपने माता-पिता तथा गुरुजनों को भी प्रणाम आदि द्वारा सम्मान नहीं देता था। अपितु उनका कभी-कभी अनादर करता था॥425॥

पुरुषनियन्त्रकों में श्रेष्ठ, सूर्य के समान प्रकाशमान, भिक्षुसंघ के मध्य विराजमान, उत्तम पथ प्रदर्शक भगवान् बुद्ध के दर्शन कर॥426॥

अपना पूर्व वृथाभिमान एवं मद का परित्याग कर प्रसन्नचित्त से मैंने उन सभी प्राणियों में श्रेष्ठ के चरणों में मस्तक रख कर प्रणाम किया॥427॥

उन के इस पुण्यदर्शन के प्रभाव से, मेरे मान, अतिमान, अवमान आदि पूर्णतः विनष्ट हो गये। मेरा अहंकार भी विगलित हो गया। इस प्रकार मेरे सभी प्रकार के मानमद नष्ट हो गये॥428॥.... पुरोहितपुत्र स्थविर ने....॥

जब मैं नया नया ही प्रव्रजित हुआ था, मेरी आयु उस समय सात वर्ष की थी। महान् ऋद्धिसम्पन्न पन्नगेन्द्र को भी ऋद्धिप्रभाव से पराजित कर॥429॥

''उपज्झायस्स उदकं, अनोतत्ता महासरा।
आहरामि ततो दिस्वा, मं सत्था एतदब्रवि''॥430॥
''सारिपुत्त इमं पस्स, आगच्छन्तं कुमारकं।
उदककुम्भमादाय, अज्झत्तं सुसमाहितं॥431॥
''पासादिकेन वत्तेन, कल्याणइरियापथो।
सामणेरोनुरुद्धस्स, इद्धिया च विसारदो॥432॥
''आजानीयेन आजञ्ञो, साधुना साधुकारितो।
विनीतो अनुरुद्धेन, कतकिच्चेन सिक्खितो॥433॥
''सो पत्वा परमं सन्तिं, सच्छिकत्वा अकुप्पतं।
सामणेरो स सुमनो, मा मं जञ्ञाति इच्छती''ति॥434॥ ... सुमनो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''उपाध्यायस्य उदकम्, अनवतप्तात् महासरसः।
आहरामि ततो दृष्ट्वा, मां शास्ता एतदब्रवीत्॥430॥
''*सारिपुत्र!* इमं पश्य, आगच्छन्तं कुमारकम्।
उदककुम्भमादाय, अध्यात्मं सुसमाहितम्॥431॥
''प्रासादिकेन वृत्तेन, कल्याणेर्यापथः।
श्रामणेरोऽनुरुद्धस्य, ऋद्ध्याश्च विशारदः॥432॥
''आजानीयेन आजन्यः, साधुना साधुकारितः।
विनीतोऽनुरुद्धेन, कृतकृत्येन शिक्षितः॥433॥
''सः प्राप्य परमां शान्तिम्, साक्षात्कृत्य अकम्प्यताम्।
श्रामणेरः स सुमनः, मा मां जानीयादिति इच्छति''इति॥434॥

(हिन्दी)- उपाध्याय के आदेश से मानसरोवर के समीप अनवतप्तदह से पवित्र जल लेकर आ रहा था, तब मुझ को देख कर भगवान् ने कहा—॥430॥

सारिपुत्र! जल का घड़ा लेकर यहाँ आते हुए इस कुमार को देखो, यह अध्यात्म से भलीभाँति समाहित है॥431॥

यह अपनी श्रद्धामय चेष्टाओं से कल्याणकारी ईयापथ वाला है। यह अनुरुद्ध भिक्षु का श्रामणेर है, तथा स्वयं भी अतिशय ऋद्धिसम्पन्न है॥432॥

उच्च जाति वाले भगवान् बुद्ध ने इस को दीक्षा दी। साधु (सारिपुत्र) ने इस को धर्मशिक्षा दी। अनुरुद्ध ने इसको विनय सिखाया। इस प्रकार यह इस धर्म में पूर्ण शिक्षित हो कर अब कृतकृत्य हो गया॥433॥

यह पूर्ण एवं अविचल शान्तिपद का साक्षात्कार कर अपने इस ऋद्धिमय प्रदर्शन से मानो कहना चाहता है कि मुझको केवल श्रामणेर सुमन ही न समझा जाय॥434॥

11. न्हातकमुनित्थेरगाथा-

''वातरोगाभिनीतो त्वं, विहरं काानने वने।
पविद्धगोचरे लूखे, कथं भिक्खु करिस्ससि''॥435॥
''पीतिसुखेन विपुलेन, फरित्वान समुस्सयं।
लूखम्पि अभिसम्भोन्तो, विहरिस्सामि काननेे॥436॥
''भावेन्तो सत्त बोज्झङ्गे, इन्द्रियानि बलानि च।
झानसोखुम्मसम्पन्नो, विहरिस्सं अनासवो॥437॥
''विप्पमुत्तं किलेसेहि, सुद्धचित्तं अनाविलं।
अभिण्हं पच्चवेक्खन्तो, विहरिस्सं अनासवो॥438॥
''अज्झत्तञ्च बहिद्धा च, ये मे विज्जिंसु आसवा।
सब्बे असेसा उच्छिन्ना, न च उप्पज्जरे पुन॥439॥

(संस्कृतच्छाया)-11. ''वातरोगाभिनीतः त्वम्, विहरन् काानने वने।
प्रविष्टगोचरे रूक्षे, कथं भिक्षो! करिष्यसि॥435॥
''प्रीतिसुखेन विपुलेन, स्फुरित्वा समुच्छ्रयम्।
रूक्षमपि अभिसम्भवन्, विहरिष्यामि काननेे॥436॥
''भावयन् सप्त बोध्यङ्गानि, इन्द्रियाणि बलानि च।
ध्यानसौक्ष्म्यसम्पन्नः, विहरिष्यामि अनास्रवः॥437॥
''विप्रमुक्तं क्लेशेभ्यः, शुद्धचित्तम् अनाविलम्।
अभीक्ष्णं प्रत्यावेक्षन्, विहरिष्यामि अनास्रवः॥438॥
''अध्यात्मञ्च बहिर्द्धा च, ये मे अविद्यन्त आस्रवाः।
सर्वे अशेषा उच्छिन्नाः, न च उत्पद्यन्ते पुनः॥439॥

(हिन्दी)- किसी ने मुझ से पुछा- तुम वात रोग से पीड़ित रहते हो और वह वीहड़ वन में रूखे सूखे भोजन के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलेगा, भिक्षु! तब कैसे साधना करोगे?॥435॥

मैंने उत्तर दिया- मैं विपुल प्रीतिसुख का अपने हृदय में अनुभव करके सम्मुख आने वाले समस्त संकटसमूह को सहन करता हुआ उस रूक्ष भोजन से ही जीवनयापन कर लूँगा। इस प्रकार मैं यहाँ साधनारत रहूँगा॥436॥

मैं सात बोध्यङ्ग, इन्द्रिय एवं बल की भावना करता हुआ, ध्यानाभ्यास की सूक्ष्मता से सम्पन्न एवं अनास्रव हो कर साधना करूँगा॥437॥

इस प्रकार मैं क्लेशों से विमुक्त होकर पवित्र, शुद्ध चित्त से निरन्तर सूक्ष्म चिन्तन करता हुआ साधना करूँगा॥438॥

मुझमें आध्यात्मिक एवं बाह्य- जितने भी आस्रव विद्यमान थे वे सभी समूल उच्छिन्न हो चुके हैं, और अब उत्पन्न नहीं होंगे॥439॥

''पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।
दुक्खक्खयो अनुप्पत्तो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥440॥ ... न्हातकमुनित्थेरो...।

12. ब्रह्मदत्तत्थेरगाथा-

''अक्कोधस्स कुतो कोधो, दन्तस्स समजीविनो।
सम्मदञ्ञा विमुत्तस्स, उपसन्तस्स तादिनो॥441॥
''तस्सेव तेन पापियो, यो कुद्धं पटिकुज्झति।
कुद्धं अप्पटिकुज्झन्तो, सङ्गामं जेति दुज्जयं॥442॥
''उभिन्नमत्थं चरति, अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा, यो सतो उपसम्मति॥443॥
''उभिन्नं तिकिच्छन्तं तं, अत्तनो च परस्स च।
जना मञ्ञन्ति बालोति, ये धम्मस्स अकोविदा॥444॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पञ्चस्कन्धाः परिज्ञाताः, तिष्ठन्ति छिन्नमूलकाः।
दुःखक्षयोऽनुप्राप्तः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः''इति॥440॥

12. ''अक्रोधस्य कुतः क्रोधः, दान्तस्य समजीविनः।
सम्यगाज्ञाय विमुक्तस्य, उपशान्तस्य *तादिन*ः॥441॥
''तस्मादेव तेन पापीयः, यः क्रुद्धं प्रतिक्रुध्यति।
क्रुद्धम् अप्रतिक्रुध्यन्, सङ्ग्रामं जयति दुर्जयम्॥442॥
''उभयोरर्थं चरति, आत्मनश्च परस्य च।
परं सङ्कुपितं ज्ञात्वा, यः स्मृत उपशाम्यति॥443॥
''उभयोः तितिक्षान्तं तम्, आत्मनश्च परस्य च।
जनाः मन्यन्ते बाल इति, ये धर्मस्य अकोविदाः॥444॥

(हिन्दी)- मैंने पाँचों स्कन्धों की वास्तविकता जान ली है, उन का मैं समूल उच्छिन्न कर चुका हूँ। मेरा दुःख भी सर्वथा क्षीण हो चुका है, अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥440॥ .... स्नातकमुनिस्थविर ने....॥

जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है, जो सभी प्राणियों के प्रति समान भाव रखता है, जो सम्यग्ज्ञान प्राप्त कर विमुक्त हो चुका है, अतएव शान्त एवं ज्ञानी है, ऐसे क्रोधहीन साधक को किसी पर क्रोध कैसे आ सकता है॥441॥

उस से भी बढ़ कर वह पापी है जो क्रुद्ध के प्रति क्रोध करता है। जो क्रुद्ध के प्रति भी क्रोध नहीं करता, उसने मानो दुर्जेय संग्राम भी जीत लिया है॥442॥

वह अपने और पराये -दोनों के ही प्रयोजन का साधक (पूरक) है जो दूसरे को क्रुद्ध जान कर भी स्वयं उस पर क्रोध नहीं करता॥443॥

जिसने अपनी और दूसरे की चिकित्सा कर ली। परन्तु जो धर्म के ज्ञाता नहीं हैं, वे उसकी इस क्रिया के कारण, उसको मूर्ख ही समझते हैं॥444॥

''उप्पज्जे ते सचे कोधो, आवज्ज ककचूपमं।
उप्पज्जे चे रसे तण्हा, पुत्तमंसूपमं सर॥445॥
''सचे धावति चित्तं ते, कामेसु च भवेसु च।
खिप्पं निग्गण्ह सतिया, किट्ठादं विय दुप्पसुं''ति॥446॥ ... ब्रह्मदत्तो थेरो...।

13. सिरिमण्डत्थेरगाथा-

''छन्नमतिवस्सति , विवटं नातिवस्सति।
तस्मा छन्नं विवरेथ, एवं तं नातिवस्सति॥447॥
''मच्चुनाब्भहतो लोको, जराय परिवारितो।
तण्हासल्लेन ओतिण्णो, इच्छाधूपायितो सदा॥448॥
''मच्चुनाब्भहतो लोको, परिक्खित्तो जराय च।
हञ्ञति निच्चमत्ताणो, पत्तदण्डोव तक्करो॥449॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उत्पद्येत ते सचेत् क्रोधः, आवृज्य क्रकचोपमाम्।
उत्पद्येत चेत् रसे तृष्णाः, पुत्रमांसोपमां स्मर॥445॥
''सचेत् धावति चित्तं ते, कामेषु च भवेषु च।
क्षिप्रं निगृह्राण स्मृत्या, कृष्टादिव दुर्पशुम्''इति॥446॥

13. ''छन्नमतिवर्षति, विवृतं नातिवर्षति।
तस्मात् छन्नं वृणीष्व, एवं तं नातिवर्षति॥447॥
''मत्युनाभिहतो लोकः, जरया परिवारितः।
तृष्णाशल्येन अवतीर्णः, इच्छाधूपायितः सदा॥448॥
''मृत्युनाभिहतो लोकः, परिक्षिप्तो जरया च।
हन्यते नित्यमत्राणः, प्राप्तदण्ड इव तस्करः॥449॥

(हिन्दी)- यदि तुम को भी क्रोध आये तो (मज्झिमनिकाय में आगत) आरे की उपमा का दृष्टान्त स्मरण कर लेना। यदि तुझ को कभी किसी इन्द्रियविषय में तृष्णा उत्पन्न हो तो (अंगुत्तरनिकाय में पठित) पुत्रमांस के दृष्टान्त का स्मरण कर लेना॥445॥

यदि तुम्हारा चित्त कभी कामभोगों या भव के लिये दौड़ता है तो इसका तत्काल ही स्मृति से दृढ़ता के साथ निग्रह कर लेना चाहिये जैसे खेत को चरते हुए किसी दुष्ट पशु का निग्रह किया जाता है॥446॥

.... ब्रह्मदत्त स्थविर ने....॥

खुला पापकर्म उतना दुःखदायी नहीं होता, जितना छिपकर किया हुआ (छन्न) पाप दुःखदायी हुआ करता है। अतः अपने छिपे हुए पाप को लोगों के सम्मुख प्रकट कर दो, तब वह उतना दुःखदायी न होगा॥447॥

यह लोक मृत्यु के द्वारा आक्रान्त है, जरा से परिवृत् है, तृष्णारूप कण्टक से विद्ध है, तथा कामनारूप धूप से सदा आवृत है॥448॥

यह लोक मृत्यु से आक्रान्त है, जरा से परीक्षिप्त है अतः वह सदा स्वयं को वैसे ही असुरक्षित अनुभव करता है, जैसे राजा से दण्ड पाया हुआ तस्कर अपने को सर्वत्र एवं सर्वथा असुरक्षित मानता है॥449॥

''आगच्छन्तग्गिखन्धाव, मच्चु ब्याधि जरा तयो।
पच्चुग्गन्तुं बलं नत्थि, जवो नत्थि पलायितुं॥450॥
''अमोघं दिवसं कयिरा, अप्पेन बहुकेन वा।
यं यं विजहते रत्तिं, तदूनं तस्स जीवितं॥451॥
''चरतो तिट्ठतो वापि, आसीनसयनस्स वा।
उपेति चरिमा रत्ति, न ते कालो पमज्जितुं''ति॥452॥ ... सिरिमण्डो थेरो...।

14. सब्बकामित्थेरगाथा-

''द्विपादकोयं असुचि, दुग्गन्धो परिहीरति।
नानाकुणपपरिपूरो, विस्सवन्तो ततो ततो॥453॥
''मिगं निलीनं कूटेन, बळिसेनेव अम्बुजं।
वानरं विय लेपेन, बाधयन्ति पुथुज्जनं॥454॥

(संस्कृतच्छाया)- ''आगच्छन्ति अग्निस्कन्धा इव, मृत्युः व्याधिः जरा त्रयः।
प्रत्युद्गन्तुं बलं नास्ति, जवो नास्ति पलायितुम्॥450॥
''अमोघं दिवसं कुर्यात्, अल्पेन बहुकेन वा।
यां यां विजहाति रात्रिम्, तत् न्यूनं तस्य जीवितम्॥451॥
''चरतः तिष्ठितः वापि, आसीनशयनस्य वा।
उपैति चरमा रात्रिः, न ते कालः प्रमाद्यतुम्''इति॥452॥

14. ''द्विपादकोऽयम् अशुचिः, दुर्गन्धः परिह्रियते।
नानाकुणपपरिपूरः, विस्रवन् ततस्ततः॥453॥
''मृगं निलीनं कूटेन, बडिशेनेव अम्बुजम्।
वानरमिव लेपेन, बाध्यते पृथक्जनम्॥454॥

(हिन्दी)- क्योंकि अग्निस्कन्ध के समान मृत्यु, व्याधि एवं बुढापा -इन तीनों को सम्मुख देख कर इनके प्रतीकार में वह स्वयं को सर्वथा असमर्थ पाता है, तथा वहाँ से भाग जाने की शक्ति भी उसके पास नहीं है॥450॥

वह थोड़े या बहुत से अपना दिन ही व्यर्थ खोता है; क्योंकि वह जिस जिस रात्रि को व्यतीत करता है उससे उसका जीवन कम होता जाता है॥451॥

अतः चलते हुए, खड़े रहते हुए, बैठे हुए या सोये हुए साधक की जो रात्रि व्यतीत होती है, वह समय उपेक्षा करने योग्य नहीं है॥452॥ .... श्रीमण्ड स्थविर ने....॥

यह दो पैरों वाला प्राणी सर्वथा अपवित्र, दुर्गन्धयुक्त अत एव दूर से ही त्यागने योग्य है। यह विविध मलों से पूर्ण तथा इसमें जहाँ तहाँ से मैले पदार्थ बहते रहते हैं॥453॥

जैसे कोई छिपा हुआ मृग धोखे से पकड़ा जाता है, या कोई मछली बडिस (काँटे) से पकड़ में आ जाती है, या कोई वानर लेप से पकड़ में आ जाता है वैसे ही मूर्खजन भी बन्धन में बँध जाते हैं॥454॥

''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
पञ्च कामगुणा एते, इत्थिरूपस्मि दिस्सरे॥455॥
''ये एता उपसेवन्ति, रत्तचित्ता पुथुज्जना।
वड्ढेन्ति कटसिं घोरं, आचिनन्ति पुनब्भवं॥456॥
''यो चेता परिवज्जेति, सप्पस्सेव पदा सिरो।
सोमं विसत्तिकं लोके, सतो समतिवत्तति॥457॥
''कामेस्वादीनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो।
निस्सटो सब्बकामेहि, पत्तो मे आसवक्खयो''ति॥458॥ ... सब्बकामित्थेरो...।

छक्कनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – उरुवेळकस्सपो च, थेरो तेकिच्छकारि च।
महानागो च कुल्लो च, मालुक्यो सप्पदासको॥

(संस्कृतच्छाया)- ''रूपाः शब्दाः रसाः गन्धाः, स्प्रष्टव्याश्च मनोरमाः।
पञ्च कामगुणाः एते, स्त्रीरूपे दृश्यन्ते॥455॥
''ये एतान् उपसेवन्ति, रत्तचित्ताः पृथक्जनाः।
वर्धयन्ति कटसीवं(श्मशानम्) घोरम्, आचिन्वन्ति पुनर्भवम्॥456॥
''यश्चैतान्परिवर्जयति, सर्पस्येव पदे शिरः।
स इमां विषक्तिकां लोके, स्मृतः समतिवर्तते॥457॥
''कामेस्वादीनवं दृष्ट्वा, नैष्क्रम्यं दृष्ट्वा क्षेमतः।
निसृतः सर्वकामेभ्यः, प्राप्तः मे आस्रवक्षयः''इति॥458॥

तत्रोद्दानम्– *उरुवेळकस्सपो* च, स्थविरः *तेकिच्छकारि* (चिकित्सकारी) च।
महानागो च कुल्लो च, मालुक्यो सप्पदासको॥

(हिन्दी)- रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्प्रष्टव्य- ये सभी पाँचों कामगुण मनोरम होते हैं। जो किसी स्त्री के रूप में दिखाई देते हैं॥455॥

जो मूर्खजन इनमें रक्तचित्त होकर इनका उपभोग करते हैं वे अपने लिये भयंकर मृत्युस्थान का ही आह्वान करते हैं तथा एक प्रकार से अपना पुनर्जन्म एकत्र करते हैं॥456॥

जो बुद्धिमान् इन कामभोगों का सर्प के शिर पर पैर न रखने के समान परिवर्जन करता रहता है, वह इस लोक में स्मृतिपूर्वक तृष्णारहित होकर विचरण करता हुआ इस को पार कर जाता है॥457॥

वह मैं इन कामभोगों में पापदोष देखता हुआ, अपने हित के लिये निष्काम भावना की साधना करता हुआ सभी कामभोगों के बन्धन से मुक्त होकर आज आश्रवक्षय प्राप्त कर चुका हूँ॥458॥ .... सर्वकामी स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस निपात में वर्णित स्थविरों की सूची- उरुवेलकाश्यप स्थविर, चिकित्स्यकारी, महानाग, कुल्य स्थविर, मालुक्यपुत्र, सर्पदास, ।

कातियानो मिगजालो, जेन्तो सुमनसव्हयो।
न्हातमुनि ब्रह्मदत्तो, सिरिमण्डो सब्बकामी च।
गाथायो चतुरासीति, थेरा चेत्थ चतुद्दसाति॥

7. सत्तकनिपातो

1. सुन्दरसमुद्दत्थेरगाथा-

''अलङ्कता सुवसना, मालधारी विभूसिता।
अलत्तककतापादा, पादुकारुय्ह वेसिका॥459॥
''पादुका ओरुहित्वान, पुरतो पञ्जलीकता।
सा मं सण्हेन मुदुना, म्हितपुब्बं अभासथ''॥460॥
''युवासि त्वं पब्बजितो, तिट्ठाहि मम सासने।
भुञ्ज मानुसके कामे, अहं वित्तं ददामि ते।
सच्चं ते पटिजानामि, अग्गिं वा ते हरामहं॥461॥

(संस्कृतच्छाया)- *कातियानो मिगजालो, जेन्तो सुमन*सह्वयो।
न्हातमुनि ब्रह्मदत्तो, सिरिमण्डो सब्बकामी च।
गाथाः चतुरशीतिम्, स्थविरः चात्र चतुर्दशेति॥ ●

1. ''अलङ्कृता सुवसना, मालाधारिणी विभूषिता।
अलक्तककृतौपादौ, पादुकारूढा वेश्या॥459॥
''पादुकान् अवरुह्य, पुरतः प्राञ्जलीकृता।
सा मां श्लक्ष्णेन मृदुना, स्मितपूर्वम् अभाषत॥460॥
''युवासि त्वं प्रव्रजितः, तिष्ठ मम शासने।
भुङ्ग्धि मानुषकान् कामान्, अहं वित्तं ददामि त्वम्।
सत्यं त्वां प्रतिजानामि, अग्निं वा त्वां हराम्यहम्॥461॥

(हिन्दी)- कात्यायन, मृगजाल, पुरोहितपुत्र जयन्त, सुमन, स्नातक, ब्रह्मदत्त, श्रीमण्ड एवं सर्वकामिस्थविर॥ इस निपात में 14 स्थविर एवं 84 गाथाएँ संकलित हैं॥ ●

आभूषण एवं वस्त्रों से अलंकृत, माला धारण की हुई, आलता के रंग से रंगे हुए पैरों वाली, सुन्दर जूते पहने हुई कोई वेश्या थी॥459॥

वह सुन्दर जूते उतार कर, हाथ जोड़ कर मुझसे मधुरवाणी में मुस्कराते हुए बोली-॥460॥

तुम युवावस्था में ही प्रव्रजित हो गये हो! तुम मेरी बात मानो और मानवोपलब्ध कामभोगों का उपभोग करो। मैं तुम को उसके लिये धन दूँगी। मैं तुम्हारे घर का कार्य भी सम्हाल लूँगी। यह मैं तुम को वचन देती हूँ॥461॥

''यदा जिण्णा भविस्साम, उभो दण्डपरायना।
उभोपि पब्बजिस्साम, उभयत्थ कटग्गहो''॥462॥
''तञ्च दिस्वान याचन्तिं, वेसिकं पञ्जलीकतं।
अलङ्कतं सुवसनं, मच्चुपासंव ओड्डितं॥463॥
''ततो मे मनसीकारो, योनिसो उदपज्जथ।
आदीनवो पातुरहु, निब्बिदा समतिट्ठथ ॥464॥
''ततो चित्तं विमुच्चि मे, पस्स धम्मसुधम्मतं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥465॥ ... सुन्दरसमुद्दो थेरो...।

2. लकुण्डकभद्दियत्थेरगाथा-

परे अम्बाटकारामे, वनसण्डम्हि भद्दियो।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, तत्थ भद्दोव झायति ॥466॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यदा जीर्णौ भविष्याव, उभौ दण्डपरायणौ।
उभौ अपि प्रव्रजिष्याव, उभयत्र जयग्रहः॥462॥
''ताञ्च दृष्ट्वा याचन्तीम्, वेश्यां प्राञ्जलीकृताम्।
अलङ्कृतां सुवसनाम्, मृत्युपाशमिव अवक्षिप्तम् (अवड्यैतम्)॥463॥
''ततो मे मनसिकारः, योनिश उदपद्यत।
आदीनवः प्रादुरभूत्, निर्वेदः सम्प्रतिष्ठत्॥464॥
''ततः चित्तं व्यमुञ्चत् मे, पश्य धर्मसुधर्मताम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्'' इति॥465॥
2. ''परे अम्बाटकारामे, वनखण्डे भद्रियः।
समूल तृष्णामवब्यूढः, तत्र भद्र इव ध्यायति॥466॥

(हिन्दी)- जब हम वृद्ध हो कर लाठी का सहारा पकड़ लेंगे तब हम दोनों साथ ही प्रव्रजित होंगे- यह हमारा तुम्हारा पणबन्ध (शर्त) रहेगा॥462॥
इस प्रकार हाथ जोड़कर मुझसे निवेदन करती हुई उस अलंकृत वेश्या को मैंने साक्षात् सम्मुखस्थ मृत्यु बन्धन के समान देखा॥463॥
तब मैंने अपने मन में सूक्ष्मता से यह विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पाप है और उसी समय मुझको उससे ग्लानि (वैराग्य) हो गयी॥464॥
तदनन्तर मैंने सद्धर्म की श्रेष्ठता का चिन्तन करते हुए उस नर्तकी के क्रियाकलाप से अपने मनको हटाया। इस सद्धर्म के उत्तरोत्तर चिन्तन के प्रभाव से एक समय आया कि मैंने धर्मप्रतिपादित तीनों विद्याओं का अधिगम कर लिया तथा मैं बुद्धोपदिष्ट धर्म के अभ्यास में निरन्तर प्रवृत्त हो गया॥465॥.... सुन्दरसमुद स्थविर ने....॥
किसी वनषण्ड में स्थित अम्बाटकाराम में साधना करता हुआ मैं भद्रिय स्थविर अपनी तृष्णा का समूल उच्छेद कर आगे मंगलमय ध्यानाभ्यास में प्रवृत्त हुआ॥466॥

''रमन्तेके मुदिङ्गेहि, वीणाहि पणवेहि च।
अहं च रुक्खमूलस्मिं, रतो बुद्धस्स सासने॥467॥
''बुद्धो चे मे वरं दज्जा, सो च लब्भेथ मे वरो।
गण्हेहं सब्बलोकस्स, निच्चं कायगतं सतिं॥468॥
''ये मं रूपेन पामिंसु, ये च घोसेन अन्वगू।
छन्दरागवसूपेता, न मं जानन्ति ते जना॥469॥
''अज्झत्तं च न जानाति, बहिद्धा च न पस्सति।
समन्तावरणो बालो, स वे घोसेन वुय्हति॥470॥
''अज्झत्तं च न जानाति, बहिद्धा च विपस्सति।
बहिद्धा फलदस्सावी, सोपि घोसेन वुय्हति॥471॥

(संस्कृतच्छाया)- ''रमन्तैके मृदङ्गैः, वीणाभिः पणवैश्च।
अहञ्च वृक्षमूले, रतः बुद्धस्य शासने॥467॥
''बुद्धः चेन्मे वरं दद्यात्, सश्च लभेत मे वरः।
गृहणीयां सर्वलोकस्य, नित्यं कायगतां स्मृतिम्॥468॥
''ये मं रूपेण परामृशुम्, ये च घोषेण अनुगः।
छन्दरागवशोपेताः, न मां जानन्ति ते जनाः॥469॥
''अध्यात्मञ्च न जानाति, बहिर्द्धाश्च न पश्यति।
समन्तावरणः बालः, स वै घोषेण उह्यते॥470॥
''अध्यात्मञ्च न जानाति, बहिर्द्धाश्च विपश्यति।
बहिर्द्धाः फलदर्शी, स अपि घोषेण उह्यते॥471॥

(हिन्दी)- लोक में कुछ लोग मृदंग, वीणा, तबला आदि संगीत-साधनों में सुख मानते हैं; परन्तु मैं वृक्षों के नीचे बुद्धोपदिष्ट धर्म की साधना में ही रत हूँ॥467॥

भगवान् बुद्ध यदि मुझे अभीष्ट वर दें और वह मुझको मिल जाय तो समस्त संसार की कायगता स्मृति को ग्रहण कर लूँ॥468॥

जो मुझको अपने रूप से या अपने शब्द से अपनी ओर आकृष्ट करना चाहते हैं वे अपने राग के वशीभूत होने के कारण, मेरे चित्त की वास्तविक स्थिति को नहीं जानते॥469॥

जो उसकी आन्तरिक वास्तविकता को नहीं जानता, केवल बाह्य रूप रंग को नहीं देखता है, वह अज्ञानवृत्त मूर्ख ही शब्दों से मुग्ध किया जा सकता है॥470॥

जो उसकी आन्तरित वास्तविकता नहीं जानता, केवल उसके बाह्य रूप रंग को देखता है तथा उसी के परिणाम में अपना हित समझने वाला ही ऐसे शब्दों से मुग्ध किया जा सकता है॥471॥

''अज्झत्तं च पजानाति, बहिद्धा च विपस्सति।
अनावरणदस्सावी, न सो घोसेन वुय्हती''ति॥472॥ ... लकुण्डकभद्दियो थेरो...।

3. भद्दत्थेरगाथा-

''एकपुत्तो अहं आसिं, पियो मातु पियो पितु।
बहूहि वतचरियाहि, लद्धो आयाचनाहि च॥473॥
''ते च मं अनुकम्पाय, अत्थकामा हितेसिनो।
उभो पिता च माता च, बुद्धस्स उपनामयुं''॥474॥
''किच्छा लद्धो अयं पुत्तो, सुखुमालो सुखेधितो।
इमं ददाम ते नाथ, जिनस्स परिचारकं''॥475॥
''सत्था च मं पटिग्गय्ह, आनन्दं एतदब्रवि।
'पब्बाजेहि इमं खिप्पं, हेस्सत्याजानियो अयं॥476॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अध्यात्मञ्च प्रजानाति, बहिर्धाश्च विपश्यति।
अनावरणदर्शी, न सः घोषेण उह्यते''इति॥472॥

3. ''एकपुत्रोऽहम् आसम्, प्रियो मातुः प्रियः पितुः।
बहुभिः व्रतचर्याभिः, लब्ध आयाचनाभिश्च॥473॥
''तौ च माम् अनुकम्पया, अर्थकामौ हितैषिणौ।
उभौ पिता च माता च, बुद्धम् उपानामयताम्॥474॥
''कृच्छ्रात् लब्धोऽयं पुत्रः, सुकुमारः सुखेधितः।
इमं ददाम ते नाथ, जिनस्य परिचारकम्॥475॥
''शास्ता च मां प्रतिग्राह्य, आनन्दम् एतदब्रवीत्।
प्रव्राजय इमं क्षिप्रम्, भविष्यत्यजानीयोऽयम्॥476॥

(हिन्दी)- जो आन्तरिक वास्तविकता को जानता है, तथा बाह्य रूप रंग को भी देखता है। ऐसा ज्ञानीपुरुष उक्त रूप या शब्द से मुग्ध नहीं हो सकता॥472॥ .... लकुण्टकभद्रिय स्थविर ने....॥

मैं अपने माता पिता का एकाकी पुत्र था, अतः मैं माता एवं पिता- दोनों को ही बहुत अधिक प्रिय था; क्योंकि उन्होंने बहुत व्रतचर्याओं तथा अनेक देवताओं की मनौतियों के बाद मुझको पाया था॥473॥

अपना प्रयोजन तथा हित इसी में सिद्ध होते देखते हुए, वे दोनों मुझ पर अनुकम्पा करते हुए मुझको भगवान बुद्ध के सम्मुख ले गये और उनसे यह निवेदन किया-॥474॥

भन्ते! हम ने यह पुत्र बहुत कठिनाई से पाया है और इस को बहुत स्नेह से पाला पोसा है। इस को हम लोग, आप की सेवा हेतु भेंट करते हैं॥475॥

शास्ता ने मुझको मेरे माता-पिता से लेकर आनन्द को आदेश दिया-इसको शीघ्र ही प्रव्रज्या दो। यह बहुत सुयोग्य एवं शिक्षित बनेगा॥476॥

''पब्बाजेत्वान मं सत्था, विहारं पाविसी जिनो।
अनोग्गतस्मिं सूरियस्मिं, ततो चित्तं विमुच्चि मे॥477॥
''ततो सत्था निराकत्वा, पटिसल्लानवुट्ठितो।
'एहि भद्दा'ति मं आह, सा मे आसूपसम्पदा॥478॥
''जातिया सत्तवस्सेन, लद्धा मे उपसम्पदा।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, अहो धम्मसुधम्मता''ति॥479॥ ... भद्दो थेरो...।

4. सोपाकत्थेरगाथा-

''दिस्वा पासादछायायं, चङ्कमन्तं नरुत्तमं।
तत्थ नं उपसङ्कम्म, वन्दिस्सं पुरिसुत्तमं॥480॥
''एकंसं चीवरं कत्वा, संहरित्वान पाणयो।
अनुचङ्कमिस्सं विरजं, सब्बसत्तानमुत्तमं॥481॥

(संस्कृतच्छाया)- ''प्रव्राज्य मां शास्ता, विहारं प्राविशत् जिनः।
अनुदगते सूर्ये, ततः चित्तं व्यमुञ्चत् मे॥477॥
''ततः शास्ता निराकृत्य, प्रतिसंल्लायनाद् उत्थितः।
एहि भद्रा! इति मामाह, सः मे आसीदुपसम्पदा॥478॥
''जात्या सप्तवर्षेण, लब्धा मे उपसम्पदा।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, अहो धर्मसुधर्मता''इति॥479॥

4. ''दृष्ट्वा प्रासादछायायाम्, चंक्राम्यन्तं नरोत्तमम्।
तत्र तम् उपसङ्क्रम्य, अवन्दिष्ट पुरुषोत्तमम्॥480॥
''एकांशं चीवरं कृत्वा, संहृत्य पाणी।
अनुचङ्क्रमिष्यामि विरजम्, सर्वसत्त्वेभ्यः उत्तमम्॥481॥

(हिन्दी)- इस प्रकार शास्ता मुझ को प्रव्रज्या दीक्षा दिलवाकर अपनी साधना कुटी में पधार गये। उधर आगामी सूर्योदय से पूर्व ही मेरा चित्त, साधना के प्रभाव से, आश्रवों से मुक्त हो गया॥477॥

तब शास्ता ने साधनाभ्यास से उठ कर मुझ को 'भद्र! इधर आओ' कहते हुए अपने पास बुलाया। शास्ता के ये मंगलमय वचन ही मेरी उपसम्पदा का रूप ग्रहण कर गये॥478॥

मैं जब जन्म से सता वर्ष का ही था, तभी मुझको उपसम्पदा मिल गयी थी। तदनन्तर मैंने तीन विद्याएँ भी अधिगत कर लीं- यह सब कुछ इस सद्धर्म का ही प्रबल प्रताप था॥479॥.... भद्दो स्थविर ने....॥

प्रासाद की छाया में चंक्रमण करते हुए उन नरश्रेष्ठ को देख कर मैंने, उन के सम्मुख जा कर, हाथ जोड़ कर प्रणाम किया॥480॥

और, एक कन्धे पर चीवर रख कर हाथ जोड़ते हुए मैंने निवेदन किया कि भन्ते! अब मैं सभी प्राणियों के लिये हितकर एवं निर्दोष चंक्रमण करूँगा॥481॥

''ततो पञ्हे अपुच्छि मं, पञ्हानं कोविदो विदू।
अच्छम्भी च अभीतो च, ब्याकासिं सत्थुनो अहं॥482॥
''विस्सज्जितेसु पञ्हेसु, अनुमोदि तथागतो।
भिक्खुसङ्घं विलोकेत्वा, इममत्थं अभासथ''॥483॥
''लाभा अङ्गानं मगधानं, येसायं परिभुञ्जति।
चीवरं पिण्डपातञ्च, पच्चयं सयनासनं॥484॥
''अज्जतग्गे मं सोपाक, दस्सनायोपसङ्कम।
एसा चेव ते सोपाक, भवतु उपसम्पदा''॥485॥
''जातिया सत्तवस्सोहं, लद्धान उपसम्पदं।
धारेमि अन्तिमं देहं, अहो धम्मसुधम्मता''ति॥486॥ ... सोपाको थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''ततः प्रश्नान् अपृच्छत् माम्, प्रश्नानां कोविदः विदुः।
अस्तम्भी च अभीतश्च, व्याकुर्वम् शास्तुः अहम्॥482॥
''विसर्जितेषु प्रश्नेषु, अन्वमोदत तथागतः।
भिक्षुसङ्घं विलोक्य, इममर्थम् अभाषत्॥483॥
''लाभा अङ्गानां मगधानाम्, येष्वयं परिभुनक्ति।
चीवरं पिण्डपातञ्च, प्रत्ययं शयनासनम्॥484॥
''अद्यतोऽग्रे मां सोपाक!, दर्शनायोपसङ्क्रम।
एषा चैव ते सोपाक!, भवतु उपसम्पदा॥485॥
''जात्या सप्तवर्षोऽहम्, लब्ध्वा उपसम्पदाम्।
धारयामि अन्तिमं देहम्, अहो धर्मसुधर्मता"इति॥486॥

(हिन्दी)- तब प्रश्न करने में कुशल शास्ता ने मुझसे इस विषय में अनेक प्रश्न किये। और मैंने भी, विना किसी हिचक के, निर्भीकता से शास्ता के सभी प्रश्नों का उत्तर दिया॥482॥

मेरे द्वारा प्रश्नों का उत्तर देने के बाद, शास्ता ने मेरे उन उत्तरों का अनुमोदन किया। तथा भिक्षुसंघ की ओर देखते हुए शास्ता ने ये वचन कहे-॥483॥

अंग एवं मगध प्रदेश को बहुत पुण्य प्राप्त हुआ है, जहाँ यह भिक्षु भिक्षाचर्या करता हुआ जीवनयापन कर रहा है। उनके द्वारा इसको दिया हुआ चीवर, पिण्डपात, पथ्यौषध, शयनासन, इसके प्रति किया गया प्रत्युत्थान एवं मैत्रीपूर्ण आचरण- यह सभी कुछ उन के लिये लाभप्रद ही होगा॥484॥

श्वपाक! आज से तुम जब चाहो तब मेरे दर्शन हेतु आ सकते हो। श्वपाक! यही तुम्हारी उपसम्पदा मानी जायगी॥485॥

जन्म से सात वर्ष का मैं यह उपसम्पदा प्राप्त कर यह अन्तिम देह धारण किये हुए हूँ- यह सब कुछ इस सद्धर्म का ही प्रभाव है॥486॥ .....श्वापक स्थविर ने....॥

5. सरभङ्गत्थेरगाथा-

''सरे हत्थेहि भञ्जित्वा, कत्वान कुटिमच्छिसं।
तेन मे सरभङ्गोति, नामं सम्मुतिया अहु॥487॥
''न मय्हं कप्पते अज्ज, सरे हत्थेहि भञ्जितुं।
सिक्खापदा नो पञ्ञत्ता, गोतमेन यसस्सिना॥488॥
''सकलं समत्तं रोगं, सरभङ्गो नाद्दसं पुब्बे।
सोयं रोगो दिट्ठो, वचनकरेनातिदेवस्स॥489॥
''येनेव मग्गेन गतो विपस्सी, येनेव मग्गेन सिखी च वेस्सभू।
ककुसन्धकोणागमनो च कस्सपो, तेनञ्जसेन अगमासि गोतमो॥490॥
''वीततण्हा अनादाना, सत्त बुद्धा खयोगधा।
येहायं देसितो धम्मो, धम्मभूतेहि तादिभि॥491॥

(संस्कृतच्छाया)-5. ''शरान् हस्ताभ्यां भञ्जित्वा, कृत्वा कुटीमाषिष (आवसं)।
तेन मे शरभङ्ग इति, नाम सम्मत्या अभूत्॥487॥
''न मह्यं कल्पते अद्य, शरान् हस्ताभ्यां भञ्जितुम्।
शिक्षापदानि नो प्रज्ञप्तानि, गौतमेन यशस्विन॥488॥
''सकले समाप्ता: रोगा:, स्वरभङ्गो नापश्यं पूर्वम्।
सोऽयं रोग: दृष्ट:, वचनकरेणातिदेवस्य॥489॥
''येनैव मार्गेण गत: विपश्यी, येनैव मार्गेण शिखी च विश्वभू:।
ककुसन्धकोणागमनश्च काश्यप:, तेनाञ्जसेनागमत् गौतम:॥490॥
''वीततृष्णा अनादाना:, सप्तबुद्धा: क्षयावगाढा:।
यैरयं देशित: धर्म:, धर्मभूतै: तादृशै:॥491॥

(हिन्दी)- मैंने कभी सरकण्डों को हाथ से तोड़ तोड़ कर उनसे अपनी कुटी का निर्माण किया था, अतः साधारण जनता मुझ को 'सरभंग' नाम से सम्बोधन करने लगी॥487॥

अब मेरे लिये अपने हाथ से सरकण्डे उखाड़ना या तोड़ना निषिद्ध है; क्योंकि हमारे लिये गुरू यशस्वी गौतम ने ऐसा ही शिक्षापद दिया है॥488॥

सभी रोग समाप्त हो गये। पहले कभी यह सरभंग (स्वरभंग) रोग देखा था। अब यह रोग देवोत्तम का आज्ञापालन करने वाले में देखा जाता है॥489॥

जिस साधना मार्ग से विपश्यी बुद्ध, तथा जिस मार्ग से शिखी या विश्वभू बुद्ध या ककुसन्ध बुद्ध, कोणागमन बुद्ध एवं काश्यप बुद्ध ने साधना की; उसी सरल साधना मार्ग से भगवान् गौतम साधना कर रहे हैं॥490॥

ये सातों ही बुद्ध तृष्णारहित एवं अपरिग्रह हो कर परिनिर्वाण को प्राप्त हुए हैं। जिन्होंने धर्मज्ञानी हो कर इस धर्म की देशना की है॥491॥

''चत्तारि अरियसच्चानि, अनुकम्पाय पाणिनं।
दुक्खं समुदयो मग्गो, निरोधो दुक्खसङ्खयो॥492॥
''यस्मिं निवत्तते दुक्खं, संसारस्मिं अनन्तकं।
भेदा इमस्स कायस्स, जीवितस्स च सङ्खया।
अञ्ञो पुनब्भवो नत्थि, सुविमुत्तोम्हि सब्बधी''ति॥493॥ ... सरभङ्गो थेरो...।

सत्तकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – सुन्दरसमुद्दो थेरो, थेरो लकुण्डभद्दियो।
भद्दो थेरो च सोपाको, सरभङ्गो महाइसि।
सत्तके पञ्चका थेरा, गाथायो पञ्चतिंसतीति॥

8. अट्ठकनिपातो

1. महाकच्चायनत्थेरगाथा-

''कम्मं बहुकं न कारये, परिवज्जेय्य जनं न उय्यमे।
सो उस्सुक्को रसानुगिद्धो, अत्थं रिञ्चति यो सुखाधिवाहो॥494॥

(संस्कृतच्छाया)- ''चत्वारि आर्यसत्यानि, अनुकम्पया प्राणीसु।
दुःखं समुदयः मार्गः, निरोधः दुःखसंक्षयः॥492॥
''यस्मिन् निवर्तते दुःखम्, संसारे अनन्तकम्।
भेदात् अस्य कायस्य, जीवितस्य च संक्षयात्॥
अन्यः पुनर्भवः नास्ति, सुविमुक्तोऽस्मि सर्वधीभ्यः"इति॥493॥

तत्रोद्दानम्- *सुन्दरसमुद्दो* स्थविरः, स्थविरः *लकुण्डभद्दियो*।
भद्दो स्थविरश्च *सोपाको*, *सरभङ्गो* महाऋषिः।
सप्तके पञ्चकाः स्थविराः, गाथा पञ्चत्रिंशतीति॥ ●

1. ''कर्म बहुकं न कारयेत्, परिवर्जयेत् जनं न उद्यमात्।
स उत्सुकः रसानुगृद्धः, अर्थं रिनक्ति यः सुखाधिवाहः॥494॥

(हिन्दी)- जिन्होंने प्राणियों पर अनुकम्पा कर इस आर्यसत्यचतुष्टय का उपदेश किया- दुःख, दुःखसमुदय, दुःख का निरोध, एवं उस निरोध का उपायभूत अष्टांगिक मार्ग॥492॥

जिस संसार के अस्तित्व में आने पर अनन्त दुःख उद्भूत हो जाते हैं, इस काया के नष्ट हो जाने पर तथा जीवन के समाप्त हो जाने पर, मेरा अब पुनर्जन्म नहीं होगा; क्योंकि अब सभी प्रकार के चित्त-दोषों से मुक्त हो चुका हूँ॥493॥.... सरभंग स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस निपात में वर्णित भिक्षुओं के वचनों की सूची— सुन्दरसमुद्र, लकुण्डभद्दिय, भद्र, श्वपाक एवं शरभंग स्थविर॥ इस सप्तक निपात में 5 भिक्षु तथा उनके द्वारा कथित 35 गाथाएँ संकलित हैं॥ ●

साधारण जनों को बहुत से कार्य एक साथ नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा पुरुष कर्म करता हुआ उन की वासना में फँस कर अपने प्रयोजन को छोड़कर लौकिक सुख प्राप्त करने का प्रयास करने लगता है॥494॥

''पङ्कोति हि नं अवेदयुं, यायं वन्दनपूजना कुलेसु।
सुखुमं सल्लं दुरुब्बहं, सक्कारो कापुरिसेन दुज्जहो॥495॥
''न परस्सुपनिधाय, कम्मं मच्चस्स पापकं।
अत्तना तं न सेवेय्य, कम्मबन्धूहि मातिया॥496॥
''न परे वचना चोरो, न परे वचना मुनि।
अत्ता च नं यथावेदि, देवापि नं तथा विदू॥497॥
''परे च न विजानन्ति, मयमेत्थ यमामसे।
ये च तत्थ विजानन्ति, ततो सम्मन्ति मेधगा॥498॥
''जीवते वापि सप्पञ्ञो, अपि वित्तपरिक्खयो।
पञ्ञाय च अलाभेन, वित्तवापि न जीवति॥499॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पङ्क इति हि तम् अवेदयत्, येयं वन्दनपूजना कुलेषु।
सूक्ष्मं शल्यं दुरुद्वह्यम्, सत्कार: कापुरुषेण दुर्जह:॥495॥
''न परस्योपनिधाय, कर्म मर्त्यस्य पापकम्।
आत्मना तन्न सेवेत, कर्म बन्धव: हि माणवा:॥496॥
''न परेषां वचनात् चौर:, न परेषां वचनात् मुनि:।
आत्मा च तं यथा वेत्ति, देवापि तं तथा विदु:॥497॥
''परे न च विजानन्ति, वयमत्र यंस्याम:।
ये च तत्र विजानन्ति, तत: शाम्यन्ति मेधगा:॥498॥
''जीविते वापि सप्रज्ञ:, अपि वित्तपरिक्षय:।
प्रज्ञायाश्च अलाभेन, वित्तवानपि न जीवति॥499॥

(हिन्दी)- गृहस्थों के घरों से प्राप्त होने वाली भिक्षु की पूजा-अर्चना 'पंक' कहलाती है। यह सूक्ष्म शस्त्र है। कायर लोग इस सत्कार का मोह छोड़ नहीं पाते॥495॥

दूसरों को उनके कर्म पूर्ण करने का वचन नहीं देना चाहिये। यह भले मनुष्य के लिये एक तरह का पाप ही है। स्वयं भी ऐसे कर्मों से दूर ही रहे, जिन में दूसरों को सहायक बनाना आवश्यक हो जाय॥496॥

न दूसरे के कहने से चोर बने, न दूसरे के कहने से मुनि बनने का अभिनय करे। यह यथार्थतः जैसा है देवता भी उस को वैसा ही जानते हैं॥497॥

दूसरे लोग नहीं जानते कि एक न एक दिन सभी को मृत्युभाव प्राप्त होना है। जो बुद्धिमान् विवेकी जन इस बात को समझते हैं, उनके वर्तमान कलह (मेधग) शान्त हो ही जाते हैं॥498॥

यदि कोई प्रज्ञावान् है तो भले ही उस का धन नष्ट हो जाय, वह जीवित रहेगा। परन्तु यदि कोई धनवान् है, परन्तु उस के पास प्रज्ञा नहीं है तो वह धनवान् हो कर भी असामयिक मृत्यु को वरण कर सकता है॥499॥

''सब्बं सुणाति सोतेन, सब्बं पस्सति चक्खुना।
न च दिट्ठं सुतं धीरो, सब्बं उज्झितुमरहति॥500॥
''चक्खुमास्स यथा अन्धो, सोतवा बधिरो यथा।
पञ्ञवास्स यथा मूगो, बलवा दुब्बलोरिव।
अथ अत्थे समुप्पन्ने, सयेथ मतसायिकं''ति॥501॥ ... महाकच्चायनो थेरो...।

2. सिरिमित्तत्थेरगाथा-

''अक्कोधनोनुपनाही, अमायो रित्तपेसुणो।
स वे तादिसको भिक्खु, एवं पेच्च न सोचति॥502॥
''अक्कोधनोनुपनाही, अमायो रित्तपेसुणो।
गुत्तद्वारो सदा भिक्खु, एवं पेच्च न सोचति॥503॥
''अक्कोधनोनुपनाही , अमायो रित्तपेसुणो।
कल्याणसीलो सो भिक्खु, एवं पेच्च न सोचति॥504॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सर्वं शृणोति श्रोतेन, सर्वं पश्यति चक्षुषा।
न च दृष्टं श्रुतं धीरः, सर्वं उज्झितुमर्हति॥500॥
''चक्षुष्मान् स्यात् यथा अन्धः, श्रोतवान् बधिरो यथा।
प्रज्ञावान् स्यात् यथा मूकः, बलवान् दुर्बल इव।
अथ अर्थे समुत्पन्ने, शयीत मृतशायिकम्"इति॥501॥
''अक्रोधनोऽनुपनाही, अमायः रिक्तपैशुन्यः।
स वै तादृशकः भिक्षुः, एवं प्रेत्य न शोचति॥502॥

2. ''अक्रोधनोऽनुपनाही, अमायः रिक्तपैशुन्यः।
गुप्तद्वारः सदा भिक्षुः, एवं प्रेत्य न शोचति॥503॥
''अक्रोधनोऽनुपनाही, अमायः रिक्तपैशुन्यः।
कल्याणशीलः सः भिक्षुः, एवं प्रेत्य न शोचति॥504॥

(हिन्दी)- कान से सब कुछ सुना जाता है, नेत्र से सब कुछ देखा जाता है। धैर्यवान् पुरुष को अपना यह सब कुछ देखा या सुना जाना छोड़ नहीं देना चाहिये॥500॥

परन्तु साधक को लौकिक व्यवहार में नेत्रों वाला होने पर भी अन्धे के समान, कानों वाला होने पर भी बहरे के समान, बुद्धिमान् होने पर भी गूँगे के समान, बलवान् होने पर भी दुर्बल के समान तथा प्रयोजन पड़ने पर मृत शव के समान पड़े रहना चाहिये॥501॥ .... महाकात्यायन स्थविर ने....॥

ऐसे भिक्षु जो क्रोध, द्वेष माया तथा चुगलखोरी न करनेवाला रहा हो, मरने पर अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता॥502॥

ऐसा भिक्षु जो क्रोधी, द्वेषी, मायावी, शठ एवं पैशुन्ययुक्त न हो, मरने पर ऐसा इन्द्रियसंयमी अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता॥503॥

ऐसा भिक्षु जो क्रोधी, द्वेषी, मायावी, शठ एवं पैशुन्ययुक्त चुगलखोर न हो, मरने पर ऐसा अच्छे शील वाला अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता॥504॥

''अक्कोधनोनुपनाही, अमायो रित्तपेसुणो।
कल्याणमित्तो सो भिक्खु, एवं पेच्च न सोचति॥505॥
''अक्कोधनोनुपनाही , अमायो रित्तपेसुणो।
कल्याणपञ्ञो सो भिक्खु, एवं पेच्च न सोचति॥506॥
''यस्स सद्धा तथागते, अचला सुप्पतिट्ठिता।
सीलं च यस्स कल्याणं, अरियकन्तं पसंसितं॥507॥
''सङ्घे पसादो यस्सत्थि, उजुभूतं च दस्सनं।
'अदलिद्दो'ति तं आहु, अमोघं तस्स जीवितं॥508॥
''तस्मा सद्धं च सीलं च, पसादं धम्मदस्सनं।
अनुयुञ्जेथ मेधावी, सरं बुद्धान सासनं''ति॥509॥ ... सिरिमित्तो थेरो...।

3.महापन्थकत्थेरगाथा- ''यदा पठममद्दक्खिं, सत्थारमकुतोभयं।
ततो मे अहु संवेगो, पस्सित्वा पुरिसुत्तमं ॥510॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अक्रोधनोऽनुपनाही, अमायः रिक्तपैशुन्यः।
कल्याणमित्रं सः भिक्षुः, एवं प्रेत्य न शोचति॥505॥
''अक्रोधनोऽनुपनाही, अमायः रिक्तपैशुन्यः।
कल्याणप्रज्ञः सः भिक्षुः, एवं प्रेत्य न शोचति॥506॥
''यस्य श्रद्धा तथागते, अचला सुप्रतिष्ठिता।
शीलञ्च यस्य कल्याणम्, आर्यकान्तं प्रसंशितम्॥507॥
''सङ्घे प्रसादः यस्यास्ति, ऋजुभूतञ्च दर्शनम्।
'अदरिद्रः' इति तमाहु, अमोघं तस्य जीवितम्॥508॥
''तस्मात् श्रद्धाञ्च शीलञ्च, प्रसादं धर्मदर्शनम्।
अनुयुञ्जेत मेधावी, स्मरन् बुद्धानां शासनम्"इति॥509॥
3. ''यदा प्रथममद्राक्षम्, शास्तारमकुतोभयम्।
ततो मे अभूत् संवेगः, दृष्ट्वा पुरुषोत्तमम्॥510॥

(हिन्दी)- ऐसा भिक्षु जो क्रोधी, द्वेषी, मायावी, शठ एवं पैशुन्ययुक्त न हो, अच्छे मित्र वाला हो, मरने पर अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता॥505॥

ऐसा भिक्षु जो क्रोधी, द्वेषी, मायावी, शठ एवं पैशुन्ययुक्त न हो, कल्याणप्रज्ञ वाला हो, मरने पर अपने विषय में कोई चिन्ता नहीं करता॥506॥

जिस भिक्षु की तथागत में स्थिर एवं प्रतिष्ठित श्रद्धा हो, जिस का शील शुभ हो, श्रेष्ठ हो प्रशस्त हो॥507॥

जिस भिक्षु की संघ में श्रद्धा हो, जिसकी धर्मदृष्टि सरल हो, लोग उस को 'अदरिद्र' कहते हैं। उस का जीवन सफल है॥508॥

अतः प्रत्येक बुद्धिमान् भिक्षु को अपनी श्रद्धा, शील तथा धर्मदृष्टि और बुद्धोपदेशों का स्मरण करते हुए शुभ कर्म ही करना चाहिये॥509॥... श्रीमित्र स्थविर ने....॥

जब मैंने प्रथम बार निर्भीक शास्ता के दर्शन किये तो मुझको उन पुरुष श्रेष्ठ का दर्शन होते ही तत्क्षण संसार के प्रति वैराग्य हो गया॥510॥

''सिरिं हत्थेहि पादेहि, यो पणामेय्य आगतं।
एतादिसं सो सत्थारं, आराधेत्वा विराधये॥511॥
''तदाहं पुत्तदारं च, धनधञ्ञं च छड्डयिं।
केसमस्सूनि छेदेत्वा, पब्बजिं अनगारियं॥512॥
''सिक्खासाजीवसम्पन्नो, इन्द्रियेसु सुसंवुतो।
नमस्समानो सम्बुद्धं, विहासिं अपराजितो॥513॥
''ततो मे पणिधी आसि, चेतसो अभिपत्थितो।
न निसीदे मुहुत्तं पि, तण्हासल्ले अनूहते॥514॥
''तस्स मेवं विहरतो, पस्स वीरियपरक्कमं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥515॥

(संस्कृतच्छाया)- ''श्रीं हस्ताभ्यां पादाभ्याम्, यः प्रणामेत् आगताम्।
एतादृशं स शास्तारम्, आराध्य विराधयेत॥511॥
''तदाहं पुत्रदाराञ्च, धनधान्यञ्च अत्याक्षम्।
केशश्मश्रूनि छेदयित्वा, प्राव्रजम् अनागारिकम्॥512॥
''शिक्षासाजीवसम्पन्नः, इन्द्रियेषु सुसंवृतः।
नमस्यमानः सम्बुद्धम्, व्यहरम् अपराजितः॥513॥
''ततो मे प्रणिधि आसीत्, चेतस अभिप्रार्थितः।
न निसीदेयं मूहुर्तमपि, तृष्णाशल्ये अनवहृते॥514॥
''तस्य मैवं विहरतः, पश्य वीर्यपराक्रमम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥515॥

(हिन्दी)- जिस के हाथ एवं पैर अतिशय शोभासम्पन्न हैं, ऐसे तथागत के दर्शन के लिये आते ही प्रणाम कर संसार के प्रति अपनी असमर्थता प्रकट कर देनी चाहिये॥511॥

तब मैंने अपने पुत्र, स्त्री, धन, धान्य आदि सब कुछ त्याग दिया। और केश एवं दाढ़ी मूँछ मुँडवा कर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली और घरवार सदा के लिये छोड़ दिया॥512॥

और भिक्षुनियमपद्धति पर आचरण करता हुआ तथा इन्द्रियों से संयत होकर भगवान् बुद्ध को प्रणाम कर मैंने विना हारे थके हुए धर्मसाधना में मन लगाया॥513॥

तथा मैंने अपने मन में दृढ़संकल्प एवं निश्चय किया कि मैं अपनी तृष्णा का समूल उच्छेद किये विना एक क्षण भी शान्त नहीं बैठूँगा॥514॥

इस प्रकार दृढ़ साधना करते हुए मेरे साधना-बल का प्रभाव देखिये कि बुद्धोपदेश का पालन करते हुए मुझको शीघ्र ही तीन विद्याएँ अधिगत हो गयीं॥515॥

''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं।
अरहा दक्खिणेय्योम्हि, विप्पमुत्तो निरूपधि॥516॥
''ततो रत्या विवसाने, सूरियस्सुग्गमनं पति।
सब्बं तण्हं विसोसेत्वा, पल्लङ्केन उपाविसिं''ति॥517॥ ... महापन्थको थेरो...।
अट्ठकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – महाकच्चायनो थेरो, सिरिमित्तो महापन्थको।
एते अट्ठनिपातम्हि, गाथायो चतुवीसतीति॥

9. नवकनिपातो

1. भूतत्थेरगाथा-

''यदा दुक्खं जरामरणन्ति पण्डितो, अविद्दसू यत्थ सिता पुथुज्जना।
दुक्खं परिञ्ञाय सतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥518॥
''यदा दुक्खस्सावहनिं विसत्तिकं, पपञ्चसङ्घातदुखाधिवाहिनिं।
तण्हं पहन्त्वान सतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥519॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पूर्वेनिवासं जानामि, दिव्यचक्षु: विशोधितम्।
अर्हत् दाक्षिणेयोऽस्मि, विप्रमुक्तो निरुपधि:॥516॥
''तत: रात्र्या: व्यवसाने, सूर्यस्योदगमनं प्रति।
सर्वां तृष्णां विशोष्य, पर्यङ्केन उपाविशम्"इति॥517॥

तत्रोद्दानम्- *महाकच्चायनो* स्थविर:, *सिरिमित्तो महापन्थको*।
एते अष्टनिपाते, गाथा: चतुर्विंशतीति॥ ●

1. ''यदा दु:खं जरामरणमिति पण्डित:, अवेत् यत्र श्रिता: पृथक्जना:।
दु:खं परिज्ञाय स्मृत एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥518॥
''यदा दु:खस्यावहनीं विसक्तिकाम्, प्रपञ्चसङ्घातदु:खाधिवाहिनीम्।
तृष्णां प्रहत्य स्मृत एव ध्यायति, तत: रतिं परमतरां न विदन्ते॥519॥

(हिन्दी)- अब मैं अपने पूर्वजन्मों के विषय में सब कुछ जानता हूँ। मुझको दिव्य दृष्टि अधिगत हो गयी है। अब मैं दक्षिणेय अर्हत् हो गया हूँ। तथा सर्व प्रकार के चित्तविकारों से मुक्त हो चुका हूँ॥516॥
तब रात्रि के व्यतीत होने पर सूर्योदय के साथ ही मैं अपनी सर्वविध तृष्णा विनष्ट कर आसन पर बैठ गया॥517॥ .... महापन्थक स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात की सूची— महाकात्यायन स्थविर, श्रीमित्र एवं महापन्थक स्थविर। इस अष्टक निपात में इन तीन स्थविरों द्वारा कही गयी चौबीस गाथाओं का वर्णन है। ●
जब किसी विद्वान् साधक ने जरा एवं मरण को दु:खस्वरूप जान लिया, कि इसमें मूर्ख जन आसक्त रहते हैं, तो वह इस को दु:ख जान कर स्मृतिपूर्वक ध्यानसाधना में लग गया। इस साधना से श्रेष्ठ आसक्ति स्थान अन्य कोई नहीं है॥518॥
जब वह विद्वान् दु:खाधायिका, एवं जगत्प्रपंच के समस्त दु:खों का भार ढोने वाली तृष्णा को जान कर इसको नष्ट कर स्मृतिपूर्वक ध्यानसाधना में लग गया। इस साधना से श्रेष्ठ आसक्ति स्थान अन्य कोई नहीं है॥519॥

''यदा सिवं द्वेचतुरङ्गगामिनं, मग्गुत्तमं सब्बकिलेससोधनं।
पञ्ञाय पस्सित्व सतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥520॥
''यदा असोकं विरजं असङ्खतं, सन्तं पदं सब्बकिलेससोधनं।
भावेति सञ्ञोजनबन्धनच्छिदं, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥521॥
''यदा नभे गज्जति मेघदुन्दुभि, धाराकुला विहगपथे समन्ततो।
भिक्खू च पब्भारगतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥522॥
''यदा नदीनं कुसुमाकुलानं, विचित्त-वानेय्य-वटंसकानं।
तीरे निसिन्नो सुमनोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥523॥
''यदा निसीथे रहितम्हि कानने, देवे गळन्तम्हि नदन्ति दाठिनो।
भिक्खू च पब्भारगतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥524॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यदा शिवं द्विचतुरङ्गगामिनम्, मार्गोत्तमं सर्वक्लेशशोधनम्।
प्रज्ञया दृष्ट्वा स्मृत एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विदन्ते॥520॥
''यदा अशोकं विरजम् असंस्कृतम्, शान्तं पदं सर्वक्लेशशोधनम्।
भावयति संयोजनबन्धनच्छिदम्, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥521॥
''यदा नभसि गर्जति मेघदुन्दुभिः, धाराकुलाः विहगपथे समन्ततः।
भिक्षुश्च प्राग्भारगत एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥522॥
''यदा नदीनां कुसुमाकुलानाम्, विचित-वानेया-वटं सकानाम्।
तीरे निषण्णः सुमन एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥523॥
''यदा निशीथे रहिते हि कानने, देवे गडन्ते नदन्ति दाढिनो।
भिक्षुश्च प्राग्भारगत एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥524॥

(हिन्दी)- जब वह विद्वान मंगलमय एवं सर्वदुखोपहारी अष्टांगिक मार्ग को प्रज्ञा द्वारा जान कर स्मृतिपूर्वक ध्यानसाधना में लग गया। इस साधना से श्रेष्ठ आसक्ति स्थान अन्य कोई नहीं है॥520॥

जब वह विद्वान् निर्मल, शोकरहित, असंस्कृत एवं सर्वदुःखोपहारी शान्त पद को जान कर स्मृतिपूर्वक ध्यानसाधना में लग गया। इस साधना से श्रेष्ठ आसक्ति स्थान अन्य कोई नहीं है॥521॥

जब आकाश में निरन्तर मेघों की गर्जना हो रही हो और उनसे निरन्तर जलधारा गिर रही हो तब भिक्षु किसी पर्वत की गुहा में ध्यानरत रहता है तो इस साधना से बढ़कर अन्य कोई आसक्तिस्थान नहीं है॥522॥

जब नाना प्रकार के आरण्यक पुष्पों से शोभित नदियों के तट पर स्थित वह विद्वान् साधक पुष्पवत् प्रमुदित हो कर साधना करता है तो इस साधना से बढ़कर अन्य कोई आसक्तिस्थान नहीं है॥523॥

जब मध्य रात्रि में शून्य वन में प्रबल वर्षा के कारण तीव्र वेग से बहती नदियों के किनारे बैठे सिंहों की गर्जना के साथ कोई भिक्षु किसी पर्वत गुफा में ध्यानाभ्यासरत रहता है तो इससे बढ़कर अन्य कोई आसक्तिस्थान नहीं है॥524॥

''यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो, नगन्तरे नगविवरं समस्सितो।
वीतद्दरो वीतखिलोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दति॥525॥
''यदा सुखी मलखिलसोकनासनो, निरग्गळो निब्बनथो विसल्लो।
सब्बासवे ब्यन्तिकतोव झायति, ततो रतिं परमतरं न विन्दती''ति॥526॥
... भूतो थेरो...। नवकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – भूतो तथद्दसो थेरो, एको खग्गविसाणवा।
नवकम्हि निपातम्हि, गाथायोपि इमा नवाति॥

10. दसकनिपातो

1. काळुदायित्थेरगाथा-

''अङ्गारिनो दानि दुमा भदन्ते, फलेसिनो छदनं विप्पहाय।
ते अच्चिमन्तोव पभासयन्ति, समयो महावीर भागी रसानं॥527॥
''दुमानि फुल्लानि मनोरमानि, समन्ततो सब्बदिसा पवन्ति।
पत्तं पहाय फलमाससाना, कालो इतो पक्कमनाय वीर॥528॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यदा वितर्कैः उपरुध्यात्मानम्, नगान्तरे नगविवरं समाश्रितः।
वीतदरः वीतखिल इव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते॥525॥
''यदा सुखी मलखिलशोकनाशनः, निरर्गलः निर्वनोऽथः विशल्यः।
सर्वास्रवान् व्यतिक्रान्त एव ध्यायति, ततो रतिं परमतरां न विन्दते"इति॥526॥

तस्योद्दानम्- *भूतो* तथादृशः स्थविरः, एकः खडगविषाणवान्।
नवके निपाते, गाथा अपि इमा नवा इति॥ ●

1. ''अङ्गारिण इदानीं द्रुमाः भदन्त!, फलैषिणः छदनं विप्रहाय।
ते अर्चिष्मन्त इव प्रभाषन्ते, समयो महावीर! भागि! रसानाम्॥527॥
''द्रुमाः फुल्लाः मनोरमाः, समन्ततः सर्वदिशः पुणन्ति।
पत्रं प्रहाय फलमाशानाः, काल इतः प्रक्रमणाय वीर!॥528॥

(हिन्दी)- जब वितर्क-विचार से स्वचित्त को दूर हटा कर किसी पर्वत की गुफा में बैठकर कोई भिक्षु निर्भीक हो कर साधनारत रहता है तो इस रति से बढ़कर अन्य कोई रति उत्तम नहीं है॥525॥
जब कोई साधक अपने चित्त-मलविक्षेपों को नष्ट कर निर्बन्ध, वीततृष्ण एवं वीतकण्टक हो कर चित्तविकारों से दूर रहता हुआ साधना करता है तो इस साधना से बढ़ कर अन्य कोई श्रेष्ठ साधना नहीं है॥526॥.... भूत स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात में वर्णित भिक्षु तथा गाथाएँ— इस निपात में साधना के विविध प्रकारों का वर्णन है। गैंडे के सींग के समान, एक ही भूत नामक स्थविर वर्णित है। इस नवक निपात में ये नौ गाथाएँ ही वर्णित हैं॥ ●
भन्ते! इस समय ये वृक्ष अग्नि बरसाने वाले प्रतीत हो रहे हैं; क्योंकि इन से फल चाहने वाले हमारी कुटिया की उपेक्षा कर रहे हैं। अतः हे महावीर! अब इन वृक्षों के नीचे से भागने का समय आ गया है॥527॥
फूले फले मनोहर वृक्ष चारों ओर सभी दिशाओं को पवित्र कर रहे हैं; परन्तु कुछ इनके पत्रों की सुन्दरता देखने की अपेक्षा इनके फलों पर आशा लगा बैठे हैं। अतः, भन्ते! यहाँ से दूर हट जाने का समय आ गया है॥528॥

''नेवातिसीतं न पनातिउण्हं, सुखा उतु अद्धनिया भदन्ते।
पस्सन्तु तं साकिया कोळिया च, पच्छामुखं रोहिनियं तरन्तं॥529॥
''आसाय कसते खेत्तं, बीजं आसाय वप्पति।
आसाय वाणिजा यन्ति, समुद्दं धनहारका।
याय आसाय तिट्ठामि, सा मे आसा समिज्झतु॥530॥
''पुनप्पुनं चेव वपन्ति बीजं, पुनप्पुनं वस्सति देवराजा।
पुनप्पुनं खेत्तं कसन्ति कस्सका, पुनप्पुनं धञ्ञमुपेति रट्ठं॥531॥
''पुनप्पुनं याचनका चरन्ति, पुनप्पुनं दानपती ददन्ति।
पुनप्पुनं दानपती ददित्वा, पुनप्पुनं सग्गमुपेन्ति ठानं॥532॥
''वीरो हवे सत्तयुगं पुनेति, यस्मिं कुले जायति भूरिपञ्ञो।
मञ्ञामहं सक्कति देवदेवो, तया हि जातो मुनि सच्चनामो॥533॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नैवातिशीतं न पुन: अत्युष्णम्, सुखा ऋतु अध्वन्या भदन्त!।
पश्यन्तु तं शाक्या: कोलियाश्च, पश्चान्मुखं रोहिणीं तरन्तीम्॥529॥
''आशया कर्षति क्षेत्रम्, बीजम् आशया वपति।
आशया वणिज: यान्ति, समुद्रं धनहारका:।
यया आशया तिष्ठामि, सा मे आशा समृध्यतु॥530॥
''पुनर्पुन: चैव वपन्ति बीजम्, पुनर्पुन: वर्षति देवराजा।
पुनर्पुन: क्षेत्रं कर्षन्ति कृषका:, पुनर्पुन: धान्यमुपैति राष्ट्रम्॥531॥
''पुनर्पुन: याचनका: चरन्ति, पुनर्पुन: दानपतय: ददाति।
पुनर्पुन: दानपतय: दत्वा, पुनर्पुन: स्वर्गमुपैन्ति स्थानम्॥532॥
''वीर: हवै सप्तयुगं पुनाति इति, यस्मिन् कुले जायति भूरिप्रज्ञ:।
मन्येऽहं शक्नोति देवदेव:, तया हि जात: मुनि: सत्यनाम॥533॥

(हिन्दी)- भन्ते! इस समय अधिक शीत है, न अधिक उष्णता ही, इस प्रकार यह ऋतु यात्रा करने योग्य बनी हुई है। इस बात को ये शाक्य एव कौलिय जन भी समझ लें जिनके पीछे रोहिणी नदी बह रही है॥529॥

कोई भी किसान विशेष आशा से ही अपना खेत जोतता है, तदनन्तर, उसमें बीजवपन भी किसी विशेष आशा से ही करता है। और धन के अभिलाषी व्यापारी भी किसी विशेष आशा से ही दुर्गम समुद्रयात्रा करते हैं; इसी प्रकार मैं जिस आशा से साधना में लगा हुआ हूँ मेरी वह आशा सफल हो॥530॥

खेत में बीज बार बार बोया जाता है, इन्द्र द्वारा वर्षा भी बार बार बरसायी जाती है। किसान भी खेत को बार बार जोतता है और वह अपना धान्य राष्ट्र को बार बार पहुँचाता है॥531॥

याचक भी बार बार माँगने आते हैं, दानी जन भी बार बार दान करते हैं। इस प्रकार ये दानी बार बार दान देकर बार बार स्वर्ग में अपना स्थान बनाते हैं॥532॥

कोई भी बुद्धिमान् वीर किसी कुल में जन्म लेकर उस कुल की सात पीढियों को पवित्र करता है। मेरी मान्यता है कि देवाधिदेव शाक्यराज भी मेरी इस धारण को पुष्ट कर रहे हैं। इसीलिये इन मुनि का 'बुद्ध'- यह अन्वर्थ नाम है॥533॥

''सुद्धोदनो नाम पिता महेसिनो, बुद्धस्स माता पन मायनामा।
या बोधिसत्तं परिहरिय कुच्छिना, कायस्स भेदा तिदिवम्हि मोदति॥534॥
''सा गोतमी कालकता इतो चुता, दिब्बेहि कामेहि समङ्गिभूता।
सा मोदति कामगुणेहि पञ्चहि, परिवारिता देवगणेहि तेहि॥535॥
''बुद्धस्स पुत्तोम्हि असय्हसाहिनो, अङ्गीरसस्सप्पटिमस्स तादिनो।
पितुपिता मय्हं तुवंसि सक्क, धम्मेन मे गोतम अय्यकोसी''ति॥536॥

... काळुदायी थेरो...।

2. एकविहारियत्थेरगाथा-

''पुरतो पच्छतो वापि, अपरो चे न विज्जति।
अतीव फासु भवति, एकस्स वसतो वने॥537॥
''हन्द एको गमिस्सामि, अरञ्ञं बुद्धवण्णितं।
फासु एकविहारिस्स, पहितत्तस्स भिक्खुनो॥538॥

(संस्कृतच्छाया)- ''शुद्धोधनो नाम पिता महर्षेः, बुद्धस्य माता पुनः मायानामा।
या बोधिसत्त्वं परिहार्य कुक्षिना, कायस्य भेदात् त्रिदिवे हि मोदते॥534॥
''सा गौतमी कालकृता इतः च्युता, दिव्यैः कामैः समङ्गीभूताः।
सा मोदते कामगुणैर्हि पञ्चभिः, परिवारिता देवगणैश्च तैर्हि॥535॥
''बुद्धस्य पुत्रोऽस्मि असह्यसाहिनः, अङ्गीरसस्याप्रतिमस्य तादिनः।
पितुर्पिता मम त्वमसि शक्र!, धर्मेण मे गौतम! आर्यकोऽसि"इति॥536॥

2. ''पुरतः पश्यतः वापि, अपरश्चेन्न विद्यते।
अतीव *फासु* (सुख) भवति, एकस्मै वसतः वने॥537॥
''हन्त! एकः गमिष्यामि, अरण्यं बुद्धवर्णितम्।
फासु (सुख) एकविहारिणे, प्रहितात्मने भिक्षवे॥538॥

(हिन्दी)-इन महर्षि के पिता का नाम शुद्धोदन है और बुद्ध की माता का नाम है माया, जो इन बोधिसत्त्व को जन्म देकर अपने देहपात के बाद आज स्वर्गसुख भोग रही है॥534॥

वह महामाया गौतमी, देहपात के बाद, इस लोक से च्युत हो कर दिव्य कामभोगों के साथ पाँचों कामगुणों को देवसमूह से परिवृत्त हो कर भोग रही है॥535॥

मैं असह्य को भी सहन करनेवाले अनुपम ज्ञानी, अंगीरस बुद्ध का पुत्र हूँ। हे शक्र! आप मेरे धर्मपितामह हैं तथा आर्या गौतमी मेरी धर्मपितामही हैं॥536॥.... कालुदायी स्थविर ने....॥

आगे या पीछे दूसरा कोई न हो -इस प्रकार वन में एकाकी घूमते हुए मुझ को अच्छा लगता है॥537॥

अरे अब मैं बुद्धनिर्दिष्ट इस वन में एकाकी ही विचरण करूँगा; क्योंकि संयतेन्द्रिय भिक्षु के लिये वन में एकाकी विचरण करना सुखमय होता है॥538॥

''योगी-पीतिकरं रम्मं, मत्तकुञ्जरसेवितं।
एको अत्तवसी खिप्पं, पविसिस्सामि काननं॥539॥
''सुपुप्फिते सीतवने, सीतले गिरिकन्दरे।
गत्तानि परिसिञ्चित्वा, चङ्कमिस्सामि एककं॥540॥
''एकाकियो अदुतियो, रमणीये महावने।
कदाहं विहरिस्सामि, कतकिच्चो अनासवो॥541॥
''एवं मे कत्तुकामस्स, अधिप्पायो समिज्झतु।
साधियिस्सामहंयेव, नाञ्ञो अञ्ञस्स कारको॥542॥
''एस बन्धामि सन्नाहं, पविसिस्सामि काननं।
न ततो निक्खमिस्सामि, अप्पत्तो आसवक्खयं॥543॥
''मालुते उपवायन्ते, सीते सुरभिगन्धिके ।
अविज्जं दालयिस्सामि, निसिन्नो नगमुद्धनि॥544॥

(संस्कृतच्छाया)- ''योगी प्रीतिकरं रम्यम्, मत्तकुञ्जरसेवितम्।
एक आत्मवशी क्षिप्रम्, प्रवेक्ष्यामि हि काननम्॥539॥
''सुपुष्पिते शीतवने, शीतलासु गिरिकन्दराषु।
गात्राणि परिषिच्य, चंक्रमिष्यामि एकक:॥540॥
''एकाकीय अद्वितीय:, रमणीये महावने।
कदाहं विहरिष्यामि, कृतकृत्य अनास्रव:॥541॥
''एवं मे कर्तुकामस्य, अभिप्राय: समृध्यतु।
साधयिष्ये अहमेव, नान्य अन्यस्य कारक:॥542॥
''एष: बध्नामि सन्नाहम्, प्रवेक्ष्यामि हि काननम्।
न ततो निष्क्रमिष्यामि, अप्राप्य आस्रवक्षयम्॥543॥
''मारुते उपवायन्ते, शीते सुरभिगन्धिके ।
अविद्यां दारिष्यामि, निषण्ण: नगमूर्ध्वनि॥544॥

(हिन्दी)- योगियों के लिये आह्लादकारक, रमणीय एवं मत्त गजों के वासस्थल इस वन में मैं संयतेनिद्रय हो कर अकेला ही प्रवेश करूँगा॥539॥

मैं किसी शीतल गिरिकन्दरा के पास स्नान कर इस सुपुष्पित शीतवन में एकाकी रहता हुआ चंक्रमण करूँगा॥540॥

एकाकी, दूसरा कोई मेरे साथ न हो ऐसा मैं कृतकृत्य एवं निर्विकारचित्त हो कर इस रमणीय महावन में कब विचरण कर पाऊँगा॥541॥

ऐसा करना चाहते हुए मेरा यह संकल्प पूर्ण हो। इस संकल्प को मैं ही पूर्ण करूँगा; क्योंकि कोई दूसरा दूसरे के कार्य को पूर्ण नहीं किया करता॥542॥

मैं एक पवित्र संकल्प के रूप में इस बात की गाँठ बाँधता हूँ कि मैं इस वन में अवश्य प्रविष्ट होऊँगा और इसमें से तब तक नहीं निकलूँगा जब तक कि मैं अपने समस्त चित्तविकारों को नष्ट न कर लूँ॥543॥

जब कि चारो ओर शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती रहेगी मैं एक पर्वतशिखर पर बैठ कर साधना द्वारा अपने समस्त अज्ञान को नष्ट कर दूँगा॥544॥

''वने कुसुमसंछन्ने, पब्भारे नून सीतले।
विमुत्तिसुखेन सुखितो, रमिस्सामि गिरिब्बजे॥545॥
''सोहं परिपुण्णसङ्कप्पो, चन्दो पन्नरसो यथा।
सब्बासवपरिक्खीणो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥546॥ ... एकविहारियो थेरो...।

3. महाकप्पिनत्थेरगाथा-

''अनागतं यो पटिकच्च पस्सति, हितञ्च अत्थं अहितञ्च तं द्वयं।
विद्देसिनो तस्स हितेसिनो वा, रन्धं न पस्सन्ति समेक्खमाना॥547॥
''आनापानसती यस्स, परिपुण्णा सुभाविता।
अनुपुब्बं परिचिता, यथा बुद्धेन देसिता।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥548॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वने कुसुमसञ्छन्ने, प्राग्भारे नूनं शीतले।
विमुक्तिसुखेन सुखितः, रंस्यामि गिरिव्रजे॥545॥
''सोऽहं परिपूर्णसङ्कल्पः, चन्द्रः पञ्चदशः यथा।
सर्वास्रवपरिक्षीणः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः"इति॥546॥

3. ''अनागतं यः प्रागेव पश्यति, हितञ्च अर्थम् अहितञ्च तं द्वयम्।
विद्वेषिनः तस्य हितैषिणः वा, रन्ध्रं न पश्यन्ति समीक्षमाणा॥547॥
''आनापानस्मृतिः यस्य, परिपूर्णा सुभाविता।
अनुपूर्वं परिचिता, यथा बुद्धेन देशिता।
सा इमं लोकं प्रभासते, अब्भान्मुक्त इव चन्द्रमा॥548॥

(हिन्दी)- मैं इस गिरिव्रत पर्वत पर, या इस की किसी शीतल तलहटी में स्थित फूलों से लदे वृक्षों से आकीर्ण वन में बैठ कर विमुक्ति सुख का अनुभव करता हुआ साधना करूँगा॥545॥
मैं आज उसी प्रकार परिपूर्णसंकल्प हो चुका हूँ, जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा परिपूर्ण कलाओं वाला होता है। मेरे सभी आश्रवक्षीण हो चुके हैं। अब मेरा पुनः जन्म नहीं होगा॥546॥ .... एकविहारी स्थविर ने....॥
कोई भी पुरुष भविष्य में किये जाने वाले कर्म के विषय में पहले ही देख ले कि यह मेरे लिये हितकर होगा या अहितकर! क्या इसके कारण उसके हितैषी या शत्रु गुप्त रूप से उसकी कोई दुर्बलता तो नहीं जान लेंगे॥547॥
बुद्धोपदेश के अनुसार जिनसे आनापानस्मृति की भावना सम्यक् प्रकार से अभ्यस्त कर ली है, पूर्ण कर ली है, उसके आनुपूर्वी क्रम से परिचित हो चुका है वह इस लोक में उसी प्रकार शोभित होता है जैसे मेघों से निकला हुआ चन्द्रमा॥548॥

''ओदातं वत मे चित्तं, अप्पमाणं सुभावितं।
निब्बिद्धं पग्गहीतञ्च, सब्बा ओभासते दिसा॥549॥
''जीवते वापि सप्पञ्ञो, अपि वित्तपरिक्खयो।
पञ्ञाय च अलाभेन, वित्तवापि न जीवति॥550॥
''पञ्ञा सुतविनिच्छिनी, पञ्ञा कित्तिसिलोकवद्धनी।
पञ्ञासहितो नरो इध, अपि दुक्खेसु सुखानि विन्दति॥551॥
''नायं अज्जतनो धम्मो, नच्छेरो नपि अब्भुतो।
यत्थ जायेथ मीयेथ, तत्थ किं विय अब्भुतं॥552॥
''अनन्तरं हि जातस्स, जीविता मरणं धुवं।
जाता जाता मरन्तीध, एवंधम्मा हि पाणिनो॥553॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अवदातं वत मे चित्तम्, अप्रमाणं सुभावितम्।
निर्बिद्धं प्रगृहीतञ्च, सर्वा अवभाषते दिशा॥549॥
''जीवित्येवापि सप्रज्ञ:, अपि वित्तपरिक्षय:।
प्रज्ञायाश्च अलाभेन, वित्तवानपि न जीवति॥550॥
''प्रज्ञा श्रुतविनिश्चायिनी, प्रज्ञा कीर्तिश्लोकवर्धनी।
प्रज्ञासहितो नर इध, अपि दु:खेषु सुखानि विन्दते॥551॥
''नायम् अद्यतनो धर्म:, नाश्चर्य: नापि अद्भुत:।
यत्र जायेत म्रीयते, तत्र किमिव अद्भुतम्॥552॥
''अनन्तरं हि जातस्य, जीवितात् मरणं ध्रुवम्।
जाता: जाता: म्रियन्ते इह, एवंधर्मा: हि प्राणिन:॥553॥

(हिन्दी)- मेरा चित्त अब पूर्णतः निर्मल है, अप्रामाण्यों को मैंने भली प्रकार अभ्यस्त कर लिया हैं मेरा चित्त भली प्रकार वैराग्य सम्पन्न एवं नियन्त्रित है, सभी दिशाएँ प्रकाशमान हैं॥549॥

वह पुरुष जीवित ही माना जायगा जिस का धन क्षीण हो चुका हो, परन्तु वह प्रज्ञावान् हो। और जिसके पास प्रभूत धन है परन्तु प्रज्ञा नहीं है वह जीवित होता हुआ भी मृततुल्य ही समझा जाना चाहिये॥550॥

सुने हुए धर्म का प्रज्ञा से विनिश्चय होता है और प्रज्ञा लोक में कीर्ति एवं प्रशंसा को बढ़ाती है। जो प्रज्ञावान् है वह दु:ख को भी सुख मान कर जीवन बिता लेता है॥551॥

यह आज की बात नहीं है, न इसमें कोई आश्चर्य या अद्भुत ही है; क्यों कि यहाँ तो जिसने जन्म लिया है वह मरेगा ही। इसमें अद्भुत क्या है॥552॥

जन्म के बाद मरण अवश्यम्भावी है। जन्म लेने वाला मरेगा ही; क्योंकि यह प्राणियों का स्वभाव है॥553॥

''न हेतदत्थाय मतस्स होति, यं जीवितत्थं परपोरिसानं।
मतम्हि रुण्णं न यसो न लोक्यं, न वण्णितं समणब्राह्मणेहि॥554॥
''चक्खुं सरीरं उपहन्ति तेन, उपहन्ति रोण्णं निहीयति वण्णबलं मती च।
आनन्दिनो तस्स दिसा भवन्ति, हितेसिनो नास्स सुखी भवन्ति॥555॥
''तस्मा हि इच्छेय्य कुले वसन्ते, मेधाविनो चेव बहुस्सुते च।
येसं हि पञ्ञाविभवेन किच्चं, तरन्ति नावाय नदिंव पुण्णं''ति॥556॥

... महाकप्पिनो थेरो...।

4. चूळपन्थकत्थेरगाथा-

''दन्धा मय्हं गती आसि, परिभूतो पुरे अहं।
भाता च मं पणामेसि, 'गच्छ दानि तुवं घरं'॥557॥
''सोहं पणामितो सन्तो, सङ्घारामस्स कोट्ठके।
दुम्मनो तत्थ अट्ठासिं, सासनस्मिं अपेक्खवा॥558॥

(संस्कृतच्छाया)- ''न ह्येतदर्थाय मृतस्य भवति, यत् जीवितार्थं परपुरुषाणाम्।
मृताय रुदनं न यश: न लोक्यम्, न वर्णितं श्रमणब्राह्मणै:॥554॥
''चक्षु: शरीरम् उपहन्ति तेन, उपहन्ति वर्णबलं मतिश्च।
आनन्दिन: तस्य द्विष: भवन्ति, हितैषिण: नास्य सुखिनो भवन्ति॥555॥
''तस्मात् हि इच्छेत् कुले वसत:, मेधाविनश्चैव बहुश्रुताश्च।
येषां हि प्रज्ञाविभवेन कृत्यम्, तरन्ति नावा नदीमिव पूर्णाम्"इति॥556॥

4. ''मन्दा: मे गतिरासीत्, परिभूत: पुरे अहम्।
भ्राता च मां प्राणामयत्, गच्छ इदानीं त्वं गृहम्॥557॥
''सोऽहं प्रणामित: सन्, सङ्घारामस्य कोष्ठके।
दुर्मन: तत्र अस्थाम्, शासने तु अपेक्षवान्॥558॥

(हिन्दी)- अन्य पुरुषों के जीवन के लिये मृत पुरुष का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं है। अतः मृत पुरुष के लिये रोना चिल्लाना श्रमण-ब्राह्मणों ने न तो लोक में यशःप्रद बताया है, न प्रशंसाजनक॥554॥

इस रोने चिल्लाने से न केवल रोने वाले के नेत्र और शरीर ही क्षीण होते हैं, अपितु उस के वर्ण, बल एवं बुद्धि पर भी इसका अनुचित प्रभाव पड़ता है। उस के शत्रु उस क्रिया से प्रसन्न होते हैं और उसके हितैषियों को भी उससे कष्ट ही होता है॥555॥

अतः हमें सत्कुल में उद्भूत मेधावी एवं बहुश्रुत पुरुषों के साथ रहने की इच्छा रखनी चाहिये; क्योंकि वैसे लोगों के प्रज्ञाधन से हमारा बहुत कुछ प्रयोजन वैसे ही सिद्ध हो सकता है जैसे भरी हुई नदी को पार करने के लिये नाव से हमारा प्रयोजन सिद्ध होता है॥556॥....महाकप्पिन स्थविर ने....॥

पहले मेरी बुद्धि बहुत ही कुण्ठित थी, मैं इस विषय में अपने को पराजित सा अनुभव करता था। इस कारण मेरे बड़े भाई स्थविर ने मुझको विहार से निकाल कर कह दिया था कि तू अपने घर लौट जा॥557॥

इस प्रकार, मैं संघ से निष्कासित हो कर दुःखित मन से संघाराम के बाहरी द्वार पर जाकर इस आशा से बैठा रहा कि कोई मुझ को संघ में पुनः प्रवेश दिला दे॥558॥

''भगवा तत्थ आगच्छि, सीसं मय्हं परामसि।
बाहाय मं गहेत्वान, सङ्घारामं पवेसयि॥559॥
''अनुकम्पाय मे सत्था, पादासि पादपुञ्छनिं।
'एतं सुद्धं अधिट्ठेहि, एकमन्तं स्वधिट्ठितं'॥560॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, विहासिं सासने रतो।
समाधिं पटिपादेसिं, उत्तमत्थस्स पत्तिया॥561॥
''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥562॥
''सहस्सक्खत्तुमत्तानं , निम्मिनित्वान पन्थको।
निसीदम्बवने रम्मे, याव कालप्पवेदना॥563॥

(संस्कृतच्छाया)- ''भगवान् तत्र आगच्छत्, शीर्षं मां परामर्षयत्।
बाहुना मां गृहीत्वा, सङ्घारामं प्रावेशयत्॥559॥
''अनुकम्पया मे शास्ता, प्राददात् पादप्रौञ्छनीम्।
एतं शुद्धम् अधितिष्ठ, एकमन्तं स्वधिष्ठितम्॥560॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, व्यहरं शासने रतः।
समाधिं प्रत्यपाद्यम्, उत्तमार्थस्य प्राप्तये॥561॥
''पूर्वेनिवासं जानामि, दिव्यचक्षुः विशोधितम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥562॥
''सहस्रकृत्वा आत्मानम्, निर्मित्य पन्थकः।
न्यसीदमाम्रवने रम्ये, यावत् कालप्रवेदनात्॥563॥

(हिन्दी)- इसी सत्य भगवान् वहाँ पधारे और उन ने मेरे सिर पर हाथ रखा, तथा वे मेरी बाँह पकड़ कर मुझ को पुनः संघाराम में ले गये॥559॥

वहाँ शास्ता ने मुझ पर अनुकम्पा कर मुझको अपना पैर पोंछने का वस्त्र दिया और मुझ को आदेश दिया- इस वस्त्र की स्वच्छता का एकान्त में सावधानी से बैठ कर दृढ़ता से संकल्प कर॥560॥

उनका आदेश मानकर मैं उस साधना के अभ्यास में लग गया। धीरे धीरे समाधिभावनापद्धति का मुझको पूर्ण अभ्यास हो गया, जो कि मुझको सदर्थ की प्राप्ति में आगे चल कर हितकर सिद्ध हुई॥561॥

आज मैं उस साधना के दृढ अभ्यास से अपने पूर्वजन्मों का ज्ञान पूर्णतः कर चुका हूँ। मुझ को विशुद्ध दिव्य चक्षु प्राप्त हो गये। मैंने तीनों विद्याएँ प्राप्त कर ली तथा बुद्धाभिमत साधना में दक्षता प्राप्त कर ली॥562॥

उस रम्य आम्रवन के संघाराम में किसी उपासक के द्वारा भोजन-काल की सूचना मिली तो उस समय मैं पन्थक अपने सहस्र कृत्रिम शरीर बना कर बैठ गया॥563॥

''ततो मे सत्था पाहेसि, दूतं कालप्पवेदकं।
पवेदितम्हि कालम्हि, वेहासादुपसङ्कमिं ॥564॥
''वन्दित्वा सत्थुनो पादे, एकमन्तं निसीदहं।
निसिन्नं मं विदित्वान, अथ सत्था पटिग्गहि॥565॥
''आयागो सब्बलोकस्स, आहुतीनं पटिग्गहो।
पुञ्ञक्खेत्तं मनुस्सानं, पटिगण्हित्थ दक्खिणं''ति॥566॥ ... चूळपन्थको थेरो...

5. कप्पत्थेरगाथा-

''नानाकुलमलसम्पुण्णो, महाउक्कारसम्भवो।
चन्दनिकंव परिपक्कं, महागण्डो महावणो॥567॥
''पुब्बरुहिरसम्पुण्णो, गूथकूपेन गाळ्हितो।
आपोपग्घरणो कायो, सदा सन्दति पूतिकं॥568॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ततो मे शास्ता प्राहैषीत्, दूतं कालप्रवेदकम्।
प्रवेदिते हि काले, विहायसादुपसमक्राम्यम्॥564॥
''वन्दित्वा शास्तु: पादौ, एकमन्तं न्यसीदमहम्।
निषण्णं मां विदित्वा, अथ शास्ता प्रत्यग्रहीष्ट॥565॥
''आयाग: सर्वलोकाय, आहुतीनां प्रतिग्रह:।
पुण्यक्षेत्रं मनुष्येभ्य:, प्रतिगृहणीत दक्षिणाम्"इति॥566॥

5. ''नानाकुलमलसम्पूर्ण:, महोत्कारसम्भव:।
स्यन्दनिकामिव परिपक्व:, महागण्डो महाव्रण:॥567॥
''पूयरुधिरसम्पूर्ण:, गूथकूपेन गार्हित:।
आपोप्रग्घ्रण: काय:, सदा स्यन्दति पूतिकम्॥568॥

(हिन्दी)- तब शास्ता ने उपासक के घर से एक दूत भेज कर मुझ को भोजनकाल की सूचना दिलवायी तो मैं आकाश मार्ग से वहाँ पहुँचा॥564॥

तब मैं शास्ता के चरणवन्दन कर एक ओर बैठ गया। एक ओर बैठे मुझको शास्ता ने पात्र दिलवाया और मुझको यह उपदेश दिया॥565॥

सभी लोगों के लिये यज्ञदानस्वरूप, आहुलियों की दक्षिणा, मनुष्यों के लिये पुण्यस्थल रूप यह भोजन दान स्वीकार करो॥566॥.... चूड़पन्थक स्थविर ने....॥

विविध प्रकार के मलों से भरा हुआ, अनेक कूड़े कचरे (उक्कार) से उत्पन्न, गन्दा जल बहने की नाली के समान या पके हुए व्रण के समान॥567॥

पूय एवं रुधिर परिपूर्ण, भरे हुए गूथ- कूप के समान, स्थान - स्थान से मैला द्रव छोड़ने वाले इस काय से सदा मलिन पदार्थ ही टपकता रहता है॥568॥

''सट्ठिकण्डरसम्बन्धो , मंसलेपनलेपितो।
चम्मकञ्चुकसन्नद्धो, पूतिकायो निरत्थको॥569॥
''अट्ठिसङ्घातघटितो, न्हारुसुत्तनिबन्धनो।
नेकेसं संगतीभावा, कप्पेति इरियापथं॥570॥
''ध्रुवप्पयातो मरणाय, मच्चुराजस्स सन्तिके।
इधेव छड्डयित्वान, येनकामङ्गमो नरो॥571॥
''अविज्जाय निवुतो कायो, चतुगन्थेन गन्थितो।
ओघसंसीदनो कायो, अनुसयजालमोत्थतो॥572॥
''पञ्चनीवरणे युत्तो, वितक्केन समप्पितो।
तण्हामूलेनानुगतो, मोहच्छादनछादितो॥573॥

(संस्कृतच्छाया)- ''षष्ठिकण्डरसम्बद्ध:, मांसलेपनलेपित:।
चर्मकञ्चुकसन्नद्ध:, पूतिकायो निरर्थक:॥569॥
''अस्थिसङ्घातघटित:, स्नायुसूत्रनिबन्धन:।
नैकेषां सङ्गतीभावात्, कल्पयति ईर्यापथम्॥570॥
''ध्रुवप्रयात: मरणाय, मृत्युराजस्य अन्तिके।
इहैव त्यक्त्वा, येनकामङ्गमो नर:॥571॥
''अविद्यया निर्वृत: काय:, चतुर्ग्रन्थै: ग्रन्थित:।
ओघसंसीदन: काय:, अनुशयजालमवस्तृत:॥572॥
''पञ्चनीवरणै: युक्त:, वितर्के च समर्पित:।
तृष्णामूलेनानुगत:, मोहाच्छादनछादित:॥573॥

(हिन्दी)- साठ कण्डराओं से बंधा हुआ, सर्वत्र मांस से लिपा हुआ, त्वचा रूप कवच पहने हुआ यह दुर्गन्धयुक्त काय निरर्थक है॥569॥

अस्सी संघातों से संगृहीत, स्नायुरूप रस्सियों से बँधा हुआ यह शरीर अनेक संगतियों से मिलकर ही अपनी चेष्टाएँ कर पाता है॥570॥

यह अपनी मृत्यु के लिये यमराज के पास निश्चित ही जायगा। उस समय यह सब कुछ यहीं छोड़ कर जिधर इच्छा होती है वहीं चला जाता है॥571॥

यह काय अविद्या से रचित है, चार ग्रन्थियों से ग्रथित है, यह काय कामादि के प्रवाहों से घिरा हुआ है तथा चितप्रवृत्तियों के जाल के अधीन है॥572॥

यह पाँच बाधाओं से युक्त हे, वितर्क के अधीन है, तृष्णामूल से अनुगत है तथा मोह के आच्छादन से आच्छादित है॥573॥

''एवायं वत्तते कायो, कम्मयन्तेन यन्तितो।
सम्पत्ति च विपत्यन्ता, नानाभावो विपज्जति॥574॥
''येमं कायं ममायन्ति, अन्धबाला पुथुज्जना।
वड्ढेन्ति कटसिं घोरं, आदियन्ति पुनब्भवं॥575॥
''येमं कायं विवज्जेन्ति, गूथलित्तंव पन्नगं।
भवमूलं वमित्वान, परिनिब्बिस्सन्तिनासवा''ति॥576॥ ... कप्पो थेरो...।

6. वड्गन्तपुत्तउपसेनत्थेरगाथा-

''विवित्तं अप्पनिग्घोसं, वाळमिगनिसेवितं।
सेवे सेनासनं भिक्खु, पटिसल्लानकारणा॥577॥
''सङ्कारपुञ्जा आहत्वा, सुसाना रथियाहि च।
ततो सङ्घाटिकं कत्वा, लूखं धारेय्य चीवरं॥578॥

(संस्कृतच्छाया)- ''एवायं वर्तते कायः, कर्मयन्त्रेण यन्त्रितः।
सम्पत्त्या च विपत्या, नानाभावो विपद्यते॥574॥
''ये इमं कायं ममायन्ति, अन्धबालाः पृथुजनाः।
वर्धयन्ति कटसीं घोराम्, आददति पुनर्भवम्॥575॥
''ये इमं कायं विवर्जयन्ति, यूथलिप्तमिव पन्नगम्।
भवमूलं वमित्वा, परिनिर्वास्यान्त्यनास्रवाः"इति॥576॥

6. ''विविक्तम् अल्पनिर्घोषम्, व्याडमृगनिसेवितम्।
सेवेत शयनासनं भिक्षुः, प्रतिशल्यानकारणात्॥577॥
''सङ्कारपुञ्जादाहृत्य, श्मशानात् रथिकाभ्यश्च।
ततः सङ्घाटिकां कृत्वा, रुक्षं धारयेत् चीवरम्॥578॥

(हिन्दी)- यह शरीर इसी प्रकार का है और कर्मयन्त्र से गति पाता है तथा नाना प्रकार की सम्पत्ति एवं विपत्ति से घिरा रहता है॥574॥

जो इस काया में ममत्व का अभिमान रखते हैं वे अन्धे, मूर्खजन पुनर्जन्म को स्वीकार करते हुए श्मशान की ओर ही बढ़ते हैं॥575॥

जो बुद्धिमान् पुरुष इस काया में ममत्व को मललिप्त सर्प के समान त्याग देते हैं, वे एक न एक दिन भवमूल का वमन कर निर्विकार चित्त से अवश्य निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं॥576॥.... कल्प स्थविर ने....॥

एकान्तसाधना के लिये भिक्षु को ऐसे स्थान का चयन करना चाहिये जो एकान्त में हो, निर्जन एवं नीरव हो, जहाँ पशु पक्षी स्वच्छन्दता से विचरते हों॥577॥

कूड़े के ढेर से या श्मशान से, या गलियों में से वस्त्रों को एकत्र कर रूक्ष चीवर ही धारण करना चाहिये॥578॥

''नीचं मनं करित्वान, सपदानं कुला कुलं।
पिण्डिकाय चरे भिक्खु, गुत्तद्वारो सुसंवुतो॥579॥
''लूखेनपि वा सन्तुस्से, नाञ्ञं पत्थे रसं बहुं।
रसेसु अनुगिद्धस्स, झाने न रमती मनो॥580॥
''अप्पिच्छो चेव सन्तुट्ठो, पविवित्तो वसे मुनि।
असंसट्ठो गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं॥581॥
''यथा जळो व मूगो व, अत्तानं दस्सये तथा।
नातिवेलं सम्भासेय्य, सङ्घमज्झम्हि पण्डितो॥582॥
''न सो उपवदे कञ्चि, उपघातं विवज्जये।
संवुतो पातिमोक्खस्मिं, मत्तञ्ञू चस्स भोजने॥583॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नीचं मनं कृत्वा, सपदं कुलात् कुलम्।
पिण्डकाय चरेद् भिक्षु, गुप्तद्वार: सुसंवृत:॥579॥
''रुक्षेनापि वा सन्तुष्येत्, नान्यं प्रार्थयेत् रसं बहुकम्।
रसेषु अनुगृद्धस्य, ध्याने न रमते मन:॥580॥
''अल्पेच्छश्चैव सन्तुष्ट:, प्रविविक्तो वसेत् मुनि:।
असंसृष्ट: गृहस्थैश्च, अनागारैश्चोभयम्॥581॥
''यथा जड इव मूक इव, आत्मानं दर्शयेत् तथा।
नातिवेलां सम्भाषेत, सङ्घमध्ये हि पण्डित:॥582॥
''न स उपवदेत् कञ्चित्, उपघातं विवर्जयेत्।
संवृत: प्रातिमोक्षे, मात्रज्ञ: स्याच्च भोजने॥583॥

(हिन्दी)- भिक्षा के लिये गृहस्थ के घरों में प्रवेश करते समय अपना मन तथा दृष्टि नीचे कर, संयतेन्द्रिय होकर तथा चीवर से शरीर को सम्यक् प्रकार से ढककर पैदल ही जाना चाहिये॥579॥

वहाँ रुखा सूखा प्राप्त कर भी सन्तुष्ट होना चाहिये। और अधिक देने का आग्रह नहीं करना चाहिये; क्योंकि इस अधिक प्राप्ति की वासना से भिक्षु इन पदार्थों में आसक्ति कर बैठता है, तथा इस आसक्ति से उसके ध्यानाभ्यास में बाधा पड़ती है॥580॥

भिक्षु को अल्प इच्छा वाला एवं सन्तोषी होना चाहिये, उसको एकान्तवास करना चाहिये। गृहस्थों के साथ अधिक सम्पर्क नहीं रखना चाहिये, इसी प्रकार परिव्राजकों से भी अधिक संसर्ग नहीं रखना चाहिये॥581॥

लोक में गूँगे एवं बहरे के समान अपना प्रदर्शन करना चाहिये। बुद्धिमान् भिक्षु को संघ में बैठ कर अधिक समय तक नहीं बोलना चाहिये॥582॥

भिक्षु किसी पर दोषारोपण न करे, न किसी को आघात पहुँचाने का ही प्रयास करे। वह प्रातिमोक्ष से संवृत रहता हुआ भोजन की मात्रा का भी सदा ध्यान रखे॥583॥

''सुग्गहीतनिमित्तस्स, चित्तस्सुप्पादकोविदो।
समं अनुयुञ्जेय्य, कालेन च विपस्सनं॥584॥
''वीरियसातच्चसम्पन्नो , युत्तयोगो सदा सिया।
न च अप्पत्वा दुक्खन्तं, विस्सासं एय्य पण्डितो॥585॥
''एवं विहरमानस्स, सुद्धिकामस्स भिक्खुनो।
खीयन्ति आसवा सब्बे, निब्बुतिञ्चाधिगच्छती''ति॥586॥

... उपसेनो वङ्गन्तपुत्तो थेरो...।

''विजानेय्य सकं अत्थं, अवलोकेय्याथ पावचनं।
यञ्चेत्थ अस्स पतिरूपं, सामञ्ञं अज्झुपगतस्स॥587॥
''मित्तं इध च कल्याणं, सिक्खा विपुलं समादानं।
सुस्सूसा च गरूनं, एतं समणस्स पतिरूपं॥588॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सुग्रहीतनिमित्तस्य, चित्तस्योत्पादकोविद:।
शमथम् अनुयुञ्येत, काले च विपश्यनाम्॥584॥
''वीर्यसातत्यसम्पन्न:, युक्तयोग: सदा: स्यात्।
न च अप्राप्य दु:खान्तम्, विश्वासं एयात् पण्डित:॥585॥
''एवं विहरमाणस्य, शुद्धिकामस्य भिक्षो:।
क्षयन्ति आस्रवा: सर्वे, निर्वृतिञ्चाधिगच्छति"इति॥586॥
''विजानीयात् स्वकम् अर्थम्, अवलोकेदथ प्रावचनम्।
यच्चात्र अस्य प्रतिरूपम्, श्रामण्यम् अध्युपगतस्य॥587॥
''मित्रम् इध च कल्याणम्, विपुलं शिक्षा-समादानम्।
शुश्रुषा च गुरूणाम्, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥588॥

(हिन्दी)- आचार्य से साधनासम्बद्ध निमित्तों को भली प्रकार ग्रहण कर उनको मन में बैठाने का प्रयास करे, सदा समाधिरत रहे तथा समय पर विपस्सना का भी ध्यान रखे॥584॥

साधना में बल की निरन्तरता रखे, सदा योगाभ्यासयुक्त रहे। बुद्धिमान् भिक्षु दुःख का अन्त हुए विना साधना समाप्त न करे॥585॥

चित्त की पवित्रता चाहने वाले साधनाभ्यासी भिक्षु के इस प्रकार साधना करते हुए सभी आश्रव क्षीण हो जाते हैं। और अन्त में वह निर्वाण भी अधिगत कर लेता है॥586॥

जो अपने प्रयोजन एवं बुद्धवचन की महत्ता समझते हुए इनके अनुकूल आचरण करता है उस को श्रामण्य प्राप्ति में अधिक विलम्ब नहीं लगेगा॥587॥

1. कल्याणमित्र, 2. शिक्षा का विपुलता से ग्रहण तथा 3. गुरुओं की सेवा- इन तीनों के प्रति अनुकूलता रखने से श्रामण्यप्राप्ति में अधिक विलम्ब नहीं होता॥588॥

''बुद्धेसु सगारवता, धम्मे अपचिति यथाभूतं।
सङ्घे च चित्तिकारो, एतं समणस्स पतिरूपं॥589॥
''आचारगोचरे युत्तो, आजीवो सोधितो अगारय्हो।
चित्तस्स च सण्ठपनं, एतं समणस्स पतिरूपं॥590॥
''चारित्तं अथ वारित्तं, इरियापथियं पसादनियं।
अधिचित्ते च आयोगो, एतं समणस्स पतिरूपं॥591॥
''आरञ्ञकानि सेनासनानि, पन्तानि अप्पसद्दानि।
भजितब्बानि मुनिना, एतं समणस्स पतिरूपं॥592॥
''सीलं च बाहुसच्चं च, धम्मानं पविचयो यथाभूतं।
सच्चानं अभिसमयो, एतं समणस्स पतिरूपं॥593॥

(संस्कृतच्छाया)- ''बुद्धेषु सगौरवता, धर्मे अपचिति: यथाभूतम्।
सङ्घे च चित्तीकरणम्, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥589॥
''आचारगोचरेण युक्त:, शोधिताजीव अगारह्य:।
चित्तस्य च संस्थापनम्, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥590॥
''चारित्रमथ वारित्रम्, ईर्यापथं प्रसादनीयम्।
अधिचित्ते च आयोग:, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥591॥
''आरण्यकानि शयनासनानि, प्रन्ता अल्पशब्दा:।
भजितव्यानि मुनिना, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥592॥
''शीलञ्च बाहुश्रुत्यञ्च, धर्माणां प्रविचयो यथाभूतम्।
सत्यानाम् अभिसमय:, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥593॥

(हिन्दी)-बुद्धों में गुरुभाव रखना, धर्म की यथाशक्य पूजा करना, तथा संघ के आदेश-उपदेशों में मन लगाये रखना -ये तीनों बातें यदि अनुकूल हों तो श्रामण्य की अधिगति में विलम्ब नहीं होता॥589॥

आचार गोचर से युक्त रहना, आजीविका का शुद्ध एवं साधुजन से प्रशंसित होना तथा चित्त की एकाग्रता -ये सब भी श्रामण्यप्राप्ति के अनुकूल कर्म हैं॥590॥

भिक्षु में चारित्रिक कर्मों का होना एवं निषिद्ध कर्मों का न होना, श्रद्धास्पद शारीरिक चेष्टाएँ एवं चित्तसंयम-ये कर्म भी श्रामण्य के अनुकूल ही हैं॥591॥

साधक मुनि को अरण्य के ऐसे भागों में अपना आसन लगाना चाहिये जहाँ मनुष्यों का आना जाना या किसी प्रकार का कोलाहल न हो; क्योंकि उसका यह कर्म भी उसके श्रमणभाव के अनुकूल ही होगा॥592॥

सदाचार, विद्वत्ता की विपुलता, धर्मों का यथार्थ चिन्तन तथा चार आर्यसत्यों का स्पष्ट ज्ञान -ये बातें भी श्रामण्य की अनुकूलता ही प्रदर्शित करती हैं॥593॥

''भावेय्य च अनिच्चन्ति, अनत्तसञ्ञं असुभसञ्ञञ्च।
लोकम्हि च अनभिरतिं, एतं समणस्स पतिरूपं॥594॥
''भावेय्य च बोज्झङ्गे, इद्धिपादानि इन्द्रियानि बलानि।
अट्ठङ्गमग्गमरियं, एतं समणस्स पतिरूपं॥595॥
''तण्हं पजहेय्य मुनि, समूलके आसवे पदालेय्य।
विहरेय्य विप्पमुत्तो, एतं समणस्स पतिरूपं''ति॥596॥ ... गोतमो थेरो...।

दसकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – काळुदायी च सो थेरो, एकविहारी च कप्पिनो।
चूळपन्थको कप्पो च, उपसेनो च गोतमो।
सत्तिमे दसके थेरा, गाथायो चेत्थ सत्ततीति॥

1. संकिच्चत्थेरगाथा-

''किं तवत्थो वने तात, उज्जुहानोव पावुसे।
वेरम्भा रमणीया ते, पविवेको हि झायिनं॥597॥

(संस्कृतच्छाया)- ''भावयेत् च अनित्यमिति, अनात्मसंज्ञमशुभसंज्ञञ्च।
लोके च अनभिरतिम्, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥594॥
''भावयेत् च बोध्यङ्गान्, ऋद्धिपादान् इन्द्रियाणि बलानि।
अष्ठाङ्गमार्गमार्यम्, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्॥595॥
''तृष्णां प्रजहेत् मुनि, समूलकान् आस्रवान् प्रदारेत्।
विहरेत् विप्रमुक्तः, एतत् श्रमणस्य प्रतिरूपम्"इति॥596॥

तत्रोद्दानम्- *कालुदायी* च सः स्थविरः, *एकविहारी* च *कप्पिनो* ।
चूलपन्थको कप्पो च, *उपसेनो* च *गोतमो*।
सप्तमे दशके स्थविराः, गाथाः चात्र सप्ततीति॥ ●

1. ''किं तवार्थः वने तात्!, उज्जुहान इव प्रावृषि।
वेरम्भा रमणीया ते, प्रविवेकः हि ध्यायीनाम्॥597॥

(हिन्दी)- अनित्य, अनात्म एवं अशुभ संज्ञा की भावना करना तथा लोक के प्रति अनासक्ति-ये बातें भी श्रामण्य के अनुकूल हैं॥594॥

आठ बोध्यङ्गों की भावना, चार ऋद्धिपाद, इन्द्रिय बल, आर्य अष्टांगिक मार्ग- ये सब भी श्रमणभाव के अनुकूल हैं॥595॥

साधक भिक्षु को तृष्णा का त्याग कर, आश्रवों का मूलतः उच्छेद कर, संसार से मुक्त होकर साधना में लगना- श्रमणभाव के अनुकूल ही है॥596॥.... अपर गौतम स्थविर ने ये गाथाएँ कही॥

इस निपात में वर्णित स्थविरों की सूची- इस निपात में ये सात स्थविर वर्णित हैं - कालोदायी स्थविर, एकविहारी, कप्पिन, चूडपन्थक, कप्प, उपसेन एवं अपर गौतम स्थविर॥

इस दशक निपात में ये सात स्थविर संगृहीत हैं। तथा इनके द्वारा कही गयी ये सत्तर गाथाएँ हैं॥ ●

किसी ने पूछा- 'हे तात! आप का इस वन में क्या प्रयोजन है कि आप यहाँ वर्षा ऋतु में इधर उधर घूम रहे हो? आप को पर्वत की तलहटी में चलने वाली ये ठण्डी हवाएँ क्यों अच्छी लग रही हैं? ध्यानाभ्यासी जनों को तो कहीं एकान्त में रहना चाहिए॥597॥

''यथा अब्भानि वेरम्भो, वातो नुदति पावुसे।
सञ्ञा मे अभिकिरन्ति, विवेकपटिसञ्ञुता॥598॥
''अपण्डरो अण्डसम्भवो, सीवथिकाय निकेतचारिको।
उप्पादयतेव मे सतिं, सन्देहस्मिं विरागनिस्सितं॥599॥
''यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति, यो च अञ्ञे न रक्खति।
स वे भिक्खु सुखं सेति, कामेसु अनपेक्खवा॥600॥
''अच्छोदिका पुथुसिला, गोनङ्गुलमिगायुता।
अम्बुसेवालसञ्छन्ना, ते सेला रमयन्ति मं॥601॥
''वसितं मे अरञ्ञेसु, कन्दरासु गुहासु च।
सेनासनेसु पन्तेसु, वाळमिगनिसेविते॥602॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यथा अभ्राणि वेरम्भः, वातः नुदति प्रावृषि।
संज्ञाः मे अभिकिरन्ति, विवेकप्रतिसंयुता॥598॥
''अपाण्डुर अण्डसम्भवः, श्मशाने निकेतचारिकः।
उत्पादयत्येव मे स्मृतिम्, सन्देहे विरागनिश्रितम्॥599॥
''यञ्च अन्यान् न रक्षन्ति, यश्च अन्यान्न रक्षति।
सः वै भिक्षुः सुखं शेते, कामेषु अनप्रेक्षवान्॥600॥
''अच्छोदकाः पृथुशिलाः, गौलङ्गूलमृगयुक्ताः।
अम्बुशैवालसञ्छन्नाः, ते शैलाः रमयन्ति माम्॥601॥
''उषितं मे अरण्येषु, कन्दरासु गुहासु च।
शयनासनेषु प्रान्तेषु, व्याडमृगनिसेवितेषु॥602॥

(हिन्दी)- मैंने उत्तर दिया- जैसे वर्षा में पर्वत की तलहटी में चलने वाली ठण्डी हवाएँ मेघों को उड़ा देती हैं वैसे ही एकान्त के कारण मेरी ये विरुद्ध भावित संज्ञाएँ बिखर जाती हैं॥598॥

श्मशान गृह में काला पड़ा हुआ किसी स्त्री का शव वैराग्य से उद्भूत मेरी स्मृति को सन्देह में डाल देता है॥599॥

जिस की दूसरे लोग रक्षा नही करते तथा जो स्वयं दूसरों की रक्षा नहीं करता, ऐसा कामभोगों में आसक्ति न रखने वाला भिक्षु ही सुखपूर्वक सोता है॥600॥

जहाँ स्थान स्थान पर स्वच्छ जल वाले स्रोत हैं, विस्तृत शिलाएँ हैं, गौ की पूँछ के समान पूँछों वाली हरिणियाँ घूमती है, जहाँ स्थान स्थान पर जल सेवाल से ढँका हुआ है, ऐसे पर्वत मुझको बहुत रमणीक लगते हैं॥601॥

मुझको अरण्यों में, पर्वतों की गुफाओं में, एकान्त निवासगृहों में, पशु पक्षियों के स्वच्छन्द घूमने वाले स्थानों पर आवास करना अच्छा लगता है॥602॥

''इमे हञ्ञन्तु वज्झन्तु, दुक्खं पप्पोन्तु पाणिनो'।
सङ्कप्पं नाभिजानामि, अनरियं दोससंहितं॥603॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥604॥
''यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो॥605॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, निब्बिसं भतको यथा॥606॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो''ति॥607॥ ... संकिच्चो थेरो...।

एकादसनिपातो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया)- ''इमे घ्नन्तु वाधयन्तु, दु:खं प्राप्नुवन्तु प्राणिन:।
संकल्पं नाभिजानामि, अनार्यं दोषसंहितम्॥603॥
''परिचीर्ण: मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अपहृतो गुरुको भार:, भवनेत्री समूलं हता॥604॥
''यस्य चार्थाय प्रव्रजित:, आगारादनागारिकम्।
स मे अर्थ अनुप्राप्त:, सर्वसंयोजनक्षय:॥605॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, निर्विषं भृतको यथा॥606॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, सम्प्रजान: प्रतिस्मृत:"इति॥607॥

(हिन्दी)- दूसरे लोग मुझ को मारें या पकड़ लें, परन्तु मैं अपने मन में ऐसा सोच भी नहीं सकता कि मेरे कारण दूसरे प्राणी कष्ट पावें; क्योंकि ऐसा चिन्तन अनार्य एवं द्वेषमय होता है॥603॥

मेरा शास्ता से परिचय हो गया है, मैं उनको गुरु मान चुका हूँ। मैंने अपना गुरुतर सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार फेंका है और अपने भवबन्धन भी काट फेंके हैं॥604॥

जिस प्रयोजन के लिये मैं घर से निकल कर प्रव्रजित हुआ था, वह मेरा प्रयोजन- मुझको मिल गया है। मेरा भवबन्धन छूट गया है॥605॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा वैसे ही कर रहा हूँ जैसे कोई भृत्य अपने वेतन की प्रतीक्षा करता है॥606॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपने काल की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस प्रकार आयुष्मान् सांकृत्य स्थविर ने ये गाथाएं कहीं॥607॥

तत्रुद्दानं – संकिच्चथेरो एकोव, कतकिच्चो अनासवो।
एकादसनिपातम्हि, गाथा एकादसेव चाति॥

12.द्वादसकनिपातो

1. सीलवत्थेरगाथा-

''सीलमेविध सिक्खेथ, अस्मिं लोके सुसिक्खितं।
सीलं हि सब्बसम्पत्तिं, उपनामेति सेवितं॥608॥
''सीलं रक्खेय्य मेधावी, पत्थयानो तयो सुखे।
पसंसं वित्तिलाभं च, पेच्च सग्गे पमोदनं॥609॥
''सीलवा हि बहू मित्ते, सञ्ञमेनाधिगच्छति।
दुस्सीलो पन मित्तेहि, धंसते पापमाचरं॥610॥
''अवण्णं च अकित्तिं च, दुस्सीलो लभते नरो।
वण्णं कित्तिं पसंसं च, सदा लभति सीलवा॥611॥

(संस्कृतच्छाया)- तत्रोद्दानम्- *संकिच्चस्थविर* एकैव, कृतकृत्य अनास्रव:।
एकादशनिपाते, गाथा एकादशैव चेति॥ ●

1. ''शीलमेव इह शिक्षेत, अस्मिन् लोके सुशिक्षितम्।
शीलं हि सर्वसम्पत्तिम्, उपनयति सेवितम्॥608॥
''शीलं रक्षेत् मेधावी, प्रार्थयमाणा: त्रय: सुखा:।
प्रशंसां वित्तिलाभञ्च, प्रेत्य-स्वर्गे प्रमोदनम्॥609॥
''शीलवान् हि बहु मित्राणि, संयमेनाधिगच्छति।
दु:शील: पुन: मित्रै:, ध्वंसते पापमाचरन्॥610॥
''अवर्णञ्च अकीर्तिञ्च, दु:शील: लभते नर:।
वर्णं कीर्तिं प्रशंसाञ्च, सदा लभते शीलवान्॥611॥

(हिन्दी)- इस निपात में वर्णित स्थविर की सूची- इस एकादश निपात में केवल कृतकृत्य एवं निर्विकारचित्त सांकृत्य स्थविर ही परिगणित हैं॥ और इस में उनके द्वारा कही हुई एकादश गाथाएं ही वर्णित है॥ ●

इस संसार में शील की ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। भली प्रकार सीखा हुआ शील ऐसी सम्पत्ति है जो उपभोग करने वाले बुद्धिमान् को कुछ न कुछ अन्य अच्छे गुण उपहार स्वरूप देता है॥608॥

यदि कोई बुद्धिमान् अपने लिये ये तीन बातें चाहता है; जैसे- इस लोक में प्रशंसा एवं धन और मरने के बाद स्वर्गसुख-तो उसको सदाशील का पालन करना चाहिये॥609॥

शीलवान् पुरुष अपने इन्द्रियसंयम द्वारा बहुत से मित्र बना लेता है। परन्तु इसके विपरीत, दुराचारी पुरुष पापकर्म करता हुआ पहले बने हुए मित्रों को भी खो बैठता है॥610॥

वह दुराचारी पुरुष निन्दा एवं अपयश भी प्राप्त करता है। परन्तु शीलवान् पुरुष, सौन्दर्य, यश एवं प्रशंसा पाता है॥611॥

''आदि सीलं पतिट्ठा च, कल्याणानञ्च मातुकं।
पमुखं सब्बधम्मानं, तस्मा सीलं विसोधये॥612॥
''वेला च संवरं सीलं , चित्तस्स अभिहासनं।
तित्थञ्च सब्बबुद्धानं, तस्मा सीलं विसोधये॥613॥
''सीलं बलं अप्पटिमं, सीलं आवुधमुत्तमं।
सीलमाभरणं सेट्ठं, सीलं कवचमब्भुतं॥614॥
''सीलं सेतु महेसक्खो, सीलं गन्धो अनुत्तरो।
सीलं विलेपनं सेट्ठं, येन वाति दिसोदिसं॥615॥
''सीलं सम्बलमेवग्गं, सीलं पाथेय्यमुत्तमं।
सीलं सेट्ठो अतिवाहो, येन याति दिसोदिसं॥616॥
''इधेव निन्दं लभति, पेच्चापाये च दुम्मनो।
सब्बत्थ दुम्मनो बालो, सीलेसु असमाहितो॥617॥

(संस्कृतच्छाया)- ''आदिशीलं प्रतिष्ठा च, कल्याणानाञ्च मात्रकम्।
प्रमुखं सर्वधर्मानाम्, तस्मात् शीलं विशोधयेत्॥612॥
''वेला च संवरं शीलम्, चित्तस्य अभिहास्यम्।
तीर्थञ्च सर्वबुद्धानाम्, तस्मात् शीलं विशोधयेत॥613॥
''शीलं बलम् अप्रतिम्, शीलम् आयुधमुत्तमम्।
शीलमाभरणं श्रेष्ठम्, शीलं कवचमद्भुतम्॥614॥
''शीलं सेतुः महासाक्षः, शीलं गन्धोऽनुत्तरः।
शीलं विलेपनं श्रेष्ठम्, येन वाति दिशोदिशम्॥615॥
''शीलं सम्बलमेवाग्रम्, शीलं पाथेयमुत्तमम्।
शीलं श्रेष्ठ अतिवाहः, येन याति दिशोदिशम्॥616॥
''इहैव निन्दां लभते, प्रेत्यापाये च दुर्मनः।
सर्वत्र दुर्मनः बालः, शीलेषु असमाहितः॥617॥

(हिन्दी)- यह शील प्रतिष्ठा का आदि है, तथा कल्याणधर्मों का उत्पादक है। यह सभी धर्मों का प्रमुख है अतः इस शील धर्म का निरन्तर पालन करना चाहिये॥612॥

यह शील इन्द्रियसंयम का तटबन्ध है, चित्त को प्रफुल्ल रखने वाला है, सभी बुद्धों का तीर्थ हैं अतः शील धर्म का पालन करना चाहिये॥613॥

शील पुरुष का अपरिमित बल है, उसके लिये विशिष्ट एवं उत्तम शस्त्र है। शील श्रेष्ठ आभूषण भी है और आत्मरक्षार्थ यह शील अद्भुत कवच है॥614॥

शील महाप्रतापयुक्त सेतु है, शील अनुपम गन्धयुक्त है। शील एक श्रेष्ठ गन्धमय विलेपन, जिसको लगाने पर इसकी गन्ध बहुत दूर दूर तक जाती है॥615॥

शील लम्बी पुण्ययात्रा के लिये शम्बल (भोजन सामग्री) या श्रेष्ठ पाथेय है। यह शील भार ढोने का साधन है जिसके आश्रय से लम्बी दूर तक पुण्य यात्राएँ की जा सकती हैं॥616॥

शील पालन में असावधानी रखने वाला पुरुष इस लोक में निन्दा तथा मरने के बाद वह दुःखी हो कर नरक में जा गिरता है। या यह कहिये कि वह सर्वत्र दुःखी ही रहता है॥617॥

''इधेव कित्तिं लभति, पेच्च सग्गे च सुम्मनो।
सब्बत्थ सुमनो धीरो, सीलेसु सुसमाहितो॥618॥
''सीलमेव इध अग्गं, पञ्ञवा पन उत्तमो।
मनुस्सेसु च देवेसु, सीलपञ्ञाणतो जयं''ति॥619॥ ... सीलवो थेरो...।

2. सुनीतत्थेरगाथा-

''नीचे कुलम्हि जातोहं, दलिद्दो अप्पभोजनो।
हीनकम्मं ममं आसि, अहोसिं पुप्फछड्डको॥620॥
''जिगुच्छितो मनुस्सानं, परिभूतो च वम्भितो।
नीचं मनं करित्वान, वन्दिस्सं बहुकं जनं॥621॥
''अथद्दसासिं सम्बुद्धं, भिक्खुसङ्घपुरक्खतं।
पविसन्तं महावीरं, मगधानं पुरुत्तमं॥622॥

(संस्कृतच्छाया)-- ''इहैव कीर्तिं लभते, प्रेत्यस्वर्गे च सुमनः।
सर्वत्र सुमनः धीरः, शीलेषु सुसमाहितः॥618॥
''शीलमेव इह अग्रम्, प्रज्ञावान् पुनरुत्तमः।
मनुष्येषु च देवेषु, शीलप्रज्ञानतः जयमिति॥619॥

2. ''नीचे कुले जातोऽहम्, दरिद्र अल्पभोजनः।
हीनकर्म मम आसीत्, आसम् पुष्पक्षेपकः॥620॥
''जुगुप्सितः मनुष्येभ्यः, परिभूतश्च बम्भितः(खुंसितः)।
नीचं मनः कृत्वा, अवन्दिषि बहुकं जनम्॥621॥
''अथाद्राक्षं सम्बुद्धम्, भिक्षुसङ्घपुरस्कृतम्।
प्रविशन्तं महावीरम्, मागधानां पुरूत्तमम्॥622॥

(हिन्दी)- शील पालन में सावधानी रखने वाला पुरुष इस लोक में कीर्ति प्राप्त करता है तथा मरने के बाद शुद्ध हृदय से स्वर्ग में सुख भोगता है। उसका हृदय सर्वत्र शुद्ध ही रहता है॥618॥

इस लोक में शील को ही प्रमुखता दी गयी है; परन्तु प्रज्ञावान् पुरुष इस शीलवान् से भी उत्तम माना जाता है। मनुष्यों एवं देवों में शील एवं प्रज्ञा से ही विजय मिलती है॥619॥

मैं ऐसे हीन कुल में उत्पन्न हुआ था जहाँ मुझको खाने के लिए भोजन भी अल्पमात्रा में ही मिल पाता था, धन सम्पत्ति का होना तो बहुत दूर की बात थी! उस समय मेरे जीवनयापन का कर्म भी हीन था, तब मैं फूल फेंकने या मैला फेंकने का कार्य करता था॥620॥

मैं उस समय मनुष्यों में घृणा का पात्र था। इस प्रकार मैं अपने को हीन मानता हुआ सब को प्रणाम करता था॥621॥

तब मैंने एक दिन भिक्षुसंघ के साथ भगवान् बुद्ध को मगधराज्य के श्रेष्ठ नगर में प्रविष्ट होते देखा॥622॥

''निक्खिपित्वान ब्याभङ्गिं, वन्दितुं उपसङ्कमिं।
ममेव अनुकम्पाय, अट्ठासि पुरिसुत्तमो॥623॥
''वन्दित्वा सत्थुनो पादे, एकमन्तं ठितो तदा।
पब्बज्जं अहमायाचिं, सब्बसत्तानमुत्तमं ॥624॥
''ततो कारुणिको सत्था, सब्बलोकानुकम्पको।
'एहि भिक्खू'ति मं आह, सा मे आसूपसम्पदा॥625॥
''सोहं एको अरञ्ञस्मिं, विहरन्तो अतन्दितो।
अकासिं सत्थुवचनं, यथा मं ओवदी जिनो॥626॥
''रत्तिया पठमं यामं, पुब्बजातिमनुस्सरिं।
रत्तिया मज्झिमं यामं, दिब्बचक्खुं विसोधयिं ।
रत्तिया पच्छिमे यामे, तमोखन्धं पदालयिं॥627॥

(संस्कृतच्छाया)-- ''निक्षिप्य ब्याभङ्गिम्*, वन्दितुम् उपसमक्राम्यम्।
ममैव अनुकम्पया, अस्थात् पुरुषोत्तमः॥623॥
''वन्दित्वा शास्तुः पादौ, एकमन्तं स्थितः तदा।
प्रव्रज्याम् अहमयाचम्, सर्वसत्त्वानामुत्तमम्॥624॥
''ततः कारुणिकः शास्ता, सर्वलोकानुकम्पकः।
'एहि भिक्षु!' इति माम् आह, सा मे आसीदुपसम्पदा॥625॥
''सोऽहम् एकोऽरण्ये, विहरन् अतन्द्रितः।
अकार्षं शास्तुः वचनम्, यथा माम् अवादीत् जिनः॥626॥
''रात्रेः प्रथमे यामे, पूर्वजातिमन्वस्मार्षम्।
रात्रेः मध्यमे यामे, दिव्यचक्षुं व्यशोधिषम्।
रात्रेः पश्चिमे यामे, तमस्स्कन्धं प्रादारयम्॥627॥

(हिन्दी)- तब मैं, अपने उस मैला ढोने के साधन को एक ओर रख कर, भगवान् को प्रणाम करने हेतु उनके पास गया। वे पुरुषोत्तम भगवान् भी मुझ पर अनुकम्पा करते हुए वहीं खड़े हो गये॥623॥

मैं, शास्ता के चरणों में प्रणाम करने के बाद, एक ओर खड़ा हो गया और मैंने उन पुरुषश्रेष्ठ से अपने लिये प्रव्रज्या की याचना की॥624॥

तब सब लोकों पर अनुकम्पा करने वाले कृपालु शास्ता ने मुझे जाओ भिक्षु!- ऐसा कहा, वही मेरी उपसम्पदा हो गयी॥625॥

तब से मैंने सावधानी के साथ एकाकी ही अरण्य में साधना करते हुए शास्ता के उन सभी आदेशों का पालन किया जो उन्होंने मुझ को यथासमय दिये थे॥626॥

रात्रि के प्रथम प्रहर में साधना करते हुए मैंने अपने पूर्वजन्मों का स्मरण किया। रात्रि के मध्यम प्रहर में मुझको दिव्य चक्षु अधिगत हुआ। रात्रि के अन्तिम प्रहर में मैंने अपना समस्त अज्ञानावरण नष्ट कर लिया॥627॥

* भारवाहन ।

''ततो रत्या विवसाने, सूरियस्सुग्गमनं पति।
इन्दो ब्रह्मा च आगन्त्वा, मं नमस्सिंसु पञ्जली॥628॥
''नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते आसवा खीणा, दक्खिणेय्योसि मारिस'॥629॥
''ततो दिस्वान मं सत्था, देवसङ्घपुरक्खतं।
सितं पातुकरित्वान, इममत्थं अभासथ॥630॥
''तपेन ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं''ति॥631॥ ... सुनीतो थेरो...।

द्वादसकनिपातो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – सीलवा च सुनीतो च, थेरा द्वे ते महिद्धिका।
द्वादसम्हि निपातम्हि, गाथायो चतुवीसतीति॥

(संस्कृतच्छाया)-- ''ततो रात्रौ व्यवसाने, सूर्यस्योर्ध्वगमनं प्रति।
इन्द्रो ब्रह्मा च आगत्य, मां अनंसिष्टां प्राञ्जलि॥628॥
''नम: ते पुरुषाजन्य, नम: ते पुरुषोत्तम!।
यस्य ते आस्रवा: क्षीणा:, दाक्षिणेयोऽसि मार्ष॥629॥
''ततो दृष्ट्वा मां शास्ता, देवसङ्घपुरस्कृतम्।
स्मितं प्रादुर्कृत्वा, इदमर्थम् अभाषत॥630॥
''तपसा ब्रह्मचर्येण, संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो भवति, एतद् ब्राह्मणमुत्तमम्"इति॥631॥

तत्रोद्दानम्- *सीलवा* च *सुनीतो* च, स्थविरौ द्वौ तौ महर्द्धिकौ।
द्वादशे निपाते, गाथा: चतुर्विंशति"इति॥ ●

(हिन्दी)- तदनन्तर, रात्रि के व्यतीत होने पर जब सूर्योदय होने को ही था, देवराज इन्द्र एवं ब्रह्मा ने आ कर मुझको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और यह कहा-॥628॥

हे श्रेष्ठ पुरुष! हे पुरुषोत्तम! आप को प्रणाम है, जिसके सभी चित्तविकार साधना के बल पर क्षीण हो गये। मार्ष! अब आप दाक्षिणेय हो गये हैं॥629॥

तदनन्तर, शास्ता ने मुझको देवसमूह से घिरा हुआ देखकर मन्द मन्द मुस्कान के साथ ये आशीर्वचन कहे॥630॥

कोई भी साधक तप, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियसंयम, एवं चित्त के दमन द्वारा ही 'ब्राह्मण' कहलाने का अधिकारी होता है। ऐसे साधक को ही 'उत्तम ब्रह्मण' कहते हैं। सुनीत स्थविर ने ये गाथाएं कहीं॥631॥

इस निपात में वर्णित स्थविरों तथा गाथाओं की सूची- महान् ऋद्धिसम्पन्न शीलवान् एवं सुनीत- इन दो स्थविरों के वचनों का इस निपात में वर्णन है॥ तथा इस द्वादशक निपात में चौबीस गाथाएं कही गयी हैं॥ ●

13. तेरसनिपातो

1. सोणकोळिविसत्थेरगाथा-

''याहु रट्ठे समुक्कट्ठो, रञ्ञो अङ्गस्स पद्धगू।
स्वाज्ज धम्मेसु उक्कट्ठो, सोणो दुक्खस्स पारगू॥632॥
''पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु, ओघतिण्णोति वुच्चति॥633॥
''उन्नळस्स पमत्तस्स, बाहिरासस्स भिक्खुनो।
सीलं समाधि पञ्ञा च, पारिपूरिं न गच्छति॥634॥
''यञ्हि किच्चं अपविद्धं, अकिच्चं पन करीयति।
उन्नळानं पमत्तानं, तेसं वड्ढन्ति आसवा॥635॥
''येसं च सुसमारद्धा, निच्चं कायगता सति।
अकिच्चं ते न सेवन्ति, किच्चे सातच्चकारिनो।
सतानं सम्पजानानं, अत्थं गच्छन्ति आसवा॥636॥

(संस्कृतच्छाया)--1. ''य अभूत राष्ट्रे समुत्कृष्टः, राज्ञ अङ्गस्य प्राद्ध्वगः।
सः अद्य धर्मेषु उत्कृष्टः, शोणो दुःखस्य पारगः॥632॥
''पञ्च छिन्धि पञ्च जहीहि, पञ्चोत्तरं भावयेत्।
पञ्चसङ्गाऽतिगो भिक्षुः, 'ओघतीर्णः' इत्युच्यते॥633॥
''उन्मत्तस्य प्रमत्तस्य, बहिराशयस्य भिक्षोः।
शीलं समाधिः प्रज्ञा च, पारिपूर्णं न गच्छति॥634॥
''यद् हि कृत्यमपविद्धम्, अकृत्यं पुनः करोति।
उन्मत्तानां प्रमत्तानाम्, तेषां वर्धन्ते आस्रवाः॥635॥
''येषाञ्च सुसमारब्धात्, नित्यं कायगता स्मृतिः।
अकृत्यं ते न सेवन्ते, कृत्ये सातत्यकारिणः।
स्मरतां सम्प्रजानानाम्, अस्तं गच्छन्ति आस्रवाः॥636॥

(हिन्दी)- जो शोण कभी अंग राष्ट्र के राजा का समुत्कृष्ट अनुगामी था वह आज धर्म में उत्कृष्ट साधना करता हुआ दुःखों के पार चला गया है॥632॥

पाँच (अधोभागीय संयोजनों) को काट कर; पाँच (ऊर्ध्वभागीय संयोजनों) को त्याग कर; पाँच (श्रद्धा, वीर्य स्मृति, समाधि एवं प्रज्ञा) की भावना कर। इस प्रकार पाँच (रूप, वेदना आदि उपादान स्कन्धों) का संग छोड़ कर आगे बढ़ जाने वाले भिक्षु औघतीर्ण कहलाता है॥633॥

जो पथभ्रष्ट हो चुका हो, प्रमत्त हो, बह्य संसार की आशा रखता हो- ऐसे भिक्षु के शील, समाधि एवं प्रज्ञा धर्म पूर्ण नहीं हो पाते॥634॥

जो तुम्हारा कर्तव्य था उस को तुमने छोड़ दिया; जो तुम्हारे लिये अकरणीय था उस को करने में तुम उत्कण्ठा दिखा रहे हो। ऐसे प्रवृद्ध चित्तविकार वाले प्रमत्त पुरुषों के आश्रव वृद्धिङ्गत ही होते रहते हैं॥635॥

जिन साधकों की स्मृति इस अशुभ शरीर के प्रति सदा बनी रहती है ऐसे साधक उन अकरणीय कर्मों के प्रति आँख भी नहीं उठाते, तथा करणीय कर्मों के विधान में निरन्तर ध्यान लगाये रहते हैं ऐसे स्मृतिमान्, एवं सावधान पुरुषों के आश्रव क्षीण ही होते रहते हैं॥636॥

''उजुमग्गम्हि अक्खाते, गच्छथ मा निवत्तथ।
अत्तना चोदयत्तानं, निब्बानमभिहारये॥637॥
''अच्चारद्धम्हि वीरियम्हि, सत्था लोके अनुत्तरो।
वीणोपमं करित्वा मे, धम्मं देसेसि चक्खुमा।
तस्साहं वचनं सुत्वा, विहासिं सासने रतो॥638॥
''समथं पटिपादेसिं, उत्तमत्थस्स पत्तिया।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥639॥
''नेक्खम्मे अधिमुत्तस्स, पविवेकं च चेतसो।
अब्यापज्झाधिमुत्तस्स, उपादानक्खयस्स च॥640॥
''तण्हक्खयाधिमुत्तस्स, असम्मोहं च चेतसो।
दिस्वा आयतनुप्पादं, सम्मा चित्तं विमुच्चति॥641॥

(संस्कृतच्छाया)-- ''ऋजुमार्गे आख्याते, गच्छत मा निवर्तत।
आत्मना चोदयात्मानम्, निर्वाणमभिहारयेत्॥637॥
''अत्यारब्धे वीर्ये, शास्ता लोके अनुत्तरः।
वीणोपमं कृत्वा मे, धर्मम् अदिशत् चक्षुष्मान्।
तस्याहं वचनं श्रुत्वा, व्यहार्षम् शासने रतः॥638॥
''शमथं प्रत्यपत्सि, उत्तमार्थस्य प्राप्तये।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥639॥
''नैष्क्रम्ये अधिमुक्तस्य, प्रविवेकञ्च चेतसः।
अव्यापध्याधिमुक्तस्य, उपादानक्षयस्य च॥640॥
''तृष्णाक्षयाधिमुक्तस्य, असम्मोहञ्च चेतसः।
दृष्ट्वा आयतनोत्पादम्, सम्यक् चित्तं विमुञ्चते॥641॥

(हिन्दी)- भगवान् के द्वारा साधना का सरलतम मार्ग उपदिष्ट कर दिये जाने पर उसका ही अनुसरण करते चलो, उस से लौटो नही। स्वयं को स्वयं प्रेरणा देते हुए निर्वाण तक पहुँच जाओ॥637॥

जब मैंने अपनी साधना में अतिशय शक्ति का प्रयोग करना आरम्भ किया तो उसमें ज्ञानी शास्ता ने मेरी क्षति देख कर वीणा के तार का दृष्टान्त देते हुए मुझको धर्मसाधना की उचित रीति बतायी। उनका आदेश मान कर मैंने उचित रीति से साधना आरम्भ की॥638॥

मैंने उत्तम अर्थ की प्राप्ति हेतु शमथ का अभ्यास किया। जिससे मुझको तीनों विद्याओं की अधिगति हो गयी। इस प्रकार मैंने बुद्धोपदिष्ट साधन का फल प्राप्त किया॥639॥

निष्काम भावना का संकल्प करते हुए साधक एकान्त में साधना हेतु अपना मन लगावे। इस प्रकार उस साधनामार्गानुयायी का उपादान का क्षय होने से॥640॥

वह तृष्णा क्षय का संकल्प कर, चित्त की मोहभ्रान्ति का निवारण कर, आयतनों के उत्पाद का ज्ञान कर एवं चित्त को उन से भलीभाँति विमुक्त कर लेता है॥641॥

''तस्स सम्मा विमुत्तस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
कतस्स पटिचयो नत्थि, करणीयं न विज्जति॥642॥
''सेलो यथा एकघनो, वातेन न समीरति।
एवं रूपा रसा सद्दा, गन्धा फस्सा च केवला॥643॥
''इट्ठा धम्मा अनिट्ठा च, नप्पवेधेन्ति तादिनो।
ठितं चित्तं विसञ्ञुत्तं, वयंचस्सानुपस्सती''ति॥644॥ ... सोणो कोळिविसो थेरो...।

तेरसनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – सोणो कोळिविसो थेरो, एकोयेव महिद्धिको।
तेरसम्हि निपातम्हि, गाथायो चेत्थ तेरसाति॥

14. चुद्दसकनिपातो

1. खदिरवनियरेवतत्थेरगाथा-

''यदा अहं पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
नाभिजानामि सङ्कप्पं, अनरियं दोससंहितं॥645॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तस्य सम्यक् विमुक्तस्य, शान्तचितस्य भिक्षो:।
कृतस्य प्रतिचयो नास्ति, करणीयं न विद्यते॥642॥
''शैलो यथैकघन, वातेन न समीर्यते।
एवं रूपं रस: शब्द:, गन्ध: स्पर्शश्च केवल:॥643॥
''इष्टा: धर्मा अनिष्टाश्च, न प्रवेधयन्ति तादिन:।
स्थितं चित्तं विसञ्युक्तम्, व्ययञ्चास्यानुपश्यति"इति॥644॥

तत्रोद्दानम्- *सोणो कोळिविसो* स्थविर:, एक: य एव महर्द्धिक:।
त्रयोदशे निपाते, गाथा: चात्र त्रयोदश इति॥ ●

1. ''यदा अहं प्रव्रजित:, आगारादनागारिकम्।
नाभिजानामि सङ्कल्पम्, अनार्यं दोषसंहितम्॥645॥

(हिन्दी)- इस प्रकार सम्यग्विमुक्तचित्त हो कर शान्तचित्त हो जाने वाले उस भिक्षु के द्वारा कृत लौकिक कर्मों का कोई फल नहीं होता तथा आगे उस का कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता॥642॥
जैसे कोई सुदृढ पर्वत प्रबलतम वायु से भी कम्पित नहीं हो पाता; उसी प्रकार बुद्धिमान् पुरुष को रूप, रस, शब्द, गन्ध, स्पर्श आदि लौकिक विषय॥643॥
तथा इष्ट या अनिष्ट धर्म कम्पित नहीं कर पाते और उस का विमुक्त एवं स्थिर चित्त धर्मों के क्षय एवं व्यय का अनुशीलन करता रहता है॥644॥ इस प्रकार आयुष्मान शोण कोटिविंश स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात में वर्णित स्थविर एवं गाथा की सूची- इस त्रयोदश निपात में एक महान् ऋद्धिसम्पन्न शोण कोटिविंश ही एकमात्र स्थविर उद्धृत हैं और इस त्रयोदश निपात में तेरह गाथाएँ उल्लिखित हैं।●
जब मैं गृहाभिनिष्क्रमण कर प्रव्रजित हुआ तब से मैं नहीं जानता कि मेरे मन में ऐसा अनार्य एवं द्वेषमय संकल्प आया हो॥645॥

''इमे हञ्ञन्तु वज्झन्तु, दुक्खं पप्पोन्तु पाणिनो'।
सङ्कप्पं नाभिजानामि, इमस्मिं दीघमन्तरे॥646॥
''मेत्तञ्च अभिजानामि, अप्पमाणं सुभावितं।
अनुपुब्बं परिचितं, यथा बुद्धेन देसितं॥647॥
''सब्बमित्तो सब्बसखो, सब्बभूतानुकम्पको।
मेत्तचित्तं च भावेमि, अब्यापज्जरतो सदा॥648॥
''असंहीरं असंकुप्पं, चित्तं आमोदयामहं।
ब्रह्मविहारं भावेमि, अकापुरिससेवितं॥649॥
''अवितक्कं समापन्नो, सम्मासम्बुद्धसावको।
अरियेन तुण्हीभावेन, उपेतो होति तावदे॥650॥

(संस्कृतच्छाया)- ''इमे घ्नन्तु बाधयन्तु, दुःखं प्राप्नुवन्तु प्राणिनः।
सङ्कल्पं नाभिजानामि, अस्मिन् दीर्घमन्तरे॥646॥
''मैत्रीञ्च अभिजानामि, अप्रमाणं सुभावितम्।
अनुपूर्वं परिचितम्, यथा बुद्धेन देशितम्॥647॥
''सर्वमित्रः सर्वसखः, सर्वभूतानुकम्पकः।
मैत्रीचित्तञ्च भावयामि, अव्यापद्यरतः सदा॥648॥
''असंह्रय असंकोपम्, चित्तम् आमोदयाम्यहम्।
ब्रह्मविहारं भावयामि, अकापुरुषसेवितम्॥649॥
''अवितर्कं समापन्नः, सम्यक्सम्बुद्धश्रावकः।
आर्येण तूष्णीभावेन, उपेतो भवति तावदेव॥650॥

(हिन्दी)- ये प्राणी मारे जायँ, या किसी विपत्ति में फँस जायँ- ऐसा संकल्प इस सुदीर्घ प्रव्रज्याकाल में मेरे मन में आया हो- ऐसा मैं नहीं जानता॥646॥

अपितु मैंने इस काल में अपरिमित मैत्री भावना का ही अभ्यास किया है। तथा इस भावना से मैं उसी रूप में परिचित हूँ, जैसा कि भगवान् ने इसका मुझको उपदेश किया था॥647॥

मैं इस भावना का अभ्यास करता हुआ सब के साथ मैत्री एवं सखित्व का व्यवहार करता रहा, सब प्राणियों पर अनुकम्पा करता रहा। और अद्विष्टचित्त रहता हुआ सब के साथ मैंने मैत्रीचित्त से ही व्यवहार किया॥648॥

मैं अपने स्थिर एवं अकम्पित चित्त को सदा प्रमुदित रखता हूँ तथा आर्यों द्वारा सेवित ब्रह्मविहार की साधना करता हूँ॥649॥

तथागत का कोई भी शिष्य अवितर्क की भावना करता हुआ आर्यों द्वारा सेवित मौनभाव को स्वीकार करता हुआ अर्हत्व तक पहुँच जाता है॥650॥

''यथापि पब्बतो सेलो, अचलो सुप्पतिट्ठितो।
एवं मोहक्खया भिक्खु, पब्बतोव न वेधति॥651॥
''अनङ्गणस्स पोसस्स, निच्चं सुचिगवेसिनो।
वालग्गमत्तं पापस्स, अब्भमत्तंव खायति॥652॥
''नगरं यथा पच्चन्तं, गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं, खणो वो मा उपच्चगा॥653॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, निब्बिसं भतको यथा॥654॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो॥655॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥656॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यथापि पर्वतः शैलः, अचलः सुप्रतिष्ठितः।
एवं मोहक्षयात् भिक्षुः, पर्वत इव न वेधते॥651॥
''अनङ्गणस्य पुरुषस्य, नित्यं शुचिगवेषिणः।
बालाग्रमात्रं पापस्य, अभ्रमात्रमिव क्षीयते॥652॥
''नगरं यथा प्रत्यन्तम्, गुप्तं सान्तर्बाह्यम्।
एवं गोपायेत् आत्मानम्, क्षणः वै मा उपत्यगात्॥653॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, निर्विषं भृतको यथा॥654॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः"इति॥655॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अवहितो गुरुकः भारः, भवनेत्री समूलं हताः॥656॥

(हिन्दी)- जैसे कोई सुदृढ़ पर्वत प्रबलतम वायु से भी कम्पित नहीं हो पाता, इसी प्रकार, कोई भिक्षु भी, मोह-क्षय के कारण, उस पर्वत के समान-कम्पित नहीं होता॥651॥

चित्तविकार रहित साधक पुरुष के, जो निरन्तर शुद्धतत्त्व की ही गवेषणा करता है, पाप का रोम के अग्रभाग जितना अंश भी शून्य जैसा होकर क्षीण हो जाता है॥652॥

जैसे राज्य के किसी सीमान्तप्रदेश स्थित नगर के भीतर एवं बाहर के स्थान सर्वथा सुरक्षित किये जाते हैं; वैसे ही भिक्षु को साधना द्वारा स्वयं को सुरक्षित करना चाहिये॥653॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा वैसे ही कर रहा हूँ जैसे कोई भृत्य अपने वेतन की प्रतीक्षा करता है॥654॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपने काल (मृत्यु) की प्रतीक्षा कर रहा हूँ॥655॥

मेरा शास्ता से परिचय हो गया है, मैं उनको गुरु मान चुका हूँ। मैंने अपना गुरुतर सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार फेंका है और अपने भवबन्धन भी काट फेंके हैं॥656॥

''यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो॥657॥
''सम्पादेथप्पमादेन, एसा मे अनुसासनी।
हन्दाहं परिनिब्बिस्सं, विप्पमुत्तोम्हि सब्बधी''ति॥658॥ ... खदिरवनियरेवतो थेरो...।

2. गोदत्तत्थेरगाथा-

''यथापि भद्दो आजञ्ञो, धुरे युत्तो धुरस्सहो।
मथितो अतिभारेन, संयुगं नातिवत्तति॥659॥
''एवं पञ्ञाय ये तित्ता, समुद्दो वारिना यथा।
न परे अतिमञ्ञन्ति, अरियधम्मोव पाणिनं॥660॥
''काले कालवसं पत्ता, भवाभववसं गता।
नरा दुक्खं निगच्छन्ति, तेध सोचन्ति माणवा॥661॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य चार्थाय प्रव्रजितः, आगारादनागारिकम्।
स मे अर्थ अनुप्राप्तः, सर्वसंयोजनक्षयः॥657॥
''सम्पद्येरन प्रमादेन, एषा मे अनुशासनी।
हन्ताहं परिनिर्वास्यामि,विप्रमुक्तोऽस्मि सर्वथा'' इति॥658॥

2. ''यथापि भद्र आजन्यः, धुरे युक्तः धुरासहः।
मथित अतिभारेण, संयुगं नातिवर्त्तते॥659॥
''एवं प्रज्ञया ये त्यक्ताः, समुद्रः वारिणा यथा।
न परे अतिमन्यन्ते, आर्यधर्म इव प्राणिनाम्॥660॥
''काले कालवशं प्राप्ताः, भवाभववशं गताः।
नराः दुःखं निर्गच्छन्ति, ते इह शोचन्ति मानवाः॥661॥

(हिन्दी)- जिस प्रयोजन के लिये मैं घर से निकल कर प्रव्रजित हुआ था, वह मेरा प्रयोजन-मेरे सभी भवबन्धनों का क्षय-मुझको मिल गया है। मेरा भवबन्धन छूट गया है॥657॥

आप लोग भी सावधनीपूर्वक इस साधना में लग जाइये। आप लोगों को मेरा यही परामर्श है। अब मेरा तो परिनिर्वाण होगा; क्योंकि मेरा चित्त सभी विकारों से मुक्त हो चुका है॥658॥ आयुष्मान् खदिरवनिय रेवत स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

जैसे कोई उच्च जाति का बैल जूए में जुता हुआ जुए के कष्ट को सहन करता है। वहाँ वह अधिक भार से कष्ट पाता हुआ भी जूए से पृथक् नहीं होता॥659॥

इसी प्रकार, प्रज्ञा के द्वारा इन्द्रिय विषयों को कष्टप्रद जान कर भी उन का तिरस्कार न करें; जैसे समुद्र क्षारजल का तिरस्कार नहीं करता। अच्छे प्राणियों का यही स्वभाव होना चाहिये॥660॥

समय आने पर सभी की मृत्यु होती है। यह जन्म-मरण सभी के साथ लगा हुआ है। इस के कारण मनुष्य कष्ट पाते हैं; परन्तु मनुष्यों को इस विषय पर शोक नहीं करना चाहिये॥661॥

''उन्नता सुखधम्मेन, दुक्खधम्मेन चोनता।
द्वयेन बाला हञ्ञन्ति, यथाभूतं अदस्सिनो॥662॥
''ये च दुक्खे सुखस्मिं च, मज्झे सिब्बिनिमच्चगू।
ठिता ते इन्दखीलोव, न ते उन्नतओनता॥663॥
''न हेव लाभे नालाभे, न यसे न च कित्तिया।
न निन्दायं पसंसाय, न ते दुक्खे सुखम्हि॥664॥
''सब्बत्थ ते न लिम्पन्ति, उदबिन्दुव पोक्खरे।
सब्बत्थ सुखिता धीरा, सब्बत्थ अपराजिता॥665॥
''धम्मेन च अलाभो यो, यो च लाभो अधम्मिको।
अलाभो धम्मिको सेय्यो, यं चे लाभो अधम्मिको॥666॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उन्नता सुखधर्मेण, दुःखधर्मेण चावनता।
द्वाभ्यां बालाः हन्यन्ते, यथाभूतम् अदर्शिनः॥662॥
''ये च दुःखे सुखे च, मध्ये सीवनीमत्यगः।
स्थिताः ते इन्द्रकील इव, न ते उन्नतावनताः॥663॥
''न हि एव लाभे नालाभे, न यशसि न च कीर्त्याम्।
न निन्दायां प्रशंसायाम्, न ते दुःखे सुखे॥664॥
''सर्वत्र ते न लिम्पन्ति, उदकबिन्दु इव पुष्करे।
सर्वत्र सुखिताः धीराः, सर्वत्र अपराजिताः॥665॥
''धर्मेण च अलाभो यः, यश्च लाभोऽधार्मिकः।
अलाभो धार्मिकः श्रेयः, यश्चेत् लाभोऽधार्मिकः॥666॥

(हिन्दी)- सुख प्राप्त कर अभिमान करना, तथा दुःख पाने पर कष्ट मानना- इन दोनों बातों से मूर्ख जन ही व्यग्र होते हैं; क्योंकि वे यथार्थ नहीं जानते॥662॥

जो बुद्धिमान् दुःख एवं सुख के मध्य, इन से सम्बन्ध कराने वाले तृष्णा का वास समझते हैं, वे संसार में इन्द्रकील के समान अचल एवं अकम्प्य ही रहते हैं। वे उनके कारण उन्नत या अवनत नहीं होते॥663॥

न कोई लाभ या हानि प्राप्त होने पर, यश या अपयश प्राप्त होने पर, न अपनी निन्दा या प्रशंसा में, न सुख या दुःख में॥664॥

वे इन सभी स्थानों में उसी प्रकार लिप्त नहीं होते; जैसे कमलपत्र पर जलबिन्दु नहीं ठहरता। धैर्यवान् पुरुष सभी स्थितियों में स्वयं को अपराजित मानते हुए लोकव्यवहार चलाते हैं॥665॥

यदि कहीं धर्मकार्य करने से हानि होती हो, या कहीं अधार्मिक कार्य करने से लाभ ही होता हो- इन दोनों कार्यों में धर्म कार्य करने से यदि हानि भी होती है तो भी वही श्रेष्ठ है; परन्तु अधार्मिक कार्य से होने वाला लाभ कथमपि' श्रेष्ठ नहीं॥666॥

''यसो च अप्पबुद्धीनं, विञ्ञूनं अयसो च यो।
अयसोव सेय्यो विञ्ञूनं, न यसो अप्पबुद्धिनं॥667॥
''दुम्मेधेहि पसंसा च, विञ्ञूहि गरहा च या।
गरहाव सेय्यो विञ्ञूहि, यं चे बालप्पसंसना॥668॥
''सुखं च काममयिकं, दुक्खं च पविवेकियं।
पविवेकदुक्खं सेय्यो, यं चे काममयं सुखं॥669॥
''जीवितं च अधम्मेन, धम्मेन मरणं च यं।
मरणं धम्मिकं सेय्यो, यं चे जीवे अधम्मिकं॥670॥
''कामकोपप्पहीना ये, सन्तचित्ता भवाभवे।
चरन्ति लोके असिता, नत्थि तेसं पियापियं॥671॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यशश्च अल्पबुद्धीनाम्, विज्ञानां, अयशश्च यः।
अयश एव श्रेयः विज्ञानाम्, न यश अल्पबुद्धीनाम्॥667॥
''दुर्मेधैः प्रशंसा च, विज्ञैः गर्हा च या।
गर्हैव श्रेया विज्ञैः, या चेत् बालप्रशंसना॥668॥
''सुखञ्च काममयिकम्, दुखञ्च प्रविवेक्यम्।
प्रविवेकदुःखं श्रेयः, यत् चेत् काममयं सुखम्॥669॥
''जीवितञ्चाधर्मेण, धर्मेण मरणञ्च यत्।
मरणं धार्मिकं श्रेयः, यच्चेत् जीवेत् अधार्मिकम्॥670॥
''कामकोपप्रहीणाः ये, शान्तचित्ताः भवाभवे।
चरन्ति लोके असिताः, नास्ति तेषां प्रियाप्रियम्॥671॥

(हिन्दी)- अल्पबुद्धियों द्वारा फैलाया हुआ यश, एवं विद्वानों द्वारा फैलायी अपकीर्ति- इन दोनों में भी विद्वानों द्वारा फैलायी गयी अपकीर्ति ही श्रेयस्कर है, अपेक्षाकृत मूर्खों द्वारा फैलाये गये यश से॥667॥

इसी प्रकार दुर्बुद्धियों द्वारा की गयी प्रशंसा और विद्वानों द्वारा की गयी निन्दा -इन दोनों में विद्वानों द्वारा की गयी निन्दा ही महत्वपूर्ण है, न कि मूर्खों द्वारा की गयी प्रशंसा॥668॥

कामभोगों से प्राप्त सुख, एवं एकान्त में की गयी साधना से प्राप्त दुःख- इन दोनों में एकान्त में की गयी साधना से प्राप्त दुःख ही श्रेयस्कर है, कामभोगों से प्राप्त सुख श्रेयस्कर नहीं होता॥669॥

अधर्म करते हुए जीवित रहना तथा धर्म करते हुए मर जाना-इन दोनों में धर्मकर्म करते हुए मर जाना ही श्रेयस्कर है, न कि अधार्मिक कार्यों से जीवित रहना॥670॥

जो साधक काम एवं क्रोध से मुक्त हो चुके हैं, जो जीवन एवं मृत्यु का चिन्तन कर व्यग्र नहीं होते- ऐसे लोग लोक में शुद्धधर्मों की भावना करते हुए निष्कलंक ही कहलाते हैं; क्योंकि ऐसे लोगों का प्रिय या अप्रिय विषयों में कोई ममत्व नहीं रह गया है॥671॥

''भावयित्वान बोज्झङ्गे, इन्द्रियानि बलानि च।
पप्पुय्य परमं सन्तिं, परिनिब्बन्तिनासवा''ति॥672॥ ... गोदत्तो थेरो...।

चुद्दसकनिपातो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं- रेवतो चेव गोदत्तो, थेरा द्वे ते महिद्धिका।
चुद्दसम्हि निपातम्हि, गाथायो अट्ठवीसतीति॥

15. सोळसकनिपातो

1. अञ्ञासिकोण्डञ्ञत्थेरगाथा-

''एस भिय्यो पसीदामि, सुत्वा धम्मं महारसं।
विरागो देसितो धम्मो, अनुपादाय सब्बमसो॥673॥
''बहूनि लोके चित्रानि, अस्मिं पथविमण्डले।
मथेन्ति मञ्ञे सङ्कप्पं, सुभं रागूपसंहितं॥674॥
''रजमुहतं च वातेन, यथा मेघोपसम्मये।
एवं सम्मन्ति सङ्कप्पा, यदा पञ्ञाय पस्सति॥675॥

(संस्कृतच्छाया)- ''भावयित्वा बोध्यङ्गान्, इन्द्रियाणि बलानि च।
प्राप्य परमां शान्तिम्, परिनिर्वास्यन्ति अनास्रवाः''इति॥672॥

तत्रोद्दानम्- *रेवतो* चैव *गोदत्तो*, स्थविरौ द्वौ तौ महर्द्धिकौ।
चतुर्दशे निपाते, गाथा अष्टविंशतीति॥ ●

1. ''एष भूयः प्रसीदयामि, श्रुत्वा धर्मं महारसम्।
विराग देशित धर्मः, अनोपादाय सर्वशः॥673॥
''बहूनि लोके चित्राणि, अस्मिन् पृथ्वीमण्डले।
मथन्ति मन्ये सङ्कल्पम्, शुभं रागोपसंहितम्॥674॥
''रजमवहतञ्च वातेन, यथा मेघोपशाम्येन।
एवं शाम्यन्ति सङ्कल्पाः, यदा प्रज्ञया पश्यति॥675॥

(हिन्दी)- ऐसे साधक बुद्धोपदिष्ट बोध्यंगों की इन्द्रिय एवं बलों की भावना करते हैं तो वे परमशान्ति पद अर्हत्व प्राप्त कर अन्त में आश्रवक्षय से परिनिर्वृत होते हैं॥672॥...गोदत्त स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात में उद्दिष्ट स्थविरों एवं गाथाओं की सूची- रेवत स्थविर एवं गोदत्त स्थविर- ये दो ही स्थविर इस चतुर्दश निपात में परिगणित हैं। तथा इस निपात में अट्ठाईस गाथाएँ उक्त स्थविरों द्वारा प्रोक्त हैं। ●
इस महारसमय धर्म का श्रवण कर मैं बहुत अधिक प्रसन्न हूँ। इस धर्म में संसार के प्रति वैराग्य एवं सर्वप्रकार की अनासक्ति ही वर्णित है॥673॥
इस लोक में, इस भूमण्डल पर बहुत सी चित्र विचित्र बातें देखने को मिलती हैं, जो मानो शुभरागयुक्त संकल्प उत्पन्न करती हैं॥674॥
ये सभी संकल्प प्रज्ञा द्वारा सूक्ष्म विवेचन करने के बाद उसी प्रकार शान्त हो जाते हैं जैसे मेघों से हुई वर्षा से आकाश की धूल शान्त हो जाती है॥675॥

''सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥676॥
''सब्बे सङ्खारा दुक्खाति, यदा पञ्ञाय पस्सति
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥677॥
''सब्बे धम्मा अनत्ताति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥678॥
''बुद्धानुबुद्धो यो थेरो, कोण्डञ्ञो तिब्बनिक्कमो।
पहीनजातिमरणो, ब्रह्मचरियस्स केवली॥679॥
''ओघपासो दळ्हखिलो, पब्बतो दुप्पदालयो।
छेत्वा खिलं च पासं च, सेलं भेत्वान दुब्भिदं।
तिण्णो पारङ्गतो झायी, मुत्तो सो मारबन्धना॥680॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सर्वे संस्कारा अनित्या इति, यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्ध्याः॥676॥
''सर्वे संस्काराः दुःखा इति,यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्ध्याः॥677॥
''सर्वे धर्मा अनात्मान इति, यदा प्रज्ञया पश्यति।
अथ निर्विन्दति दुःखानि, एष मार्गो विशुद्ध्याः॥678॥
''बुद्धानुबुद्धो यः स्थविरः, कौण्डन्यः तीव्रनिष्क्रमः।
प्रहीणजातिमरणः, ब्रह्मचर्यस्य केवली॥679॥
''औघपाशः दृढकीलः, पर्वतः दुप्रदार्यः।
छित्वा कीलञ्च पाशञ्च, शैलं भेत्वा दुर्भिदम्।
तीर्णः पारंगतः ध्यायी, मुक्तः सः मारबन्धनात्॥680॥

(हिन्दी)- जब कोई साधक प्रज्ञा द्वारा 'सभी संस्कार अनित्य हैं' - ऐसा साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी दुःखों से विरक्ति हो जाती है। यही चित्तविशुद्धि का वास्तविक मार्ग है॥676॥

जब कोई साधक प्रज्ञा द्वारा 'सभी संस्कार दुःखमय हैं- ऐसा साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी दुःखों से विरक्ति हो जाती है। यही चित्तविशुद्धि का मार्ग है॥677॥

जब कोई साधक प्रज्ञा द्वारा 'सभी धर्म अनात्म है'- ऐसा साक्षात्कार कर लेता है तब उसकी दुःखों से विरक्ति हो जाती है। यही चित्तविशुद्धि का मार्ग है॥678॥

भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट जो स्थविर कौण्डिन्य तीव्र निष्काम भावना वाला था, आज धर्मसाधना के अभ्यास से अपनी जन्म-मरण परम्परा का नाश कर अर्हत् हो गया है॥679॥

मैं दृढ़ संसाररूप इन्द्रकील में भवौघरूप रस्सियों से बंधा हुआ था, सामने कठिनाइयों से चढ़ने योग्य दुर्गम पर्वत पर मृत्यु-गृह था। मैं बुद्धोपदिष्ट साधना का बल प्राप्त कर उस दृढकील, भवपाश एवं दुर्गम पर्वत का भेदन कर, पार पहुँच कर ध्यानाभ्यास से उस मारबन्धन से मुक्त हो कर ज्ञानी बन चुका हूँ॥680॥

''उद्धतो चपलो भिक्खु, मित्ते आगम्म पापके।
संसीदति महोघस्मिं, ऊमिया पटिकुज्जितो॥681॥
''अनुद्धतो अचपलो, निपको संवुतिन्द्रियो।
कल्याणमित्तो मेधावी, दुक्खस्सन्तकरो सिया॥682॥
''कालपब्बङ्गसङ्कासो, किसो धमनिसन्थतो।
मत्तञ्ञू अन्नपानस्मिं, अदीनमनसो नरो॥683॥
''फुट्ठो डंसेहि मकसेहि, अरञ्ञस्मिं ब्रहावने।
नागो सङ्गामसीसेव, सतो तत्राधिवासये॥684॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, निब्बिसं भतको यथा॥685॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उद्धतः चपलः भिक्षुः, मित्राणि आगत्य पापकानि।
संसीदति महौघे, ऊर्मिभिः प्रतिकुब्जितः॥681॥
''अनुद्धत अचपलः, निपुण: संवृतेन्द्रियः।
कल्याणमित्रं मेधावी, दुःखस्यान्तरकरः स्यात्॥682॥
''कालपर्वाङ्गसङ्काशः, कृशः धमनिसंस्तृतः।
मात्रज्ञ अन्नपाने, अदीनमन: नरः॥683॥
''स्पृष्टः डंसकैः मशकैः, अरण्ये बृहत्वने।
नागः सङ्ग्रामशीर्षे इव, स्मृतः तत्राधिवासेत्॥684॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, निर्विशं भृतक: यथा॥685॥

(हिन्दी)- उद्धत एवं चंचल भिक्षु ही पापमित्रों की संगति करता हुआ इस संसार के उत्ताल तरंगो वाली बाढ में फँस सकता है॥681॥

परन्तु जो भिक्षु शान्त, सावधान तथा इन्द्रियसंयमी है, जिसके कल्याणमित्र हैं, वह बुद्धिमान् शीघ्र ही साधना के माध्यम से अपने दुःखों का अन्त कर लेता है॥682॥

जिसके शरीर के पर्व (जोड़) सर्वत्र काले पड़ गये हैं, जो दुर्बल हैं तथा जिनकी धमनियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, जो मात्रा से ही भोजन ग्रहण करता है, एवं दृढ़संकल्प है॥683॥

उस बीहड़ जंगल में साधना करते समय जिसे मच्छर मक्खी डस रहे हैं- ऐसे वह साधक भिक्षु संग्राम में युद्ध करते हुए प्रबल हाथी के समान साधना करता है॥684॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा वैसे ही कर रहा हूँ जैसे कोई भृत्य अपने वेतन की प्रतीक्षा करता है॥685॥

''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालं च पटिकङ्खामि, सम्पजानो पतिस्सतो''ति॥686॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥687॥
''यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, किं मे सद्धिविहारिना''ति॥688॥...अञ्ञासिकोण्डञ्ञो थेरो..।

2. उदायित्थेरगाथा-

''मनुस्सभूतं सम्बुद्धं, अत्तदन्तं समाहितं।
इरियमानं ब्रह्मपथे, चित्तस्सूपसमे रतं॥689॥
''यं मनुस्सा नमस्सन्ति, सब्बधम्मान पारगुं।
देवापि तं नमस्सन्ति, इति मे अरहतो सुतं॥690॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः"इति॥686॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अवहितो गुरुको भारः, भवनेत्री समूलं हताः॥687॥
''यस्य चार्थाय प्रव्रजितः, आगारादनागारिकम्।
स मे अर्थ अनुप्राप्तः, किं मे सार्धविहारिणाः"इति॥688॥

2. ''मनुष्यभूतं सम्बुद्धम्, आत्मदान्तं समाहितम्।
ईर्यमाणं ब्रह्मपथे, चित्तस्योपशमे रतम्॥689॥
''यं मनुष्याः नंस्यन्ति, सर्वधर्माणां पारगम्।
देवा अपि तं नंस्यन्ति, इति मे अर्हतैः श्रुतम्॥690॥

(हिन्दी)- मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपने काल (मृत्यु) की प्रतीक्षा कर रहा हूँ॥686॥

मेरा शास्ता से परिचय हो गया है, मैं उनको गुरु मान चुका हूँ। मैंने अपना गुरुतर सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार फेंका है और अपने भवबन्धन भी काट फेंके हैं॥687॥

जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिए मैं घर से निकल कर प्रव्रजित हुआ था, वह मेरा प्रयोजन- मेरे सभी भवबन्धनों का क्षय-मुझको मिल गया है। अब मुझे साधना में किसी साथी की आवश्यकता नहीं है॥688॥... अज्ञातकौण्डिन्य स्थविर ने...॥

मनुष्य रूप में अवतरित, ज्ञानी, आत्मसंयमी, सदासमाधिरत, ब्रह्ममार्ग में ही निरन्तर चलने वाले, मनःसंयम में रत रहने वाले॥689॥

ऐसे महान् पुरुष को, जो सभी धर्मों में पारंगत है, सभी मनुष्य जिसको प्रणाम करते है, देवता भी प्रणाम करते हैं- ऐसा मैंने अर्हतों से सुना है॥690॥

''सब्बसंयोजनातीतं , वना निब्बनमागतं।
कामेहि नेक्खम्मरतं, मुत्तं सेलाव कञ्चनं॥691॥
''स वे अच्चरुचि नागो, हिमवावञ्ञे सिलुच्चये।
सब्बेसं नागनामानं, सच्चनामो अनुत्तरो॥692॥
''नागं वो कित्तयिस्सामि, न हि आगुं करोति सो।
सोरच्चं अविहिंसा च, पादा नागस्स ते दुवे॥693॥
''सति च सम्पजञ्ञं च, चरणा नागस्स तेपरे।
सद्धाहत्थो महानागो, उपेक्खासेतदन्तवा॥694॥
''सति गीवा सिरो पञ्ञा, वीमंसा धम्मचिन्तना।
धम्मकुच्छिसमावासो, विवेको तस्स वालधि॥695॥
''सो झायी अस्सासरतो, अज्झत्तं सुसमाहितो।
गच्छं समाहितो नागो, ठितो नागो समाहितो॥696॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सर्वसंयोजनातीतम्, वनात् निर्वाणमागतम्।
कामेभ्यः नैष्क्रम्यरतम्, मुक्तं शैलादिव काञ्चनम्॥691॥
''सः वै अत्यरोचत नागः, हिमवानिवान्येषु शैलोच्चेषु।
सर्वेषां नागनामानाम्, सत्यनाम अनुत्तरः॥692॥
''नागं वः कीर्तिष्यामि, न हि आगः करोति सः।
सौरत्यम् अविहिंसा च, पादौ नागस्य तौ द्वौ॥693॥
''स्मृतिश्च सम्प्रजन्यञ्च, चरणौ नागस्य तौ अपरौ।
श्रद्धाहस्तो महानागः, उपेक्षाश्वेतदन्तवान्॥694॥
''स्मृतिः ग्रीवा शिरः प्रज्ञा, मीमांसा धर्मचिन्तनम्।
धर्मकुक्षिसमावासः, विवेकः तस्य बालधिः॥695॥
''सः ध्यायी आश्वासरतः, अध्यात्मं सुसमाहितः।
गच्छन् समाहितो नागः, स्थितो नागः समाहितः॥696॥

(हिन्दी)- सभी बन्धनों से मुक्त हो चुका है, तृष्णा रहित हो चुका है। वह उसी प्रकार मुक्त है जैसे सुमेरु पर्वत से कोई सुवर्ण खण्डमुक्त हुआ हो॥691॥

वह महानाग अन्य नागों में उसी प्रकार शोभायमान है जैसे अन्य पर्वतों में विशाल हिमवत् पर्वत शोभायमान होता है। वह अन्वर्थ नाम वाला तथा अद्वितीय है॥692॥

अब मैं उस नाग का वर्णन करूँगा, जे कभी अपराध नहीं करता है। उस नाग के नम्रता एवं करुणा- ये दो चरण हैं॥693॥

स्मृति एवं सम्प्रजन्य- उसके ये दो दूसरे चरण हैं। श्रद्धा ही उसकी सूँड है तथा उपेक्षा ही उसके श्वेत दाँत हैं॥694॥

स्मृति उसकी ग्रीवा है, प्रज्ञा उसका मस्तक है, धर्मचिन्तन ही उसकी मीमांसा है। धर्मरूप गर्भ में वह रहता है और विवेक ही उसकी पूँछ है॥695॥

वह ध्यानाभ्यासी है, आनापानस्मृति में रत रहता है, तथा अध्यात्म में वह पूर्णतः समाहित है। वह नाग चलता हुआ तथा ठहरा हुआ भी समाहित ही रहता है॥696॥

''सयं समाहितो नागो, निसिन्नोपि समाहितो।
सब्बत्थ संवुतो नागो, एसा नागस्स सम्पदा॥697॥
''भुञ्जति अनवज्जानि, सावज्जानि न भुञ्जति।
घासमच्छादनं लद्धा, सन्निधिं परिवज्जयं॥698॥
''संयोजनं अणुं थूलं, सब्बं छेत्वान बन्धनं।
येन येनेव गच्छति, अनपक्खोव गच्छति॥699॥
''यथापि उदके जातं, पुण्डरीकं पवड्ढति।
नोपलिप्पति तोयेन, सुचिगन्धं मनोरमं॥700॥
''तथेव च लोके जातो, बुद्धो लोके विहरति।
नोपलिप्पति लोकेन, तोयेन पदुमं यथा॥701॥
''महागिनि पज्जलितो, अनाहारोपसम्मति।
अङ्गारेसु च सन्तेसु, निब्बुतोति पवुच्चति॥702॥

(संस्कृतच्छाया)- ''शयन् समाहितो नागः, निषण्णोऽपि समाहितः।
सर्वत्र संवृतो नागः, एषा नागस्य सम्पदा॥697॥
''भुनक्ति अनवद्यानि, सावद्यानि न भुनक्ति।
ग्रासमाच्छादनं लब्ध्वा, सन्निधिं परिवर्जयन्॥698॥
''संयोजनम् अणुं स्थूलम्, सर्वं छित्वा बन्धनम्।
यत्र यत्रैव गच्छति, अनपेक्ष एव गच्छति॥699॥
''यथापि उदके जातम्, पुण्डरीकं प्रवर्धते।
नोपलिप्यति तोयेन,शुचिगन्धं मनोरमम्॥700॥
''तथैव च लोके जातः, बुद्धो लोके विहरति।
नोपलिप्यति लोकेन, तोयेन पद्मं यथा॥701॥
''महाग्निः प्रज्वलितः, अनाहारात् उपशाम्यति।
अङ्गारेषु च शान्तेषु, निर्वृत इति प्रोच्यते॥702॥

(हिन्दी)- वह सोता हुआ भी, बैठा हुआ भी समाहित रहता है। वह सभी दशाओं में समाहित रहता है। यह उस नाग की सम्पदा है॥697॥

वह निर्दोष भोजन ही करता है, सदोष नहीं। बिछाने के लिये तृणपुञ्ज से भी सन्तुष्ट रहता है। वह परिग्रह से दूर रहता है॥698॥

वह छोटे या बड़े, स्थूल- सभी बन्धनों को काट कर जिधर भी जाता है निरपेक्ष भाव से ही जाता है॥699॥

जैसे जल में उत्पन्न सुगन्धि एवं मनोहर कमल जल से वृद्धि प्राप्त करता हुआ भी जल से कोई मोह नहीं रखता॥700॥

उसी प्रकार, लोक में उत्पन्न ये बुद्ध लोक में साधना हेतु विचरण तो करते हैं, परन्तु वह लोक में उसी प्रकार लिप्त (मुग्ध) नहीं होते जैसे कमल जल में लिप्त नहीं होता॥701॥

जैसे अग्नि इन्धन का उपयोग न करने पर शान्त हो जाती है और अंगारों के शान्त होने पर वह 'निर्वृत' कहलाती है॥702॥

''अत्थस्सायं विञ्ञापनी, उपमा विञ्ञूहि देसिता।
विञ्ञिस्सन्ति महानागा, नागं नागेन देसितं॥703॥
''वीतरागो वीतदोसो, वीतमोहो अनासवो।
सरीरं विजहं नागो, परिनिब्बिस्सत्यनासवो''ति॥704॥ ... उदायी थेरो...।

सोळसकनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – कोण्डञ्ञो च उदायी च, थेरा द्वे ते महिद्धिका।
सोळसम्हि निपातम्हि, गाथायो द्वे च तिंस चाति॥

16. वीसतिनिपातो

1. अधिमुत्तत्थेरगाथा-

''यञ्ञत्थं वा धनत्थं वा, ये हनाम मयं पुरे।
अवसेसं भयं होति, वेधन्ति विलपन्ति च॥705॥
''तस्स ते नत्थि भीतत्तं, भिय्यो वण्णो पसीदति।
कस्मा न परिदेवेसि, एवरूपे महब्भये॥706॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अर्थस्येषा विज्ञापनी, उपमा विज्ञैः देशिता।
विज्ञाष्यन्ति महानागाः, नागं नागेन देशितम्॥703॥
''वीतरागो वीतद्वेषः, वीतमोह अनास्रवः।
शरीरं विजह्यात् नागः, परिनिर्वास्यत्यानास्रवः''इति॥704॥

तत्रोद्दानम्- *कोण्डञ्ञो* च *उदायी* च, स्थविरौ तौ महार्धिकौ।
षोडशे निपाते, गाथाः द्वात्रिंशति चेति॥ ●

1. ''यज्ञार्थं वा धनार्थं वा, यान् हन्मः वयं पुरे।
अवशेषेभ्यः भयं भवति, वेधन्ते विलपन्ति च॥705॥
''तस्य ते नास्ति भीरत्वम्, भूयः वर्णः प्रसीदति।
कस्मात् न परिदेवयसे, एवंरूपे महद्भये॥706॥

(हिन्दी)- यह विवरण उन की वास्तविकता का बोधन करता है। इस को ज्ञानी जन ही समझ पायेंगे; क्योंकि एक नाग ने ही दूसरे नाग का विवरण दिया है॥703॥

वे राग, द्वेष, मोह एवं चित्तविकारों से रहित होकर ही शरीर त्याग करेंगे; अतः यह उनका अनाश्रव महापरिनिर्वाण कहलायेगा॥704॥ आयुष्मान् उदायी स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस निपात में वर्णित स्थविर एवं गाथाओं की सूची- कौण्डिन्य एवं उदायी- ये दो ऋद्धिसम्पन्न स्थविर इस निपात में वर्णित हैं। तथा इसमें बत्तीस गाथाएँ वर्णित हैं। ●

हम यज्ञ या कोष की वृद्धि हेतु जिन लोगों की हत्या करते थे, वह हत्या-कर्म हमारे लिये भयजनक बन गये हैं, वे हत्याएँ अब हमारे लिये कम्पन एवं विलाप का कारण बन गयी हैं॥705॥

आप को वह भय नहीं दिखायी दे रहा है, आप की मुखाकृति भी प्रसन्न दिखायी दे रही है। ऐसा भयोत्पादक समय होने पर भी आप क्यों नहीं विलाप कर रहे हो?॥706॥

''नत्थि चेतसिकं दुक्खं, अनपेक्खस्स गामणि।
अतिक्कन्ता भया सब्बे, खीणसंयोजनस्स वे॥707॥
''खीणाय भवनेत्तिया, दिट्ठे धम्मे यथातथे।
न भयं मरणे होति, भारनिक्खेपने यथा॥708॥
''सुचिण्णं ब्रह्मचरियं मे, मग्गो चापि सुभावितो।
मरणे मे भयं नत्थि, रोगानमिव सङ्खये॥709॥
''सुचिण्णं ब्रह्मचरियं मे, मग्गो चापि सुभावितो।
निरस्सादा भवा दिट्ठा, विसं पित्वाव छड्डितं॥710॥
''पारगू अनुपादानो, कतकिच्चो अनासवो।
तुट्ठो आयुक्खया होति, मुत्तो आघातना यथा॥711॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नास्ति चैतसिकं दुःखम्, अनपेक्षस्य ग्रामणि!
अतिक्रान्ताः भयाः सर्वे, क्षीणसंयोजनस्य वै॥707॥
''क्षीणायां भवनेत्र्याम्, दृष्टे धर्मे यथातथम्।
न भयं मरणे भवति, भारनिक्षेपणे यथा॥708॥
''सुचीर्णं ब्रह्मचर्यं मे, मार्गश्चापि सुभावितः।
मरणान्मे मे भयं नास्ति, रोगाणामिव संक्षये॥709॥
''सुचीर्णं ब्रह्मचर्यं मे, मार्गश्चापि सुभावितः।
निरास्वादाः भवाः दृष्टाः, विषं पीत्वा छर्दितमिव॥710॥
''पारग अनुपादानः, कृतकृत्य अनास्रवः।
तुष्ठः आयुक्षयात् भवति, मुक्त आघातनात् यथा॥711॥

(हिन्दी)- भिक्षु- ग्रामणि! मुझ अपेक्षारहित जीवन यापन करने वाले को कोई चैतसिक दुःख नहीं रह गया है। मेरे सांसारिक बन्धन क्षीण हो जाने के कारण, मुझ से सभी सांसारिक भय दूर हो गये हैं॥707॥

संसार से जोड़ने वाली रज्जु के क्षीण हो जाने के कारण, तथा धर्म को यथार्थ रूप से जान लेने के कारण, मृत्यु के समय कोई भय नहीं हुआ करता। जैसे शिर से बोझ उतार देने पर शान्ति मिला करती है वैसे ही मैं भी शान्त हूँ॥708॥

मैंने अपनी धर्मसाधना पूर्ण कर ली है, अष्टांगिक मार्ग का भी पूर्ण अभ्यास कर लिया है। अब मुझे मृत्यु से उसी प्रकार कोई भय नहीं रह गया, जैसे पुरुष को रोगमुक्त होने पर मृत्यु का कोई भय नहीं रहता॥709॥

मैंने अपनी धर्मसाधना पूर्ण कर ली है, अष्टांगिक मार्ग का भी सम्यक् अभ्यास कर लिया है, मुझे अब संसार में उसी प्रकार कोई स्वाद नहीं रह गया है, जैसे विष पीकर छोड़ने के बाद कोई स्वाद नहीं रह जाता॥710॥

जो धर्मसाधना पूर्ण कर चुका है, अपरिग्रही है, जो कृतकृत्य हो चुका है, अनास्रव हो चुका है, वह आयुःक्षय से उसी प्रकार सन्तुष्ट रहता है जैसे वधस्थल से मुक्त सन्तुष्ट होता है॥711॥

''उत्तमं धम्मतं पत्तो, सब्बलोके अनत्थिको।
आदित्तावं घरा मुत्तो, मरणस्मिं न सोचति॥712॥
''यदत्थि सङ्गतं किञ्चि, भवो वा यत्थ लब्भति।
सब्बं अनिस्सरं एतं, इति वुत्तं महेसिना॥713॥
''यो तं तथा पजानाति, यथा बुद्धेन देसितं।
न गण्हाति भवं किञ्चि, सुतत्तंव अयोगुळं॥714॥
''न मे होति 'अहोसिं'ति, 'भविस्सं'ति न होति मे।
सङ्खारा विगमिस्सन्ति, तत्थ का परिदेवना॥715॥
''सुद्धं धम्मसमुप्पादं, सुद्धं सङ्खारसन्ततिं।
पस्सन्तस्स यथाभूतं, न भयं होति गामणि॥716॥
''तिणकट्ठसमं लोकं, यदा पञ्ञाय पस्सति।
ममत्तं सो असंविन्दं, 'नत्थि मे'ति न सोचति॥717॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उत्तमां धर्मतां प्राप्तः, सर्वलोके अनर्थिकः।
आदीप्तादिव ग्रहात् मुक्तः, मरणे न शोचति॥712॥
''यदस्ति संगतं किञ्चित्, भवो वा यत्र लभ्यते।
सर्वम् अनीश्वरम् एतत्, इत्युक्तं महर्षिणा॥713॥
''यः तं तथा प्रजानाति, यथा बुद्धेन देशितम्।
न गृह्णाति भवं किंचित्, सुतप्तमिव अयोगोलकम्॥714॥
''न मे भवति ''अभवमिति'', 'भविष्यामिति' न भवति मे।
संस्काराः विगमिष्यन्ति, तत्र किं परिदेवनम्॥715॥
''शुद्धं धर्मसमुत्पादम्, शुद्धा संस्कारसन्ततिः।
पश्यन् यथाभूतम्, न भयं भवति ग्रामणि!॥716॥
''तृणकाष्ठसमं लोकंम्, यदा प्रज्ञया पश्यति।
ममत्वं सोऽसंविन्दन्, 'नास्ति मे' इति न शोचति॥717॥

(हिन्दी)- उत्तम धर्माभ्यासयुक्त तथा समस्त संसार से कोई प्रयोजन न रखने वाला पुरुष, जलते हुए घर से बाहर निकले पुरुष के समान, मृत्यु से नहीं डरता॥712॥

महर्षि ने कहा है- 'जो कुछ भी 'संयोग' है, या जिसके कारण भवपरम्परा बनती हो, वह सब अनीश्वर है॥713॥ इस बुद्धोपदेश को जो साधक हृदयंगम कर लेता है वह संसार में कुछ भी आसक्ति वैसे ही नहीं रखता; जैसे कोई भली प्रकार से तपे हुए लौहपिण्ड में कोई स्पर्श के लिये आसक्ति नहीं रखता॥714॥

अब मुझको न यह विचार होता है कि मैं कभी था, न यही विचार होता है कि मैं कभी न होऊँगा। अरे भाई! संस्कार आते जाते रहते हैं, इन पर क्या रोना-कलपना!॥715॥

ग्रामणि! शुद्ध धर्मसमुत्पत्ति एवं शुद्ध संस्कारसन्तति- दोनों को ही यथार्थतः जान कर साधना करने वाले को कोई भय नहीं सताता॥716॥

जब वह साधक प्रज्ञा द्वारा समीक्षण करता हुआ समस्त संसार को तृष्णा या सूखे काष्ठ के समान समझने लगता है, तब उस का संसार के प्रति सभी प्रकार का ममत्व समाप्त हो जाता है और वह जान लेता है कि मेरा यहाँ कुछ नहीं है। अतः उस को कोई शोक या भय नहीं होता॥717॥

''उक्कण्ठामि सरीरेन, भवेनम्हि अनत्थिको।
सोयं भिज्जिस्सति कायो, अञ्ञो च न भविस्सति॥718॥
''यं वो किच्चं सरीरेन, तं करोथ यदिच्छथ।
न मे तप्पच्चया तत्थ, दोसो पेमं च हेहिति''॥719॥
तस्स तं वचनं सुत्वा, अब्भुतं लोमहंसनं।
सत्थानि निक्खिपित्वान, माणवा एतदब्रवुं॥720॥
''किं भदन्ते करित्वान, को वा आचरियो तव।
कस्स सासनमागम्म, लब्भते तं असोकता''॥721॥
''सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी, जिनो आचरियो मम।
महाकारुणिको सत्था, सब्बलोकतिकिच्छको॥722॥
''तेनायं देसितो धम्मो, खयगामी अनुत्तरो।
तस्स सासनमागम्म, लब्भते तं असोकता''॥723॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उत्कण्ठामि शरीरेण, भवेनास्मि अनर्थिकः।
सोऽयं भेत्स्यति कायः, अन्यश्च न भविष्यति॥718॥
''यत् वः कृत्यं शरीरेण, तत् कुरुत यदिच्छत।
न मे तत् प्रत्ययात् तत्र, द्वेषः प्रेम च भविष्यति॥719॥
''तस्य तद् वचनं श्रुत्वा, अद्भुतं रोमहर्षणम्।
शस्त्राणि निक्षिप्य, मानवाः एतदब्रुवन्॥720॥
''किं भदन्ते कृत्वा, को वा आचार्यः तव?
कस्य शासनमागत्य, लभते ताम् अशोकताम्॥721॥
''सर्वज्ञः सर्वदर्शी, जिन आचार्यः मम।
महाकारुणिकः शास्ता, सर्वलोकचिकित्सकः॥722॥
''तेनायं देशितः धर्मः, क्षयगामी अनुत्तरः।
तस्य शासनमागत्य, लभाम्यहं ताम् अशोकताम्॥723॥

(हिन्दी)- मैं इस शरीर से उत्कण्ठित हो चुका हूँ और न अब मेरी पुनर्जन्म में ही कोई वासना है। यह वर्तमान शरीर समय आने पर नष्ट हो जायेगा तथा अन्य शरीर का उत्पाद होना नहीं है॥718॥
आप को मेरे इस शरीर से जो प्रयोजन हो उसको पूर्ण करो। परन्तु मेरा तो इस शरीर में अब न कोई द्वेष है, न कोई प्रेम ही॥719॥
उस भिक्षु के ये लोमहर्षक एवं अद्भुत वचन सुन कर उन चोरों ने अपने शस्त्र फेंक कर भिक्षु से यह पूछा॥720॥
भन्ते! आप कौन सी साधना पूर्ण कर इस अध्यात्मस्थिति तक पहुँचे हो? आप का आचार्य कौन है? किस का उपदेश सुन कर आप को यह वीतशोक स्थिति प्राप्त हुई है?॥721॥
तब भिक्षु ने कहा- ''सर्वज्ञ सर्वद्रष्टा भगवान् बुद्ध मेरे आचार्य है। वे महाकारुणिक शास्ता समस्त संसार के चिकित्सक हैं॥722॥
उन्होंने ही मुझको यह दुःख क्षय तक पहुँचाने वाला अद्वितीय धर्मोपदेश किया है। तथा उनके उपदेशानुसार ही साधना करते हुए मैंने यह शोकरहित स्थिति प्राप्त की है॥723॥

सुत्वान चोरा इसिनो सुभासितं, निक्खिप्प सत्थानि च आवुधानि च।
तम्हा च कम्मा विरमिंसु एके, एके च पब्बज्जमरोचयिंसु॥724॥
ते पब्बजित्वा सुगतस्स सासने, भावेत्व बोज्झङ्गबलानि पण्डिता।
उदग्गचित्ता सुमना कतिन्द्रिया, फुसिंसु निब्बानपदं असङ्खतं"ति॥725॥

...अधिमुत्तो थेरो...।

2. पारापरियत्थेरगाथा-

''समणस्स अहु चिन्ता, पारापरियस्स भिक्खुनो।
एककस्स निसिन्नस्स, पविवित्तस्स झायिनो॥726॥
''किमानुपुब्बं पुरिसो, किं वतं किं समाचारं।
अत्तनो किच्चकारीस्स, न च कञ्चि विहेठये॥727॥
''इन्द्रियानि मनुस्सानं, हिताय अहिताय च।
अरक्खितानि अहिताय, रक्खितानि हिताय च॥728॥

(संस्कृतच्छाया)- ''श्रुत्वा चौराः ऋषेः सुभाषितम्, निक्षिप्य शस्त्राणि च आयुधानि च।
तस्माच्च कर्मणः व्यरमदेके, एके च प्रव्रज्यामरोचयत्॥724॥
''ते प्रव्रज्य सुगतस्य शासने, भावयित्वा बोध्यांगबलानि पण्डिताः।
उदग्रचित्ताः सुमनांसि कृतेन्द्रियाः, अस्पृशन् निर्वाणपदम् असंस्कृतम्''इति॥725॥

2. ''श्रमणस्य अभूत् चिन्ता, पारापारीयस्य भिक्षोः।
एककस्य निषण्णस्य, प्रविविक्तस्य ध्यानिनः॥726॥
''केनानुपूर्वेण पुरुषः, कं व्रतं किं समाचरन्।
आत्मनः कृत्यकारी स्यात्, न च कञ्चित् विहेठयेत्॥727॥
''इन्द्रियाणि मनुष्याणाम्, हिताय अहिताय च।
अरक्षितानि अहिताय, रक्षितानि हिताय च॥728॥

(हिन्दी)- उन चोरों ने ऋषिकल्प भिक्षु के ये वचन सुन कर, अपने अस्त्र एवं शस्त्र एक ओर रख दिये। उनमें से कुछ चोर उस चौर्य कर्म से विरत हो गये तथा कुछ चोरों ने भिक्षु से प्रव्रज्या की याचना की॥724॥

वे अवशिष्ट बुद्धिमान् चोर बौद्धधर्म में प्रव्रजित होकर, बोध्यंग एवं बलों की भावना करते हुए प्रसन्नचित्त हो कर शुद्ध मन से इन्द्रियसंयमपूर्वक समय आने पर, असंस्कृत निर्वाण पद को प्राप्त हो गये॥725॥ ...अधिमुक्ति स्थविर ने...॥

एकान्त में बैठे हुए किसी श्रमण भिक्षु को, जो कि भिक्षुओं से पृथक् हो कर ध्यानाभ्यासरत था, इस संसार के आदि अन्त जानने की इच्छा से यह विचार हुआ-॥726॥

साधक किस आनुपूर्वी (क्रम) से साधना करता हुआ या किस व्रत का आचरण करता हुआ स्वयं अपना प्रयोजन भी पूर्ण कर ले और दूसरों को कष्ट भी न पहुँचाये?॥727॥

मनुष्यों की ये इन्द्रियाँ उन पुरुषों की हितकर भी हो सकती हैं तथा अतिकर भी। यदि इन की प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जाय तो ये उन की हितकर होती है; और यदि इनकी रक्षा न की जाय तो ये उनकी अहितकर भी हो सकती हैं॥728॥

''इन्द्रियानेव सारक्खं, इन्द्रियानि च गोपयं।
अत्तनो किच्चकारीस्स, न च कञ्चि विहेठये॥729॥
''चक्खुन्द्रियं चे रूपेसु, गच्छन्तं अनिवारयं।
अनादीनवदस्सावी, सो दुक्खा न हि मुच्चति॥730॥
''सोतिन्द्रियं चे सद्देसु, गच्छन्तं अनिवारयं।
अनादीनवदस्सावी, सो दुक्खा न हि मुच्चति॥731॥
''अनिस्सरणदस्सावी , गन्धे चे पटिसेवति।
न सो मुच्चति दुक्खम्हा, गन्धेसु अधिमुच्छितो॥732॥
''अम्बिलं मधुरग्गञ्च, तित्तकग्गमनुस्सरं।
रसतण्हाय गधितो, हदयं नावबुज्झति॥733॥
''सुभान्यप्पटिकूलानि, फोट्ठब्बानि अनुस्सरं।
रत्तो रागाधिकरणं, विविधं विन्दते दुखं॥734॥

(संस्कृतच्छाया)- ''इन्द्रियाण्येव संरक्षन्, इन्द्रियाणि च गोपयन्।
आत्मनः कृत्यकारी स्यात्, न च कञ्चित् विहेठयेत्॥729॥
''चक्ष्वेन्द्रियं चेत् रूपेषु, गच्छन्तम् अनिवारयत्।
अनादीनवदर्शी, सः दुःखात् न हि मुञ्चते॥730॥
''श्रोतेन्द्रियं चेत् शब्देषु, गच्छन्तम् अनिवारयत्।
अनादीनवदर्शी, सः दुःखात् न हि मुञ्चते॥731॥
''अनिःशरणदर्शी, गन्धान् चेत् प्रतिसेवति।
न सः मुञ्चते दुःखात्, गन्धेषु अधिमूर्छितः॥732॥
''अम्लं मधुराग्रञ्च, तिक्तकाग्रमनुस्मरन्।
रसतृष्णया गाधितः, हृदयं नावबोधति॥733॥
''शुभान्यप्रतिकूलानि, स्प्रष्टव्यानि अनुस्मरन्।
रक्तः रागाधिकरणम्, विविधं विन्दते दुःखम्॥734॥

(हिन्दी)- इन्द्रियों की रक्षा एवं सम्हाल के रखने वाला पुरुष ही अपने स्वकीय कृत्य भी सरलतापूर्वक पूर्ण कर लेता है तथा किसी दूसरे को अपनी ओर से व्यथित भी नहीं करता॥729॥

यदि कोई साधक अपनी चक्षुरिन्द्रिय को रूपगत विषयों में जाने से नहीं रोकेगा, तो वह अपने दोषों को नहीं देख पायेगा, तब वह दुःखों से कैसे मुक्त हो पायगा?॥730॥

यदि वह अपनी श्रोत्रेन्द्रिय को शब्दगत विषयों में जाने से नहीं रोकेगा तो वह अपने दोषों को नहीं देख पायेगा, तब वह दुःखों से कैसे मुक्त हो पायेगा?॥731॥

यदि वह अनिःसरण का ध्यान करता है और अपनी घ्राणेन्दिय को गन्धगत विषयों से न रोक कर उनका उपभोग करता है तो वह अपने दोषों को न देख पाने के कारण दुःखों से मुक्त कैसे हो सकेगा?॥732॥

खट्टा, मीठा, तिक्त आदि रसों के भोगने का लोभी अपनी रसनेन्द्रिय के वश में हो कर उससे होने वाले दोषों को नहीं देख सकेगा तो वह दुःखों से कैसे मुक्त हो सकेगा॥733॥

शुभ एवं अनुकूल स्प्रष्टव्य विषयों का अनुस्मरण करता हुआ त्वगिन्द्रिय के विषयों में अनुरक्त रहता हुआ, अपने दोषों को न देख पाने के कारण, दुःख से कैसे मुक्त हो सकेगा॥734॥

''मनं चेतेहि धम्मेहि, यो न सक्कोति रक्खितुं।
ततो नं दुक्खमन्वेति, सब्बेहेतेहि पञ्चहि॥735॥
''पुब्बलोहितसम्पुण्णं, बहुस्स कुणपस्स च।
नरवीरकतं वग्गुं, समुग्गमिव चित्तितं॥736॥
''कटुकं मधुरस्सादं, पियनिबन्धनं दुखं।
खुरंव मधुना लित्तं, उल्लिहं नावबुज्झति॥737॥
''इत्थिरूपे इत्थिसरे, फोट्ठब्बेपि च इत्थिया।
इत्थिगन्धेसु सारत्तो, विविधं विन्दते दुखं॥738॥
''इत्थिसोतानि सब्बानि, सन्दन्ति पञ्च पञ्चसु।
तेसमावरणं कातुं, यो सक्कोति वीरियवा॥739॥
''सो अत्थवा सो धम्मट्ठो, सो दक्खो सो विचक्खणो।
करेय्य रममानोपि, किच्चं धम्मत्थसंहितं॥740॥

(संस्कृतच्छाया)- ''मनः चेतैर्हि धर्मैर्हि, यः न शक्नोति रक्षितुम्।
ततः तद् दुःखमन्वेति, सर्वैः हि तैः पञ्चभिः॥735॥
''पूयलोहितसम्पूर्णम्, बहु अस्य कुणपस्य च।
नरवीरकृतं वल्गु, समुग्रमिव चित्रितम्॥736॥
''कटुकं मधुरास्वादम्, प्रियनिबन्धनं दुःखम्।
क्षुरमिव मधुना लिप्तम्, उल्लिहन् नावबोधति॥737॥
''स्त्रीरूपे स्त्रीस्वरे, स्प्रष्टव्येऽपि च स्त्रिया।
स्त्रीगन्धेषु संरक्तः, विविधं विन्दते दुःखम्॥738॥
''स्त्रीस्रोतांसि सर्वाणि, स्यन्दन्ते पञ्च पञ्चसु।
तेषामवरणं कर्तुम्, यः शक्नोति वीर्यवान्॥739॥
''स अर्थवान् सः धर्मस्थः, सः दक्षः सः विचक्षणः।
कुर्यात् रममाणोऽपि, कृत्यं धर्मार्थसंहितम्॥740॥

(हिन्दी)- तथा जो साधक इन सभी धर्मों से अपने मन की रक्षा नहीं कर सकेगा तो वह उपर्युक्त पाँचों इन्द्रियों के विषयों के वश में हो कर दुःख ही भोगेगा॥735॥

यह मनुष्य शरीर पूयमिश्रित रक्त एवं गन्दगियों से भरा हुआ, फिर भी मनुष्यों द्वारा प्रिय माना जाने वाला, स्थान स्थान पर चित्र-विचित्र रूप से उभरा हुआ है॥736॥

उपभोग में सुखद परन्तु परिणाम में दुःखदप्रिय एवं अनुकूल विषय दुःखदायी होते हैं। परन्तु वह शहद लिपटे हुए छुरे के समान इन को न जानता हुआ, इन को चाटने के लिये दौड़ रहा है॥737॥

जो स्त्री से सम्बद्ध रूप, शब्द, गन्ध एवं स्प्रष्टव्य विषयों में अनुरक्त रहता है वह भी नाना प्रकार से दुःख का ही भागी होता है॥738॥

स्त्रियों के भी पाँचों स्रोत पाँच उपादानस्कन्धों की ओर बहते रहे हैं। जो प्रयत्नवान् पुरुष को ढक सकता है॥739॥

वही धर्माभ्यासी पुरुष अपना प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। अतः वही दक्ष एवं बुद्धिमान् कहलाता है जो धर्म का पालन करता हुआ अपना प्रयोजन सिद्ध कर लेता है॥740॥

''अथो सीदति सञ्ञुत्तं, वज्जे किच्चं निरत्थकं।
'न तं किच्चं'ति मञ्ञित्वा, अप्पमत्तो विचक्खणो॥741॥
''यञ्च अत्थेन सञ्ञुत्तं, या च धम्मगता रति।
तं समादाय वत्तेथ, सा हि वे उत्तमा रति॥742॥
''उच्चावचेहुपायेहि, परेसमभिजिगीसति।
हन्त्वा वधित्वा अथ सोचयित्वा, आलोपति साहसा यो परेसं॥743॥
''तच्छन्तो आणिया आणिं, निहन्ति बलवा यथा।
इन्द्रियानिन्द्रियेहेव , निहन्ति कुसलो तथा॥744॥
''सद्धं वीरियं समाधिं च, सतिपञ्ञं च भावयं।
पञ्च पञ्चहि हन्त्वान, अनीघो याति ब्राह्मणो॥745॥
''सो अत्थवा सो धम्मट्ठो, कत्वा वाक्यानुसासनिं।
सब्बेन सब्बं बुद्धस्स, सो नरो सुखमेधती''ति॥746॥ ...पारापरियो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''अथः सीदति संयुक्तम्, वर्जयेत् कृत्यं निरर्थकम्।
न तं कृत्यमिति मत्वा, अप्रमत्तो विचक्षणः॥741॥
''यच्च अर्थेन संयुक्तम्, या च धर्मगता रतिः।
तां समादाय वर्तेत, सा हि वै उत्तमा रतिः॥742॥
''उच्चावचैः उपायैः परान् अभिजिगीषति।
हत्वा वद्ध्वा अथ शोचयित्वा, आलुप्यति साहतात् यः परेषाम्॥743॥
''तक्षन् आणिना आणिम्, निहन्ति बलवान् यथा।
इन्द्रियाणीन्द्रियैरेव, निहन्ति कुशलः तथा॥744॥
''श्रद्धां वीर्यं समाधिञ्च, स्मृतिप्रज्ञाञ्च भावयन्।
पञ्च पञ्चैः हत्वा, अनिघो याति ब्राह्मणः॥745॥
''स अर्थवान् सः धर्मस्थः, कृत्वा वाक्यानुशासनीम्।
सर्वेण सर्वं बुद्धस्य, स नरः सुखमेधति''इति॥746॥

(हिन्दी)- वह रागी पुरुष कष्ट ही पाता है जो दोषमय एवं निरर्थक कार्यों में स्वयं को लगाये रखता है। परन्तु बुद्धिमान् पुरुष वैसे कार्यों को निरर्थक समझता हुआ उन से दूर रहता है॥741॥
जो कार्य प्रयोजन वाला है तथा उधर धर्म में भी रति है तो उस रति के साथ सम्पृक्त कर उस प्रयोजन को पूर्ण करना चाहिये। इसी को उत्तम धर्मरति कहते हैं॥742॥
जो ऊँच नीच उपायों से दूसरों को जीतना चाहता है; मार कर, काट कर या दुःख में डाल कर जो दूसरों से उनका धन बलात् छीन लेता है॥743॥
या जैसे कोई बलवान् पुरुष खूँटे से ही खूँटे को उखड़ देता है; वैसे ही चतुर पुरुष को इन्द्रियों के माध्यम से ही इन्द्रियों पर नियन्त्रण करना चाहिये॥744॥
वीर्य के साथ प्रयत्नपूर्वक समाधि, स्मृति एवं प्रज्ञा की साधना करते हुए पाँचों इन्द्रियां से ही पाँचों इन्द्रियों को नियन्त्रित कर ज्ञानी साधक दुःखमुक्त हो जाता है॥745॥
वही स्वप्रयोजनसाधक है, वही धर्मस्थ है जो तथागत द्वारा उपदिष्ट धर्म का सर्वांशतः पालन करता है। उसके सुख में वृद्धि ही होती है॥746॥ ...पारावारीय स्थविर ने...॥

3. तेलकानित्थेरगाथा-

‘‘चिररत्तं वतातापी, धम्मं अनुविचिन्तयं।
समं चित्तस्स नालत्थं, पुच्छं समणब्राह्मणे॥747॥
‘‘को सो पारङ्गतो लोके, को पत्तो अमतोगधं।
कस्स धम्मं पटिच्छामि, परमत्थविजाननं”॥748॥
‘‘अन्तोवङ्कगतो आसि, मच्छोव घसमामिसं।
बद्धो महिन्दपासेन, वेपचित्यसुरो यथा॥749॥
‘‘अञ्छामि नं न मुञ्चामि, अस्मा सोकपरिद्दवा।
को मे बन्धं मुञ्चं लोके, सम्बोधिं वेदयिस्सति॥750॥
‘‘समणं ब्राह्मणं वा कं, आदिसन्तं पभङ्गुनं॥
कस्स धम्मं पटिच्छामि, जरामच्चुपवाहनं॥751॥

(संस्कृतच्छाया)-3. ‘‘चिररात्रं वतातापी, धर्मम् अनुविचिन्तयन्।
शमं चित्तस्य नालभम्, पृच्छन् श्रमणब्राह्मणान्॥747॥
‘‘कः सः पारङ्गतो लोके, कः प्राप्त अमृतावगाढम् ?।
कस्य धर्मं प्रतीच्छामि, परमार्थविजानन्तम्? ॥748॥
‘‘अन्तर्वक्रगत अभूवम्, मत्स्य इव ग्रासमामिषम्।
बद्धो महेन्द्रपाशेन, वैप्रचित्यसुरो यथा॥749॥
‘‘अञ्छामि एनं मुञ्चामि, अस्मात् शोकपरिद्रवात्।
को मे बन्धं मुञ्चन् लोके, सम्बोधिं वेदयिष्यते? ॥750॥
‘‘श्रमणं ब्राह्मणं वा कम्, आदिशं प्रभङ्गुणम्।
कस्य धर्मं प्रतिच्छामि, जरामृत्योपवाहनम्? ॥751॥

(हिन्दी)- मुझको बहुत समय तक धर्म का चिन्तन करते हुए भी अपने चित्त की शान्ति नहीं प्राप्त हो सकी तब मैंने उनके ज्ञाता समझे जाने वाले अनेक श्रमण ब्राह्मणों से इसके विषय में पूछना आरम्भ किया-॥747॥
संसार में कौन पार पहुँच चुका है? किसने अमृत पद पा लिया है, किससे मैं परमार्थज्ञान हेतु-इस धर्म के विषय में जिज्ञासा करूँ?॥748॥
मेरी स्थिति इस समय वही है जैसे मांस के लोभी किसी मत्स्य के गले में कांटा फंस गया हो। या जैसे वेपचित्ति नामक बलवान् असुर देवेन्द्र शक्र के जाल में फंस गया हो॥749॥
मैं इस रोने कलपने से न मुक्त हो पाया हूँ, न इस को दूर ही हटा पाता हूँ। मेरी इस बन्ध-मुक्ति की समस्या का कौन समाधान करेगा? कौन मुझ को सम्बोधि का बोध करायेगा?॥750॥
किस श्रमण-ब्राह्मण के पास जाऊँ जो मुझ को विनाश स्वभाव वाले पदार्थों को बताता हुआ ऐसे धर्म का उपदेश करे जो जरा एवं मृत्यु से मुक्ति दिलाने वाला हो॥751॥

''विचिकिच्छाकङ्खागन्थितं, सारम्भबलसञ्ञुतं।
कोधप्पत्तमनत्थद्धं, अभिजप्पप्पदारणं॥752॥
''तण्हाधनुसमुट्ठानं, द्वे च पन्नरसायुतं।
पस्स ओरसिकं बाळ्हं, भेत्वान यदि तिट्ठति॥753॥
''अनुदिट्ठीनं अप्पहानं, सङ्कप्पपरतेजितं।
तेन विद्धो पवेधामि, पत्तंव मालुतेरितं॥754॥
''अज्झत्तं मे समुट्ठाय, खिप्पं पच्चति मामकं।
छफस्सायतनी कायो, यत्थ सरति सब्बदा॥755॥
''तं न पस्सामि तेकिच्छं, यो मेतं सल्लमुद्धरे।
नानारज्जेन सत्थेन, नाञ्ञेन विचिकिच्छितं॥756॥
''को मे असत्थो अवणो, सल्लमब्भन्तरपस्सयं।
अहिंसं सब्बगत्तानि, सल्लं मे उद्धरिस्सति॥757॥

(संस्कृतच्छाया)- ''विचिकित्साकाङ्क्षाग्रन्थितम्, सारम्भबलसंयुतम्।
क्रोधप्राप्तमनस्तब्धम्, अभिजल्पप्रदारणम्॥752॥
''तृष्णाधनुसमुस्थानम्, द्विकृत्वा पञ्चदशायुतम्।
पश्य औरसिकं बाढम्, भित्वा यदि तिष्ठति॥753॥
''अनुदृष्टीनाम् अप्रहाणम्, संकल्पपरतेजितम्।
तेन विद्धः प्रवेधामि, पत्रमिव मारुतेरितम्॥754॥
''अध्यात्मं मे समुत्थाय, क्षिप्रं पचति मामकम्।
षट् स्पर्शायतनः कायः, यत्र सरति सर्वदा॥755॥
''तं न पश्यामि चिकित्सकम्, यः मे एतं मुद्धरेत्।
नानारज्जुकेन शस्त्रेण, नान्येन विचिकित्सितम्॥756॥
''को मे अशस्त्र अव्रणः, शल्यमभ्यन्तरप्रस्रवम्।
अहिंसां सर्वगात्राणि, शल्यं मे उद्धरिष्यति॥757॥

(हिन्दी)- शंका-सन्देहों में गुंथे हुए शोक आदि के बल से संयुक्त, क्रोध के कारण अनर्थबहुल, याञ्चा के कारण नीचा दिखाने वाले॥752॥

तृष्णारूप धनुष को उठाये हुए मुझ जन्मजात मूर्ख को देखो जो अपना ही घर फोड़ कर बैठा हुआ है॥753॥

संकल्पों से तीक्ष्ण किया गया यह अनुदृष्टियों का न त्यागना-इससे बिंधा हुआ मैं उसी तरह कांप रहा हूं जैसे वायु से पत्ता कांपा करता है॥754॥

यह मेरे मन में बैठ कर मुझको निरन्तर त्रस्त किये रहता है। यह छह स्पर्शायतनों वाला काय इस का नित्य अनुसरण करता रहता है॥755॥

इस की चिकित्सा करने वाला कोई वैद्य मेरी समझ में नहीं आ रहा है जो मेरे इस कण्टक को विना किसी शस्त्र के निकाल सके॥756॥

मेरे शरीर का किसी शस्त्र से भेद किये विना मेरे इस मानसिक शल्य को बाहर निकाल दे- ऐसा कौन चिकित्सक मुझको मिलेगा॥757॥

''धम्मप्पति हि सो सेट्ठो, विसदोसप्पवाहको।
गम्भीरे पतितस्स मे, थलं पाणिं च दस्सये॥758॥
''रहदेहमस्मि ओगाळ्हो, अहारियरजमत्तिके।
मायाऽसूयसारम्भ, थिनमिद्धमपत्थटे॥759॥
''ऽद्धच्चमेघथनितं, संयोजनवलाहकं।
वाहा वहन्ति कुद्दिट्ठिं, सङ्कप्पा रागनिस्सिता॥760॥
''सवन्ति सब्बधि सोता, लता ऽब्भिज्ज तिट्ठति।
ते सोते को निवारेय्य, तं लतं को हि छेच्छति॥761॥
''वेलं करोथ भद्दन्ते, सोतानं सन्निवारणं।
मा ते मनोमयो सोतो, रुक्खंव सहसा लुवे॥762॥
''एवं मे भयजातस्स, अपारा पारमेसतो।
ताणो पञ्ञावुधो सत्था, इसिसङ्घनिसेवितो॥763॥

(संस्कृतच्छाया)- ''धर्मं प्रति हि सः श्रेष्ठः, विषदोषप्रवाहकः।
गम्भीरे पतितस्य मे, स्थलं प्राणिञ्च दर्शयेत्॥758॥
''ह्रदेऽहमस्मि अवगाढ़ः, अहार्यरजमात्रिके।
माया-असूयसारम्भः, स्त्यानमिद्धमप्रस्तते॥759॥
''औद्धत्यमेघस्तनितम्, संयोजनबलाहकम्।
वाहाः वहन्ति कुदृष्टिम्, सङ्कल्पाः रागनिःसृताः॥760॥
''स्रवन्ति सर्वथा स्रोतांसि, लता उद्भिद्य तिष्ठति।
ते स्रोतांसि कः निवारयेत्, तां लतां को हि छेदयति॥761॥
''वेलां करोतु भदन्त, स्रोताषां सन्निवारणम्।
मा ते मनोमयं स्रोतः, रुक्षमिव सहसा लुण्ठेत्॥762॥
''एवं मे भयजातस्य, अपारात् पारमेषणः।
त्राणः प्रज्ञाबुधः शास्ता, ऋषिसङ्घनिसेविताः॥763॥

(हिन्दी)- मैं उसी धर्मोपदेशक को श्रेष्ठ माँनूगा जो द्वेषरूप विष को अपने धर्मोपदेश से दूर कर मुझको गहरे जल में डूबते हुए प्राणी को स्थल पर लाये हुए के समान बना दे॥758॥

मैं ऐसे तड़ाग की गहराई में पहुँच गया हूँ, जो पंक से भरा हुआ है। जहाँ शठता, निन्दा, द्वेष एवं आलस्य विपुल मात्रा में हैं॥759॥

जहाँ औद्धत्य रूप मेघगर्जन हो रहा है, संयोजनरूप जल बरसाने वाले मेघ विद्यमान हैं। वे राग से उद्भूत संकल्प कुदृष्टिरूप वर्षा कर रहे हैं॥760॥

जहाँ सब ओर से विविध स्रोत उसमें आकर गिरते हैं, चारों ओर गहन लताएँ खड़ी हैं। ऐसा कौन समर्थ पुरुष है जो उन स्रोतों को रोक दे और लताओं को काट दें॥761॥

अरे भद्र! भिक्षु इन स्रोतों के निवारण हेतु बाँध बना। तेरा यह मनोमय स्रोत सहसा नहीं रुकेगा॥762॥

इस प्रकार इस भवसागर का अपार से पार खोजते हुए मेरे ऋषिसंघ से परिवृत एवं प्रज्ञाशस्त्रधारी भगवान् बुद्ध शरणस्थल बने॥763॥

''सोपाणं सुगतं सुद्धं, धम्मसारमयं दळ्हं।
पादासि वुय्हमानस्स, 'मा भायी'ति च मब्रवि॥764॥
''सतिपट्ठानपासादं, आरुय्ह पच्चवेक्खिसं।
यं तं पुब्बे अमञ्ञिस्सं, सक्कायाभिरतं पजं॥765॥
''यदा च मग्गमद्दक्खिं, नावाय अभिरूहनं।
अनधिट्ठाय अत्तानं, तित्थमद्दक्खिमुत्तमं॥766॥
''सल्लं अत्तसमुट्ठानं, भवनेत्तिप्पभावितं।
एतेसं अप्पवत्ताय, देसेसि मग्गमुत्तमं॥767॥
''दीघरत्तानुसयितं, चिररत्तमधिट्ठितं।
बुद्धो मेपानुदी गन्थं, विसदोसप्पवाहनो''ति॥768॥ ...तेलकानि थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''सोपानं सुगतं शुद्धम्, धर्मसारमयं दृढम्।
प्रादात् बुह्यमानस्य, 'मा बिभीहि' इति च मामब्रवीत्॥764॥
''स्मृतिप्रस्थानप्रासादम्, आरुह्य प्रत्यवेक्षिषम्।
यं तं पूर्वे अमंसि, सत्कायाभिरतां प्रजाम्॥765॥
''यदा च मार्गमद्राक्षम्, नावा अभिरोहणम्।
अनधिष्ठाय आत्मानम्, तीर्थमद्राक्षमुत्तमम्॥766॥
''शल्यम् आत्मसमुत्थानम्, भवनेत्रिप्रभावितम्।
एतेषाम् अप्रवर्ताय, अद्राक्षीत् मार्गमुत्तमम्॥767॥
''दीर्घरक्तानुशयितम्, चिररक्तमधिष्ठितम्।
बुद्धः मे अपानुदत् ग्रन्थम्, विषदोषप्रवाहनः"इति॥768॥

(हिन्दी)- इस प्रकार उन भगवान् बुद्ध ने मुझ को दृढ़, धर्मयुक्त, पवित्र, सरलता से चढ़ने योग्य मार्ग बताया और 'भयभीत न होओ' - ऐसा कहा॥764॥

तब मैंने स्मृत्युपस्थानरूप प्रासाद पर चढ़कर जब देखा तो जिस को मैंने पहले मान लिया था वह सत्काय में अनुरक्त प्रज्ञा थी॥765॥

जब मैंने उसे भयंकर तड़ाग से नौका द्वारा निकलने का मार्ग देखा, तब मैंने 'आत्मा' को अस्वीकार करते हुए उत्तम मार्ग पहचाना॥766॥

अपने संकल्पों से समुद्भुत, तथा भवरज्जु से आबद्ध इन सब दोषों की अप्रवृत्ति के लिये उन भगवान् ने मुझ को उत्तम मार्ग दिखाया॥767॥

मैंने उस साधना मार्ग का चिरकाल तक अनुगमन किया। बहुत काल तक तदुनसार साधना में प्रवृत्त रहा। इस प्रकार विष-दोष के प्रवाहक बुद्ध ने मेरा वह कण्टक निकाल फेंका॥768॥ ..तेलकानि स्थविर...पूर्ववत्..॥

4. रट्ठपालत्थेरगाथा-

''पस्स चित्तकतं बिम्बं, अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति॥769॥
''पस्स चित्तकतं रूपं, मणिना कुण्डलेन च।
अट्ठिं तचेन ओनद्धं, सह वत्थेहि सोभति॥770॥
''अलत्तककता पादा, मुखं चुण्णकमक्खितं।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥771॥
''अट्ठपदकता केसा, नेत्ता अञ्जनमक्खिता।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥772॥
''अञ्जनीव नवा चित्ता, पूतिकायो अलङ्कतो।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥773॥
''ओदहि मिगवो पासं, नासदा वागुरं मिगो।
भुत्वा निवापं गच्छाम, कन्दन्ते मिगबन्धके॥774॥

(संस्कृतच्छाया)-4. ''पश्य चित्तकृतं बिम्बम्, अरु-कायं समुच्छ्रितम्।
आतुरं बहुसंकल्पम्, यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः॥769॥
''पश्य चित्तकृतं रूपम्, मणिना कुण्डलेन च।
अस्थिं त्वचा अवनद्धम्, सह वस्त्रैः शोभते॥770॥
''अलक्तककृतौ पादौ, मुखं चूर्णकमक्षितम्।
अलं बालस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥771॥
''अष्टपदकृताः केशाः, नेत्रयो अञ्जनमक्षिताः।
अलं बालस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥772॥
''अञ्जनीव नवाः चित्राः, पूतिकाय अलंकृतः।
अलं बालस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥773॥
''अवाधात् मृगयुः पाशम्, नाशितः वागुरो मृगम्।
भुङ्क्त्वा निवापं गच्छाम, क्रन्दतः मृगबन्धकान॥774॥

(हिन्दी)- चित्रलिखित के समान इस शरीर को देखो जो व्रणों से युक्त है, जो सर्वत्र शोधयुक्त है, पीड़ित है, विविध संकल्पविकल्पों से पूर्ण है। इसे देखते हुए यहाँ किसी स्थायी (ध्रुव) की स्थिति नहीं कही जा सकती है!॥769॥

इस चित्रकृत रूप को देखो जो मणि, कुण्डल आदि आभूषणों से तथा हड्डी तथा त्वचा से आवृत्त है तथा ऊपर से वस्त्र पहना कर अपेक्षाकृत अधिक शोभायमान बना दिया गया है॥770॥

इसके पैर अलक्तक से रंगे हुए हैं मुख पर सुगन्धित चूर्ण का लेप है, यह मूर्खों के लिये ही आसक्ति का कारण बन सकता है, भव पार हो गये ज्ञानी पुरुषों के लिये नहीं॥771॥

इस के बाल घुँघराले हैं, नेत्रों में अंजन लगा हुआ है। परन्तु यह मूर्खों को ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, ज्ञानियों को नहीं॥772॥

अंजन रखने की नयी तथा चित्रित डब्बी के समान यह मलिन काय अलंकृत किया हुआ है। यह मूर्खों को ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, ज्ञानियों को नहीं॥773॥

व्याध ने अपना जाल फैला दिया है, परन्तु मृग पकड़ने वाला कोई व्याध नहीं है। क्यों न हम यहाँ यथेच्छ खा पी कर इन व्याधों को रोता कलपता छोड़ कर निकल चलें॥774॥

''छिन्नो पासो मिगवस्स, नासदा वागुरं मिगो।
भुत्वा निवापं गच्छाम, सोचन्ते मिगलुद्दके॥775॥
''पस्सामि लोके सधने मनुस्से, लद्धान वित्तं न ददन्ति मोहा।
लुद्धा धनं सन्निचयं करोन्ति, भिय्योव कामे अभिपत्थयन्ति॥776॥
''राजा पसय्हप्पथविं विजेत्वा, ससागरन्तं महिमावसन्तो।
ओरं समुद्दस्स अतित्तरूपो, पारं समुद्दस्सपि पत्थयेथ॥777॥
''राजा च अञ्ञे च बहू मनुस्सा, अवीततण्हा मरणं उपेन्ति।
ऊनाव हुत्वान जहन्ति देहं, कामेहि लोकम्हि न हत्थि तित्ति॥778॥
''कन्दन्ति नं ञाती पकिरिय केसे, अहो वता नो अमराति चाहु।
वत्थेन नं पारुतं नीहरित्वा, चितं समोधाय ततो डहन्ति॥779॥

(संस्कृतच्छाया)- ''छिन्नः पाशः मृगयोः, नाशितः वागुरो मृगम्।
भुङ्क्त्वा निवापं गच्छाम, शोचन्तः मृगलुब्धकान्॥775॥
''पश्यामि लोके सधनान् मनुष्यान्, लब्ध्वा वित्तं न ददति मोहात्।
लुब्धाः धनस्य सन्निचयं कुर्वन्ति, भूय एव कामान् अभिप्रार्थयन्ते॥776॥
''राजा प्रसह्य पृथिवीं विजित्य, ससागरान्तां महीमावसन्।
अवरं समुद्रस्य अतृप्तरूपः, पारं समुद्रस्याऽपि प्रार्थयेत्॥777॥
''राजा चाऽन्ये च बहवो मनुष्याः, अवीततृष्णा मरणमुपयन्ति।
ऊना एव भूत्वा जहति देहम्, कामैः लोके न ह्यस्ति तृप्तिः॥778॥
''क्रन्दन्ति नु ज्ञातयः प्रकीर्य केशान्, अहो वत न अमरा इत्याहुः।
वस्त्रेण नु प्रावृतं निहृत्य, चितां समवधाय ततो दहन्ति॥779॥

(हिन्दी)- व्याध का जाल कट गया है, मृग पकड़ने वाले व्याध भी नहीं हैं। क्यों न हम यहाँ यथेच्छ खा पीकर इन व्याधों को रोते कलपते छोड़ कर चल दें॥775॥

मैंने लोक में अनेक प्रकार के धनवान् पुरुष देखे हैं। उनमें से कुछ लोग धन पाने के बाद मोह वश उसमें से कुछ भी अंश दूसरों को नहीं देते। कुछ लोग लोभवश उसका अधिक से अधिक संग्रह करते रहते हैं। तथा कुछ लोग केवल अपेन ही कामभोगों में उसका व्यय करते हैं॥776॥

राजा लोग भी पृथ्वी को बलपूर्वक जीत कर इस पर सागरपर्यन्त अपना राज्य फैलाते हैं। इतना ही नहीं, वे सागरपर्यन्त इस पृथ्वी को प्राप्त करके भी असन्तुष्ट ही रहते हैं और वे सागर के पार जाने की इच्छा भी अपने मन में संजोये रहते हैं॥777॥

ऐसे राजा लोग तथा अन्य धनिक जन, तृष्णा का त्याग न करते हुए ही मर जाते हैं इस प्रकार वे अपने भोगों में कुछ न्यूनता अनुभव करते हुए ही अपना देहत्याग करते हैं; क्योंकि लोग में कामभोगों से किसी की भी तृप्ति नहीं हुआ करती॥778॥

मरणान्तर उसके सम्बन्धी जन अपने केश पकड़ कर रोते हैं कि अरे! ये अभी क्यों मर गये! अमर क्यों नहीं हो गये। तब वे उस मृत देह को वस्त्र से ढक कर घर से निकाल कर, चिता बना कर जला देते हैं॥779॥

''सो डय्हति सूलेहि तुज्जमानो, एकेन वत्थेन पहाय भोगे।
न मीयमानस्स भवन्ति ताणा, ञाती च मित्ता अथ वा सहाया॥780॥
''दायादका तस्स धनं हरन्ति, सत्तो पन गच्छति येन कम्मं।
न मीयमानं धनमन्वेति किञ्चि, पुत्ता च दारा च धनं च रट्ठं॥781॥
''न दीघमायुं लभते धनेन, न चापि वित्तेन जरं विहन्ति।
अप्पप्पं हिदं जीवितमाहु धीरा, असस्सतं विप्परिणामधम्मं॥782॥
''अड्ढा दलिद्दा च फुसन्ति फस्सं, बालो च धीरो च तथेव फुट्ठो।
बालो हि बाल्या वधितोव सेति, धीरो च नो वेधति फस्सफुट्ठो॥783॥
''तस्मा हि पञ्ञाव धनेन सेय्या, याय वोसानमिधाधिगच्छति।
अब्योसितत्ता हि भवाभवेसु, पापानि कम्मानि करोति मोहा॥784॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सः दहति शूलैः तुदमानः, एकेन वस्त्रेण प्रहाय भोगान्।
न म्रियमाणस्य भवन्ति त्राणाः, ज्ञातयश्च मित्राणि अथ वा सहायाः॥780॥
''दायादकाः तस्य धनं हरन्ति, सत्त्वः पुनर्गच्छति यत्र कर्म।
न म्रियमाणं धनमन्वेति किञ्चित्, पुत्राश्च दाराश्च धनञ्च राष्ट्रम्॥781॥
''न दीर्घमायुर्लभते धनेन, न चापि वित्तेन जरां विहन्ति।
अल्पाल्पं हि इदं जीवितमाहुः, धीरा अशाश्वतं विपरिणामधर्मम्॥782॥
''आढ्या दरिद्राश्च स्पृशन्ति स्पर्शम्, बालश्च धीरश्च तथैव स्पृष्टः।
बालो हि बाल्येन बद्ध इव शेते, धीरश्च न व्यथते स्पर्शस्पृष्टः॥783॥
''तस्मात् हि प्रज्ञेव धनात् श्रेयाः, यया व्यवसानमिहाधिगच्छति।
अव्यवसितत्वात् हि भवाभवेषु, पापानि कर्माणि करोति मोहात्॥784॥

(हिन्दी)- वह वहाँ शूलों से बींधा जाता हुआ सभी भोगप्रदर्शक आभूषणों को छोड़कर एक ही वस्त्र में जल जाता है। मरते हुए का कोई रक्षक नहीं होता; न सम्बन्धी जन, न उसके मित्र, न उसके अन्य साथी ही॥780॥
(अपितु) उसके उत्तराधिकारी उस का धन बाँट लेते हैं और वह अपने कर्मभोगानुसार आगे किसी योनि की यात्रा आरम्भ करता है। उस समय उस का कमाया हुआ यह धन उसके साथ नहीं जाता। और न उसके पुत्र, उसकी स्त्री, उसका धन तथा उसका राष्ट्र ही उसके साथ जाते हैं॥781॥
न धन से दीर्घ आयु प्राप्त होती है, न धन से बुढापा पीछे हटाया जा सकता है। ज्ञानवान् लोग जीवन को तुच्छ से तुच्छ ही समझते हैं; क्योंकि वह विनाशी एवं परिवर्तनशील है॥782॥
यहाँ धनवान् और दरिद्र-दोनों को ही इन्द्रिय विषयों का स्पर्श होता है; मूर्ख को भी, एवं धैर्यवान् को भी। उनमें जो मूर्ख हैं वे अपनी मूर्खता के कारण मरे हुए से रोते कलपते सोते हैं; परन्तु ज्ञानवान् पुरुष इन्द्रियविषयों से स्पृष्ट हो कर भी उनसे कम्पित नहीं होता॥783॥
अतः धन के साथ प्रज्ञा का रहना भी श्रेयस्कर होता हैं जिसके आश्रयण से व्यवसान (जीवन-मरण का अन्त) प्राप्त किया जा सकता है। इस व्यवसान के न मिलने से वैसा पुरुष मोहवश पापकर्म करता रहता है॥784॥

''उपेति गब्भं च परञ्च लोकं, संसारमापज्ज परम्पराय।
तस्सप्पपञ्ञो अभिसद्दहन्तो, उपेति गब्भं च परं च लोकं॥785॥
''चोरो यथा सन्धिमुखे गहीतो, सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो।
एवं पजा पेच्च परम्हि लोके, सकम्मुना हञ्ञति पापधम्मो॥786॥
''कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेन मथेन्ति चित्तं।
आदीनवं कामगुणेसु दिस्वा, तस्मा अहं पब्बजितोम्हि राज॥787॥
''दुमप्फलानीव पतन्ति माणवा, दहरा च वुड्ढा च सरीरभेदा।
एतं पि दिस्वा पब्बजितोम्हि राज, अपण्णकं सामञ्ञमेव सेय्यो॥788॥
''सद्धायाहं पब्बजितो, उपेतो जिनसासने।
अवञ्झा मय्हं पब्बज्जा, अनणो भुञ्जामि भोजनं॥789॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपैति गर्भञ्च परञ्च लोकम्, संसारमापद्य परम्परयाः।
तस्याल्पप्रज्ञ अभिश्रद्धधन्, उपैति गर्भञ्च परञ्च लोकम्॥785॥
''चौरो यथा सन्धिमुखे गृहीतः, स्वकर्मणा हन्यते पापधर्मः।
एवं प्रजा प्रेत्य परस्मिन् लोके, स्वकर्मणा हन्यते पापधर्मः॥786॥
''कामाः हि चित्राः मधुराः मनोरमाः, विरूपरूपेण मथन्ति चित्तम्।
आदीनवं कामगुणेसु दृष्ट्वा, तस्मात् अहं प्रव्रजितोऽस्मि राजन्॥787॥
''द्रुमफलानीव पतन्ति मानवाः, दहराश्च वृद्धाश्च शरीरभेदात्।
एतदपि दृष्ट्वा प्रव्रजितोऽस्मि राजन्, अपर्णकं श्रामण्यमेव श्रेयः॥788॥
''श्रद्धयाऽहं प्रव्रजितः, उपेतः जिनशासने।
अवध्या मह्यं प्रव्रज्या, अनृणः भुञ्ज्मः भोजनम्॥789॥

(हिन्दी)- वह बार-बार गर्भ में आता है, मर कर दूसरे लोक को जाता है। इस प्रकार संसार में आकर जीवन-मरण की यह परम्परा उसका साथ नहीं छोड़ती। उस अल्प प्रज्ञा वाले पुरुष का गर्भ में आकर इस लोक एवं परलोक में आन जाना अटूट बन जाता है॥785॥

जैसे कोई पापी चोर अपने दुष्ट कर्मों के प्रभाव से चोरी करता हुआ सेंध में ही पकड़ा जाता है; इसी प्रकार यह जनता भी यहाँ उत्पन्न हो कर अपने पापकर्मों के कारण परलोक में जाकर दण्ड भोगती है॥786॥

हे राजन्! नाना प्रकार से मधुर तथा मनोहर ये कामभोग पुरुष के चित्त को अनेक प्रकार से मथते रहते हैं। अतः मैं कामभोगों में ये दोष देख कर ही प्रव्रजित हुआ हूँ॥787॥

जैसे वृक्ष के कच्चे पके फल टूट कर गिरते ही रहते हैं, वैसे ही बच्चे और बूढ़े मनुष्य भी मरणभाव को प्राप्त होते रहते हैं। इस बात को देख कर ही मैं प्रव्रजित हुआ हूँ; क्योंकि मेरी दृष्टि में इस की अपेक्षा श्रामण्य ही निर्दोष है॥788॥

मैं इस तथागत के शासन में श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हुआ हूँ; क्योंकि मुझको यह प्रव्रज्या सफल लगती है॥789॥

''कामे आदित्ततो दिस्वा, जातरूपानि सत्थतो।
गब्भवोक्कन्तितो दुक्खं, निरयेसु महब्भयं॥790॥
''एतमादीनवं ञत्वा, संवेगं अलभिं तदा।
सोहं विद्धो तदा सन्तो, सम्पत्तो आसवक्खयं॥791॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥792॥
''यस्सत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो''ति॥793॥ ... रट्ठपालो थेरो...।

5. मालुक्यपुत्तत्थेरगाथा-

''रूपं दिस्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस्स तिट्ठति॥794॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कामान् आदीप्तः दृष्ट्वा, जातरूपाणि शस्त्रतः।
गर्भावक्रान्तितः दुःखम्, निरयेषु महाभयम्॥790॥
''एतदादीनवं ज्ञात्वा, संवेगम् अलभे तदा।
सोऽहं विद्धः तदा शान्तः, संप्राप्त आस्रवक्षयम्॥791॥
''परिचीर्णो मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अवहितो गुरुको भारः, भवनेत्री समूलं हता॥792॥
''यस्यार्थाय प्रव्रजितः, आगारादनागारिकम्।
स मे अर्थ अनुप्राप्तः, सर्वसंयोजनक्षयः" इति॥793॥
5. ''रूपं दृष्ट्वा स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥794॥

(हिन्दी)- मैंने कामभोगों को अग्नि के समान दाहक समझते हुए, सोना-चाँदी को शस्त्र के समान घातक समझते हुए, गर्भावक्रान्ति को दुःखमय समझते हुए तथा नरकयोनियों में अतिशय भय देखा॥790॥
इन दोषों को देखते हुए मुझको अतिशय ग्लानि हुई। उससे प्रेरित हो कर मैंने धर्मसाधना करते हुए अपने समस्त चित्तविकारों का क्षय कर लिया॥791॥
मेरा शास्ता से परिचय हो गया है, मैं उनको गुरु मान चुका हूँ। मैंने अपना गुरुतर सांसारिक भार अपने कन्धों से उतार फेंका है और अपने भवबन्धन भी काट फेंके हैं॥792॥
जिस प्रयोजन के लिये मैं घर से निकल कर प्रव्रजित हुआ था, वह मेरा प्रयोजन-मेरे सभी भवबन्धनों का क्षय-मुझको मिल गया है। मेरा भवबन्धन छूट गया है॥793॥...राष्ट्रपाल स्थविर ने...॥
किसी स्त्री आदि के रूप को देख कर उसको अपना प्रिय अभीष्ट मानने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥794॥

''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका रूपसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥795॥
''सद्दं सुत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस्स तिट्ठति॥796॥
''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका सद्दसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥797॥
''गन्धं घत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तञ्च अज्झोस्स तिट्ठति॥798॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः रूपसम्भवाः।
अभिध्या च विहिंसा च, चित्तमस्योपहन्यते।
''एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥795॥
शब्दं श्रुत्वा स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
''सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥796॥
तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः शब्दसम्भवाः।
''अभिध्या च विहिंसा च, चित्तमस्योपहन्यते।
एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥797॥
''गन्धं घ्रात्वा स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥798॥

(हिन्दी)- इस कारण, रूप से उद्भूत उसकी विविध वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं इसी प्रकार उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥795॥

किसी स्त्री आदि के शब्द को सुनकर उसको अपना प्रिय माने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥796॥

इस कारण, शब्द से उद्भूत उसकी वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं इसी प्रकार उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥797॥

गन्ध सूँघ कर उसको अपना प्रिय अभीष्ट माने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥798॥

''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका गन्धसम्भवा।
''अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥799॥
''रसं भोत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस्स तिट्ठति॥800॥
''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका रससम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥801॥
''फस्सं फुस्स सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस्स तिट्ठति॥802॥
''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका फस्ससम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥803॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः गन्धसम्भवाः।
अभिध्या च विहिंसा च, चित्तमस्योपहन्यते।
''एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥799॥
रसं भुङ्क्त्वा स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
''सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥800॥
तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः रससम्भवाः।
''अभिध्या च विहिंसा च, चित्तमस्योपहन्यते।
एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥801॥
''स्पर्शं स्पर्शः स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥802॥
''तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः स्पर्शसम्भवाः।
अभिध्या च विहिंसा च, चित्तमस्योपहन्यते।
एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥803॥

(हिन्दी)- इस कारण, गन्ध से वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं, उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥799॥
किसी स्वादिष्ट वस्तु के रस का ग्रहण कर उसको अपना प्रिय मानने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥800॥
इस कारण, रस से उद्भूत उसकी विविध वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं इसी प्रकार उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥801॥
स्पर्श का अनुभव कर उसको अपना प्रिय मानने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥802॥
इस कारण, स्पर्श से उद्भुत उसकी विविध वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं इसी प्रकार उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥803॥

''धम्मं ञत्वा सति मुट्ठा, पियं निमित्तं मनसि करोतो।
सारत्तचित्तो वेदेति, तं च अज्झोस्स तिट्ठति॥804॥
''तस्स वड्ढन्ति वेदना, अनेका धम्मसम्भवा।
अभिज्झा च विहेसा च, चित्तमस्सूपहञ्ञति।
एवमाचिनतो दुक्खं, आरा निब्बान वुच्चति॥805॥
''न सो रज्जति रूपेसु, रूपं दिस्वा पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस्स तिट्ठति॥806॥
''यथास्स पस्सतो रूपं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥807॥
''न सो रज्जति सद्देसु, सद्दं सुत्वा पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस्स तिट्ठति॥808॥

(संस्कृतच्छाया)- ''धर्मं ज्ञात्वा स्मृतिः मृष्टा, प्रियं निमित्तं मनसि कुर्वतः।
सारक्तचित्तः वेदयते, तञ्च अध्यवशः तिष्ठति॥804॥
''तस्य वर्धन्ते वेदनाः, अनेकाः धर्मसम्भवाः।
अभिध्या च विहिंसा, चित्तमस्योपहन्यते।
एवमाचिन्वतः दुःखम्, आरात् निर्वाणमुच्यते॥805॥
''न सः रज्यति रूपेषु, रूपं दृष्ट्वा प्रतिश्रुतः।
विरक्तचित्तः वेदयते, तञ्च नाध्यवशः तिष्ठति॥806॥
''यथास्य पश्यतः रूपम्, सेवतः चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥807॥
''न सः रज्यति शब्देषु, शब्दं श्रुत्वा प्रतिश्रुतः।
विरक्तचित्तो वेदयते, तञ्च नाध्यवशः तिष्ठति॥808॥

(हिन्दी)- मन से धर्म को जानकर उसको अपना प्रिय मानने वाले की स्मृति भ्रष्ट हो जाती है। उस का चित्त उस में राग अनुभव करने लगता है और वह उसमें आसक्त हो जाता है॥804॥

इस कारण, धर्म से उद्भूत उसकी विविध वेदनाएँ बढ़ने लगती हैं इसी प्रकार उस का लोभ एवं क्रूरता भी बढ़ने लगती है। इन से उसका चित्तभ्रष्ट हो जाता है। इस प्रकार उस दुःख का संग्रह करने वाले से निर्वाण दूर ही रह जाता है॥805॥

अतः साधक रूपों को देख कर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥806॥

इस प्रकार साधक द्वारा रूप को देखते हुए, तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों-उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहलाता है॥807॥

ऐसा साधक शब्दों को सुनकर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥808॥

''यथास्स सुणतो सद्दं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥809॥
''न सो रज्जति गन्धेसु, गन्धं घत्वा पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस्स तिट्ठति॥810॥
''यथास्स घायतो गन्धं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥811॥
''न सो रज्जति रसेसु, रसं भोत्वा पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तं च नाज्झोस्स तिट्ठति॥812॥
''यथास्स सायरतो रसं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥813॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यथास्य श्रुणुतः शब्दं, सेवत: चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥809॥
''न सः रज्यति गन्धेषु, गन्धं ध्रात्वा प्रतिश्रुतः।
विरक्तचित्तो वेदयते, तञ्च नाध्यवश: तिष्ठति॥810॥
''यथास्य जिघ्रत: गन्धम्, सेवत: चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥811॥
''न सः रज्यति रसेषु, रसं भुङ्क्त्वा प्रतिश्रुतः।
विरक्तचित्तो वेदयते, तञ्च नाध्यवश: तिष्ठति॥812॥
''यथास्य स्वादत: रसम्, सेवत: चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥813॥

(हिन्दी)- इस प्रकार साधक द्वारा शब्दों को सुनते हुए, तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए, वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों -उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहा जाता है॥809॥

ऐसा साधक गन्धों को सूँघकर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥810॥

इस प्रकार साधक द्वारा गन्धों को सूँघते हुए, तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों- उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहा जाता है॥811॥

ऐसा साधक रसों का आस्वाद लेकर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥812॥

इस प्रकार साधक द्वार रसों का आस्वाद लेते हुए , तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों -उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहा जाता है॥813॥

''न सो रज्जति फस्सेसु, फस्सं फुस्स पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तञ्च नाज्झोस्स तिट्ठति॥814॥
''यथास्स फुसतो फस्सं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति॥815॥
''न सो रज्जति धम्मेसु, धम्मं ञत्वा पतिस्सतो।
विरत्तचित्तो वेदेति, तञ्च नाज्झोस्स तिट्ठति॥816॥
''यथास्स विजानतो धम्मं, सेवतो चापि वेदनं।
खीयति नोपचीयति, एवं सो चरती सतो।
एवं अपचिनतो दुक्खं, सन्तिके निब्बान वुच्चति''॥817॥ ... मालुक्यपुत्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''न सः रज्यति स्पर्शेषु, स्पर्शं स्पर्शः प्रतिश्रुतः।
विरक्तचित्तो वेदयते, तञ्च नाध्यवशः तिष्ठति॥814॥
''यथास्य स्पृशतः स्पर्शम्, सेवतः चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥815॥
''न सः रज्यति धर्मेषु, धर्मं ज्ञात्वा प्रतिश्रुतः।
सारक्तचित्तो वेदयते, तञ्च नाध्यवशः तिष्ठति॥816॥
''यथास्य विजानतः धर्मं, सेवतः चापि वेदनम्।
क्षीयते नोपचीयते, एवं सः चरति स्मृतः।
एवमपचिन्वतः दुःखम्, सन्तिकं निर्वाणमुच्यते॥817॥

(हिन्दी)- ऐसा साधक स्पर्श का अनुभव कर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥814॥

इस प्रकार साधक द्वारा स्पर्शों का अनुभव करते हुए, तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों -उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहा जाता है॥815॥

ऐसा साधक मन से धर्मों को जानकर उनमें राग नहीं करता, अपितु इस पर समीक्षात्मक विचार करता है॥816॥

ऐसा साधम मन से धर्मों को जानते हुए, तथा वेदनाओं का अनुभव करते हुए वे वेदनाएँ क्षीण होती रहें, वृद्धि को न प्राप्त हों- उस स्मृतिमान् द्वारा ऐसा आचरण किया जाना चाहिये। इस प्रकार दुःख का नाश करता हुआ वह साधक निर्वाण के समीप ही पहुँचा हुआ कहा जाता है॥817॥

6. सेलत्थेरगाथा-

''परिपुण्णकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो।
सुवण्णवण्णोसि भगवा, सुसुक्कदाठोसि वीरियवा॥818॥
''नरस्स हि सुजातस्स, ये भवन्ति वियञ्जना।
सब्बे ते तव कायस्मिं, महापुरिसलक्खणा॥819॥
''पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पतापवा।
मज्झे समणसङ्घस्स, आदिच्चोव विरोचसि॥820॥
''कल्याणदस्सनो भिक्खु, कञ्चनसन्निभत्तचो।
किं ते समणभावेन, एवं उत्तमवण्णिनो॥821॥
''राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो।
चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स इस्सरो॥822॥

(संस्कृतच्छाया)-6. ''परिपूर्णकायः सुरुचिः, सुजातः चारुदर्शनः।
सुवर्णवर्णोऽसि भगवन्, सुशुक्लदाठाऽसि वीर्यवान्॥818॥
''नरस्य हि सुजातस्य, ये भवन्ति व्यञ्जनाः।
सर्वाणि तानि तव काये, महापुरुषलक्षणानि॥819॥
''प्रसन्ननेत्रः सुमुखः, ब्रह्म ऋजुः प्रतापवान्।
मध्ये श्रमणसङ्घस्य, आदित्य इव विरोचसे॥820॥
''कल्याणदर्शिनः भिक्षुः कञ्चनसन्निभत्वचः।
किं तव श्रमणभावेन, एवमुत्तमवर्णिनः॥821॥
''राजा अर्हसि भवितुम्, चक्रवर्ती रथर्षभः।
चतुरन्तः विजितः, जम्बुखण्डस्य ईश्वरः॥822॥

(हिन्दी)- ''भगवन्! आप का शरीर सर्वांगपूर्ण, दर्शनीय, दोनों कुलों से सुजात, निर्मिमेष नेत्रों से देखने योग्य तथा गौरवर्ण वाला है। आपकी दन्तपंक्ति अतिशय शुक्ल है। आप वीर्यवान् (सामर्थ्यवान्) हैं॥818॥

उच्च कुलोत्पन्न पुरुष के शरीर में जो शुभ लक्षण हुआ करते हैं वे सभी बतीस लक्षण आपके शरीर में हैं॥819॥

आपके नेत्र विकसित हैं, आपकी मुखाकृति सुन्दर है, विशाल होते हुए भी सरल और तेजस्वी है। आप श्रमणसंघ में विराजमान हो कर सूर्य के समान दैदीप्यमान हो रहे हैं॥820॥

आपका दर्शन कल्याणकारी है, आपके शरीर की त्वचा सुवर्ण सदृश है। ऐसा उत्तम वर्ण प्राप्त करके आपने श्रमणभाव क्यों ग्रहण कर लिया?॥821॥

आप तो प्रबल वीर चक्रवर्ती राजा होने योग्य थे। आप चारों दिशाओं की सीमा तक विजय प्राप्त इस समस्त जम्बूद्वीप के अधिपति होने योग्य थे॥822॥

''खत्तिया भोगी राजानो, अनुयन्ता भवन्ति ते।
राजाभिराजा मनुजिन्दो, रज्जं कारेहि गोतम''॥823॥
''राजाहमस्मि सेल, (सेलाति भगवा) धम्मराजा अनुत्तरो।
धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पटिवत्तियं''॥824॥
''सम्बुद्धो पटिजानासि, धम्मराजा अनुत्तरो।
'धम्मेन चक्कं वत्तेमि', इति भासथ गोतम॥825॥
''को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुरन्वयो।
को तेतमनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं''॥826॥
''मया पवत्तितं चक्कं, धम्मचक्कं अनुत्तरं।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतं॥827॥
''अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं, भावेतब्बं च भावितं।
पहातब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥828॥

(संस्कृतच्छाया)- ''क्षत्रियाः भोगिनः राजानः, अनुयन्तारः भवन्ति ते।
राजाधिराजः मनुजेन्द्रः, राज्यं करोतु गौतम॥823॥
''राजाहमस्मि शैल!, धर्मराज अनुत्तरः।
धर्मेण चक्रं वर्ते, चक्रं प्रतिवर्तिकम्॥824॥
''सम्बद्धः प्रतिजानासि , धर्मराज अनुत्तरः।
धर्मेण चक्रं वर्ते, इति अभाषत गौतमः॥825॥
''को नु सेनापतिः भवतः, श्रावकः शास्तुरन्वयः।
कस्ते तमनुवर्त्तते, धर्मचक्रं प्रवर्तितम्॥826॥
''मया प्रवर्तितं चक्रम्, धर्मचक्रम् अनुत्तरम्।
सारिपुत्र अनुवर्त्तते, अनुजातः तथागतम्॥827॥
''अभिज्ञेयमभिज्ञातम्, भावितव्यञ्च भावितम्।
प्रहातव्यं प्रहीणं मे, तस्मात् बुद्धोऽस्मि ब्राह्मण!॥828॥

(हिन्दी)- सभी क्षत्रिय एवं छोटे राजा आपके अनुगामी हो सकते हैं। आप राजाधिराज मनुजेन्द्र बनकर अखण्ड राज्य कीजिये॥823॥

भगवन् ने कहा -''शैल! मैं तो राजा ही हूँ। अद्वितीय धर्मराज हूँ। धर्म के माध्यम से आपका राज्यचक्र चला रहा हूँ। जो कि अन्य किसी के द्वारा पीछे लौटाया नहीं जा सकता॥824॥

शैलब्राह्मण ने पूछा-''गौतम ! आप कह रहे हैं -'धर्म के माध्यम से राज्यचक्र चला रहा हूँ॥825॥

आपके इस राज्यसंचालन में सेनापति कौन है? आप शास्ता का अनुगामी कौन शिष्य है? आपके चलाये गये चक्र का अनुवर्तन करने वाला कौन है?''॥826॥

भगवान् ने कहा -''मेरे द्वारा प्रवर्तित चक्र ही अद्वितीय धर्मचक्र है। सारिपुत्र इस चक्र का अनुवर्तक है, जो कि तथागत का उत्तराधिकारी है॥827॥

जो भी जानने योग्य था, वह सब कुछ मैंने जान लिया है। साधना में जो कुछ साधना योग्य था उसकी साधना कर ली है। जो कुछ त्याग योग्य था उसको त्याग दिया है। अतः ब्राह्मण! मैं बुद्ध हूँ॥828॥

''विनयस्सु मयि कङ्खं, अधिमुञ्चस्सु ब्राह्मण।
दुल्लभं दस्सनं होति, सम्बुद्धानं अभिण्हसो॥829॥
''येसं वे दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिण्हसो।
सोहं ब्राह्मण बुद्धोस्मि, सल्लकत्तो अनुत्तरो॥830॥
''ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो।
सब्बामित्ते वसे कत्वा, मोदामि अकुतोभयो''॥831॥
''इदं भोन्तो निसामेथ, यथा भासति चक्खुमा।
सल्लकत्तो महावीरो, सीहोव नदती वने॥832॥
''ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमद्दनं।
को दिस्वा नप्पसीदेय्य, अपि कण्हाभिजातिको॥833॥
''यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु।
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपञ्ञस्स सन्तिके''॥834॥

(संस्कृतच्छाया)- ''विनयस्व मयि शङ्काम्, अधिमुञ्चस्व ब्राह्मण।
दुर्लभं दर्शनं भवति, सम्बुद्धानामभीक्षणशः॥829॥
''येषां वै दुर्लभो लोके, प्रादुर्भाव अभीक्ष्णशः।
सोऽहं ब्राह्मण! बुद्धोऽस्मि, शल्यकर्त्ता अनुत्तरः॥830॥
''ब्रह्मभूत अतितुलः, मारसेनाप्रमर्दनः।
सर्वमित्राणि वशीकृत्य, मोदे अकुतोभयः॥831॥
''इदं भवन्तः निशाम्येत्, यथा भासते चक्षुष्मान्।
शल्यकर्त्ता महावीरः, सिंह इव नदति वने॥832॥
''ब्रह्मभूतमतितुलम्, मारसेनाप्रमर्दनम्।
को दृष्ट्वा न प्रसीदेत्, अपि कृष्णाभिजातिकः॥833॥
''यो मामिच्छति अन्वेतु, यो वा नेच्छति गच्छतु।
इहाहं प्रव्रजिष्यामि, वरप्रज्ञस्य सन्तिकम्॥834॥

(हिन्दी)- यदि तुम्हारी इस धर्म के प्रति कोई शंका या सन्देह हो तो तुम मुझसे पूछ सकते हो; क्योंकि सम्बुद्धों का दर्शन प्रायः दुर्लभ हुआ करता है॥829॥

जिन का प्रादुर्भाव लोक में प्रायः दुर्लभ होता है, ब्राह्मण! वह मैं अद्वितीय धर्म चिकित्सक के रूप में बुद्ध हूँ॥830॥

मैं अनुपम ब्रह्मरूप, समस्त मारसेना का नाशक, सभी विरोधियों को वश में कर इस जगत् में निर्भीक होकर प्रसन्न मन से विचरण कर रहा हूँ॥831॥

आप लोग ध्यानपूर्वक सुन लें, जैसा कि मैं तत्त्वद्रष्टा आप लोगों को बता रहा हूँ कि मैं अद्वितीय चिकित्सक हूँ। यह बात मैं उसी तरह कह रहा हूँ जैसे वन में कोई सिंह निर्भीकता से गर्जना किया करता है॥832॥

मुझ अद्वितीय ब्रह्मरूप एवं मारसेनानाशक के दर्शन कर कौन प्रसन्न नहीं होगा! भले ही वह नीच से नीच कुल में क्यों न उत्पन्न हुआ हो!॥833॥

शैल ब्राह्मण अपने शिष्यों से बोला ''जो मुझको चाहता है वह मेरा अनुगमन करे। और जो नहीं चाहता वह यहाँ से जा सकता है। मैं अब इन श्रेष्ठप्रज्ञ भगवान् से प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा॥834॥

''एतं चे रुच्चति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासनं।
मयंपि पब्बजिस्साम, वरपञ्ञस्स सन्तिके॥835॥
''ब्राह्मणा तिसता इमे, याचन्ति पञ्जलीकता।
'ब्रह्मचरियं चरिस्साम, भगवा तव सन्तिके''॥836॥
''स्वाखातं ब्रह्मचरियं, सन्दिट्ठिकमकालिकं।
यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो''॥837॥
''यं तं सरणमागम्ह , इतो अट्ठमे चक्खुम।
सत्तरत्तेन भगवा, दन्ताम्ह तव सासने॥838॥
''तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं माराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये छेत्वा, तिण्णो तारेसिमं पजं॥839॥

(संस्कृतच्छाया)- ''एतत् चेत् रोचते भवतः, सम्यक्सम्बुद्धशासनम्।
वयमपि प्रव्रजिष्यामः, वरप्रज्ञस्य सन्तिकम्॥835॥
''ब्राह्मणाः त्रिंशत् इमे, याचन्ते प्रांजलिकृताः।
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामः, भगवन्! तव सन्तिकम्॥836॥
''स्वाख्यातं ब्रह्मचर्यम्, सान्दृष्टिकमकालिकम्।
यत्र अमोघा प्रव्रज्या, अप्रमत्तस्य शिक्षतः॥837॥
''यत् तत् शरणमागम्य, इत अष्टमे चक्षुष्मान्
सप्तरात्रौ भगवन्, दान्ता: स्म: तव शासने॥838॥
''त्वं बुद्धः त्वं शास्ता, त्वं माराभिभूः मुनिः।
त्वम् अनुशये छित्वा, तीर्णः अतारी: इमां प्रजाम्॥839॥

(हिन्दी)- शिष्य बोले -''यदि आप को सम्यक्सम्बुद्ध से यह दीक्षा लेना ही है तो हम लोग भी इन भगवान् से ही दीक्षा लेंगे॥835॥

शैल ने भगवान् से कहा -''ये तीन सौ ब्राह्मण आप को प्रणाम करते हुए आप से निवेदन कर रहे हैं कि हम भगवान् से दीक्षा लेंगे॥836॥

भगवान ने कहा -'शैल् यह धर्म स्वाख्यात है, सान्दृष्टिक, अकालिक है, जहाँ सावधान साधनाभ्यासी की प्रव्रज्या व्यर्थ नहीं जाती॥837॥

हे चक्षुष्मन्! सर्वज्ञ आप से आठ दिन पूर्व प्रव्रज्या दीक्षा लेने के बाद हमने इन सात दिनों में ही साधनाभ्यास द्वारा आपके धर्मोपदेश का महत्व समझ लिया है। हमने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है॥838॥

हे मुनि! आप बुद्ध हैं, आप शास्ता हैं, आप मार के पराजयकारी हैं, आपने सभी चित्तवृत्तियों को छिन्न-भिन्न कर इस समस्त प्रजा को दुःखसागर से तार दिया है॥839॥

''उपधी ते समतिक्कन्ता, आसवा ते पदालिता।
सीहोव अनुपादानो, पहीनभयभेरवो॥840॥
''भिक्खवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता।
पादे वीर पसारेहि, नागा वन्दन्तु सत्थुनो''ति॥841॥ ... सेलो थेरो...।

7. काळिगोधापुत्तभद्दियत्थेरगाथा-

''यातं मे हत्थिगीवाय, सुखुमा वत्था पधारिता।
सालीनं ओदनो भुत्तो, सुचिमंसूपसेचनो॥842॥
''सोज्ज भद्दो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥843॥
''पंसुकूली सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥844॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपधयः ते समतिक्रान्ताः, आस्रवाः ते प्रदारिताः।
सिंहः इव अनुपादानः, प्रहीणभयभैरवः॥840॥
''भिक्षवः त्रिशत् इमे, तिष्ठन्ति प्राञ्जलिकृताः।
पादौ वीर! प्रसारेहि, नागाः वन्दन्तु शास्तुः"इति॥841॥

7. ''यातं मे हस्तिग्रीवायाम्, सुसूक्ष्माः वस्त्राः प्रधारिताः।
शालीनामोदनं भुङ्क्तः, शुचिमांसोपसेवनः॥842॥
''सोऽद्य भद्रः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥843॥
''पांसुकूली सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥844॥

(हिन्दी)- आप की सभी आसक्तियाँ शान्त हो चुकी हैं, आपके आश्रव विनष्ट हो चुके हैं। आप सिंह के समान निरासक्त एवं निर्भीक होकर विचरण कर रहे हैं॥840॥

ये तीन सौ भिक्षु आप की ओर हाथ जोड़ कर खड़े हुए हैं। हे वीर! कृपया अपने श्रीचरण निकालिये, जिससे ये निष्पाप भिक्षु आप की वन्दना कर सकें''॥841॥ ...शैल स्थविर ने ..पूर्ववत्..॥

मैं कभी हाथी की सवारी करता था, अच्छे से अच्छे वस्त्र पहनता था, शालि ओदन का भोजन करता था, जिस के साथ शुद्ध मांस रहता था॥842॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त अन्न से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥843॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त पांसुकूल से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥844॥

''पिण्डपाती सातातिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥845॥
''तेचीवरी सातातिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥846॥
''सपदानचारी सातातिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥847॥
''एकासनी सातातिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥848॥
''पत्तपिण्डी सातातिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥849॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पिण्डपाती सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥845॥
''त्रिचीवरेण सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥846॥
''सपदानुचारी सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥847॥
''एकासनी सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥848॥
''पात्रपिण्डी सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥849॥

(हिन्दी)- वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त पिण्डपात से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥845॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त तीन चीवरों से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥846॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त पैदल ही घर घर जा कर भिक्षा से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥847॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त साधना में एकासन से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥848॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त पिण्डपात्र से प्राप्त भोजन से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥849॥

''खलुपच्छाभत्ती सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥850॥
''आरञ्ञिको सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥851॥
''रुक्खमूलिको सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥852॥
''अब्भोकासी सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥853॥
''सोसानिको सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥854॥
''यथासन्थतिको सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥855॥

(संस्कृतच्छाया)- ''खलुपश्चात्भुङ्क्ती सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥850॥
''आरण्यकः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥851॥
''वृक्षमूलकः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥852॥
''अभ्रावकाशे सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥853॥
''श्मशानिकः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥854॥
''यथा सन्थातिकः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥855॥

(हिन्दी)- वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त गृहस्थों के भोजन के बाद ही अवशिष्ट अन्न की निरन्तर जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥850॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त अरण्य में साधना से जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥851॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त वृक्षों के मूल में बैठकर जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥852॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त खुले आकाश के नीचे जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥853॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त श्मशान में जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥854॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त जैसा बिछाने को मिल जाय उसी पर बैठकर जीवनयापन करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥855॥

''नेसज्जिको सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥856॥
''अप्पिच्छो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥857॥
''सन्तुट्ठो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥858॥
''पविवित्तो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥859॥
''असंसट्ठो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥860॥
''आरद्धवीरियो सातितिको, उञ्छापत्तागते रतो।
झायति अनुपादानो, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥861॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नैषद्यकः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥856॥
''अल्पेच्छः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥857॥
''सन्तुष्टः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥858॥
''प्रविविक्तः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥859॥
''असंसृष्टः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥860॥
''आरब्धवीर्यः सातत्यकः, उञ्छापात्रागते रतः।
ध्यायति अनुपादानः, पुत्रः गोधायाः भद्रियः॥861॥

(हिन्दी)- वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त बैठा हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥856॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त अल्प इच्छाएँ रखता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥857॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त सन्तुष्ट रहता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥858॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त एकान्त में रहता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥859॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त दूसरों से कुछ भी सम्पर्क न रखता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥860॥

वह आज मैं गोधापुत्र भद्दिय निरन्तर भिक्षा या उञ्छ वृत्ति से पात्र में यथा प्राप्त साधना में प्रयत्न आरम्भ करता हुआ ध्यानाभ्यासरत एवं संसार के प्रति अनासक्त हूँ॥861॥

''हित्वा सतपलं कंसं, सोवण्णं सतराजिकं।
अग्गहिं मत्तिकापत्तं, इदं दुतियाभिसेचनं॥862॥
''उच्चे मण्डलिपाकारे, दळ्हमट्टालकोट्ठके।
रक्खितो खग्गहत्थेहि, उत्तसं विहरिं पुरे॥863॥
''सोज्ज भद्दो अनुत्रासी, पहीनभयभेरवो।
झायति वनमोगय्ह, पुत्तो गोधाय भद्दियो॥864॥
''सीलक्खन्धे पतिट्ठाय, सतिं पञ्ञञ्च भावयं।
पापुणिं अनुपुब्बेन, सब्बसंयोजनक्खया''ति॥865॥..भद्दियो काळिगोधाय पुत्तो थेरो..।

8. अङ्गुलिमालत्थेरगाथा-

''गच्छं वदेसि समण 'ट्ठितोम्हि', ममं च ब्रूसि ठितमट्ठितोति।
पुच्छामि तं समण एतमत्थं, 'कथं ठितो त्वं अहमट्ठितोम्हि''॥866॥

(संस्कृतच्छाया)- ''हित्वा शतपलं कांस्यम्, सुवर्णं शतराजिकम्।
अग्रहीषं मृत्तिकापात्रम्, इदं द्वितीयाभिसेचनम्॥862॥
''उच्चे मण्डलप्राकारे, दृढमट्टालकोष्ठके।
रक्षितः खडगहस्तैः, उत्रासन् व्यहार्षम् पुरे॥863॥
''सोऽद्य भद्र अनुत्रासी, प्रहीणभयभैरवः।
ध्यायति वनमवगाह्य, पुत्रः गोधायाः भद्दियः॥864॥
''शीलस्कन्धे प्रतिष्ठायाः, स्मृतिं प्रज्ञाञ्च भावयन्।
प्रापम् अनुपूर्वेण, सर्वसंयोजनक्षयम्''इति॥865॥

8. ''गच्छन् वदेसि श्रमण 'स्थितोऽस्मि', मां च ब्रवीषि स्थितमस्थितोऽस्मि।
पृच्छामि त्वां श्रमण! एतदर्थम्, 'कथं स्थितः त्वम् अहमस्थितोऽस्मि'॥866॥

(हिन्दी)- अपने पहले के एक सौ पल भार के काँस्य, सुवर्ण या रजत के पात्रों का त्याग कर अब मैंने यह मृत्तिकापात्र धारण कर लिया है यह मेरा द्वितीय अभिषेक है॥862॥

पहले मैं ऊँचे, विशाल प्राकार से घिरे हुए, दृढ़, अट्टालिका एवं कोष्ठकों से युक्त प्रासादों में, खड्गहस्त प्रहरियों के रहते हुए भी, भयभीत के समान रहता था॥863॥

आज वही मैं गोधापुत्र भद्दिय पूर्ण निर्भीक रहता हुआ, भय एवं त्रास से मुक्त हो कर घोर वन में प्रविष्ट हो कर ध्यानाभ्यासरत रहता हूँ॥864॥

शीलस्कन्ध में प्रतिष्ठित हो कर स्मृति एवं प्रज्ञा की भावना करता हुआ क्रमशः सभी संयोजनों का क्षय प्राप्त कर चुका हूँ॥865॥ ..कालिगोधापुत्र भद्दिय स्थविर ने...॥

''श्रमण! आप चलते हुए भी स्वयं के लिये कह रहे हो कि आप एक स्थान पर स्थित हो और मुझ खड़े हुए को भी आप कह रहे हो कि मैं स्थित नहीं हूँ -यह क्या पहेली है श्रमण! आप कैसे एक स्थान पर स्थित हो और मैं कैसे स्थित नहीं हूँ?''॥866॥

''ठितो अहं अङ्गुलिमाल सब्बदा, सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं।
तुवञ्च पाणेसु असञ्ञतोसि, तस्मा ठितोहं तुवमट्ठितोसि''॥867॥
''चिरस्सं वत मे महितो महेसी, महावनं समणो पच्चपादि।
सोहं चजिस्सामि सहस्सपापं, सुत्वान गाथं तव धम्मयुत्तं''॥868॥
इच्चेव चोरो असिमावुधञ्च, सोब्भे पपाते नरके अन्वकासि।
अवन्दि चोरो सुगतस्स पादे, तत्थेव पब्बज्जमयाचि बुद्धं॥869॥
बुद्धो च खो कारुणिको महेसि, यो सत्था लोकस्स सदेवकस्स।
'तमेहि भिक्खू'ति तदा अवोच, एसेव तस्स अहु भिक्खुभावो॥870॥
''यो च पुब्बे पमज्जित्वा, पच्छा सो नप्पमज्जति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥871॥

(संस्कृतच्छाया)- ''स्थितोऽहं अङ्गुलिमाल! सर्वदा, सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डम्।
त्वं च प्राणिषु असंयतोऽसि, तस्मात् स्थितोऽहं त्वमस्थितोऽसि॥867॥
''चिरस्य वत मे महितः महर्षिः, महावनं श्रमणः प्रत्यपादि।
सोऽहं त्यक्ष्यामि सहस्रपापम्, श्रुत्वा गाथां तव धर्मयुक्तम्॥868॥
''इत्येव चौर असिमायुधञ्च, श्वभ्रे प्रपाते नालके अन्वकार्षीत्।
अवन्दिष्ट चौरः सुगतस्य पादौ, तत्रैव प्रव्रज्यामयाचीत् बुद्धम्॥869॥
''बुद्धश्च खलु कारुणिकः महर्षिः, यः शास्ता लोकस्य सदेवकस्य।
तमेहि भिक्षो! इति तदा अवोचत्, एष एव तस्य अभूत् भिक्षुभावः॥870॥
''यश्च पूर्वं प्रमाद्य, पश्चात् स न प्रमाद्यते।
स इमं लोकं प्रभासतेऽभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा॥871॥

(हिन्दी)- शास्ता: ''अंगुलिमाल! सभी प्राणियों के प्रति प्रतीकार भाव का त्याग कर मैं सर्वथा 'स्थित' हो गया हूँ। तू प्राणियों के प्रति असंयमी है, अतः 'स्थित नहीं' है''॥867॥

अंगुलिमाल: ''मुझे किसी महर्षि का पूजन करने में बहुत देर हो गयी, आज आप सत्यवादी श्रमण मुझ को इस महावन में मिल गये। अत: अब मैं पापकर्म छोड़ कर आप की धर्ममयी वाणी का पालन करता हुआ धर्माचरण में लगूँगा॥868॥

इस संवाद के बाद, अंगुलिमाल ने अपनी तलवार तथा अन्य अस्त्र-शस्त्र खोह, प्रपात एवं नाले में फैंक दिये और तथागत की चरणवन्दना की एवं उन से उसी क्षण प्रव्रज्या की याचना की॥869॥

तब उन देवलोकसहित इस जगत् के शास्ता, करुणामय, महर्षि बुद्ध ने उसको ''आओ भिक्षु!'' ऐसा कहा। भगवान् का यह वचन ही उसकी प्रव्रज्या दीक्षा हो गयी॥870॥

जो आरम्भ में, प्रमाद करता रहा हो, परन्तु बाद में कोई प्रमाद नहीं करता; वह इस लोक में उसी प्रकार प्रभासित होता है, जैसे आकाश में मेघों से मुक्त चन्द्रमा प्रभासित होता है॥871॥

''यस्स पापं कतं कम्मं, कुसलेन पिधीयति।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥872॥
''यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा॥873॥
''दिसापि मे धम्मकथं सुणन्तु, दिसापि मे युञ्जन्तु बुद्धसासने।
दिसापि मे ते मनुजे भजन्तु, ये धम्ममेवादपयन्ति सन्तो॥874॥
''दिसा हि मे खन्तिवादानं, अविरोधप्पसंसिनं।
सुणन्तु धम्मं कालेन, तञ्च अनुविधीयन्तु॥875॥
''न हि जातु सो ममं हिंसे, अञ्ञं वा पन किञ्चनं।
पप्पुय्य परमं सन्तिं, रक्खेय्य तसथावरे॥876॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य पापं कृतं कर्म, कुशलेन पिधीयते।
स इमं लोकं प्रभासतेऽभ्रान्मुक्त इव चन्द्रमा॥872॥
''यो हवै दहरो भिक्षु: युज्यते बुद्धशासने।
स इमं लोक प्रभासतेऽभ्रान् मुक्त इव चन्द्रमा॥873॥
''द्विष अपि मे धर्मकथां शृण्वन्तु, द्विष अपि मे युञ्जन्तु बुद्धशासने।
द्विष अपि मां तान् मनुजान् भजन्तु, ये धर्ममवाप्नुवन्ति सन्तः॥874॥
''द्विष: हि मे क्षान्तिवादानाम्, अविरोधप्रशंसिनाम्।
शृण्वन्तु धर्मं कालेन, तञ्च अनुविधीयन्तु॥875॥
''न हि जातु सः मां हिंस्यात्, अन्यं वा पुनः किञ्चन।
प्राप्य परमं शान्तिम्, रक्षेत् त्रसस्थावरान्॥876॥

(हिन्दी)- जिसके पापकर्म पुण्यकर्मों से आवृत हो जाते हैं वे इस लोक को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जैसे मेघमुक्त चन्द्रमा आकाश को प्रकाशित करता है॥872॥

जो पुरुष युवावस्था में ही भिक्षु बन कर बुद्धशासन स्वीकार कर लेता है, वह इस संसार में अपना आध्यात्मिक ज्ञानप्रकाश उसी प्रकार फैला देता है जैसे मेघयुक्त चन्द्रमा अपना प्रकाश आकश में फैलाता है॥873॥

सभी शत्रु मेरे द्वारा प्रोक्त धर्मकथा सुनें, सभी शत्रु मेरे द्वारा स्वीकृत धर्मानुशासन से सम्पृक्त हों। शत्रु उन मनुष्यों का अनुसरण करें जो धर्मपालन हेतु लोक को प्रेरित करते रहते हैं॥874॥

सभी शत्रु मेरे धर्मयुक्त क्षान्तिवचनों को, जो मैत्रीभावनाओं के भी प्रशंसक हैं, समय समय पर सुनते रहें तथा तदनुसार आचरण करते रहें॥875॥

ऐसे धर्मानुशासन में रहने वाला प्राणी न कभी मुझे मारेगा, न किसी अन्य को। वह परम शान्ति प्राप्त कर स्थावर एवं जंगम- उभयविध जगत की रक्षा करेगा॥876॥

''उदकं हि नयन्ति नेत्तिका, उसुकारा नमयन्ति तेजनं।
दारुं नमयन्ति तच्छका, अत्तानं दमयन्ति पण्डिता॥877॥
''दण्डेनेके दमयन्ति, अङ्कुसेभि कसाहि च।
अदण्डेन असत्थेन, अहं दन्तोम्हि तादिना॥878॥
''अहिंसको'ति मे नामं, हिंसकस्स पुरे सतो।
अज्जाहं सच्चनामोम्हि, न नं हिंसामि किञ्चनं॥879॥
''चोरो अहं पुरे आसिं, अङ्गुलिमालोति विस्सुतो।
वुय्हमानो महोघेन, बुद्धं सरणमागमं॥880॥
''लोहितपाणि पुरे आसिं, अङ्गुलिमालोति विस्सुतो।
सरणगमनं पस्स, भवनेत्ति समूहता॥881॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उदकं हि नयन्ति नेतृकाः, इषुकारा नमन्ति तेजनम्।
दारुं नमन्ति तक्षकाः, आत्मानं दाम्यन्ति पण्डिताः॥877॥
''दण्डेनैके दाम्यन्ति, अङ्कुशैः कशाभिः च।
अदण्डेन अशस्त्रेण, अहं दन्तोऽस्मि तादिना॥878॥
''अहिंसक' इति मे नाम, हिंसकः पुरेऽऽसीत्।
अद्याहं सत्यनामास्मि, न एनं हिंसामि कञ्चनम्॥879॥
''चौर अहं पुरे आसम्, अङ्गुलिमाल इति विश्रुतः।
उह्यमानः महौघेन, बुद्धं शरणमागमम्॥880॥
''लोहितपाणिः पुरे आसम्, अङ्गुलिमाल इति विश्रुतः।
शरणगमनं पश्य, भवनेत्री समूलं हता॥881॥

(हिन्दी)- जैसे सभी नदी-नाले जल को नीचे की ओर बहाते रहते हैं, और धनुष के निर्माता शर को तीक्ष्ण करते हैं, या बढ़ई टेढ़ी लकड़ी को सीधा करते हैं; वैसे ही विवेकी जन स्वकीय इन्द्रियों का निग्रह करते हैं॥877॥

यहाँ कोई पुरुष किसी गौ आदि को लाठी, डण्डे से दमन करते हैं, किसी हाथी को अंकुश से किसी (अश्व आदि) को चाबुक से निग्रह करते हैं; परन्तु तथागत ने मेरा अनुशासन लाठी, डण्डे, अंकुश एवं चाबुक के विना ही कर दिखाया॥878॥

पहले मेरा नाम 'अहिंसक' था, जब कि मैं उस व्यावहारिक जीवन में दिन रात हिंसारत ही रहता था, मेरा यह नाम यथार्थ नहीं था। परन्तु आज वही नाम यथार्थ हो गया है; क्यों कि अब मैं किसी की हत्या नहीं करता॥879॥

मैं पहले 'अंगुलिमाल' नाम से प्रसिद्ध डाकू था। मैं इस भवसागर की बाढ़ से घबरा कर, अन्त में, बुद्ध की शरण में आ गया॥880॥

पहले मुझे प्रसिद्ध डाकू अंगुलिमाल के हाथ, प्राणियों की हत्या करते करते, रक्तरंजित रहते थे; परन्तु अब मेरे इस बुद्धशरणगमन का प्रभाव देखो कि मेरा भवजाल शनैः शनैः स्वयं ही कट गया॥881॥

''तादिसं कम्मं कत्वान, बहुं दुग्गतिगामिनं।
फुट्ठो कम्मविपाकेन, अनणो भुञ्जामि भोजनं॥882॥
''पमादमनुयुञ्जन्ति, बाला दुम्मेधिनो जना।
अप्पमादं च मेधावी, धनं सेट्ठंव रक्खति॥883॥
''मा पमादमनुयुञ्जेथ, मा कामरतिसन्थवं।
अप्पमत्तो हि झायन्तो, पप्पोति परमं सुखं॥884॥
''स्वागतं नापगतं, नेतं दुम्मन्तितं मम।
सविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमं॥885॥
''स्वागतं नापगतं, नेतं दुम्मन्तितं मम।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥886॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तादृशं कर्म कृत्वा, बहुं दुर्गतिगामिनीम्।
स्पृष्टः कर्मविपाकेन, अनृणः भुनज्मि भोजनम्॥882॥
''प्रमादमनुयुञ्जन्ति, बालाः दुर्मेधसो जनाः।
अप्रमादं च मेधावी, धनं श्रेष्ठमिव रक्षति॥883॥
''मा प्रमादमनुयुञ्ज्याः, मा कामरतिसंस्तवम्।
अप्रमत्तो हि ध्यायन्, प्राप्नोति परमं सुखम्॥884॥
''स्वागतं नापगतम्, नैतं दुर्मन्त्रितं मम।
सविभक्तेषु धर्मेषु, यत् श्रेष्ठं तदुपागमम्॥885॥
''स्वागतं नापगतम्, नैतं दुर्मन्त्रितं मम।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥886॥

(हिन्दी)- मैं पहले दुर्गति की ओर ले जाने वाले बहुत से कर्म करता हुआ दुष्कर्म-विपाक से घिरा हुआ नाना कष्ट भोग रहा था, अब उन से मुक्ति पा कर, अनृण हो कर भोजन कर रहा हूँ॥882॥

दुर्बुद्धि एवं मूर्खजनों का मन प्रमाद में लगा रहता है; परन्तु ज्ञानी जन अप्रमाद को ही अपना श्रेष्ठ धन मानते हुए उसकी रक्षा करते हैं॥883॥

प्रमाद में अपना मन न लगाओ। कामभोग एवं उसकी वासनाओं से भी अपना सम्पर्क न करो। अप्रमादी ही ध्यान करता हुआ परम सुख को प्राप्त करता है॥884॥

मेरा (यहाँ बुद्ध की शरण में) आना मेरे हित के लिये ही हुआ, अहित के लिये नहीं। क्योंकि यहाँ आकर मैंने सुविभक्त धर्मों के ज्ञान द्वारा जो श्रेष्ठ उपलब्धि हो सकती थी, उसे मैंने पा लिया॥885॥

मेरा यहाँ आना मेरे हित में ही हुआ। यहाँ आकर मैंने कोई भूल नहीं की; क्यों कि मैंने यहाँ आकर तीनों विद्याओं को अधिगत कर लिया और बुद्ध के धर्मानुशासन को किया॥886॥

''अरञ्ञे रुक्खमूले वा, पब्बतेसु गुहासु वा।
तत्थ तत्थेव अट्ठासिं, उब्बिग्गमनसो तदा॥887॥
''सुखं सयामि ठायामि, सुखं कप्पेमि जीवितं।
अहत्थपासो मारस्स, अहो सत्थानुकम्पितो॥888॥
''ब्रह्मजच्चो पुरे आसिं, उदिच्चो उभतो अहु।
सोज्ज पुत्तो सुगतस्स, धम्मराजस्स सत्थुनो॥889॥
''वीततण्हो अनादानो, गुत्तद्वारो सुसंवुतो।
अघमूलं वधित्वान, पत्तो मे आसवक्खयो॥890॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता''ति॥891॥ ... अङ्गुलिमालो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''अरण्ये वृक्षमूले वा, पर्वतेषु गुहासु वा।
तत्र तत्रैव अतिष्ठम्, उद्विग्नमनसः तदा॥887॥
''सुखं शये तिष्ठामि, सुखं कल्पे जीवितम्।
अहस्तपाशः मारस्य, अहो शास्तानुकम्पितः॥888॥
''ब्रह्मजात्या पुरे आसम्, आदित्य उभयतो अभूवम्।
सोऽद्य पुत्रः सुगतस्य, धर्मराजस्य शास्तुः॥889॥
''वीततृष्णा: अनादानः, गुप्तद्वारः सुसंवृतः।
अघमूलं विद्ध्वा, प्राप्तः मे आस्रवक्षयः॥890॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अपहृतो गरुको भारः, भवनेत्री समूलं हता'' इति॥891॥

(हिन्दी)- मैं पहले अरण्य में वृक्षों के नीचे, पर्वतों में, गुफाओं में जहाँ-जहाँ भी साधना हेतु गया वहाँ मेरा चित्त व्यग्र ही रहा॥887॥

अब मैं सुख से सोता हूँ, बैठता हूँ, मैंने अपना जीवन सुखमय बनाने की कल्पना की। शास्ता की विशेष कृपा का ही यह प्रभाव है कि मैं मार के हाथ नहीं चढ़ा॥888॥

मैं पहले ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ तब मैं माता एवं पिता -दोनों ही पक्षों से उच्चतम स्थिति में था। वही आज मैं धर्मराज सुगत शास्ता का पुत्र बन गया॥889॥

अब मैंने तृष्णारहित, अपरिग्रही, इन्द्रियसंयमी तथा सर्वथा समाहित होकर अपने पापमूल को नष्ट कर आश्रवक्षय प्राप्त कर लिया है॥890॥

शास्ता के धर्म का मैंने पूर्ण अभ्यास कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥891॥..अंगुलिमाल स्थविर.।

9. अनुरुद्धत्थेरगाथा-

''पहाय मातापितरो, भगिनी ञातिभातरो।
पञ्च कामगुणे हित्वा, अनुरुद्धोव झायतु॥892॥
''समेतो नच्चगीतेहि, सम्मताळप्पबोधनो।
न तेन सुद्धिमज्झगं, मारस्स विसये रतो॥893॥
''एतं च समतिक्कम्म, रतो बुद्धस्स सासने।
सब्बोघं समतिक्कम्म, अनुरुद्धोव झायति॥894॥
''रूपा सद्दा रसा गन्धा, फोट्ठब्बा च मनोरमा।
एते च समतिक्कम्म, अनुरुद्धोव झायति॥895॥
एसति पंसुकूलानि, अनुरुद्धो अनासवो॥896॥
''पिण्डपातपटिक्कन्तो, एको अदुतियो मुनि।

(संस्कृतच्छाया)-9. ''प्रहाय मातापितरौ, भगिनी-ज्ञातिभ्रातरौ।
पञ्च कामगुणानि हित्वा, अनुरुद्ध इव ध्यायतु॥892॥
''समेतः नृत्यगीतैः, सम्यक्तालप्रबोधनः।
न तेन शुद्धिमध्यगमम्, मारस्य विषये रतः॥893॥
''एतञ्च समतिक्रम्य, रतः बुद्धस्य शासने।
सर्वोघं समतिक्रम्य, अनुरुद्ध इव ध्यायति॥894॥
''रूपाणि शब्दाः रसाः गन्धाः, स्पृष्टव्याश्च मनोरमाः।
एतानि च समतिक्रम्य, अनुरुद्ध इव ध्यायति॥895॥
''पिण्डपातप्रतिक्रान्तः, एक अद्वितीयः मुनिः।
एषते पांसुकूलानि, अनुरुद्ध अनास्रवः॥896॥

(हिन्दी)- अपने माता पिता, भाई बहन एवं सम्बन्धिजनों का त्याग कर तथा गृहोपयोगी साविध कामगुणों से दूर रहते हुए मुझ अनुरुद्ध के समान ध्यानाभ्यास करते रहें॥892॥

पहले मैं नृत्यसंगीत पर आसक्त था, उसमें मैंने ताल, स्वर आदि का भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त किया; परन्तु उससे मेरे चित्त की शुद्धि में कोई सहयोग नहीं मिला, अपितु मैं उसके कारण मार के क्षेत्र में ही आगे बढ़ने लगा॥893॥

मैं इस (संगीत) को छोड़कर बुद्धप्रोक्त धर्म का ही अभ्यास करने लगा। अब सभी प्रकार के सांसारिक प्रवाह से मुक्त होकर ध्यानाभ्यासरत हूँ॥894॥

रूप, शब्द, रस, गन्ध एवं स्प्रटव्य -इन इन्द्रियविषयों का त्यागकर अनुरुद्ध ज्ञानाभ्यास में ही रत है॥895॥

पिण्डपात का ही उपभोग करते हुए मुनि के रूप में एकाकी एवं अद्वितीय रह कर, वस्त्र के नाम पर केवल पंसुकूलों की इच्छा करता हुआ अनुरुद्ध अपने सभी चित्तविकारों का शमन कर अब ध्यानाभ्यासरत है॥896॥

''विचिनी अग्गही धोवि, रजयी धारयी मुनि।
पंसुकूलानि मतिमा, अनुरुद्धो अनासवो॥897॥
''महिच्छो च असन्तुट्ठो, संसट्ठो यो च उद्धतो।
तस्स धम्मा इमे होन्ति, पापका संकिलेसिका॥898॥
''सतो च होति अप्पिच्छो, सन्तुट्ठो अविघातवा।
पविवेकरतो वित्तो, निच्चमारद्धवीरियो॥899॥
''तस्स धम्मा इमे होन्ति, कुसला बोधिपक्खिका।
अनासवो च सो होति, इति वुत्तं महेसिना॥900॥
''मम सङ्कप्पमञ्ञाय, सत्था लोके अनुत्तरो।
मनोमयेन कायेन, इद्धिया उपसङ्कमि॥901॥
''यदा मे अहु सङ्कप्पो, ततो उत्तरि देसयि।
निप्पपञ्चरतो बुद्धो, निप्पपञ्चमदेसयि॥902॥

(संस्कृतच्छाया)- ''विचित्य ग्रहीत्वा धावित्वा, रञ्जित्वा दधाति मुनिः।
पांसुकूलानि मतिमान्, अनुरुद्ध अनास्रवः॥897॥
''महेच्छितः च असन्तुष्ट, संसृष्टः यश्च उद्धतः।
तस्य धर्माः इमे भवन्ति, पापकाः संक्लेशकाः॥898॥
''स्मृतश्च भवति अल्पेछः, सन्तुष्ट अविघातवान्।
प्रविवेकरतः वित्तः, नित्यमारब्धवीर्यः॥899॥
''तस्य धर्माः इमे भवन्ति, कुशलाः बोधिपाक्षिकाः।
अनास्रवश्च सः भवति, इति उक्तं महर्षिणा॥900॥
''मम सङ्कल्पम् आज्ञाय, शास्ता लोके अनुत्तरः।
मनोमयेन कायेन, ऋद्ध्या उपसङ्क्रमीत्॥901॥
''यदा मे अभूत् सङ्कल्पः, ततः उपरि अदिशत्।
निष्प्रपञ्चरतः बुद्धः, निष्प्रपञ्चमदिशत्॥902॥

(हिन्दी)- वह बुद्धिमान् मुनि अनुरुद्ध गृहस्थों द्वारा परित्यक्त, गलियों में पडे हुए वस्त्रों को एकत्र कर, धोकर, रंगकर पंसुकूल के रूप में उनका प्रयोग करता है॥897॥
वह महेच्छता, असन्तुष्टि, जनसम्पर्क, एवं औद्धत्य -इन धर्मों को क्लेशकारक एवं पापमय मानता है॥898॥
उस को अल्पेच्छ, सन्तुष्ट तथा दूसरों से द्वेष न करने वाला, एकान्त में रह कर ध्यानाभ्यासी तथा साधना में नित्य प्रयत्नवान् होना चाहिये॥899॥
उसके लिये बोधिपक्षीय कुशल धर्म ही अभ्यसनीय हैं, उसे चित्तविकारहीन रहना चाहिये''- ऐसा महर्षि ने कहा है॥900॥
मेरे इस संकल्प को जान कर लोक में वे अद्वितीय शास्ता अपने मनोमय शरीर से ऋद्धिबल द्वारा मेरे सम्मुख पधारे॥901॥
उन निष्प्रपंच मुनि ने, जैसा मुझ को संकल्प हुआ था उस से आगे, जगत्प्रपंच के त्याग का उपदेश किया॥902॥

''तस्साहं धम्ममञ्ञाय, विहासिं सासने रतो।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥903॥
''पञ्चपञ्चासवस्सानि , यतो नेसज्जिको अहं।
पञ्चवीसतिवस्सानि, यतो मिद्धं समूहतं॥904॥
''नाहु अस्सासपस्सासा, ठितचित्तस्स तादिनो।
अनेजो सन्तिमारब्भ, चक्खुमा परिनिब्बुतो॥905॥
''असल्लीनेन चित्तेन, वेदनं अज्झवासयि।
पज्जोतस्सेव निब्बानं, विमोक्खो चेतसो अहु॥906॥
''एते पच्छिमका दानि, मुनिनो फस्सपञ्चमा।
नाञ्ञे धम्मा भविस्सन्ति, सम्बुद्धे परिनिब्बुते॥907॥
''नत्थि दानि पुनावासो, देवकायस्मि जालिनि।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥908॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तस्याहं धर्मम् आज्ञाय, व्यहार्षम् शासने रतः।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥903॥
''पञ्चपञ्चाशतवर्षाणि, यतः नैषद्यकोऽहम्।
पञ्चविंशतिवर्षाणि, यतः मिद्धं समूहतम्॥904॥
''नाभूत् आश्वासः प्रश्वासः, स्थितचित्तस्य *तादिनः*।
अनेजः शान्तिमारभ्य, चक्षुष्मान् परिनिर्वृतः॥905॥
''असंलीनेन चित्तेन, वेदनाम् अध्यवात्सम्।
प्रद्योतस्येव निर्वाणम्, विमोक्षः चेतस अभूत्॥906॥
''एते पश्चिमका इदानीम्, मुनिनः स्पर्शपञ्चमाः।
नान्ये धर्माः भविष्यन्ति, सम्बुद्धे परिनिर्वृते॥907॥
''नास्ति इदानीं पुर्नवासः, देवकाये जालिनि!।
विक्षीणः जातिसंसारः, नास्ति इदनीं पुनर्भवः॥908॥

(हिन्दी)- उनके उपदेश पर आचरण करते हुए, ध्यानाभ्यास साधना द्वारा मैंने तीनों विद्याएँ अधिगत कर लीं॥903॥

पचपन वर्ष तक मैंने एकान्ततः बैठकर साधना की और पचीस वर्ष का समय मैंने अपने आलस्य के सर्वथा नाश में लगाया॥904॥

स्थिर चित्त वाले मुझ ज्ञानी को आश्वास प्रश्वास सम्बन्धी कोई व्यति क्रम नहीं हुआ। और मैं स्थिर भाव से शान्ति प्राप्ति हेतु निरत रहते हुए ज्ञानी के समान परिनिर्वाण तक पहुँचा॥905॥

असम्पृक्त चित्त से ही मैंने यथासमय सब वेदनाओं का अनुभव किया। उसके फलस्वरूप मेरे सम्मुख निर्वाण एक प्रकाश के समान आ गया और मेरा चित्त सभी विकारों से मुक्त हो गया॥906॥

ये मुनि द्वारा प्रोक्त पाँचों इन्द्रियों के विषयों में स्पर्शजन्य विकार या ऐसे ही अन्य कोई धर्म, सम्बुद्ध के परिनिर्वृत होने पर भी, अब आगे मुझ में कभी उत्पन्न नहीं होंगे॥907॥

हे जालिनि! अब मेरा देवकाय में भी कभी पुनर्वास न होगा; क्योंकि मेरा पुनर्जन्मसम्बद्ध संसार क्षीण हो चुका है। अतः अब तेरा पुनर्जन्म सम्भव नहीं है॥908॥

''यस्स मुहुत्तेन सहस्सधा, लोको संविदितो सब्रह्मकप्पो।
वसी इद्धिगुणे चुतूपपाते, काले पस्सति देवता स भिक्खु॥909॥
''अन्नभारो पुरे आसिं, दलिद्दो घासहारको।
समणं पटिपादेसिं, उपरिट्ठं यसस्सिनं॥910॥
''सोम्हि सक्यकुले जातो, अनुरुद्धोति मं विदू।
उपेतो नच्चगीतेहि, सम्मताळप्पबोधनो॥911॥
''अथद्दसासिं सम्बुद्धं, सत्थारं अकुतोभयं।
तस्मिं चित्तं पसादेत्वा, पब्बजिं अनगारियं॥912॥
''पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे।
तावतिंसेसु देवेसु, अट्ठासिं सक्कजातिया॥913॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य मुहूर्तेन सहस्रधा, लोकः संविदितः सब्रह्मकल्पः।
वशी ऋद्धिगुणे च्युत्युपपादे, काले पश्यति देवतां सः भिक्षुः॥909॥
''अन्नभारः पुरे आसम्, दरिद्रः ग्रासहारकः।
श्रमणं प्रत्यपादिषम्, उपरिष्ठं यशस्विनम्॥910॥
''सोऽस्मि शाक्यकुले जातः, अनुरुद्ध इति मां विदुः।
उपेतः नृत्यगीतैः, सम्यक्तालप्रबोधनः॥911॥
''अथाद्राक्षं सम्बुद्धम्, शास्तारम् अकुतो भयम्।
तस्मिन् चित्तं प्रसाद्य, प्राव्राजिषम् अनगार्यम्॥912॥
''पूर्वनिवासं जानामि, यत्र में उषितं पुरे।
त्रायस्त्रिंशेषु देवेषु, अस्थाम् शाक्यजात्याम्॥913॥

(हिन्दी)- जिसने एक मुहूर्त में ब्रह्माण्डकल्प सहित हजारों लाखों को जानने का सामर्थ्य प्राप्त कर रखा है, समस्त चमत्कार एवं जन्म-मरण को हस्तगत कर लिया है, ऐसा भिक्षु समय समय पर देवताओं से साक्षात्कार भी करता है॥909॥

मैं पहले कभी घास ढोने वाले किसी दरिद्र के घर में उत्पन्न हुआ, उस समय मुझ को खाने मात्र का अन्न मिलना भी दुष्कर था। परन्तु उस समय भी मैं श्रामण्य के बाह्य नियमों का पालन करता था॥910॥

उस पुण्य के प्रभाव से मैं शाक्य कुल में उत्पन्न हुआ। मुझको अनुरुद्ध नाम से सम्बोधन करते थे। वहाँ मैं आरम्भ में नृत्य एवं गान विद्या में पूर्णतः लिप्त रहा॥911॥

बाद में, मैंने कभी सर्वत्र निर्भीक अपने शास्ता के दर्शन किये। दर्शन के साथ ही उनमें मेरी श्रद्धा हो गयी और मैंने गृह त्याग कर उन से प्रव्रज्या दीक्षा ले ली॥912॥

मैं अपने उन सभी जन्मों के विषय में जानता हूँ जहाँ मैंने आज से पूर्व जन्म लिया था। त्रायस्त्रिंश देवताओं में भी मैंने शक्र के रूप में जन्म लिया था॥913॥

''सत्तक्खत्तुं मनुस्सिन्दो, अहं रज्जमकारयिं।
चातुरन्तो विजितावी, जम्बुसण्डस्स इस्सरो।
अदण्डेन असत्थेन, धम्मेन अनुसासयिं॥914॥
''इतो सत्त ततो सत्त, संसारानि चतुद्दस।
निवासमभिजानिस्सं, देवलोके ठिता तदा॥915॥
''पञ्चङ्गिके समाधिम्हि, सन्ते एकोदिभाविते।
पटिप्पस्सद्धिलद्धम्हि, दिब्बचक्खु विसुज्झि मे॥916॥
''चुतूपपातं जानामि, सत्तानं आगतिं गतिं।
इत्थभावञ्ञथाभावं, झाने पञ्चङ्गिके ठितो॥917॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता''ति॥918॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सप्तकृत्वः मनुष्येन्द्रः, अहं राज्यमकार्षम्।
चातुरन्तः विजितावी, जम्बुखण्डस्य ईश्वरः।
अदण्डेन अशस्त्रेन, धर्मेण अन्वाशिषम्॥914॥
''इतः सप्त ततः सप्तः, संसराणि चतुर्दश।
निवासमभिजानिष्यम्, देवलोके स्थिताः तदा॥915॥
''पञ्चाङ्गिके समाधौ, शान्ते एकोदिभाविते।
प्रतिप्रश्रद्धिलब्धे, दिव्यचक्षु व्यसृज्यत्॥916॥
''च्युत्युपपादं जानामि, सत्त्वानाम् आगतिं गतिम्।
इत्थंभावान्यथाभावम्, ध्याने पञ्चाङ्गिके स्थितः॥917॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अपहृतः गरुको भारः, भवनेत्री समूलं हता''इति॥918॥

(हिन्दी)- सात बार, मैंने मनुष्य लोक में चक्रवर्ती राजा बन कर राज्य किया और चारों दिशाओं तक समस्त प्रदेश जीत कर जम्बूद्वीप पर राज्य किया। वहाँ किसी दण्ड या शस्त्र का सहारा लिये विना ही धर्मपूर्वक शासन चलाया॥914॥

इधर से सात और उधर से सात - इस प्रकार चौदह बार संसार में अपने आगमन को मैं जानता हूँ। जब मेरी देवलोक में स्थिति हुई थी॥915॥

(ऐकान्तिक शान्त पञ्चांगिक) वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं उपेक्षापूर्वक समाधि से शान्ति प्राप्त कर मैंने विशुद्ध दिव्य चक्षु अधिगत किया॥916॥

मुझको प्राणियों का जन्म-मरण, इस योनि से उस योनि में गमन आगमन, या इस रूप में आना या उस रूप में जाना - आदि का ज्ञान इस पञ्चांगिक ध्यान की साधना से ही प्राप्त हुआ॥917॥

शास्ता के धर्म का मैंने पूर्ण अभ्यास कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥918॥

''वज्जीनं वेळुवगामे, अहं जीवितसङ्खया।
हेट्ठतो वेळुगुम्बस्मिं, निब्बायिस्सं अनासवो''ति॥919॥ ... अनुरुद्धो थेरो...।

10. पारापरियत्थेरगाथा-

समणस्स अहु चिन्ता, पुप्फितम्हि महावने।
एकग्गस्स निसिन्नस्स, पविवित्तस्स झायिनो॥920॥
''अञ्ञथा लोकनाथम्हि, तिट्ठन्ते पुरिसुत्तमे।
इरियं आसि भिक्खूनं, अञ्ञथा दानि दिस्सति॥921॥
''सीतवातपरित्तानं, हिरिकोपीनछादनं।
मत्तट्ठियं अभुञ्जिंसु, सन्तुट्ठा इतरीतरे॥922॥
''पणीतं यदि वा लूखं, अप्पं वा यदि वा बहुं।
यापनत्थं अभुञ्जिंसु, अगिद्धा नाधिमुच्छिता॥923॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वज्जीनां वेलुग्रामे, अहं जीवितसङ्क्षयात्।
अधस्तात् वेणुगुम्बे, न्यवास्थम् अनास्रवः"इति॥919॥

10. ''श्रमणस्य अभूत् चिन्ता, पुष्पिते महावने।
एकाग्रस्य निषण्णस्य, प्रविविक्तस्य ध्यायिनः॥920॥
''अन्यथा लोकनाथे, तिष्ठन्ति पुरुषोत्तमे।
ईर्याम् आसं भिक्षूनाम्, अन्यथा इदानीं दृश्यते॥921॥
''शीतवातपरित्राणाम्, ह्रीकौपीनछादनम्।
मात्रस्थितम् अभौक्षुः, सन्तुष्टाः इतरेतरे॥922॥
''प्रणीतं यदि वा रुक्षम्, अल्पं वा यदि वा बहुम्।
यापनार्थम् अभौक्षुः, अगृद्धाः नाधिमूर्छिताः॥923॥

(हिन्दी)- मेरे आयुःसंस्कार समाप्त होने पर, वज्जिप्रदेश के बेळुवग्राम में वेणुनिकुंज के बीच मुझ शुद्धचित्त का परिनिर्वाण होगा॥919॥...अनुरुद्ध स्थविर ने..पूर्ववत्...॥

पल्लवित पुष्पित महावन में एकान्त में बैठ कर एकाग्र चित्त से ध्यान करते हुए श्रमण को विचार हुआ-॥920॥

लोकनाथ एवं पुरुषश्रेष्ठ भगवान् के विद्यमान रहते हुए संघ की चेष्टाएँ अन्य प्रकार की (शुभ) थीं और आज वे चेष्टाएँ अन्य प्रकार की (अशुभ) दिखायी दे रही हैं॥921॥

उस समय ये भिक्षु शीत, वात आदि सहते हुए, लज्जा रूप कौपीन धारण किये हुए भोजन की मात्रा का ध्यान रखते हुए तथा जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहते हुए अपनी साधना में ही रत रहते थे॥922॥

घृत से सिक्त या रूखा सूखा जो कुछ भी अल्प या बहुत भोजन मिलता था, उसमें आसक्त या मुग्ध न होते हुए ही, उसे कर लेते थे॥923॥

''जीवितानं परिक्खारे, भेसज्जे अथ पच्चये।
न बाळ्हं उस्सुका आसुं, यथा ते आसवक्खये॥924॥
''अरञ्ञे रुक्खमूलेसु, कन्दरासु गुहासु च।
विवेकमनुब्रूहन्ता, विहंसु तप्परायना॥925॥
''नीचा निविट्ठा सुभरा, मुदू अत्थद्धमानसा।
अब्यासेका अमुखरा, अत्थचिन्ता वसानुगा॥926॥
''ततो पासादिकं आसि, गतं भुत्तं निसेवितं।
सिनिद्धा तेलधाराव, अहोसि इरियापथो॥927॥
''सब्बासवपरिक्खीणा, महाझायी महाहिता।
निब्बुता दानि ते थेरा, परित्ता दानि तादिसा॥928॥
''कुसलानं च धम्मानं, पञ्ञाय च परिक्खया।
सब्बाकारवरूपेतं, लुज्जते जिनसासनं॥929॥

(संस्कृतच्छाया)- ''जीवितानां परिष्कारे, भैषज्ये यथा प्रत्यये।
न बाढम् उत्सुका आसन्, यथा ते आश्रवक्षये॥924॥
''अरण्ये वृक्षमूलेषु, कन्दाराषु गुहासु च।
विवेकमनुब्रूहन्तः, व्यहार्षुः तपपरायणाः॥925॥
''नीचाः निविष्टाः शुभराः, मृदु अस्तब्धमानसाः।
अव्यासक्ता अमुखराः, अर्थचिन्ताः वशानुगाः॥926॥
''ततः प्रासादिकम् आसीत्, गतं भुङ्क्तं निसेवितम्।
स्निग्धा तैलधारैव, अभूत् ईर्यापथः॥927॥
''सर्वास्रवपरिक्षीणाः, महाध्यायी महाहिताः।
निर्वृता इदानीं ते स्थविराः, प्ररिक्ता इदानीं तादृशाः॥928॥
''कुशलानाञ्च धर्माणाम्, प्रज्ञयाश्च परिक्षयात्।
सर्वाकारवरूपेतम्, लुप्यते जिनशासनम्॥929॥

(हिन्दी)- जब वे आश्रवक्षय की स्थिति में पहुँच जाते थे तब वे अपनी जीवनोपयोगी वस्तुओं के विषय में, भैषज्य या पथ्य के विषय में, व्यग्र नहीं होते थे॥924॥

वे किसी अरण्य में, वृक्षों के नीचे, गुफाओं या कन्दराओं में बैठ कर एकान्त साधना करते हुए तत्परता के साथ साधना करते थे॥925॥

उनका अपना समस्त लोकव्यवहार निम्न स्तर का साधारण और स्थिर होता था, और वे सरलता से भरण-पोषण किये जाने योग्य, मृदु स्वभाव वाले दृढ़निश्चयी, अनासक्त, मौनी, सदा धर्म का चिन्तन करने वाले तथा इन्द्रियसंयमी होते थे॥926॥

इस कारण, उनका चलना, खाना, किसी के साथ व्यवहार या उनकी अन्य शारीरिक चेष्टाएँ आदि सभी कुछ इतना स्निग्ध होता था मानो तेल की चिकनी धारा हो॥927॥

इस प्रकार आज अपने सभी चित्तविकारों का क्षय कर, ध्यानरत रहते हुए विपुल हित के सम्पादक ऐसे स्थविर या तो परिनिर्वृत हो गये या फिर अब बहुत कम रह गये हैं॥928॥

इस समय, कुशल धर्मों का एवं प्रज्ञा का परिक्षय हो जाने से यह जिन-शासन सभी प्रकार से क्षीण होता जा रहा है॥929॥

''पापकानं च धम्मानं, किलेसानञ्च यो उतु।
उपट्ठिता विवेकाय, ये च सद्धम्मसेसका॥930॥
''ते किलेसा पवड्ढन्ता, आविसन्ति बहुं जनं।
कीळन्ति मञ्ञे बालेहि, उम्मत्तेहिव रक्खसा॥931॥
''किलेसेहाभिभूता ते, तेन तेन विधाविता।
नरा किलेसवत्थूसु, ससङ्गामेव घोसिते॥932॥
''परिच्चजित्वा सद्धम्मं, अञ्ञमञ्ञेहि भण्डरे।
दिट्ठिगतानि अन्वेन्ता, इदं सेय्योति मञ्ञरे॥933॥
''धनञ्च पुत्तं भरियञ्च, छड्डयित्वान निग्गता।
कटच्छुभिक्खहेतूपि, अकिच्छानि निसेवरे॥934॥
''उदरावदेहकं भुत्वा, सयन्तुत्तानसेय्यका।
कथं वत्तेन्ति पटिबुद्धा, या कथा सत्थुगरहिता॥935॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पापकानाञ्च धर्माणाम्, क्लेशानाञ्च य ऋतुः।
उपस्थिताः विवेकाय, ये च सद्धर्माशेषकाः॥930॥
''ते क्लेशा: प्रवर्धन्ते, आविशन्ति बहुं जनम्।
क्रीडन्ति मन्ये बालैः, उन्मत्तै इव राक्षसाः॥931॥
''क्लेशैः हि अभिभूताः ते, तत्र तत्र विधाविताः।
नराः क्लेशवस्तुषु, ससङ्ग्रामे इव घोषित:॥932॥
''परित्यज्य सद्धर्मम्, अन्यमन्यैः भण्डयन्ते।
दृष्टिगतानि अनुदाताः, 'इदं श्रेय' इति मन्यन्ते॥933॥
''धनञ्च पुत्रं भार्याञ्च, त्यक्त्वा निर्गता:।
दर्वीभक्तहेतु अपि, अकृच्छ्रानि निसेवन्ते॥934॥
''उदरावदेहकं भुङ्क्त्वा, शेरते उत्तानशैय्यिकाः।
कथं वर्तयन्ति प्रतिबुद्धाः, या कथा शास्तुगर्हिताः॥935॥

(हिन्दी)- अब तो पापमय एवं क्लेशकारक धर्मों का समय आ गया है। जो कुछ सद्धर्म के थोड़े बहुत अवशेष रह गये हैं वे भी एकान्त में जाने को सन्नद्ध हैं॥930॥

वे पापमय धर्म बढ़ते हुए मनुष्यों के हृदय में अपना घर बनाते जा रहे हैं और वे उन उन्मत्त एवं मूर्ख पुरुषों के साथ वही व्यवहार करते हैं जो अपने द्वारा आविष्ट पुरुष के साथ प्रेत किया करते हैं॥931॥

वे पुरुष भी उन क्लेशों से अभिभूत हो कर इधर उधर दौड़ते हुए ऐसा व्यवहार कर रहे हैं मानो किसी घोषित युद्ध में उतरे हों॥932॥

वे सद्धर्म का त्याग कर परस्पर कलह करते हैं तथा मिथ्यादृष्टियों के अनुगामी बन कर उनके उपदिष्ट धर्म को 'यही श्रेयस्कर है' - ऐसा मान बैठते हैं॥933॥

ये लोग कभी अपने प्रिय पुत्र एवं स्त्री को घर में ही छोड़ते हुए प्रव्रजित हुए थे। आज ये एक कडछुल भात के लिये बड़े से बड़ा कुकृत्य करने को सन्नद्ध हैं॥934॥

ये भर पेट खा कर पैर पसार कर सोते हुए, जागने के बाद ऐसी कथाओं के श्रवण हेतु उत्सुक रहते हैं जिन की शास्ता ने निन्दा की है॥935॥

''सब्बकारुकसिप्पानि , चित्तिं कत्वान सिक्खरे।
अवूपसन्ता अज्झत्तं, सामञ्ञत्थोति अच्छति ॥936॥
''मत्तिकं तेलचुण्णञ्च, उदकासनभोजनं।
गिहीनं उपनामेन्ति, आकङ्खन्ता बहुत्तरं॥937॥
''दन्तपोनं कपित्थञ्च, पुप्फं खादनियानि च।
पिण्डपाते च सम्पन्ने, अम्बे आमलकानि च॥938॥
''भेसज्जेसु यथा वेज्जा, किच्चाकिच्चे यथा गिही।
गणिकाव विभूसायं, इस्सरे खत्तिया यथा॥939॥
''नेकतिका वञ्चनिका, कूटसक्खी अपाटुका।
बहूहि परिकप्पेहि, आमिसं परिभुञ्जरे॥940॥
''लेसकप्पे परियाये, परिकप्पेनुधाविता।
जीविकत्था उपायेन, सङ्कड्ढन्ति बहुं धनं॥941॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सर्वकारुकशिल्पानि, चित्तिं कृत्वा शिक्षन्ते।
अव्युपशान्ताः अध्यात्मम्, श्रामण्यार्थमिति निसीदति(आस्ते)॥936॥
''मृदां तैलचूर्णञ्च, उदकासनभोजनम्।
गृहणीनाम् उपनयन्ति, आकांक्षन्तः बहुतरम्॥937॥
''दन्तपवनं कपित्थञ्च, पुष्पं खाद्यानि च।
पिण्डपाते च सम्पन्ने, आम्रे, आमलकानि च॥938॥
''भैषज्येषु यथा वैद्याः, कृत्याकृत्ये यथा गृही।
गणिकेव विभूषायाम्, ऐश्वर्ये क्षत्रियो यथा॥939॥
''नैकृतिकाः वञ्चनिकाः, कूटसाक्षी अपटुकाः।
बहुभिः परिकल्पैः, आमिषं परिभुङ्क्ते॥940॥
''लेशकल्पे पर्याये, परिकल्पेऽनुधाविताः।
जीविकार्थं उपायेन, सङ्गृह्णन्ति बहुं धनम्॥941॥

(हिन्दी)- ये सभी प्रकार के लौकिक शिल्प सीखने में ही अपना मन लगाये रहते हैं और अशान्त रहते हुए अपने प्रधान लक्ष्य श्रामण्य की प्राप्ति को भूल बैठे हैं॥936॥

ये गृहस्थों को मृत्तिका, तेल एवं गन्धचूर्ण आदि कुछ वस्तुएँ इस लोभ में ला कर देते हैं कि दुगुनी, चौगुनी वस्तुएँ इन से मिलेगीं॥937॥

जैसे-दतुअन, कैथ, पुष्प या विशेष खाद्य पदार्थ, और भोजन कर चुकने के बाद आम्र एवं आमलक आदि फल॥938॥

जैसे कोई वैद्य विविध औषधियों के संग्रह या कोई गृहस्थ किसी भी कुशल या अकुशल कर्म करने में संकोच नहीं करता या कोई वेश्या विविध आभूषणों का लालच करती है या क्षत्रिय लोग अपने लिये अधिक से अधिक ऐश्वर्य प्राप्ति हेतु प्रयास करते हैं॥939॥

ये लोग कृतघ्नता, ठगी, असत्य साक्ष्य, छिपकर कार्य करना, अथवा ऐसे ही बहुत से अन्य धूर्ततापूर्ण कार्य करते हुए विविध लौकिक कामभोगों का उपभोग करते हैं॥940॥

ये लोग गृहस्थों की चाटुकारिता करते हुए अपनी आजीविका हेतु विपुल धन एकत्र करते हैं॥941॥

''उपट्ठापेन्ति परिसं, कम्मतो नो च धम्मतो।
धम्मं परेसं देसेन्ति, लाभतो नो च अत्थतो॥942॥
''सङ्घलाभस्स भण्डन्ति, सङ्घतो परिबाहिरा।
परलाभोपजीवन्ता, अहिरीका न लज्जरे॥943॥
''नानुयुत्ता तथा एके, मुण्डा सङ्घाटिपारुता।
सम्भावनंयेविच्छन्ति, लाभसक्कारमुच्छिता॥944॥
''एवं नानप्पयातम्हि, न दानि सुकरं तथा।
अफुसितं वा फुसितुं, फुसितं वानुरक्खितुं॥945॥
''यथा कण्टकट्ठानम्हि, चरेय्य अनुपाहनो।
सतिं उपट्ठपेत्वान, एवं गामे मुनी चरे॥946॥
''सरित्वा पुब्बके योगी, तेसं वत्तमनुस्सरं।
किञ्चापि पच्छिमो कालो, फुसेय्य अमतं पदं॥947॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपस्थापयन्ति परिषद्, कर्मतः न च धर्मतः।
धर्मं परेषाम् उपदिशन्ति, लाभतः न च अर्थतः॥942॥
''संघलाभस्य भण्डयन्ते, सङ्घतः परिबाह्याः।
परलाभोपजीविताः, अह्रीकाः न लज्जन्ते॥943॥
''नानुयुक्ताः तथा एके, मुण्डाः सङ्घाटिप्रावृताः।
सम्भावनं ये वाञ्छन्ति, लाभसत्कारमूर्छिताः॥944॥
''एवं नानाप्रयाते, न इदानीं सुकरं तथा।
अस्पृश्यं वा स्पृश्यम्, स्पृश्यं वा अनुरक्षितुम्॥945॥
''यथा कण्टकस्थाने, चरेत् अनुपानहः।
स्मृतिम् उपस्थाप्य, एवं ग्रामे मुनिः चरेत्॥946॥
''स्मृत्वा पूर्वके योगी, तेषां वर्त्मन्वसरत्।
किञ्चापि पश्चिमः कालः, स्पृशेयेत् अमृतं पदम्॥947॥

(हिन्दी)- ये धर्मपरिषद् में बैठ कर कर्म से निर्णय करते हैं, धर्म से नहीं। ये लोग धर्मोपदेश भी लाभ देख कर करते हैं, अर्थ देख कर नहीं॥942॥

जहाँ संघ का लाभ हो वहाँ ये कलह करते हैं, तथा संघबाह्य कर्म रहते हैं। ये निर्लज्जतापूर्वक दूसरे के लाभ पर जीवित रहते हैं, तथा इस कृत्य से लज्जित भी नहीं होते॥943॥

ये प्रव्रज्या ग्रहण कर संघाटि पहन कर भी एक साथ मिल कर नहीं रहते। केवल अपने लिये लाभ सत्कार चाहते हैं तथा उस को प्राप्त कर उसी में मुग्ध रहते हैं॥944॥

इस प्रकार विविध मार्गावलम्बियों का कोई भी कार्य सरलता से पूर्ण नहीं होता। प्रथमतः ये कोई कार्य आरम्भ ही नहीं कर पाते और यदि कदाचित् आरम्भ कर भी लें तो ये उसको पूर्ण नहीं कर पाते॥945॥

जैसे कोई जूता न पहने हुए कण्टक स्थान पर चलता हुआ कष्ट ही पाता है। अतः साधक को स्मृति के आधार पर ग्राम में चारिका करनी चाहिये॥946॥

इस स्मृति के बल पर ही योगियों ने पूर्वकाल में सद्धर्म का अनुसरण किया था। क्या भविष्य में होने वाले योगी भी ऐसा ही करते हुए निर्वाण तक पहुँच पायँगे॥947॥

''इदं वत्वा सालवने, समणो भावितिन्द्रियो।
ब्राह्मणो परिनिब्बायी, इसि खीणपुनब्भवो''ति॥948॥ ... पारापरियो थेरो...।

वीसतिनिपातो निट्ठितो।

तस्सुद्दानं – अधिमुत्तो पारापरियो, तेलकानि रट्ठपालो।
मालुक्यसेलो भद्दियो, अङ्गुलि दिब्बचक्खुको॥
पारापरियो दसेते, वीसम्हि परिकित्तिता।
गाथायो द्वे सता होन्ति, पञ्चतालीस उत्तरिं"ति॥

17. तिंसनिपातो

1. फुस्सत्थेरगाथा-

''पासादिके बहू दिस्वा, भावितत्ते सुसंवुते।
इसि पण्डरसगोत्तो, अपुच्छि फुस्ससव्हयं॥949॥
''किंछन्दा किमधिप्पाया, किमाकप्पा भविस्सरे।
अनागतम्हि कालम्हि, तं मे अक्खाहि पुच्छितो''॥950॥

(संस्कृतच्छाया)- ''इदम् उक्त्वा शालवने, श्रमणः भावितेन्द्रियः।
ब्राह्मणः परिन्यवर्तिष्ट, ऋषिः क्षीणपुर्नभवः"इति॥948॥

तत्रोद्दानम्- *अधिमुत्तो पारापरियो, तेलकानि रट्ठपालो* ।
मालुक्यसेलो भद्दियो, अङ्गुलिः दिब्बचक्खुको॥
पारापरियो दशैते, विंशे परिकीर्तिताः।
गाथाः द्वे शताः भवन्ति, पञ्चचत्वारिंशति उक्तमिति॥●

1. ''प्रासादिके बहून् दृष्ट्वा, भावितात्मान् सुसंवृतान्।
ऋषिः पण्डरसगोत्रः, अपृच्छत् फुस्स सह्वयम्॥949॥
''किञ्छन्दाः किमभिप्रायाः, किमाकल्पाः भविष्यन्ति।
अनागते काले, त्वं मामख्याहि पृच्छतः॥950॥

(हिन्दी)- ऐसे कह कर वे पूर्ण साधक श्रमण, साधना द्वारा अपनी जीवनयात्रा पूर्ण कर परिनिवृत हो गये॥948॥
...पारापरीय स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस निपात में वर्णित स्थविरों एवं गाथाओं की सूची- अधिमुक्त, पारापरीय, तेलकानि, राष्ट्रपाल, मालुक्यपुत्र, शैल, भद्दिय, अंगुलिमाल, अनुरुद्ध, पारापरीय -ये दश स्थविर इस विंशतिक निपात में वर्णित हैं॥ तथा इस निपात में 245 (दो सौ पैंतालीस) गाथाएँ वर्णित हैं॥ ●

पण्डर नामक ऋषि ने बहुत से भावितात्मा, इन्द्रियसंयमी एवं प्रसन्नमुखाकृति वाले भिक्षुओं को देखकर पुष्य स्थविर से पूछा-॥949॥

भन्ते! भविष्य काल में भिक्षु किस अनुराग वाले, किस अभिप्राय वाले तथा किस ईयापथ वाले होंगे? - आप मेरी इस जिज्ञासा को शान्त करें॥950॥

''सुणोहि वचनं मय्हं, इसिपण्डरसव्हय।
सक्कच्चं उपधारेहि, आचिक्खिस्साम्यनागतं॥951॥
''कोधना उपनाही च, मक्खी थम्भी सठा बहू।
उस्सुकी नानावादा च, भविस्सन्ति अनागते॥952॥
''अञ्ञातमानिनो धम्मे, गम्भीरे तीरगोचरा।
लहुका अगरु धम्मे, अञ्ञमञ्ञमगारवा॥953॥
''बहू आदीनवा लोके, उप्पज्जिस्सन्त्यनागते।
सुदेसितं इमं धम्मं, किलेसेस्सन्ति दुम्मती॥954॥
''गुणहीनापि सङ्घम्हि, वोहरन्ता विसारदा।
बलवन्तो भविस्सन्ति, मुखरा अस्सुताविनो॥955॥
''गुणवन्तोपि सङ्घम्हि, वोहरन्ता यथात्थतो।
दुब्बला ते भविस्सन्ति, हिरीमना अनत्थिका॥956॥

(संस्कृतच्छाया)- ''शृणु वचनं मम, ऋषिपण्डरसह्वयं।
सत्कृत्यम् उपधारय, आख्याष्याम्यनागतम्॥951॥
''क्रोधिन उपनाहीश्च, म्राक्षीः स्तम्भीः शठाः बहव:।
उत्सुकीः नानावादाश्च, भविष्यन्ति अनागते॥952॥
''अज्ञातमानिनः धर्मे, गम्भीरे तीरगोचराः।
लघुका अगरु धर्मे, अन्यमन्यमगौरवान्॥953॥
''बहु आदीनवाः लोके, उत्पत्स्यन्ते अनागते।
सुदेशित इमं धर्मम्, क्लेशिष्यन्ते दुर्मतयः॥954॥
''गुणहीना अपि सङ्घे, व्यवहरन्तः विशारदाः।
बलवन्तः भविष्यन्ति, मुखरा अश्रुताविनः॥955॥
''गुणवन्तोऽपि सङ्घे, व्यवहरन्तः यथार्थतः।
दुर्बला: ते भविष्यन्ति, ह्रीमाना अनर्थकाः॥956॥

(हिन्दी)- हे पण्डर ऋषि! सुनो, मैं तुम को उन अनागतकालीन भिक्षुओं के आचरण के विषय में बता रहा हूँ॥951॥

आगामी काल में भिक्षु प्रायः क्रोधी, परस्पर वैर रखने वाले, दूसरे की अच्छाइयों को तुच्छ समझने वाले (म्रक्षी), किंकर्तव्यविमूढ (स्तम्भी), शठ, उत्सुकी और अनेक विचारों वाले होंगे॥952॥

अज्ञात धर्म के प्रति अभिमानी, गम्भीर धर्म के प्रति अज्ञानी, धर्म के प्रति अगौरव तथा हीन भावना रखने वाले और परस्पर सम्मानजनक व्यवहार न करने वाले होंगे॥953॥

इस प्रकार, भविष्य में, भिक्षुओं में अनेक दोष उत्पन्न हो जायेंगे। वे दुर्बुद्धि भिक्षु इन भगवान् द्वारा सदुपदिष्ट धर्म को भी कलुषित कर देंगे॥954॥

वे, वस्तुतः गुणहीन होने पर भी, संघ में अपनी चेष्टाओं से ऐसा दिखायेंगे कि मानो वे बहुत गुणसम्पन्न एवं विद्वान् हैं ऐसे लोग बलवान् होंगे जो धर्म का श्रवण न किये होने पर भी उसके प्रति वाचालता प्रकट करते हुए धर्म को न जानने वाले लोगों का बहुमत बना लेंगे॥955॥

तथा उस समय, संघ में धर्म के यथार्थ ज्ञानी, गुणी भिक्षु दुर्बल होंगे। उन को बात बात पर लज्जित किया जायेगा, तथा निरर्थक समझा जायेगा॥956॥

''रजतं जातरूपञ्च, खेत्तं वत्थुमजेळकं।
दासिदासञ्च दुम्मेधा, सादियिस्सन्त्यनागते॥957॥
''उज्झानसञ्ञिनो बाला, सीलेसु असमाहिता।
उन्नळा विचरिस्सन्ति, कलहाभिरता मगा॥958॥
''उद्धता च भविस्सन्ति, नीलचीवरपारुता।
कुहा थद्धा लपा सिङ्गी, चरिस्सन्त्यरिया विय॥959॥
''तेलसण्ठेहि केसेहि, चपला अञ्जनक्खिका।
रथियाय गमिस्सन्ति, दन्तवण्णिकपारुता॥960॥
''अजेगुच्छं विमुत्तेहि, सुरत्तं अरहद्धजं।
जिगुच्छिस्सन्ति कासावं, ओदातेसु समुच्छिता॥961॥
''लाभकामा भविस्सन्ति, कुसीता हीनवीरिया।
किच्छन्ता वनपत्थानि, गामन्तेसु वसिस्सरे॥962॥

(संस्कृतच्छाया)- ''रजतं जातरूपञ्च, क्षेत्रं वस्तुमजैडकम्।
दासिदासञ्च दुर्मेधाः, सादयिष्यन्त्यनागते॥957॥
''अद्ध्यानसंज्ञिनः बालाः, शीलेषु असमाहिताः।
उन्नदिताः विचरिष्यन्ति, कलहाभिरताः मृगाः॥958॥
''उद्धृताश्च भविष्यन्ति, नीलचीवरप्रावृताः।
कुहाः स्तब्धाः लपाः शृंगीः, चरिष्यन्त्यार्या इव॥959॥
''तेलसंस्थैः केशैः, चपला अञ्जनाक्षिकाः।
रथ्यायां गमिष्यन्ति, दन्तवर्णिकप्रावृताः॥960॥
''अजुगुप्सितेन विमुक्ताः हि, सुरक्तम् अर्हद्ध्वजम्।
जुगुप्सिष्यन्ते कषायम्, अवदातेसु समुच्छ्रिताः॥961॥
''लाभकामाः भविष्यन्ति, कुत्सिताः हीनवीर्याः।
कृच्छ्रन्तः वनप्रस्थानि, ग्रामान्तरेषु वत्स्यन्ति॥962॥

(हिन्दी)- ऐसे दुर्बुद्धि भिक्षु अपने उपयोग के लिये सोना चाँदी, कृषि-कर्म, दास-दासी, भेड़ बकरी आदि रखने लगेंगे॥957॥

उस समय, भिक्षु जन परस्पर दोषारोपण करने वाले, मूर्ख सदाचार से क्षीण, एवं अभिमानी तथा परस्पर कलह करते हुए संघारामों में पशुओं के समान विचरण करेंगे॥958॥

उस समय भिक्षुजन प्रायः उद्धत (वृथाभिमानी), नील वर्ण का चीवर धारण करने वाले, ठग, स्तब्ध, वाचाल, सुवर्णपरिग्रही होंगे, परन्तु वे प्रत्यक्ष में श्रेष्ठ जनों के व्यवहार का अभिनय करेंगे॥959॥

बालों में तेल डाल कर शारीरिक चपलता दिखाने वाले, नेत्रों में अंजन डालकर, हाथी दाँत का चूड़ा पहन कर गलियों में घूमने वाले होगें॥960॥

अनिन्दनीय काषाय वस्त्र को त्याग देने वाले, श्वेतवस्त्रों पर मुग्ध होकर काषाय वस्त्र की निन्दा करने वाले होंगे॥961॥

ऐसे भिक्षु लोभी हो कर नित्य स्वलाभ की ही कामना करने वाले, कार्य में अल्पश्रम वाले, वनों के एकान्त वास से घृणा कर ग्रामों में बस जायँगें॥962॥

''ये ये लाभं लभिस्सन्ति, मिच्छाजीवरता सदा।
ते तेव अनुसिक्खन्ता, भजिस्सन्ति असंयता॥963॥
''ये ये अलाभिनो लाभं, न ते पुज्जा भविस्सरे।
सुपेसलेपि ते धीरे, सेविस्सन्ति न ते तदा॥964॥
''मिलक्खुरजनं रत्तं, गरहन्ता सकं धजं।
तित्थियानं धजं केचि, धारिस्सन्त्यवदातकं॥965॥
''अगारवो च कासावे, तदा तेसं भविस्सति।
पटिसङ्खा च कासावे, भिक्खूनं न भविस्सति॥966॥
''अभिभूतस्स दुक्खेन, सल्लविद्धस्स रुप्पतो।
पटिसङ्खा महाघोरा, नागस्सासि अचिन्तिया॥967॥
''छद्दन्तो हि तदा दिस्वा, सुरत्तं अरहद्धजं।
तावदेव भणी गाथा, गजो अत्थोपसंहिता''॥968॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ये यान् लाभान् लप्स्यन्ते, मिथ्याजीवरताः सदाः।
ते तान् अनुशिक्षन्तः, भजिष्यन्ति असंयताः॥963॥
''ये ये अलाभिनः लाभम्, न ते पूज्याः भविष्यन्ति।
सुपेसलानपि तान् धीरान्, सेविष्यन्ते न ते तदा॥964॥
''म्लेच्छरञ्जनं रक्तम्, गर्हन्ताः स्वकं ध्वजम्।
तैर्थिकानां ध्वजं कश्चित्, धारिष्यन्त्यवदातकम्॥965॥
''अगारवश्च(अनादरश्च) काषाये, तदा तेषां भविष्यति।
प्रत्याकाङ्क्षा च काषाये, भिक्षूणां न भविष्यति॥966॥
''अभिभूतस्य दुःखेन, शल्यविद्धस्य रूप्यतः।
प्रत्याकाङ्क्षा महाघोरा, नागस्यासीत् अचिन्तनीया॥967॥
''षड्दन्तः हि तदा दृष्ट्वा, सुरक्तम् अर्हद्ध्वजम्।
तावदेव अभाणीत् गाथाम्, गज अर्थोपसंहिताम्॥968॥

(हिन्दी)- ये भिक्षु मिथ्या आजीविका वाले पुरुष जिन विधियों से लाभ प्राप्त करते हैं उन विधियों को असंयमपूर्वक स्वीकार करने वाले हो जायँगे॥963॥

परन्तु जो वास्तविक भिक्षु लाभ की कामना से सर्वथा रहित हों वे इनकी दृष्टि में सम्मानित नहीं होंगे। भले ही ऐसे भिक्षु कितने ही सदाचारयुक्त हों, इनकी सेवा वे नहीं करेंगे॥964॥

म्लेच्छों के साथ रहकर अपने ध्वज की निन्दा करते हुए अन्य तीर्थिकों के श्वेत ध्वज धारण करने लगेंगे॥965॥

उन भिक्षुओं का काषाय वस्त्रों के प्रति कोई पूजा भाव नहीं रह जायगा। तथा उन का काषाय वस्त्र के प्रति कोई गम्भीर तथा सूक्ष्म विचार भी नहीं रह जायगा॥966॥

काषाय वस्त्र की ऐसी अवमानना से दुःखी भगवान् बुद्ध के मन में भी घोर चिन्ता विद्यमान थी॥967॥

इस अवमानना पर विचार करते हुए छः दाँतों वाले गज के समान भगवान् बुद्ध ने इस अर्हद्ध्वज के विषय में कहा था-॥968॥

''अनिक्कसावो कासावं, यो वत्थं परिधस्सति।
अपेतो दमसच्चेन, न सो कासावमरहति॥969॥
''यो च वन्तकासावस्स, सीलेसु सुसमाहितो।
उपेतो दमसच्चेन, स वे कासावमरहति॥970॥
''विपन्नसीलो दुम्मेधो, पाकटो कामकारियो।
विब्भन्तचित्तो निस्सुक्को, न सो कासावमरहति॥971॥
''यो च सीलेन सम्पन्नो, वीतरागो समाहितो।
ओदातमनसङ्कप्पो, स वे कासावमरहति॥972॥
''उद्धतो उन्नळो बालो, सीलं यस्स न विज्जति।
ओदातकं अरहति, कासावं किं करिस्सति॥973॥
''भिक्खू च भिक्खुनियो च, दुट्ठचित्ता अनादरा।
तादीनं मेत्तचित्तानं, निग्गण्हिस्सन्त्यनागते॥974॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अनिष्कषायः काषायम्, यो वस्त्रं परिधास्यति।
अपेतो दमसत्याभ्याम्, न स काषायमर्हति॥969॥
''यश्च वान्तकषायः स्यात्, शीलेषु सुसमाहितः।
उपेतः दमसत्याभ्याम्, स वै काषायमर्हति॥970॥
''विपन्नशीलः दुर्मेधः, प्राकृता: कामकारक:।
विभ्रान्तचित्तः निरुत्सुकः, न सः काषायमर्हति॥971॥
''यश्च शीलेन सम्पन्नः, वीतरागः समाहितः।
अवदातमनसङ्कल्पः, स वै काषायमर्हति॥972॥
''उद्धत उन्नर्दितः बालः, शीलं यस्य न विद्यते।
अवदातकमर्हति, काषायं किं करिष्यति॥973॥
''भिक्षवश्च भिक्षुण्यश्च, दुष्टचित्ता अनादराः।
तादृशानां मैत्रचित्तानाम्, निग्रहीष्यन्त्यनागते॥974॥

(हिन्दी)- जो पुरुष राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि दोषों से युक्त है वह इन भिक्षूपयोगी काषाय वस्त्रों को पहनने ओढ़ने का अधिकारी नहीं माना जा सकता। तथा जो इन्द्रियसंयम एवं सत्यभाषण आदि से रहित है, उस को भी कषाय वस्त्र पहनने का अधिकार नहीं है॥969॥

जो कषाय वस्त्र पहनने वाला, सभी शीलों में सुसमाहित है, इन्द्रियसंयम एवं सत्यभाषण आदि से सर्वथा सम्पन्न है, वह निर्मल काषाय वस्त्र को धारण करने योग्य है॥970॥

जो शीलभ्रष्ट, दुर्बुद्धि, प्राकृत, व्यवहारप्रिय, कामभोगों में लिप्त रहने वाला, हित-अहित के निर्णय में भ्रान्तचित्त, एवं कुशल कर्मों से रहित पुरुष काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी नहीं है॥971॥

जो शीलसम्पन्न है, वीतराग है, समाहितचित्त है, जिसके मनः संकल्प परिशुद्ध हैं, वही काषाय वस्त्र धारण करने का अधिकारी है॥972॥

जो उद्धत है, कुपथगामी है, मूर्ख है, सदाचाररहित है, जो अन्य तीर्थिकों के समान श्वेतवस्त्र धारण करने का इच्छुक है, वह इन कषाय वस्त्रों को धारण करके भी क्या करेगा!॥973॥

आगामी काल में दुष्चरित तथा अनादर भाव रखने वाले भिक्षु एवं भिक्षुणियों का ज्ञानी एवं मैत्रीचित्त भिक्षुओं पर नियन्त्रण होगा॥974॥

सिक्खापेन्ता पि थेरेहि, बाला चीवरधारणं।
न सुणिस्सन्ति दुम्मेधा, पाकटा कामकारिया॥975॥
''ते तथा सिक्खिता बाला, अञ्ञमञ्ञं अगारवा।
नादियिस्सन्तुपज्झाये, खळुङ्को विय सारथिं॥976॥
''एवं अनागतद्धानं, पटिपत्ति भविस्सति।
भिक्खूनं भिक्खुनीनञ्च, पत्ते कालम्हि पच्छिमे॥977॥
''पुरा आगच्छते एतं, अनागतं महब्भयं।
सुब्बचा होथ सखिला, अञ्ञमञ्ञं सगारवा॥978॥
''मेत्तचित्ता कारुणिका, होथ सीलेसु संवुता।
आरद्धवीरिया पहितत्ता, निच्चं दळ्हपरक्कमा॥979॥
''पमादं भयतो दिस्वा, अप्पमादञ्च खेमतो।
भावेथट्ठङ्गिकं मग्गं, फुसन्ता अमतं पदं''ति॥980॥ ... फुस्सो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''शिक्षापयन्तोऽपि स्थविरैः, बालाः चीवरधारणम्।
न श्रोष्यन्ति दुर्मेधाः, प्राकृताः कामकारकाः॥975॥
''ते तथा शिक्षिताः बालाः, अन्योन्यमगौरवान्।
नादरिष्यन्ति उपाध्याये, *खळुङ्को* (दुर्घोटकः) इव सारथिम्॥976॥
''एवम् अनागताध्वनाम्, प्रतिपत्तिरेव भविष्यति।
भिक्षूणां भिक्षुणीनाञ्च, प्राप्ते काले पश्चिमे॥977॥
''पूर्वमेवागतस्य अस्यानागतस्य महाभयस्य।
सुवचा भवत साखिलाः, अन्योन्यं सगौरवाः॥978॥
''मैत्रचित्ताः कारुणिकाः, भवत शीलेषु संवृताः।
आरब्धवीर्याः प्रहितात्मा, नित्यं दृढपराक्रमाः॥979॥
''प्रमादं भयतः दृष्ट्वा, अप्रमादञ्च क्षेमतः।
भावेयताष्टाङ्गिकं मार्गम्, स्पर्शयन्तः अमृतं पदम्''इति॥980॥

(हिन्दी)- ऐसे प्राकृत एवं जैसा चाहें वैसा ही करने वाले कुबुद्धि भिक्षु, श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा बार-बार समझाये जाने पर भी, काषाय वस्त्र धारण के प्रति अरुचि ही प्रकट करेंगे॥975॥

वे वैसी शिक्षा पाये हुए मूर्ख भिक्षु, परस्पर असम्मान प्रकट करने वाले अपने उपाध्याय का आदेश भी इसी प्रकार न मानेंगे, जैसे नीच जाति का कोई अश्व सारथि के संकेतों को नहीं मानता॥976॥

आगामी काल में अर्थात् कुछ समय बीतने के बाद, भिक्षु एवं भिक्षुणियों का ज्ञान ही अवशिष्ट रह जायगा॥977॥

वैसी दुर्गतिपूर्ण, भयजनक एवं अशुभ समय आने से पूर्व ही आप सब लोग विनम्र, मधुरभाषी(सखिला), परस्पर सम्मानजनक व्यवहार करने वाले बन जायँ॥978॥

तथा आप लोग परस्पर मैत्रीचित्त, दयालु, सदाचारयुक्त, साधना में प्रयत्नशील, इन्द्रियसंयमी एवं दृढपरिश्रमी होने का प्रयास करें॥979॥

आप लोग अपने प्रमाद को भय द्वारा शान्त कर, तथा अप्रमाद को मंगल समझते हुए अष्टांगिक मार्ग की भावना करते हुए अमृत पद प्राप्त करो॥980॥ ...पुष्य स्थविर ने...पूर्ववत्॥

2. सारिपुत्तत्थेरगाथा-

''यथाचारी यथासतो सतीमा, यतसङ्कप्पज्झायि अप्पमत्तो।
अज्झत्तरतो समाहितत्तो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं॥981॥
''अल्लं सुक्खं वा भुञ्जन्तो, न बाळ्हं सुहितो सिया।
ऊनूदरो मिताहारो, सतो भिक्खु परिब्बजे॥982॥
''चत्तारो पञ्च आलोपे, अभुत्वा उदकं पिवे।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो॥983॥
''कप्पियं तं चे छादेति, चीवरं इदमत्थिकं ।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो॥984॥
''पल्लङ्केन निसिन्नस्स, जण्णुके नाभिवस्सति।
अलं फासुविहाराय, पहितत्तस्स भिक्खुनो॥985॥

(संस्कृतच्छाया)-2. ''यथाचारी यथाशान्तः स्मृतिमान्, यत् सङ्कल्पध्यायी अप्रमत्तः।
अध्यात्मरतः समाहितात्मा, एकः सन्तोषितः तमाहु भिक्षुम्॥981॥
''आर्द्रं शुष्कं वा भुञ्जानः, न बाढं सुहितः स्यात्।
ऊनोदरः मिताहारः, स्मृतः भिक्षु परिव्रजेत्॥982॥
''चतुरः पञ्च आलोपान्, अभुङ्क्त्वा उदकं पिबेत्।
अलं प्राशुविहाराय, प्रहितात्मने भिक्षवे॥983॥
''कल्पितं तं चेत् छादयति, चीवरम् इदमर्थिकम्।
अलं प्राशुविहाराय, प्रहितात्मने भिक्षवे॥984॥
''पल्यङ्केन निषण्णस्य, जानुके नाभिवर्षति।
अलं प्राशुविहाराय, प्रहितात्मने भिक्षवे॥985॥

(हिन्दी)- जो साधक शास्त्रोपदिष्ट शील तथा धर्म का स्मरण रखता हुआ, स्मृतिमान् एवं सावधान रह कर मनःसंकल्पों पर नियन्त्रण रखता हुआ, अप्रमादपूर्वक सतत ध्यानाभ्यासरत रहे, अध्यात्म का निरन्तर चिन्तन करे, जिसके इन्द्रिय तथा मन समाहित हों; ऐसा यथालाभ सन्तुष्ट रहने वाला साधक ही 'भिक्षु' कहलाता है॥981॥

घृत तेल से चुपड़ा या रूखा सूखा जो भी भिक्षा में मिल जाय उसी को खा कर सन्तुष्ट रहने वाला, अधिक न माँगने वाला, उदरपूर्ति की अल्प ही इच्छा रखने वाला, परिमित भोजन करने वाला साधक ही भिक्षु होने के लिये प्रव्रज्या ग्रहण करें॥982॥

चार या पाँच ग्रास से अधिक न खा कर जल पी ले। सुखकर साधना के लिये संयतात्मा भिक्षु को इतना भोजन भी पर्याप्त होता है॥983॥

भिक्षुओं के लिये निर्दिष्ट होने पर भी उतना ही वस्त्र धारण करना चाहिये जो शरीर की रक्षामात्र कर सके। इतना ही वस्त्र संयतेन्द्रिय भिक्षु की साधना में सहायक होता है॥984॥

आसन पर बैठा हुआ संयतात्मा भिक्षु साधना में सहजता के लिये अपने जानुओं को वर्षा में भीगने से बचाये रखे। अर्थात् वर्षा ऋतु में ग्रामों की चारिका न करे। संयतात्मा एवं साधना में सफलताभिलाषी भिक्षु के लिये यही उचित है॥985॥

''यो सुखं दुक्खतो अद्द, दुक्खमद्दक्खि सल्लतो।
उभयन्तरेन नाहोसि, केन लोकस्मि किं सिया॥986॥
''मा मे कदाचि पापिच्छो, कुसीतो हीनवीरियो।
अप्पस्सुतो अनादरो, केन लोकस्मि किं सिया॥987॥
''बहुस्सुतो च मेधावी, सीलेसु सुसमाहितो।
चेतोसमथमनुयुत्तो, अपि मुद्धनि तिट्ठतु॥988॥
''यो पपञ्चमनुयुत्तो, पपञ्चाभिरतो मगो।
विराधयी सो निब्बानं, योगक्खेमं अनुत्तरं॥989॥
''यो च पपञ्चं हित्वान, निप्पपञ्चपथे रतो।
आराधयी सो निब्बानं, योगक्खेमं अनुत्तरं॥990॥
''गामे वा यदि वारञ्ञे, निन्ने वा यदि वा थले।
यत्थ अरहन्तो विहरन्ति, तं भूमिरामणेय्यकं॥991॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यः सुखं दुःखत अद्राक्षीत्, दुःखमद्राक्षीत् शल्यतः।
उभयान्तरेण नाभूत्, केन लोके किं स्यात्॥986॥
''मा मे कदाचित् पापेच्छा, कुत्सितः हीनवीर्यः।
अल्पश्रुत अनादरः, केन लोके किं स्यात्॥987॥
''बहुश्रुतश्च मेधावी, शीलेषु सुसमाहितः।
चेतोशमथमनुयुक्तः, अपि मूर्धनि तिष्ठतु॥988॥
''यः प्रपञ्चमनुयुक्तः, प्रपञ्चाभिरतः मृगः।
विराधयी सः निर्वाणम्, योगक्षेमम् अनुत्तरम्॥989॥
''यश्च प्रपञ्चं हित्वा, निष्प्रपञ्चपथे रतः।
आरात्सीत् सः निर्वाणम्, योगक्षेमम् अनुत्तरम्॥990॥
''ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये, निम्ने वा यदि वा स्थले।
यत्रार्हन्तो विहरन्ति, सा भूमि-रमणीया॥991॥

(हिन्दी)- जो लौकिक सुख को दुःखरूप समझे तथा दुःख को कण्टक रूप समझे; क्यों कि इन दोनों में से कोई एक किस को नहीं होता? या किसी एक के न होने पर क्या अन्तर पड़ जायगा?॥986॥
मैं कभी पापवासना वाला, कृपण, आलसी, धर्म का अल्पश्रवण करने वाला या असम्मान का भागी न बनूँ; क्योंकि इस लोक में किस के द्वारा कब क्या कर दिया जाय -यह कोई नहीं जानता॥987॥
यदि कोई बहुश्रुत, बुद्धिमान, सदाचार पालन में सुव्यवस्थित एवं चित्तनिरोध में सफल साधक भले ही मेरे शिर पर विराजमान हो (इसमें मुझ को कोई कष्ट न होगा)॥988॥
जो जगत्प्रपंच में लिप्त है तथा पशु के समान उसी प्रपंच में अपना जीवनयापन करता है, वह योगक्षेमसाधक अद्वितीय पद निर्वाण का विरोध ही कर रहा है॥989॥
जो साधक इस प्रपंच को त्याग कर प्रपंचरहित मार्ग का आलम्बन कर चुका है वह इस योगक्षेमसाधक अद्वितीय निर्वाण पद को अपने समीप ला रहा है॥990॥
जहाँ अर्हत् जन वास करते हैं, फिर वह स्थान भले ही ग्राम हो या अरण्य, ऊँचा हो या नीचा हो, वह तो वस्तुतः रमणीय ही है॥991॥

''रमणीयानि अरञ्ञानि, यत्थ न रमती जनो।
वीतरागा रमिस्सन्ति, न ते कामगवेसिनो॥992॥
''निधीनंव पवत्तारं, यं पस्से वज्जदस्सिनं।
निग्गय्हवादिं मेधाविं, तादिसं पण्डितं भजे।
तादिसं भजमानस्स, सेय्यो होति न पापियो॥993॥
''ओवदेय्यानुसासेय्य, असब्भा च निवारये।
सतञ्हि सो पियो होति, असतं होति अप्पियो॥994॥
''अञ्ञस्स भगवा बुद्धो, धम्मं देसेसि चक्खुमा।
धम्मे देसियमानम्हि, सोतमोधेसिमत्थिको।
तं मे अमोघं सवनं, विमुत्तोम्हि अनासवो॥995॥

(संस्कृतच्छाया)- ''रमणीयानि अरण्ययानि, यत्र न रमते जनः।
वीतरागाः रंस्यन्ते, न ते कामगवेषिणः॥992॥
''निधीनामिव प्रवक्तारम्, यं पश्येत् वर्ज्यदर्शिनम्।
निगृह्यवादिनं मेधाविनम्, तादृशं पण्डितं भजेत्।
तादृशं भजमानस्य, श्रेयो भवति न पापीयः॥993॥
''अववदेदनुशिष्याद्, असभ्याच्च निवारयेत्।
सतां हि स प्रियो भवति, असतां भवत्यप्रियः॥994॥
''अन्यस्य भगवान् बुद्धः, धर्ममदिशत् चक्षुष्मान्।
धर्मे उपदिश्यमाने, श्रोत्रमवादधामर्थिकः।
तं मे अमोघं श्रवणम्, विमुक्तोऽस्मि अनास्रवः॥995॥

(हिन्दी)- उन रमणीय वनों में, जहाँ साधारण जन का मन नहीं लगता, कामवासनाओं के पीछे न भटकने वाले वीतराग जन प्रसन्नतापूर्वक साधना में लगे रहते हैं॥992॥

जो निधियों का संकेत करने वाले के समान वर्जनीय कर्मों का बोध कराने वाला है, जो निगृह्यवादी ताड़ना दे कर सुधारने वाला है, मेधावी है, ऐसे विद्वान् सज्जन का संग करना चाहिये। ऐसे मनुष्य का संग करने वाला पुण्यभागी ही होता है, पापभोगी नहीं॥993॥

जो मनुष्य किसी के हित के लिये उपदेश करे, तदर्थ अनुशासन भी करे, वह सज्जनों को प्रिय लगता है तथा असज्जनों को अप्रिय॥994॥

वे ज्ञानी किसी अन्य को धर्मोपदेश कर रहे थे। वहाँ उपदेश किये जाते समय उस के सुनने में मैंने भी जिज्ञासु बन कर अपने कान लगाये। मेरा वह धर्मश्रवण व्यर्थ नहीं गया। क्योंकि मैं चित्तविकाररहित, मुक्त हो गया॥995॥

''नेव पुब्बेनिवासाय, नपि दिब्बस्स चक्खुनो।
चेतोपरियाय इद्धिया, चुतिया उपपत्तिया।
सोतधातुविसुद्धिया, पणिधी मे न विज्जति॥996॥
''रुक्खमूलंव निस्साय, मुण्डो सङ्घाटिपारुतो।
पञ्ञाय उत्तमो थेरो, उपतिस्सोव झायति॥997॥
''अवितक्कं समापन्नो, सम्मासम्बुद्धसावको।
अरियेन तुण्हीभावेन, उपेतो होति तावदे॥998॥
''यथापि पब्बतो सेलो, अचलो सुप्पतिट्ठितो।
एवं मोहक्खया भिक्खु, पब्बतोव न वेधति॥999॥
''अनङ्गणस्स पोसस्स, निच्चं सुचिगवेसिनो।
वालग्गमत्तं पापस्स, अब्भमत्तंव खायति॥1000॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नैव पूर्वेनिवासाय, नापि दिव्याय चक्षुषे।
चित्तपर्यायाय ऋद्ध्यै, च्युत्यै उपपत्यै।
श्रोतधातुविशुद्ध्यै, प्रणिधिः मे न विद्यते॥996॥
''वृक्षमूलमिव निश्राय, मुण्डः सङ्घाटिप्रावृतः।
प्रज्ञया उत्तमः स्थविरः, उपतिस्स इव ध्यायते॥997॥
''अवितर्कं समापन्नः, समक्सम्बुद्धश्रावकः।
आर्येण तूष्णीभावेन, उपेतः भवति तावदेव॥998॥
''यथापि पर्वतः शैलः, अचलः सुप्रतिष्ठितः।
एवं मोहक्षयात् भिक्षुः, पर्वत इव न वेपते॥999॥
''अनङ्गणस्य पुरुषस्य, नित्यं शुचिगवेषिणः।
वालाग्रमात्रं पापस्य, अभ्रमात्रमिव क्षीयते॥1000॥

(हिन्दी)- अब मुझ को अपने पूर्व जन्म को जानने, या दिव्य चक्षु प्राप्त करने या चित्तविशुद्धि द्वारा दूसरों के जन्ममरण जानने या अपनी श्रोत्रेन्द्रिय की विशुद्धि प्राप्त करने में कोई आकांक्षा नहीं रह गयी॥996॥
अब तो मैं केवल साधारण उपतिस्स भिक्षु के समान रह कर किसी वृक्ष के नीचे बैठ कर, शिर मुँडा कर, संघाटि धारण कर, प्रज्ञा द्वारा उत्तम स्थविर की तरह ध्यानाभ्यासी रहना चाहता हूँ॥997॥
अवितर्क समाधियुक्त कोई भी भगवान् बुद्ध का शिष्य आर्य मौनव्रत धारण कर तत्काल ज्ञानयुक्त हो जाता है॥998॥
जैसे कोई विशाल चट्टानों वाला पर्वत स्थिर एवं सुप्रतिष्ठित होता है उसी प्रकार मोह क्षीण भिक्षु पर्वत के समान ही अचल एवं सुप्रतिष्ठित होता है॥999॥
मनःशुद्धि की सतत आकांक्षा रखने वाला निर्विकार पुरुष का बाल जितना लघु पाप भी, जलविहीन मेघ का वायु द्वारा उड़ाये जाने के समान क्षीण होता रहता है॥1000॥

''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
निक्खिपिस्सं इमं कायं, सम्पजानो पतिस्सतो॥1001॥
''नाभिनन्दामि मरणं, नाभिनन्दामि जीवितं।
कालञ्च पटिकङ्खामि, निब्बिसं भतको यथा॥1002॥
''उभयेन मिदं मरणमेव, नामरणं पच्छा वा पुरे वा।
पटिपज्जथ मा विनस्सथ, खणो वो मा उपच्चगा॥1003॥
''नगरं यथा पच्चन्तं, गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं, खणो वो मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता॥1004॥
''उपसन्तो उपरतो, मन्तभाणी अनुद्धतो।
धुनाति पापके धम्मे, दुमपत्तंव मालुतो॥1005॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
निक्षिप्यस्यं इमं कायम्, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः"इति॥1001॥
''नाभिनन्दामि मरणम्, नाभिनन्दामि जीवितम्।
कालञ्च प्रतिकांक्षामि, निर्विशं भृतकः यथा॥1002॥
''उभयेन इदं मरणमिव, नामरणं पश्चात् वा पुरे वा।
प्रतिपद्यध्वं मा विनयेत, क्षणः वो मा उपत्यगः॥1003॥
''नगरं यथा प्रत्यन्तम्, गुप्तं सान्तर्वाह्यम्।
एवं गोपयेत आत्मानम्, क्षणः वो मा उपत्यगः॥
क्षणातीताः हि शोचन्ति, निरये समर्पिताः॥1004॥
''उपशान्त उपरतः, मृदुभाषी अनुद्धृतः।
धुनोति पापके धर्मे, द्रुमपत्रमिव मारुतः॥1005॥

(हिन्दी)- मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो स्मृतिसम्प्रजन्य के साथ अपने काल (मृत्यु) की प्रतीक्षा कर रहा हूँ॥1001॥

मैं न अपना मरण ही चाहता हूँ, न अपना जीवन ही। मैं तो अपने अन्तिम समय की प्रतीक्षा वैसे ही कर रहा हूँ जैसे कोई भृत्य अपने वेतन की प्रतीक्षा करता है॥1002॥

जब साधना करें या न करें -दोनों प्रकार से मरण निश्चित ही है। यह सम्भव नहीं है कि तुम किसी भी उपाय से सर्वदा के लिये जीवित रह जाओ।

तो क्यों नहीं तत्काल साधना आरम्भ कर रहे हो कि तुम विनाश से बच सको। तुम अपना क्षणमात्र समय भी व्यर्थ नष्ट न करो॥1003॥

जैसे राज्य के किसी सीमान्तप्रदेशस्थित नगर के भीतर एवं बाहर के स्थान सर्वथा सुरक्षित किये जाते हैं; वैसे ही भिक्षु को साधना द्वारा स्वयं को सुरक्षित करना चाहिये। अन्यथा अवसर बीतने पर पश्चाताप ही करना पड़ेगा, और हो सकता है इस कारण तुम्हारा नरकपात भी जो जाय॥1004॥

संसार में शान्तवृत्ति एवं लौकिक क्रियाकर्मों से विरत रहने वाला, सोच विचार कर कहने वाला तथा अचपल साधक अपने पूर्वकृत पापों को वैसे ही कंपा देता है जैसे वायु वृक्ष के पत्तों को हिला देती है॥1005॥

''उपसन्तो उपरतो, मन्तभाणी अनुद्धतो।
अप्पासि पापके धम्मे, दुमपत्तंव मालुतो॥1006॥
''उपसन्तो अनायासो, विप्पसन्नो अनाविलो।
कल्याणसीलो मेधावी, दुक्खस्सन्तकरो सिया॥1007॥
''न विस्ससे एकतियेसु एवं, अगारिसु पब्बजितेसु चापि।
साधूपि हुत्वा न असाधु होन्ति, असाधु हुत्वा पुन साधु होन्ति॥1008॥
''कामच्छन्दो च ब्यापादो, थिनमिद्धञ्च भिक्खुनो।
उद्धच्चं विचिकिच्छा च, पञ्चेते चित्तकेलिसा॥1009॥
''यस्स सक्करियमानस्स, असक्कारेन चूभयं।
समाधि न विकम्पति, अप्पमादविहारिनो॥1010॥
''तं झायिनं सातितिकं, सुखुमदिट्ठिविपस्सकं।
उपादानक्खयारामं, आहु सप्पुरिसो इति॥1011॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपशान्त उपरत, मृदुभाषी अनुद्धृतः।
अल्पाशी पापके धर्मे, द्रुमपत्रमिव मारुतः॥1006॥
''उपशान्त अनायासः, विप्रसन्न अनाविलः।
कल्याणशीलः मेधावी, दुःखस्यान्तकरः स्यात्॥1007॥
''न विश्वासेत् एकत्रितेषु एवम्, अगारेषु प्रव्रजितेषु चापि।
साध्वपि भूत्वा न असाधुः भवन्ति, असाधुः भूत्वा पुनः साधुः भवन्ति॥1008॥
''कामच्छन्दश्च व्यापदः, स्त्यानमृद्धञ्च भिक्षवे।
औद्धत्यं विचिकित्सा च, पञ्चैते चित्तक्लेशाः॥1009॥
''यस्य सत्कारमानस्य, असत्कारेण चोभयम्।
समाधिः न विकम्पते, अप्रमादविहारिनः॥1010॥
''तं ध्यायीनां सातत्यकम्, सूक्ष्मदृष्टिविपश्यकम्।
उपादानाक्षयारामम्, आहु सत्पुरुष इति॥1011॥

(हिन्दी)- शान्तवृत्ति एवं लौकिक क्रिया कर्मों से दूर रहने वाला, सोच-विचार कर बोलने वाला तथा अचपल साधक अपने पूर्वकृत पापों को उसी प्रकार कम कर लेता है जैसे वायु वृक्ष के पके हुए पीले पत्रों को गिरा देता है॥1006॥

शान्तवृत्ति एवं लौकिक क्रिया कर्मों से दूर रहने वला, प्रसन्न चेष्टाओं वाला, मलिनता से रहित, मंगलमय आचारवाला तथा बुद्धिमान् पुरुष अपने दुःखों का नाश कर लेता है॥1007॥

लोक में सभी लोगों पर विश्वास नहीं करना चाहिये, फिर वे भले ही गृहस्थ हों या प्रव्रजित; क्योंकि उनमें से कुछ बाह्य आकार-प्रकार से साधु दिखायी देते हुए भी अपने आन्तरिक विचार से असाधु ही होते हैं। तथा कुछ लोग बाह्य आकार प्रकार से असाधु दीखते हुए भी अपने आन्तरिक आचार विचार से साधु ही होते हैं॥1008॥

भिक्षु के लिये ये पाँच दोष चित्तक्लेशकारक हैं- 1. कामच्छन्द, 2. व्यापाद (द्वेष), 3. स्त्यान मृद्ध, 4. औद्धत्य एवं 6. विचिकिच्छा (शंका,)॥1009॥

सावधानी के साथ समाधिस्थ रहने पर लौकिक सत्कार या अपमान की दिशा में भी जिसके मन में किसी प्रकार की उद्विग्रता नहीं होती॥1010॥

उस निरन्तर ध्यानाभ्यासी एवं सूक्ष्म दृष्टि से धर्मचिन्तन करने वाले तथा उपादानक्षय से सुखपूर्वक साधना करने वाले साधक को 'सत्पुरुष' कहते हैं॥1011॥

''महासमुद्दो पथवी, पब्बतो अनिलोपि च।
उपमाय न युज्जन्ति, सत्थु वरविमुत्तिया॥1012॥
''चक्कानुवत्तको थेरो, महाञाणी समाहितो।
पथवापग्गिसमानो, न रज्जति न दुस्सति॥1013॥
''पञ्ञापारमितं पत्तो, महाबुद्धि महामति।
अजळो जळसमानो, सदा चरति निब्बुतो॥1014॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता''ति॥1015॥
''सम्पादेथप्पमादेन , एसा मे अनुसासनी।
हन्दाहं परिनिब्बिस्सं, विप्पमुत्तोम्हि सब्बधी''ति॥1016॥ ... सारिपुत्तो थेरो...।

(संस्कृतच्छाया)- ''महासमुद्रः पृथ्वी, पर्वत अनिलोऽपि च।
उपमायाः न युज्यन्ति, शास्तुः वरविमुक्त्यै॥1012॥
''चक्रानुवर्तकः स्थविरः, महाज्ञानी समाहितः।
पथवापग्निसमानः, न रज्यति न द्वेष्टि॥1013॥
''प्रज्ञापारमितं प्रातः, महाबुद्धिः महामतिः।
अजडः जडसमानः, सदा चरति निर्वृतः॥1014॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अवहितः गुरुकः भारः, भवनेत्री समवहताः ॥1015॥
''सम्पादेताप्रमादेन, एषः मे अनुशासनी।
हन्ताहं परिनिर्विष्यम्, विप्रमुक्तोऽस्मि सर्वथा"इति॥1016॥

(हिन्दी)- शास्ता द्वारा कृत विमुक्ति - सम्बन्धी धर्मोपदेश की महत्ता से इस महापृथ्वी, महासमुद्र, या किसी महान् पर्वत या अग्नि की महत्ता उपमा के योग्य नहीं है॥1012॥

शास्ता द्वारा प्रवर्तित धर्मचक्र के अनुवर्तक ये समाहितचित्त महाज्ञानी (सारिपुत्र स्थविर) पृथ्वी, जल तथा अग्नि के समान ही न किसी से राग रखते हैं न द्वेष ही करते हैं॥1013॥

ये प्रज्ञापारमिता तक पहुँचे हुए हैं, विपुल मति एवं बुद्धि से सम्पन्न हैं, चेतनायुक्त होते हुए भी व्यवहार में अचेतन के समान रहते हैं॥1014॥

शास्ता के धर्म का मैंने पूर्ण अभ्यास कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥1015॥

मेरा आप लोगों को भी यही परामर्श है कि आप लोग भी सावधानीपूर्वक साधनारत रहो। मैं अपने सभी चित्तविकारों से मुक्त हो चुका हूँ, अतः अवश्य मेरा परिनिर्वाण होगा॥1016॥ ....सारिपुत्र स्थविर ने...॥

3. आनन्दत्थेरगाथा-

''पिसुणेन च कोधनेन च, मच्छरिना च विभूतनन्दिना।
सखितं न करेय्य पण्डितो, पापो कापुरिसेन सङ्गमो॥1017॥
''सद्धेन च पेसलेन च, पञ्ञवता बहुस्सुतेन च।
सखितं करेय्य पण्डितो, भद्दो सप्पुरिसेन सङ्गमो॥1018॥
''पस्स चित्तकतं बिम्बं, अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि ध्रुवं ठिति॥1019॥
''पस्स चित्तकतं रूपं, मणिना कुण्डलेन च।
अट्ठिं तचेन ओनद्धं, सह वत्थेहि सोभति॥1020॥
''अलत्तककता पादा, मुखं चुण्णकमक्खितं।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥1021॥

(संस्कृतच्छाया)-3. ''पिशुनेन च क्रोधेन च, मात्सर्येण च विभूतनन्दिना।
सखितं न कुर्यात् पण्डितः, पापः कापुरुषेण सङ्गमः॥1017॥
''श्रद्धया च पेशलेन च, प्रज्ञावता बहुश्रुतेन च।
सखितं कुर्यात् पण्डितः, भद्रः सत्पुरुषेण सङ्गमः॥1018॥
''पश्य चित्तकृतं बिम्बम्, अरु-कायं समुच्छ्रितम्।
आतुरं बहुसंकल्पम्, यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः॥1019॥
''पश्य चित्तकृतं रूपम्, मणिना कुण्डलेन च।
अस्थिं त्वचया अवनद्धम्, सह वस्त्रैः शोभते॥1020॥
''अलक्तककृतौ पादौ, मुखं चूर्णकमक्षितम्।
अलं बालकस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥1021॥

(हिन्दी)- बुद्धिमान् पुरुष को चुगलखोर, क्रोधी एवं दम्भी पुरुष के साथ मैत्री नहीं करना चाहिये; क्योंकि ऐसे पुरुष का संग पाप का ही उत्पादक होता है॥1017॥

बुद्धिमान् को सदाचारी, श्रद्धालु, प्रज्ञावान् एवं बहुश्रुत पुरुष के साथ मैत्री अवश्य करनी चाहिये; क्योंकि सत्संगति मंगलमय ही होती है॥1018॥

चित्रलिखित के समान इस शरीर को देखो जो व्रणों से युक्त है, जो सर्वत्र शोधयुक्त है, पीडित है, विविध संकल्पविकल्पों से पूर्ण है। इसे देखते हुए यहाँ किसी की ध्रुव स्थिति नहीं कही जा सकती है! ॥1019॥

इस चित्रकृत रूप को देखी जो मणि, कुण्डल आदि आभूषणों से तथा हड्डी तथा त्वचा से आवृत है तथा ऊपर से वस्त्र पहना कर अपेक्षाकृत अधिक शोभायमान बना दिया गया है॥1020॥

इसके पैर अलक्तक से रंगे हुए हैं मुख पर सुगन्धित चूर्ण का लेप है, यह मूर्खों के लिये ही आसक्ति का कारण बन सकता है, भव पार हो गये ज्ञानी पुरुषों के लिये नहीं॥1021॥

''अट्ठपदकता केसा, नेत्ता अञ्जनमक्खिता।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥ 1022॥
''अञ्जनीव नवा चित्ता, पूतिकायो अलङ्कतो।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥1023॥
''बहुस्सुतो चित्तकथी, बुद्धस्स परिचारको।
पन्नभारो विसञ्ञुत्तो, सेय्यं कप्पेति गोतमो॥1024॥
''खीणासवो विसञ्ञुत्तो, सङ्गातीतो सुनिब्बुतो।
धारेति अन्तिमं देहं, जातिमरणपारगू॥1025॥
''यस्मिं पतिट्ठिता धम्मा, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
निब्बानगमने मग्गे, सोयं तिट्ठति गोतमो॥1026॥
''द्वासीति बुद्धतो गण्हिं, द्वे सहस्सानि भिक्खुतो।
चतुरासीतिसहस्सानि, ये मे धम्मा पवत्तिनो॥1027॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अष्टपदकृताः केशाः, नेत्रयो अञ्जमक्षिताः।
अलं बालकस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥1022॥
''अञ्जनीव नवाः चित्राः, पूतिकाय अलंकृतः।
अलं बालकस्य मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥1023॥
''बहुश्रुतः चित्रकथी, बुद्धस्य परिचारकः।
आपन्नभारः विसंयुक्तः, शयनं कल्पयति गौतमः॥1024॥
''क्षीणास्रवः विसंयुक्तः, सङ्गातीतः सुनिर्वृतः।
धारयति अन्तिमं देहम्, जातिमरणपरागूः॥1025॥
''यस्मिन् प्रतिष्ठिताः धर्माः, बुद्धस्यादित्यबन्धुनः।
निर्वाणगमने मार्गे, सोऽयं तिष्ठति गौतमः॥1026॥
''द्वाशीति बुद्धत अग्रहीषम्, द्विसहस्रानि भिक्षुतः।
चतुराशीतिसहस्रानि, ये मे धर्माः प्रवर्तिन॥1027॥

(हिन्दी)- इस के बाल घुँघराले हैं, नेत्रों में अंजन लगा हुआ है। परन्तु यह मूर्खों को ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, ज्ञानियों को नहीं॥1022॥

अंजन रखने की नयी तथा चित्रित डब्बी के समान यह मलिन काय अलंकृत किया हुआ है। यह मूर्खों को ही अपनी ओर आकृष्ट कर सकता है, ज्ञानियों को नहीं॥1023॥

यह बहुश्रुत, चित्रकथी, बुद्ध का परिचारक जो अब भारमुक्त हो गया है; क्योंकि भगवान् गौतम महाशयन कर रहे हैं॥1024॥

यह (आनन्द) क्षीणाश्रव हो चुका है, सांसारिक विषयों से अपना सम्बन्ध तोड़ चुका है। इसका यह शरीर अन्तिम है। यह जन्म-मरणपरम्परा से पार जा चुका है॥1025॥

जिस आदित्यबन्धु भगवान् गौतम में सभी धर्म प्रतिष्ठित हैं, वे अब परिनिर्वाण की ओर जाने वाले मार्ग पर खड़े हैं॥1026॥

मैंने इन शास्ता द्वारा कथित चौरासी हजार धर्मस्कन्धों में से बयासी हजार धर्मस्कन्ध साक्षात् इन भगवान् के श्रीमुख से ही सुने हैं तथा शेष दो हजार धर्मस्कन्ध उस समय उपस्थित अन्य प्रामाणिक भिक्षुओं से सुने हैं॥1027॥

''अप्पस्सुतायं पुरिसो, बलिबद्दोव जीरति।
मंसानि तस्स वड्ढन्ति, पञ्ञा तस्स न वड्ढति॥1028॥
''बहुस्सुतो अप्पस्सुतं, यो सुतेनातिमञ्ञति।
अन्धो पदीपधारोव, तथेव पटिभाति मं॥1029॥
''बहुस्सुतं उपासेय्य, सुतञ्च न विनासये।
तं मूलं ब्रह्मचरियस्स, तस्मा धम्मधरो सिया॥1030॥
''पुब्बापरञ्ञू अत्थञ्ञू, निरुत्तिपदकोविदो।
सुग्गहीतञ्च गण्हाति, अत्थञ्चोपपरिक्खति॥1031॥
''खन्त्या छन्दिकतो होति, उस्सहित्वा तुलेति तं।
समये सो पदहति, अज्झत्तं सुसमाहितो॥1032॥
''बहुस्सुतं धम्मधरं, सप्पञ्ञं बुद्धसावकं।
धम्मविञ्ञाणमाकङ्खं, तं भजेथ तथाविधं॥1033॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अल्पश्रुतायं पुरुषः, बलीवर्द इव जीर्यते।
मांसानि तस्य वर्धन्ते, प्रज्ञा तस्य न वर्धते॥1028॥
''बहुश्रुतः अल्पश्रुतम्, यः श्रुतेनातिमन्यते।
अन्धः प्रदीपधारैव, तथैव प्रतिभाति माम्॥1029॥
''बहुश्रुतम् उपासेत्, श्रुतञ्च न विनाशयेत्।
तस्य मूलं ब्रह्मचर्यस्य, तस्मात् धर्मधरः स्यात्॥1030॥
''पूर्वापरज्ञः अर्थज्ञः, निरुक्तिकोविदो।
सुग्रहीतञ्च गृह्णाति, अर्थञ्चोपपरीक्षति॥1031॥
''क्षान्त्या छन्दिकृतः भवति, उत्साह्य तोलयति तम्।
समये सः प्रदहति, अध्यात्मं सुसमाहितः॥1032॥
''बहुश्रुतं धर्मधरम्, सप्रज्ञं बुद्धश्रावकम्।
धर्मविज्ञानमाकांक्षम्, तं भजेत् तथाविधम्॥1033॥

(हिन्दी)- कोई अल्पश्रुत पुरुष बैल के समान बूढा होता जाता है। इसका केवल माँस ही बढ़ता है, प्रज्ञा नहीं बढ़ पाती॥1028॥

यदि कोई बहुश्रुत पुरुष किसी अल्पश्रुत पुरुष का, उसकी अल्पश्रुतता के कारण अपमान करता है तो मुझको वह ऐसा ही लगता है जैसे कि किसी अन्ध पुरुष ने दीपक हाथ में ले रखा हो॥1029॥

अल्पश्रुत को भी बहुश्रुत की उपासना करनी चाहिये। उससे सुने हुए धर्म को भूलना भी नहीं चाहिये; क्योंकि यह धर्मश्रवण ही धर्मसाधना में प्रधान साधक होता है॥1030॥

जो प्रसंग के पूर्वापर का तथा अर्थ का ज्ञाता है, पदों के निर्वचनों का ज्ञाता है, भली प्रकार समझे हुए का अभ्यास तथा उस के अर्थ का समीक्षण भी करता है॥1031॥

सहनशीलता से उसको आत्मसात् करता है, तथा उत्साहपूर्वक उसको साधना में सन्तुलित किये रहता है, ऐसा साधक अपने आध्यात्मिक चित्तविकारों को शान्त कर सम्यक् समाहितेन्द्रिय हो जाता है॥1032॥

ऐसे बहुश्रुत, धर्मधर, प्रज्ञावान् बुद्धशिष्य की सेवा करनी चाहिये और उससे धर्मविषय का शंका-समाधान करते रहना चाहिये॥1033॥

''बहुस्सुतो धम्मधरो, कोसारक्खो महेसिनो।
चक्खु सब्बस्स लोकस्स, पूजनीयो बहुस्सुतो॥1034॥
''धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति॥1035॥
''कायमच्छेरगरुनो, हिय्यमाने अनुट्ठहे।
सरीरसुखगिद्धस्स, कुतो समणफासुता॥1036॥
''न पक्खन्ति दिसा सब्बा, धम्मा न पटिभन्ति मं।
गते कल्याणमित्तम्हि, अन्धकारंव खायति॥1037॥
''अब्भतीतसहायस्स, अतीतगतसत्थुनो।
नत्थि एतादिसं मित्तं, यथा कायगता सति॥1038॥
''ये पुराणा अतीता ते, नवेहि न समेति मे।
स्वज्ज एकोव झायामि, वस्सुपेतोव पक्खिमा॥1039॥

(संस्कृतच्छाया)- ''बहुश्रुतः धर्मधरः, कोशारक्षः महर्षेः।
चक्षु सर्वस्य लोकस्य, पूजनीयः बहुश्रुतः॥1034॥
''धर्मारामः धर्मरतः, धर्मम् अनुविचिन्तयन्।
धर्मम् अनुस्मरं भिक्षुः, सद्धर्मात् न परिहीयते॥1035॥
''कायमात्सर्यगुरोः, ह्रियमाने अनुत्सहे।
शरीरसुखगृद्धस्य, कुतः श्रमणप्राशुता॥1036॥
''न प्रेक्ष्यन्ते दिशाः सर्वाः, धर्माः न प्रतिभान्ति माम्।
गते कल्याणमित्रे, अन्धकारमिव क्षीयते॥1037॥
''अपगतसहायस्य, अतीतगतशास्तुः।
नास्ति एतादृशं मित्रम्, यथाकायगताः स्मृतिः॥1038॥
''ये पुराणातीताः ते, नवैः न समेति मे।
स्वाद्य एकैव ध्यायामि, वर्षोपेत इव पक्षीसमः॥1039॥

(हिन्दी)- ऐसा बहुश्रुत, धर्मधर, बुद्धोपदिष्ट उपदेशों की म्यान के समान रक्षा करने वाला समस्त संसार के लिये ज्ञानभूत होता है। ऐसे बहुश्रुत की पूजा करनी चाहिये॥1034॥

जो भिक्षु निरन्तर धर्माचरण तथा धर्मचिन्तन में लगा रहता है, धर्म का मनन, स्मरण एवं अनुगमन करता है, ऐसा साधक भिक्षु धर्म से कभी च्युत नहीं होता॥1035॥

अपने शरीरसौन्दर्य के वृथाभिमान से गर्वित, तथा अपने नष्ट होते हुए अकुशल धर्मों के प्रति नाश में अनुत्साही, शरीरसुख में ही लुब्ध रहने वाला पुरुष साधना में सहजता की आशा कैसे कर सकता है॥1036॥

मुझे दिशाएं दिखाई नहीं देतीं, सभी धर्म मुझे सूझ नहीं रहे हैं। कल्याणमित्र के चले जाने पर मुझे सब कुछ अंधकार सा दिखता है॥1037॥

जिस के अन्य मित्र साथ छोड़ चुके हों, जिसके शास्ता का देहपात या अन्य कारण से वियोग हो चुका हो उसका कायगता स्मृति के अतिरिक्त अन्य कौन सहायक हो सकता है॥1038॥

जो पुराने सहायक थे वे समाप्त हो गये और जो नये सहायक बने हैं उनसे मेरा मेल नहीं खाता। अतः आज मैं वर्षाऋतु में पक्षियों के समान एकाकी ही स्वाध्याय में रत रहता हूँ॥1039॥

''दस्सनाय अभिक्कन्ते, नानावेरज्जके बहू।
मा वारयित्थ सोतारो, पस्सन्तु समयो ममं॥1040॥
''दस्सनाय अभिक्कन्ते, नानावेरज्जके पुथु।
करोति सत्था ओकासं, न निवारेति चक्खुमा॥1041॥
''पण्णवीसतिवस्सानि, सेखभूतस्स मे सतो।
न कामसञ्ञा उप्पज्जि, पस्स धम्मसुधम्मतं॥1042॥
''पण्णवीसतिवस्सानि, सेखभूतस्स मे सतो।
न दोससञ्ञा उप्पज्जि, पस्स धम्मसुधम्मतं॥1043॥
''पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन कायकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥1044॥
''पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन वचीकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥1045॥

(संस्कृतच्छाया)- ''दर्शनाय अभिक्रान्ते, नानावैराज्यकान् बहु।
मा वारयत अत्र श्रोतारः, पश्यन्तु समयो माम्॥1040॥
''दर्शनाय अभिक्रान्ते, नानावैराज्यकान् पृथु।
करोति शास्ता अवकाशम्, न निवारयति चक्षुष्यमान्॥1041॥
''पञ्चविंशतिवर्षाणि, शैक्ष्यभूतस्य मे सतः।
न कामसंज्ञा उदपादि, पश्य धर्मसुधर्मताम्॥1042॥
''पंचविंशतिवर्षाणि, शैक्ष्यभूतस्य मे सतः।
न दोषसंज्ञा उदपादि, पश्य धर्मसुधर्मताम्॥1043॥
''पञ्चविंशतिवर्षाणि, भगवन्तम् उपास्थाम्।
मैत्रेण कायकर्मेण, छायेव अनुगामिनी॥1044॥
''पञ्चविंशतिवर्षाणि, भगवन्तम् उपास्थाम्।
मैत्रेण वचीकर्मेण, छायेव अनुगामिनी॥1045॥

(हिन्दी)- नाना देशों से मेरे दर्शनार्थ आगत इन श्रोताओं को मेरे पास आने से न रोको। इन को मेरी यह स्थिति भी देखने दो॥1040॥
ऐसे कहते हुए शास्ता उन नाना देशों से दर्शनार्थ आगत श्रोताओं को अपने दर्शन का अवसर देते ही हैं, उस समय भी वे ज्ञानी किसी को रोकेते नहीं॥1041॥
इस धर्मश्रवण का सत्प्रभाव देखो कि मुझको प्रव्रज्या लेकर शैक्ष्य बने हुए आज पचीस वर्ष हो गये! तब से आज तक मुझ को किसी भी प्रकार का कामधर्म उत्पन्न हुआ ही नहीं॥1042॥
इस धर्मश्रवण का सत्प्रभाव देखो कि मुझको प्रव्रज्या लेकर शैक्ष्य बने हुए आज पचीस वर्ष हो गये! तब से आज तक मुझ को किसी भी प्रकार का द्वेषधर्म उत्पन्न हुआ ही नहीं॥1043॥
आज पचीस वर्षों से निरन्तर मैत्रीपूर्ण कायकर्म से छाया के समान साथ रहता हुआ मैं भगवान की परिचर्या कर रहा हूँ॥1044॥
आज पचीस वर्षों से निरन्तर मैत्रीपूर्ण वाक्कर्म से छाया के समान साथ रहता हुआ मैं भगवान की परिचर्या कर रहा हूँ॥1045॥

''पण्णवीसतिवस्सानि, भगवन्तं उपट्ठहिं।
मेत्तेन मनोकम्मेन, छायाव अनपायिनी॥1046॥
''बुद्धस्स चङ्कमन्तस्स, पिट्ठितो अनुचङ्कमिं।
धम्मे देसियमानम्हि, ञाणं मे उदपज्जथ॥1047॥
''अहं सकरणीयोम्हि, सेखो अप्पत्तमानसो।
सत्थु च परिनिब्बानं, यो अम्हं अनुकम्पको॥1048॥
''तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं।
सब्बाकारवरूपेते, सम्बुद्धे परिनिब्बुते॥1049॥
''बहुस्सुतो धम्मधरो, कोसारक्खो महेसिनो।
चक्खु सब्बस्स लोकस्स, आनन्दो परिनिब्बुतो॥1050॥
''बहुस्सुतो धम्मधरो, कोसारक्खो महेसिनो।
चक्खु सब्बस्स लोकस्स, अन्धकारे तमोनुदो॥1051॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पञ्चविंशतिवर्षाणि, भगवन्तम् उपास्थाम्।
मैत्रेण मनोकर्मेण, छायेव अनुगामिनी॥1046॥
''बुद्धस्य चङ्क्रमते, पृष्ठत अन्वचङ्क्रमिषम्।
धर्मम् उपदिश्यमाने, ज्ञानं मे उद्पद्येत॥1047॥
''अहं सकरणीयोऽस्मि, शैक्ष्य अप्राप्तमानसो।
शास्तुश्च परिनिर्वाणम्, योऽहमनुकम्पकः॥1048॥
''तदासीत् य भीषणकम्, तदासीत् रोमहर्षणम्।
सर्वाकारेवरुपैते, सम्बुद्धे परिनिर्वृते॥1049॥
''बहुश्रुतः धर्मधरः, कोशारक्षः महर्षेः।
चक्षुः सर्वस्य लोकस्य, आनन्दः परिनिर्वृतः॥1050॥
''बहुश्रुतः धर्मधरः, कोशारक्षः महर्षेः।
चक्षु सर्वस्य लोकस्य, अन्धकारे, तमोनुदः॥1051॥

(हिन्दी)- आज पचीस वर्षों से निरन्तर मैत्रीपूर्ण मनःकर्म से छाया के समान साथ रहता हुआ मैं भगवान की परिचर्या कर रहा हूँ॥1046॥

जिस समय भगवान् चंक्रमण-साधना कर रहे थे उस समय मैं उनका अनुगमन करता रहा। उस समय उन्होंने मुझको जो धर्मोपदेश किया, उसके प्रभाव से मुझको ज्ञान हो गया॥1047॥

मैं शैक्ष्य अवस्था में ही रह गया, जिसके कारण अर्हत्वप्राप्ति हेतु कुछ कर्त्तव्य शेष रह जाते हैं, जिन को मैं पूर्ण नहीं कर पाया। तथा मुझ पर दयालु भगवान् का अब यह परिनिर्वाण भी हो गया और मैं अर्हत्व प्राप्त नहीं कर पाया॥1048॥

जब सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ भगवान् सम्यक्सम्बुद्ध का महापरिनिर्वाण हो रहा था, तब ऐसी भयानक स्थिति थी कि मुझ को भयंकर रोमहर्ष हुआ॥1049॥

बहुश्रुत धर्मधर, भगवान् के धर्मोपदेशों के संरक्षक समस्त लोक के लिये ज्ञानस्वरूप ये आनन्द स्थविर परिनिर्वृत हो रहे हैं॥1050॥

बहुश्रुत धर्मधर, भगवान् के धर्मोपदेशों के संरक्षक समस्त लोक के लिये ज्ञानस्वरूप ये आनन्द स्थविर अन्धकार में प्रकाशस्तम्भ के समान हैं॥1051॥

''गतिमन्तो सतिमन्तो, धितिमन्तो च यो इसि।
सद्धम्मधारको थेरो, आनन्दो रतनाकरो॥1052॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥1053॥ ... आनन्दो थेरो...।

तिंसनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – फुस्सोपतिस्सो आनन्दो, तयोतिमे पकित्तिता।
गाथायो तत्थ सङ्खाता, सतं पञ्च च उत्तरीति।

18. चत्तालीसनिपातो

1. महाकस्सपत्थेरगाथा-

''न गणेन पुरक्खतो चरे, विमनो होति समाधि दुल्लभो।
नानाजनसङ्गहो दुखो, इति दिस्वान गणं न रोचये॥1054॥
''न कुलानि उपब्बजे मुनि, विमनो होति समाधि दुल्लभो।
सो उस्सुक्को रसानुगिद्धो, अत्थं रिञ्चति यो सुखावहो॥1055॥

(संस्कृतच्छाया)- ''गतिमान् स्मृतिमान्, धृतिमान् च य ऋषिः।
सद्धर्मधरकः स्थविरः, आनन्दः रतनाकरः॥1052॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अपहृतः गरुकः भारः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः"इति॥1053॥

तत्रोद्दानम्– *फुस्सोपतिस्सो आनन्दो*, त्रयो इतीमे प्रकीर्तिताः।
गाथाः तत्र संख्याताः, शतं पञ्च च उत्तरीति॥●

1. ''न गणेन पुरक्षतः चरेत्, विमनः भवति समाधि दुर्लभः।
नानाजनसङ्ग्रहः दुःखः, इति दृष्ट्वा गणं न रोचयेत्॥1054॥
''न कुलानि उपप्रव्रजेत मुनिः, विमनः भवति समाधि दुर्लभः।
स उत्सुकः रसानुगृद्धः, अर्थं रिञ्चते यः सुखावहः॥1055॥

(हिन्दी)- ये ऋषिस्वरूप आनन्द स्थविर विशिष्ट गतिमान्, धृतिमान एवं स्मृतिमान् तथा सद्धर्मरक्षक होते हुए रत्नाकरस्वरूप हैं॥1052॥

मैंने शास्ता के धर्म का पूर्ण अभ्यास कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥1053॥ ..आनन्द स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥

इस निपात की सूची- इस निपात में 1. पुष्य, 2. उपतिष्य एवं 3. आनन्द -ये तीन स्थविर ही वर्णित हैं। तथा इस निपात में एक सौ पाँच गाथाएँ वर्णित हैं॥ ●

साधक को समूह का नेतृत्व नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे साधक का मन विभक्त हो जाने से उसकी साधना में विघ्न होता है। इस लिये समूह का एकत्र करना दुःखास्पद ही होता है -यह विचार कर मैं समूह के साथ नहीं रहना चाहता॥1054॥

साधक को गृहस्थों के घरों में अधिक नहीं जाना चाहिये, इससे साधक का ध्यान बँट जाता है तथा साधना में विघ्न होने लगता है। ऐसा आवागमन से वासना के कारण वह उत्कण्ठित होने लगता है तथा वह सुखप्रद साधनावस्था में नहीं रह पाता जो उस के लिये हितकारक है॥1055॥

''पङ्कोति हि नं अवेदयुं, यायं वन्दनपूजना कुलेसु।
सुखुमं सल्ल दुरुब्बहं, सक्कारो कापुरिसेन दुज्जहो॥1056॥
''सेनासनम्हा ओरुय्ह, नगरं पिण्डाय पाविसिं।
भुञ्जन्तं पुरिसं कुट्ठिं, सक्कच्चं तं उपट्ठहिं॥1057॥
''सो मे पक्केन हत्थेन, आलोपं उपनामयि।
आलोपं पक्खिपन्तस्स, अङ्गुलि चेत्थ छिज्जथ॥1058॥
''कुट्टमूलञ्च निस्साय, आलोपं तं अभुञ्जिसं।
भुञ्जमाने वा भुत्ते वा, जेगुच्छं मे न विज्जति॥1059॥
''उत्तिट्ठपिण्डो आहारो, पूतिमुत्तञ्च ओसधं।
सेनासनं रुक्खमूलं, पंसुकूलञ्च चीवरं।
यस्सेते अभिसम्भुत्वा, स वे चातुद्दिसो नरो॥1060॥

(संस्कृतच्छाया)- ''पङ्क इति हि तं अवादिषु, येयं वन्दनपूजना कुलेषु।
सूक्ष्मं शल्यं दुर्वहम्, सत्कारः कापुरुषेण दुर्जहः॥1056॥
''शयनासनात् अवरुह्य, नगरं पिण्डाय प्राविशम्।
भुञ्जन्तं पुरुषं कुष्ठम्, सत्कृत्यं तम् उपास्थाम्॥1057॥
''सो मे पक्वहस्ताभ्याम्, अलोपम् उपानामयत्।
आलोपं प्रक्षिपन्तस्य, अङ्गुलि चात्र छिद्यत्॥1058॥
''कुष्ठमूलञ्च निस्राय, आलोपं तम् अभुञ्जिसम्।
भुञ्जमाने वा भुङ्क्ते वा, जुगुप्सा मे न विद्यते॥1059॥
''उतिष्ठपिण्ड आहारः, पूतिमूत्रञ्च औषधम्।
शयनासनं वृक्षमूलम्, पांशुकूलञ्च चीवरम्।
यस्यैते अभिसंभुज्य, स वै चतुर्दिशा नरः॥1060॥

(हिन्दी)- इसी लिये गृहस्थों के घरों से प्राप्त होने वाली अधिक पूजा-वन्दना को मुनियों ने 'पंक' कहा है। यह सत्कार ऐसा सूक्ष्म कण्टक है जिस का निकालना कठिन होता है; क्योंकि कायर साधक सत्कार का परित्याग बहुत कठिनता से कर पाते हैं॥1056॥

मैंने शयनासन से उठकर भिक्षा हेतु नगर में प्रवेश किया। वहाँ मैंने एक कुष्ठरोगी को भोजन करते हुए देखा। मैं सावधानी से उसके पास गया॥1057॥

उसने मुझको अपने कुष्ठरोगग्रस्त हाथ से कुछ भोजन दिया। वह भोजन दे रहा था कि उसकी एक गली हुई अंगुली भी भोजन के साथ ही मेरे पात्र में गिर गयी॥1058॥

किसी दीवाल के सहारे बैठ कर, मैंने वह भोजन कर लिया। वह भोजन खाते समय या खाने के बाद मुझको कोई ग्लानि नहीं हुई॥1059॥

जो भिक्षु प्रत्येक घर में चारिका करता हुआ भिक्षा करता है, औषध के रूप में गोमूत्र का उपयोग करता है, वृक्षों के नीचे सोता है, गलियों से चिथड़े उठाकर अपने चीवर के लिये प्रयोग करता है। ऐसा भिक्षु इन वस्तुओं से सन्तुष्ट रहता हुआ कहीं भी चारों दिशाओं में भ्रमण करता हुआ सुख ही पाता है॥1060॥

''यत्थ एके विहञ्ञन्ति, आरुहन्ता सिलुच्चयं।
तस्स बुद्धस्स दायादो, सम्पजानो पतिस्सतो।
इद्धिबलेनुपत्थद्धो , कस्सपो अभिरूहति॥1061॥
''पिण्डपातपटिक्कन्तो , सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, पहीनभयभेरवो॥1062॥
''पिण्डपातपटिक्कन्तो, सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, डय्हमानेसु निब्बुतो॥1063॥
''पिण्डपातपटिक्कन्तो, सेलमारुय्ह कस्सपो।
झायति अनुपादानो, कतकिच्चो अनासवो॥1064॥
''करेरिमालावितता , भूमिभागा मनोरमा।
कुञ्जराभिरुदा रम्मा, ते सेला रमयन्ति मं॥1065॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यत्र एके विहन्यन्ति, आरोहन्तः शिलोच्चयम्।
तस्य बुद्धस्य दायादः, सम्प्रजानः प्रतिस्मृतः
ऋद्धिबलेनोपस्तम्भतः, काश्यप अभिरोहति॥1061॥
''पिण्डपातप्रतिक्रान्तः, शैलमारुह्य काश्यपः।
ध्यायते अनुपादानः, प्रहीनभयभैरवः॥1062॥
''पिण्डपातप्रतिक्रान्तः, शैलमारुह्य काश्यपः।
ध्यायते अनुपादानः, दह्यमानेषु निर्वृतः॥1063॥
''पिण्डपातप्रतिक्रान्तः, शैलमारुह्य काश्यपः।
ध्यायते अनुपादानः, कृतकृत्य अनास्रवः॥1064॥
''करेरिमालाविस्तृताः, भूमिभागाः मनोरमाः।
कुञ्जराभिरुता रम्या, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1065॥

(हिन्दी)- जहाँ कुछ साधक किसी पर्वत पर साधना हेतु आरोहण करने में कष्ट पाते हैं वहाँ यह बुद्धशिष्य (काश्यप) स्मृतिसम्प्रजन्यपूर्वक स्थिर भाव से आरोहण करता हुआ सरलता से चढ़ जाता है॥1061॥

भिक्षाकर्म से निवृत्त हो कर यह काश्यप ऐसे पर्वत पर आरोहण कर निर्भीक हो कर अनासक्त भाव से साधनारत रहता है॥1062॥

भिक्षा कर्म से निवृत होकर यह काश्यप ऐसे पर्वत पर आरोहण कर निर्भीक हो कर अनासक्त भाव से साधनारत है। जबकि अन्यलोग संसार की ज्वालाओं में जल रहे हैं, परन्तु यह काश्यप शान्त है॥1063॥

भिक्षा कर्म से निवृत होकर यह काश्यप ऐसे पर्वत पर आरोहण कर निर्भीक हो कर अनासक्त भाव से साधनारत है। यह चित्तविकार क्षीण होने के कारण कृतकृत्य हो चुका है॥1064॥

ऐसे पर्वत जहाँ स्थान स्थान पर करेरिवृक्ष खड़े हों, जहाँ स्थान स्थान पर हाथियों की चिंघाड़ सुनायी दे रही हो, मुझे साधना हेतु बहुत अनुकूल प्रतीत होते हैं॥1065॥

''नीलब्भवण्णा रुचिरा, वारिसीता सुचिन्धरा।
इन्दगोपकसञ्छन्ना, ते सेला रमयन्ति मं॥1066॥
''नीलब्भकूटसदिसा, कूटागारवरूपमा।
वारणाभिरुदा रम्मा, ते सेला रमयन्ति मं॥1067॥
''अभिवुट्ठा रम्मतला, नगा इसिभि सेविता।
अब्भुन्नदिता सिखीहि, ते सेला रमयन्ति मं॥1068॥
''अलं झायितुकामस्स, पहितत्तस्स मे सतो।
अलं मे अत्थकामस्स, पहितत्तस्स भिक्खुनो॥1069॥
''अलं मे फासुकामस्स, पहितत्तस्स भिक्खुनो।
अलं मे योगकामस्स, पहितत्तस्स तादिनो॥1070॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नीलाभ्रवर्णाः रुचिराः, वारिशीताः शुचिरन्धराः।
इन्दगोपकसंछन्नाः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1066॥
''नीलाभ्रकूटसदृशा, कूटागारवरोपमा।
वारणाभिरुताः रम्याः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1067॥
''अभिवृष्टाः रम्यतलाः, नगा ऋषिभिः सेविताः।
अब्भुन्नदिता शिखिभिः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1068॥
''अलं ध्यायतुकामाय, प्रहितात्मन: मे स्मृतः।
अलं मे अर्थकामस्य, प्रहितात्मनः भिक्षोः॥1069॥
''अलं मे *फासु*(सुख)कामस्य, प्रहितात्मनः भिक्षो:।
अलं मे योगकामस्य, प्रहितात्मनः *तादिनो*॥1070॥

(हिन्दी)- ऐसे पर्वत, जो नीलमेघों के तुल्य वर्ण वाले हों जहाँ स्थान-स्थान पर स्वच्छ एवं शीतजल के स्रोत हों, जहाँ स्थान स्थान पर इन्द्रगोप (बीरबहूटी) बिछी हुई हों, मुझे साधना हेतु बहुत अनुकूल प्रतीत होते हैं॥1066॥

ऐसे पर्वत, जिनके शिखर नील मेघों से आच्छन्न हो कर प्रासादों के ऊँचे शिखरों के समान प्रतीत हो रहे हों, हाथियों की आह्लादकारी चिंघाड़ से युक्त हों, मुझे साधनाहेतु बहुत अनुकूल प्रतीत होते हैं॥1066॥

ऐसे पर्वत जहाँ की भूमि अभी अभी वर्षा होने के कारण रमणीय प्रतीत होती है, और जहाँ, स्थान स्थान पर ऋषिजन साधनारत हैं तथा स्थान स्थान जहाँ मयूर नृत्य कर रहे हैं, मुझे साधना हेतु बहुत अनुकूल प्रतीत होते हैं॥1068॥

मेरे द्वारा स्थिरचित्त एवं स्मृतिमान् होकर साधना करने के लिये ये पर्वत मेरे अर्थसाधक हैं॥1069॥

मेरे द्वारा स्थिरचित्त एवं स्मृतिमान् होकर सुखपूर्वक साधनाहेतु या योगाभ्यास हेतु ये पर्वत मेरे अर्थ साधक हैं॥1070॥

''उमापुप्फेन समाना, गगनावब्भछादिता।
नानादिजगणाकिण्णा , ते सेला रमयन्ति मं॥1071॥
''अनाकिण्णा गहट्ठेहि, मिगसङ्घनिसेविता।
नानादिजगणाकिण्णा, ते सेला रमयन्ति मं॥1072॥
''अच्छोदिका पुथुसिला, गोनङ्गुलमिगायुता।
अम्बुसेवालसञ्छन्ना, ते सेला रमयन्ति मं॥1073॥
''न पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, रति मे होति तादिसी।
यथा एकग्गचित्तस्स, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥1074॥
''कम्मं बहुकं न कारये, परिवज्जेय्य जनं न उय्यमे।
उस्सुक्को सो रसानुगिद्धो, अत्थं रिञ्चति यो सुखावहो॥1075॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उमापुष्पेन समानाः, गगनाभ्र इव आच्छादिताः।
नानाद्विजगणाकीर्णाः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1071॥
''अनाकीर्णाः गृहस्थैः, मृगसङ्घनिसेविताः।
नानाद्विजगणाकीर्णाः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1072॥
''स्वच्छोदकाः पृथुशिलाः, गोनाङ्गुलमृगायुक्ताः।
अम्बुशैवालसञ्छन्नाः, ते शैलाः रमन्ते माम्॥1073॥
''न पञ्चाङ्गिकेन तुरियेण, रति मे भवति तादृशी।
यथा एकाग्रचित्तस्य, सम्यक् धर्मं विपश्यतः॥1074॥
''कर्मं बहुकं न कारयेत्, परिव्रजेत् जनं न उद्यमे।
उत्सुकः सः रसानुगृद्धः, अर्थं रिञ्चति यः सुखावहो॥1075॥

(हिन्दी)- जहाँ समस्त भूमि अलसी पुष्पों से आच्छादित हो, आकाश भी मेघाच्छन्न हो, विविध पक्षियों के कलरव से युक्त ये पर्वत मेरी साधना के अनुकूल हैं॥1071॥

जहाँ गृहस्थों का आगमन न हो, जहाँ मृगसमूह स्वच्छन्दता से घूम रहा हो, जहाँ ब्राह्मणसमूह ही आता जाता हो-ऐसे रम्य पर्वत मुझ को साधना के अनुकूल प्रतीत होते हैं॥1072॥

जहाँ स्थान स्थान पर स्वच्छ स्रोतों के समीप रमणीय शिलाएँ हों, जहाँ चमरीमृग घूम रहे हों, काई वाले जल से युक्त जलाशयों वाले ये पर्वत मुझ को प्रिय लगते हैं॥1073॥

पंचाङ्गिक वाद्यों की मधुर ध्वनि में मेरा मन उतना नहीं लगता जैसा मैं एकाग्रचित्त होकर समाधि लगा कर प्रसन्न होता हूँ॥1074॥

बहुत से कार्यों में हाथ नहीं डालना चाहिये। यदि दूसरा कोई ऐसा कर रहा हो तो उस को रोकना चाहिये, क्योंकि वह उस के प्रति उत्कण्ठित हो कर उस की वासना में लिप्त होता हुआ अपने उस प्रयोजन से दूर हो जाता है जो उस के लिये सुखोत्पादक है॥1075॥

''कम्मं बहुकं न कारये, परिवज्जेय्य अनत्तनेय्यमेतं।
किच्छति कायो किलमति, दुक्खितो सो समथं न विन्दति॥1076॥
''ओट्ठप्पहतमत्तेन, अत्तानम्पि न पस्सति।
पत्थद्धगीवो चरति, अहं सेय्योति मञ्ञति॥1077॥
''असेय्यो सेय्यसमानं, बालो मञ्ञति अत्तानं।
न तं विञ्ञू पसंसन्ति, पत्थद्धमानसं नरं॥1078॥
''यो च सेय्योहमस्मीति, नाहं सेय्योति वा पन।
हीनो तंसदिसो वाति, विधासु न विकम्पति॥1079॥
''पञ्ञवन्तं तथा तादिं, सीलेसु सुसमाहितं।
चेतोसमथमनुत्तं, तञ्चे विञ्ञू पसंसरे॥1080॥
''यस्स सब्रह्मचारीसु, गारवो नूपलब्भति।
आरका होति सद्धम्मा, नभतो पुथवी यथा॥1081॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कर्मं बहुकं न कारयेत्, परिव्रजेत् अनात्मनेयैतम्।
कृच्छ्रति कायः क्लमथ, दुःखितः सः शमथं न विन्दते॥1076॥
''ओष्ठ्प्रहृतमात्रेण, आत्मानमपि न पश्यति।
प्रस्तब्धग्रीवः चरति, अहं श्रेय इति मन्यते॥1077॥
''अश्रेयः श्रेयसमानम्, बालो मन्यते आत्मानम्।
न तं विज्ञः प्रशंसन्ति, प्रस्तब्धमानसं नरम्॥1078॥
''यश्च श्रेयोऽहमस्मीति, नाहं श्रेय इति वा पुनः।
हीनः तद् सदृशः वाति, विधासु न विकम्पते॥1079॥
''प्रज्ञावन्तं तथा तादिम्, शीलेसु सुसमाहितम्।
चेतोशमथमनुक्तम्, तञ्चेत् विज्ञा: प्रशंसन्ति॥1080॥
''यस्य सब्रह्मचारीसु, गौरवः नोपलभ्यते।
आरात् भवति सद्धर्मात्, नभतः पृथ्वी यथा॥1081॥

(हिन्दी)- बहुत से कार्यों में हाथ नहीं डालना चाहिये। यदि दूसरा कोई ऐसा कर रहा हो तो उस को रोकना चाहिये, क्योंकि इससे साधक का शरीर थक जाता है और ऐसे होने पर वह समाधिरत नहीं रह सकता॥1076॥

वह ओष्ठ हिलाने मात्र का भी आत्मचिन्तन नहीं कर पाया है, परन्तु वह जनसमूह में अभिमानवश अपनी ग्रीवा ऊँची उठा उठा कर 'मैं श्रेष्ठ हूँ' ऐसा कहता है॥1077॥

जो मूर्ख अप्रशस्त हो कर भी स्वयं को श्रेयस्कर मानता है, ऐसे स्तब्ध मनुष्य की विद्वान् लोग प्रशंसा नहीं करते॥1078॥

जो प्रशस्त हो कर भी नम्रता एवं सङ्कोच वश अपने को अप्रशस्त ही मानता है, वह कैसी भी स्थिति आने पर विचलित नहीं होता॥1079॥

विद्वज्जन ऐसे ही साधक की प्रशंसा करते हैं जो प्रज्ञावान्, ज्ञानी, शील-सदाचार से युक्त एवं मन की शान्ति पा चुका हो॥1080॥

जिसके हृदय में अपने सहपाठियों के प्रति सम्मान भावना नहीं है, वह निर्वाण से उतना ही दूर है जितना कि आकाश से पृथ्वी दूर होती है॥1081॥

''येसञ्च हिरि ओत्तप्पं, सदा सम्मा उपट्ठितं।
विरूळ्हब्रह्मचरिया ते, तेसं खीणा पुनब्भवा॥1082॥
''उद्धतो चपलो भिक्खु, पंसुकूलेन पारुतो।
कपीव सीहचम्मेन, न सो तेनुपसोभति॥1083॥
''अनुद्धतो अचपलो, निपको संवुतिन्द्रियो।
सोभति पंसुकूलेन, सीहोव गिरिगब्भरे॥1084॥
''एते सम्बहुला देवा, इद्धिमन्तो यसस्सिनो।
दसदेवसहस्सानि, सब्बे ते ब्रह्मकायिका॥1085॥
''धम्मसेनापतिं वीरं, महाझायिं समाहितं।
सारिपुत्तं नमस्सन्ता, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता॥1086॥
''नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते नाभिजानाम, यम्पि निस्साय झायति॥1087॥

(संस्कृतच्छाया)- ''येषां च ह्री अवत्राप्यम्, सदा सम्यक् उपस्थितम्।
विरुढः ब्रह्मचर्येण ते, तेषां क्षीणाः पुनर्भवाः॥1082॥
''उद्धृतः चपलः भिक्षु, पंशुकूलेन प्रावृतः।
कपीव सिंहचर्मणा, न सः तेनोपशोभते॥1083॥
''अनोद्धृत अचपलः, निपुणः संवृतेन्द्रियः।
शोभते पंशुकूलेन, सिंह इव गिरिगह्वरे॥1084॥.
''एता सम्बहुलाः देवाः, ऋद्धिमन्तः यशस्विनः।
दशदेवसहस्राणि, सर्वाः ताः ब्रह्माकायिकाः॥1085॥
''धर्मसेनापतिं वीरम्, महाध्यायीं समाहितम्।
सारिपुत्रं नमस्यन्तः, तिष्ठन्ति प्राञ्जलीकृताः॥1086॥
''नमः ते पुरुषाजन्य!, नमः ते पुरुषोत्तम!।
यं ते नाभिजानामः, यमपि निश्राय ध्यायते॥1087॥

(हिन्दी)- जिन के हृदय में लज्जा, पापभीरूता आदि गुण भलीभाँति उपस्थित हैं वैसे साधक धर्मसाधना करते हुए अपनी पुनर्जन्मपरम्परा को क्षीण कर लेते हैं॥1082॥

कोई भिक्षु पंशुकूल धारण कर के भी यदि उद्धत एवं चंचल है तो वह वैसा ही है जैसे कोई वानर सिंहचर्म से अपने शरीर को आवृत कर ले, परन्तु वह इस से कोई शोभा प्राप्त नहीं कर पाता॥1083॥

अनुद्धत एवं शान्त, साधनाकुशल एवं संयतेन्द्रिय भिक्षु पंशुकूल पहन कर समाज में वैसे ही शोभा पाता है जैसे सिंह किसी गुफा में बैठा हुआ शोभित होता है॥1084॥

ये बहुत से ऋद्धिमान् एवं यशस्वी देवता, दश हजार अन्य देवता तथा सभी ब्रह्मकायिक देवता॥1085॥

महान् ध्यानाभ्यासी, समाहितेन्द्रिय, वीर, धर्मसेनापति सारिपुत्र को हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए खड़े रहते हैं॥1086॥

वे कहते हैं"- हे पुरूषश्रेष्ठ! हे पुरूषोत्तम! आप को बार बार प्रणाम है। आप किस आलम्बन का आधार ले कर साधना करते हैं- यह हम नहीं जान पाये॥1087॥

''अच्छेरं वत बुद्धानं, गम्भीरो गोचरो सको।
ये मयं नाभिजानाम, वालवेधिसमागता'॥1088॥
''तं तथा देवकायेहि, पूजितं पूजनारहं।
सारिपुत्तं तदा दिस्वा, कप्पिनस्स सितं अहु॥1089॥
''यावता बुद्धखेत्तम्हि, ठपयित्वा महामुनिं।
धुतगुणे विसिट्ठोहं, सदिसो मे न विज्जति॥1090॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥1091॥
''न चीवरे न सयने, भोजने नुपलिम्पति।
गोतमो अनप्पमेय्यो, मुळालपुप्फं विमलंव।
अम्बुना नेक्खम्मनिन्नो, तिभवाभिनिस्सटो॥1092॥

(संस्कृतच्छाया)- ''आश्चर्यं वत बुद्धानाम्, गम्भीरः गोचरः स्वकः।
ये अस्माभिः नाभिजानामः, वालवेधिसमागताः॥1088॥
''तं तथा देवकायैः, पूजितं पूजनार्हम्।
सारिपुत्तं तदा दृष्ट्वा, *कप्पिन* स्मितमभूत्॥1089॥
''यावता बुद्धक्षेत्रे, स्थाप्य महामुनिः।
धुतगुणे विशिष्टोऽहम्, सदृशः मे न विद्यते॥1090॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अवहृतः गरुकः भारः, नास्ति इदानीं पुनर्भवः॥1091॥
''न चीवरे न शयने, भोजने नोपलिम्पति।
गौतम अनप्रमेयः, मृणालपुष्पं विमलमिव।
अम्बुना नैष्क्रम्यनिम्नः, त्रिभवात् अभिनिसृष्टः॥1092॥

(हिन्दी)- बुद्धों का अपना साधनाक्षेत्र अतिशय गम्भीर है, आश्चर्यमय है। बहुत अधिक सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए भी हम नहीं समझ सके॥1088॥

उन पूजनीय सारिपुत्र को देवताओं द्वारा इस प्रकार पूजित होते देख कर कप्पिन मन्द मन्द मुस्कराये॥1089॥ तथा यह बोले"- समस्त बुद्ध क्षेत्र में एकमात्र महामुनि बुद्ध ही श्रेष्ठ है। उस क्षेत्र के अतिरिक्त शेष धुतगुणों की साधना में मेरे समान कोई नहीं है॥1090॥

मैनें शास्ता के धर्म का पूर्ण परिचय कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥1091॥

भगवान् बुद्ध भोजन, शयन या चीवर में कहीं भी उसी प्रकार लिप्त नहीं होते, जैसे पद्मपत्र जल में रहता हुआ भी जल में लिप्त नहीं होता। अतः भगवान् बुद्ध अप्रमेय है। वे तीनों भवों से पार हो चुके हैं॥1092॥

''सतिपट्ठानगीवो सो, सद्धाहत्थो महामुनि।
पञ्ञासीसो महाञाणी, सदा चरति निब्बुतो''ति॥1093॥ ... महाकस्सपो थेरो...।
चत्तालीसनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – चत्तालीसनिपातम्हि, महाकस्सपसव्हयो।
एकोव थेरो गाथायो, चत्तासीत्र दुवेपि चाति॥

19. पञ्ञासनिपातो

1. तालपुटत्थेरगाथा-

''कदा नुहं पब्बतकन्दरासु, एकाकियो अद्दुतियो विहस्सं।
अनिच्चतो सब्बभवं विपस्सं, तं मे इदं तं नु कदा भविस्सति॥1094॥
''कदा नुहं भिन्नपटन्धरो मुनि, कासाववत्थो अममो निरासो।
रागञ्च दोसञ्च तथेव मोहं, हन्त्वा सुखी पवनगतो विहस्सं॥1095॥
''कदा अनिच्चं वधरोगनीळं, कायं इमं मच्चुजरायुपद्दुतं।
विपस्समानो वीतभयो विहस्सं, एको वने तं नु कदा भविस्सति॥1096॥

(संस्कृतच्छाया)- ''स्मृतिप्रस्थानग्रीवा सः, श्रद्धाहस्तो महामुनिः।
प्रज्ञाशीशो महाज्ञानी, सदा चरति निर्वृतः"इति॥1093॥

तत्रोद्दानं- चत्वरिंशत् निपाते, *महाकस्सप*साह्वयः।
एक एव स्थविरः गाथा, चत्वारिंशत् द्वेऽपि चेति॥ ●

1. ''कदान्वहं पर्वतकन्दरासु, एकाकी अद्वितीयः विहरिष्यामि।
अनित्यतः सर्वभवं विपश्यन्, तं मे इदं तद् नु कदा भविष्यति॥1094॥
''कदान्वहं भिन्नपटंधरो मुनि, काषायवस्त्र अमम: निराशः।
रागं दोषञ्च तथैव मोहम्, हत्वा सुखी पवनगतः विहरिष्यामि॥1095॥
''कदा अनित्यं वधरोगनीड़, कायं इदं मृत्युजरायूपद्रुतम्।
विपश्यमानः वीतभयः विहरिष्यामि, एकः वने तद नु कदा भविष्यति॥1096॥

(हिन्दी)- स्मृतिप्रस्थान ही उन महामुनि की ग्रीवा है, श्रद्धा हाथ हैं। प्रज्ञा मस्तक है। वे महाज्ञानी हैं। इस धर्मकाय से, वे निर्वाण प्राप्त कर सर्वत्र विचरण करते हैं॥1093॥....महाकाश्यप स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात के स्थविर तथा गाथाओं की सूची- इस चालीसवें निपात में महाकाश्यप नामक एक ही स्थविर का वर्णन हुआ है। तथा इस निपात में चालीस गाथाएँ कहीं गयीं हैं, साथ ही दो अर्धाली (आधी गाथाएँ) भी हैं॥ ●
मैं पर्वतों की गुफाओं में एकाकी अद्वितीय रहता हुआ साधना करने में कब समर्थ होऊँगा! तथा इस समस्त उत्पन्न संसार को अनित्य मानता हुआ साधना करने योग्य कब हो पाऊँगा! ॥1094॥
कब मैं फटे पुराने कपड़े पहन कर, या काषाय वस्त्र पहन कर ममत्व एवं आशा रहित भावना से, रागद्वेष एवं मोह का त्याग करते हुए सुखी हो कर किसी पर्वत की तलहटी में बैठ कर साधना कर पाऊँगा! ॥1095॥
कब मैं किसी वन में इस मृत्यु एवं रोग के गृहरूप, मृत्यु एवं वृद्धत्व से पीड़ित इस देह को अनित्य मानता हुआ निर्भीक तथा एकाकी हो कर साधना कर सकूँगा॥1096॥

‘‘कदा नुहं भयजननिं दुखावहं, तण्हालतं बहुविधानुवत्तनिं।
पञ्ञामयं तिखिणमसिं गहेत्वा, छेत्वा वसे तम्पि कदा भविस्सति॥1097॥
‘‘कदा नु पञ्ञामयमुग्गतेजं, सत्थं इसीनं सहसादियित्वा।
मारं ससेनं सहसा भञ्जिस्सं, सीहासने तं नु कदा भविस्सति॥1098॥
‘‘कदा नुहं सब्भि समागमेसु, दिट्ठो भवे धम्मगरूहि तादिभि।
याथावदस्सीहि जितिन्द्रियेहि, पधानियो तं नु कदा भविस्सति॥1099॥
‘‘कदा नु मं तन्दि खुदा पिपासा, वातातपा कीटसरीसपा वा।
न बाधयिस्सन्ति न तं गिरिब्बजे, अत्थत्थियं तं नु कदा भविस्सति॥1100॥
‘‘कदा नु खो यं विदितं महेसिना, चत्तारि सच्चानि सुदुद्दसानि।
समाहितत्तो सतिमा अगच्छं, पञ्ञाय तं तं नु कदा भविस्सति॥1101॥

(संस्कृतच्छाया)- ‘‘कदान्वहं भयाजननीं दुखावहम्, तृष्णालतां बहुविधानुवर्तनीम्।
प्रज्ञामयं तीक्ष्णमसिं गृहीत्वा, छित्वा वसेत् तदपि कदा भविष्यति॥1097॥
‘‘कदा नु प्रज्ञामयमुग्रतेजसम्, शस्त्रं ऋषीणां सहसादाय।
मारं ससेनां सहसा भङ्क्ष्यामि, सिंहासने तद् नु कदा भविष्यति॥1098॥
‘‘कदान्वहं सभ्यसमागमेषु, दृष्टः भवे धर्मगुरुभिः तादिभिः।
यथार्थदर्शीभिः जितेन्द्रियैः, प्रध्यायिनः तद् नु कदा भविष्यति॥1099॥
‘‘कदा नु मां तन्द्रीं क्षुधाः पिपासाः, वातातपाः कीटसरीसृपाः वा।
न बाधयिस्यन्ति न तं गिरिव्रजे, अर्थाथिकं तद् नु कदा भविष्यति॥1100॥
‘‘कदा नु खलु यं विदितं महर्षेः, चत्वारि सत्यानि सुदुर्दशानि।
समाहितात्मा स्मृतिमान् अगच्छम्, प्रज्ञया तं तं नु कदा भविष्यति॥1101॥

(हिन्दी)- कब मैं प्रज्ञारूप, तीक्ष्ण तलवार ले कर इस भयोत्पादक, दुःखदायक, विविध प्रकार से बार बार अनुवर्तन करने वाली इस तृष्णा को काट कर साधना करने में समर्थ हो पाऊँगा! ॥1097॥
कब मैं ऋषियों का प्रज्ञा रूप तीक्ष्ण शस्त्र ग्रहण कर सेनासहित मार को बलपूर्वक नष्ट कर सिंहशय्या आसन से साधना कर पाऊँगा! ॥1098॥
कब मैं धर्मोपदेशक यथार्थदर्शी, संयतेन्द्रिय एवं मानी सज्जनों से मिलने पर अपनी भवविषयक जिज्ञासा शान्त कर अपने चित्तविकारों का प्रदहन कर पाऊँगा! ॥1099॥
गिरिव्रज में साधना करता हुआ मैं कब इस स्थिति में पहुँच पाऊँगा कि निद्रा, क्षुधा, पिपासा, सर्दी, गर्मी, साँप बिच्छु के दंश आदि बाधाएँ मुझ को उद्विग्न न करें!॥1100॥
कब मैं महर्षि द्वारा साक्षात्कृत एवं दुर्ज्ञेय आर्य सत्यचतुष्टय का ज्ञान समाहितेन्द्रिय एवं स्मृतिमान् हो कर, प्रज्ञा द्वारा प्राप्त कर पाऊँगा!॥1101॥

''कदा नु रूपे अमिते च सद्दे, गन्धे रसे फुसितब्बे च धम्मे।
आदित्ततोहं समथेहि युत्तो, पञ्ञाय दच्छं तदिदं कदा मे॥1102॥
''कदा नुहं दुब्बचनेन वुत्तो, ततोनिमित्तं विमनो न हेस्सं।
अथो पसत्थोपि ततोनिमित्तं, तुट्ठो न हेस्सं तदिदं कदा मे॥1103॥
''कदा नु कट्ठे च तिणे लता च, खन्धे इमेहं अमिते च धम्मे।
अज्झत्तिकानेव च बाहिरानि च, समं तुलेय्यं तदिदं कदा मे॥1104॥
''कदा नु मं पावुसकालमेघो, नवेन तोयेन सचीवरं वने।
इसिप्पयातम्हि पथे वजन्तं, ओवस्सते तं नु कदा भविस्सति॥1105॥
''कदा मयूरस्स सिखण्डिनो वने, दिजस्स सुत्वा गिरिगब्भरे रुतं।
पच्चुट्ठहित्वा अमतस्स पत्तिया, संचिन्तये तं नु कदा भविस्सति॥1106॥
''कदा नु गङ्गं यमुनं सरस्सतिं, पातालखित्तं वळवामुखं च।
असज्जमानो पतरेय्यमिद्धिया, विभिंसनं तं नु कदा भविस्सति॥1107॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कदा नु रूपे अमिते (प्रचुरे) च शब्दे, गन्धे रसे स्प्रष्टव्ये च धर्मे।
आदीप्तोऽहं शमथैः युक्तः, प्रज्ञया द्रक्ष्यामि तदिदं कदा मे॥1102॥
''कदान्वहं दुर्वचनेन उक्तः, ततो निमित्तं विमनो न भविष्यामि।
अथ प्रशस्तोऽपि ततो निमित्तम्, तुष्टो न भविष्यामि तदिदं कदा मे॥1103॥
''कदा नु काष्ठे च तृणे लता च, स्कन्धे इमेऽहं अमिते च धर्मे।
आध्यात्मिकानेव च बाह्यानि च, समं तोलयेयं तदिदं कदा मे॥1104॥
''कदा नु मम प्रावृषकालमेघः, नवेन तोयेन सचीवरं वने।
ऋषिप्रयाते पथे व्रजन्तम्, अववर्षते तं नु कदा भविष्यति॥1105॥
''कदा मयूरस्य शिखिण्डिनो वने, द्विजस्य श्रुत्वा गिरिगह्वरे रुतम्।
प्रत्युत्थाय अमृतस्य प्राप्तये, संचिन्तये तन्नु कदा भविष्यति॥1106॥
''कदा नु गङ्गायमुनासरस्वतीम्, पातालक्षिप्तं वडवामुखञ्च।
असजन् प्रतरेयं ऋद्ध्या, बीभत्सं तन्नु कदा भविष्यति॥1107॥

(हिन्दी)- कब मैं रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्प्रष्टव्य-इन धर्मों के विषय में आदित्त-परियायसुत्त के माध्यम से समाधियुक्त हो कर प्रज्ञा द्वारा जान पाऊँगा? — ऐसी मेरी स्थिति कब बन पायेगी!॥1102॥

कब मैं इस स्थिति में पहुँचूँगा कि अपमानजनक शब्द सुन कर भी उद्विग्न न होऊँ? या किसी के द्वारा मेरी प्रशंसा किये जाने पर भी मुझ को गर्व न हो?॥1103॥

कब मैं साधनाभ्यास द्वारा इस स्थिति में पहुँचूँगा कि काष्ठ, तृण, लता, स्कन्ध आदि समस्त आन्तरिक एवं बाह्य लौकिक धर्मों में मेरी मानसिक दशा समान बनी रही॥1104॥

मेरा वैसा समय कब आयेगा जब मैं ऋषियों द्वारा सेवित मार्ग पर चलता हुआ वर्षा ऋतु में मेघों के जल से चीवरों सहित भीगता हुआ वन में पहुँचूँ?॥1105॥

कब मैं पर्वतों की गुफाओं में मयूर पक्षी के कण्ठ से निःसृत शब्द की प्रतिध्वनि सुन कर निर्वाणप्राप्ति हेतु शीघ्रतापूर्वक चिन्तन करूँगा?॥1106॥

कब मैं गङ्गा, यमुना एवं सरस्वती को पाताल में या वाडवाग्नि के मुख में जाते हुए देख कर भी निरासक्त रहता हुआ ऋद्धि द्वारा इस भयानक दृश्य को दूर हटाने में समर्थ होऊँगा! ऐसा समय कब आयेगा?॥1107॥

''कदा नु नागोव असङ्गचारी, पदालये कामगुणेसु छन्दं।
निब्बज्जयं सब्बसुभं निमित्तं, झाने युतो तं नु कदा भविस्सति॥1108॥
''कदा इणट्टोव दलिद्दको निधिं, आराधयित्वा धनिकेहि पीळितो।
तुट्ठो भविस्सं अधिगम्म सासनं, महेसिनो तं नु कदा भविस्सति॥1109॥
''बहूनि वस्सानि तयाम्हि याचितो, 'अगारवासेन अलं नु ते इदं'।
तं दानि मं पब्बजितं समानं, किंकारणा चित्त तुवं न युञ्जसि॥1110॥
''ननु अहं चित्त तयाम्हि याचितो, 'गिरिब्बजे चित्रछदा विहङ्गमा'।
महिन्दघोसत्थनिताभिगज्जिनो, ते तं रमेस्सन्ति वनम्हि झायिनं॥1111॥
''कुलम्हि मित्ते च पिये च ञातके, खिड्डारतिं कामगुणञ्च लोके।
सब्बं पहाय इममज्झुपागतो, अथोपि त्वं चित्त न मय्ह तुस्ससि॥1112॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कदा नु नाग इव असङ्गचारी, प्रदारये कामगुणेषु छन्दम्।
निर्वर्ज्य सर्वशुभं निमित्तम्, ध्याने युतः तन्नु कदा भविष्यति॥1108॥
''कदा ऋणस्थेव दरिद्रकः निधिम्, आराध्य धनिकैः पीडितः।
तुष्टः भविष्यामि अधिगम्य शासनम्, महर्षेः तन्नु कदा भविष्यति॥1109॥
''बहूनि वर्षाणि त्वयाऽस्मि याचितः, अगारवासेन अलं नु ते इदम्।
तम् इदानीं मं प्रव्रजितं समानम्, किं कारणं चित्त! त्वं न युञ्जसि॥1110॥
''नन्वहं चित्त! त्वयाऽस्मि याचितः, गिरिव्रजे चित्रच्छदाः विहङ्गमाः।
महेन्द्रघोषार्थनिताभिगर्जनः, ते तं रंस्यते वने ध्यायिनाम्॥1111॥
''कुले मित्रे प्रिये च ज्ञातिके, क्रीडारतिं कामगुणञ्च लोकम्।
सर्वं प्रहाय इममद्य उपागतः, अथ अपि त्वं चित्त! न मह्यं तुष्यसि॥1112॥

(हिन्दी)- कब मैं हाथी के समान एकाकी विचरण करता हुआ कामभोगों में अपनी स्वेच्छाचारिता को समाप्त कर सर्वविध कुशलकर्मों की प्राप्ति हेतु ध्यानरत होऊँगा?॥1108॥

धनिकों से धन का ऋण लेकर पीड़ित होते हुए किसी निर्धन के समान मैं भगवान् बुद्ध का शासन स्वीकार कर कब सन्तुष्ट हो पाऊँगा?॥1109॥

रे चित्त! बहुत समय तक तुमने मुझको गृह में रहने का परामर्श दिया है उस को मैं मानता रहा। अब आज मुझ प्रव्रजित का तुम किस कारण से साथ नहीं दे रहे हो॥1110॥

रे चित्त! बहुत समय से मैंने तेरे कहने से गिरिव्रज के चित्रों में अङ्कित पक्षियों को देखा है। अब मेरे द्वारा वन में साधना करते समय मेघों की गर्जना सुन कर प्रतिशब्द करने वाले उन पक्षियों का कलरव वहाँ सुन कर तू सुखी हो पायेगा॥1111॥

रे चित्त! मैंने अपने प्रिय मित्र एवं सम्बन्धिजनों का, जिनके साथ मैंने कामभोग एवं क्रीडारति का उपभोग किया था, त्याग कर आज मैं इस स्थिति में आया हूँ। इतने पर भी तुझको सन्तोष नहीं है॥1112॥

''ममेव एतं न हि त्वं परेसं, सन्नाहकाले परिदेवितेन किं।
सब्बं इदं चलमिति पेक्खमानो, अभिनिक्खमिं अमतपदं जिगीसं॥1113॥
''सुयुत्तवादी द्विपदानमुत्तमो, महाभिसक्को नरदम्मसारथि।
'चित्तं चलं मक्कटसन्निभं इति, अवीतरागेन सुदुन्निवारयं'॥1114॥
''कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा, अविद्दसू यत्थ सिता पुथुज्जना।
ते दुक्खमिच्छन्ति पुनब्भवेसिनो, चित्तेन नीता निरये निराकता॥1115॥
''मयूरकोञ्चाभिरुतम्हि कानने, दीपीहि ब्यग्घेहि पुरक्खतो वसं।
काये अपेक्खं जह मा विराधय', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1116॥
''भावेहि झानानि च इन्द्रियानि च, बलानि बोज्झङ्गसमाधिभावना।
तिस्सो च विज्जा फुस बुद्धसासने', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1117॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ममैव एतं न हि त्वं परेषाम्, सन्नाहकाले परिदेवतेन किम्।
सर्वम् इदं चलमिति प्रेक्षमाणः, अभिन्यक्रमिषममृतपदं पर्येषणम्॥1113॥
''सुयुक्तवादी द्विपदानामुत्तमः, महाभिषक् नरदम्यसारथिः।
चित्तं चलं मर्कटसन्निभम् इति, अवीतरागेण सुदुन्निवारयम्॥1114॥
''कामाः हि चित्राः मधुराः मनोरमाः, अविद्वत्सु यत्र सिताः पृथुजनाः।
ते दुःखमिच्छन्ति पुनर्भवेषिणः, चित्तेन नीताः निरये निराकृताः॥1115॥
''मयूरक्रोञ्चाभिरुते कानने, दीपीभिः व्याघ्रैः पुरस्कृतः वसम्।
काये अपेक्षां जह मा विराधय, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1116॥
''भावैः ध्यानानि च इन्द्रियानि च, बालानि बोध्यङ्गसमाधिभावना।
तिस्रश्च विद्याः स्पृश (प्रापय) बुद्धशासने, इतिस्विद मम चित्त! परे न्ययुनक्॥1117॥

(हिन्दी)- मेरे साथ ही नहीं, दूसरों के साथ भी तू ने यही कवच (संसार त्याग से रोकने) का कार्य किया है। मैं अब यह सब कुछ दृश्यमान जगत् विनाश स्वभाव वाला है! यह जान कर, अमृत पद की प्राप्ति हेतु गृहत्याग कर रहा हूँ॥1113॥

क्योंकि युक्तिसङ्गत कहने वाले, मानवश्रेष्ठ, कुशल चिकित्सक एवं जिज्ञासु पुरूषों के अनुशासन में कुशल भगवान् बुद्ध का यही कथन है कि मनुष्य का चित्त वानर के सदृश चंचल है। इस का निरोध करना रागी पुरूष के लिये बहुत कठिन है॥1114॥

ये सांसारिक कामभोग अवश्य मधुर एवं मनोहर लगते हैं, अतः इन पर मूर्ख पृथग्जन ही प्रसन्न एवं आसक्त हो सकते हैं। वे अन्त में चित्त के द्वारा बहकाये जाते हुए दुःखदायी पुनर्जन्म की इच्छा रख कर नरक में जा गिरते हैं॥1115॥

रे चित्त! इस वन में मयूर एवं क्रौंच आदि पक्षियों के शब्द सुनता हुआ तथा व्याघ्र, चीता आदि हिंस्र पशुओं का सामना करता हुआ अब तू इस काया की अपेक्षा छोड़। इन बातों का विरोध न कर। बस! अब बहुत हो चुका, तू मुझे पहले भी बहुत अनुचित परामर्श दे चुका है॥1116॥

रे चित्त! तू ध्यान, इन्द्रियों तथा बलों एवं बोध्यङ्गों की समाधि भावना में लग जा। बुद्धशासन में रत रहता हुआ तीनों विद्याओं की प्राप्ति कर। बस! अब बहुत हो चुका, पहले भी तू मुझको बहुत से अनुचित परामर्श दे चुका है॥1117॥

''भावेहि मग्गं अमतस्स पत्तिया, निय्यानिकं सब्बदुखक्खयोगधं।
अट्ठङ्गिकं सब्बकिलेससोधनं', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1118॥
''दुक्खन्ति खन्धे पटिपस्स योनिसो, यतो च दुक्खं समुदेति तं जह।
इधेव दुक्खस्स करोहि अन्तं', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1119॥
''अनिच्चं दुक्खन्ति विपस्स योनिसो, सुञ्ञं अनत्ताति अघं वधन्ति च।
मनोविचारे उपरुन्ध चेतसो', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1120॥
''मुण्डो विरूपो अभिसापमागतो, कपालहत्थोव कुलेसु भिक्खसु।
युञ्जस्सु सत्थुवचने महेसिनो', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1121॥
''सुसंवुतत्तो विसिखन्तरे चरं, कुलेसु कामेसु असङ्गमानसो।
चन्दो यथा दोसिनपुण्णमासिया', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1122॥

(संस्कृतच्छाया)- ''भावय मार्गम् अमृतस्य प्राप्तये, निर्याणिकं सर्वदुःखक्षयो गधम्।
अष्टाङ्गिकं सर्वक्लेशशोधनम्, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1118॥
''दुःखमिति स्कन्धे प्रतिपश्य योनिशः, यतश्च दुःखम् समुदयति तं जह।
इधैव दुःखस्य कुरु अन्तम्, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1119॥
''अनित्यं दुःखमिति विपश्य योनिशः, शून्यम् अनात्मेति अघं घ्नन्ति च।
मनोविचारान् उपरुन्ध्य चेतसः, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1120॥
''मुण्डो विरूप अभिशापमागतः, कपालहस्त इव कुलेषु भिक्षासु।
युङ्क्ष्व शास्तु वचने महर्षेः, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1121॥
''संसुवृतात्मा विशिखान्तरे चरन्, कुलेषु कामेषु असङ्गमानसः।
चन्द्रो यथा दोषिनपूर्णमास्याम्, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1122॥

(हिन्दी)- उस अमृतपद की प्राप्ति हेतु अष्टाङ्गिक मार्ग की साधना कर, जो अमृत पद निर्वाण की ओर ले जाने वाला है तथा सभी कष्टों का निवारण करने वाला है। रे चित्त! अब बस, बहुत हो चुका, तू मुझको पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका है॥1118॥

रे चित्त! तू सूक्ष्म निरीक्षण करता हुआ इन पाँच उपादानस्कन्धों को 'दुःख' रूप में जान ले। तथा इस दुःख का जिन से समुदय होता है उस को त्याग दे। और इस दुःख का अन्त भी इसी जन्म में कर ले। अब बस, बहुत हो चुका, तू मुझ को पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका है॥1119॥

दुःख अनित्य है'! यह भी तू सूक्ष्म निरीक्षण करता हुआ जान ले। 'शून्यता' तथा अनात्मा-ये सभी पाप कर्मों के नाशक हैं। मनः सङ्कल्पों को भी नष्ट कर ले। रे चित्त! बहुत हो चुका, तू मुझ को पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका है॥1120॥

शिर का मुण्डन करा कर, अपने शरीर का ऐसा रूप बना कर कि कोई विपत्ति का मारा हो, तथा पात्र हाथ में ले कर घर घर जा कर भिक्षा माँग और स्वयं को शास्ता के आदेश में लगा ले। रे चित्त! बहुत हो चुका, तू मुझ को पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका है॥1121॥

भिक्षा हेतु गलियों में गृहस्थों के घरों में घूमता हुआ तू स्वयं पर नियन्त्रण रख और वहाँ तू उसी प्रकार निरासक्त भाव से जा, जैसे चाँदनी रात्रि की पूर्णिमा का चन्द्रमा सब घरों में जाता है। रे चित्त! बहुत हो चुका, तू मुझ को पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका है॥1122॥

''आरञ्ञिको होहि च पिण्डपातिको, सोसानिको होहि च पंसुकूलिको।
नेसज्जिको होहि सदा धुते रतो', इतिस्सु मं चित्त पुरे नियुञ्जसि॥1123॥
''रोपेत्व रुक्खानि यथा फलेसी, मूले तरुं छेत्तु तमेव इच्छसि।
तथूपमं चित्तमिदं करोसि, यं मं अनिच्चम्हि चले नियुञ्जसि॥1124॥
''अरूप दूरङ्गम एकचारि, न ते करिस्सं वचनं इदानिहं।
दुक्खा हि कामा कटुका महब्भया, निब्बानमेवाभिमनो चरिस्सं॥1125॥
''नाहं अलक्ख्या अहिरिक्कताय वा, न चित्तहेतू न च दूरकन्तना।
आजीवहेतू च अहं न निक्खमिं, कतो च ते चित्त पटिस्सवो मया॥1126॥
''अप्पिच्छता सप्पुरिसेहि वण्णिता, मक्खप्पहानं वूपसमो दुखस्स'।
इतिस्सु मं चित्त तदा नियुञ्जसि, इदानि त्वं गच्छसि पुब्बचिण्णं॥1127॥

(संस्कृतच्छाया)- ''आरण्यकः भविष्यति च पिण्डपातिकः, श्मशानिको भविष्यति च पंशुकूलिकः।
नैषधिकः भविष्यति सदा धुते रतः, इतिस्विद् मम चित्त! पुरे न्ययुनक्॥1123॥
''रोपयित्वा वृक्षाणि यथा फलेषि, मूलं तरुं छिन्नं त्वमेव इच्छसि।
तथोपमं चित्तमिदं करोसि, यः माम् अनित्ये चले न्ययुनक्॥1124॥
''अरूपं दूरङ्गम एकचारी, न ते करिष्यामि वचनम् इदानीमहम्।
दुःखाः हि कामाः कटुकाः महाभयाः, निर्वाणमेवाभिमनः चरिष्यामि॥1125॥
''नाहम् अलक्ष्या अह्रीकतया वा, न चित्तहेतुः न च दूरकान्तया।
आजीवहेतुः च अहं न न्यक्रमिषम्, कृतः च ते चित्त! प्रतिस्रवः मया॥1126॥
''अल्पापेक्षिता सत्पुरुषैः वर्णिताः, मक्षप्रहाणम् उपशमो दुःखस्य।
इतिस्विद् मम चित्तं तदा न्ययुनक्, इदानीं त्वं गच्छसि पूर्वचीर्णम्॥1127॥

(हिन्दी)- अब तू या तो आरण्यक बन कर, या पिण्डपातिक व्रत ले कर या श्मशानिक व्रत से, या पांशुकूलिक व्रत ले कर, या एक स्थान पर नैषधिक बन कर-इस प्रकार इनमें से किसी भी धुताङ्ग व्रत से साधना आरम्भ कर। रे चित्त! बहुत हो चुका, तू मुझको पहले भी बहुत से अनुचित कार्यों में लगा चुका॥1123॥

रे चित्त! तू मुझको अनित्य एवं विनाशी धर्मों की ओर प्रवृत्त कर वही कार्य कर रहा है जैसे फल चाहने वाला कोई मूर्ख उस वृक्ष के मूल पर ही प्रहार कर रहा हो॥1124॥

अरे कुरूप! दूर की कोड़ी हाँकने वाले! एकाकिन्! अब मैं तेरा कथन नहीं मानूँगा, क्योंकि ये कामभोग परिणाम में कटु एवं भयोत्पादक फल देने वाले हैं, अतः मैं तो अब निर्वाण की साधना में ही रत रहूँगा॥1125॥

मैं न निर्धन होने के कारण, न निर्लज्जता से, न स्वच्छन्द इच्छा से, न अपनी पत्नी के मर जाने से, न किसी विशेष आजीविका के लिये अपना गृह त्याग कर आया हूँ। रे चित्त! अब तक मैने तेरे कथनानुसार बहुत कुछ किया है अब नहीं करूँगा॥1126॥

सज्जनों ने अल्पेच्छता की बहुत प्रशंसा की है और वृथाभिमान का त्याग ही दुःख का नाश कहलाता है। फिर भी रे चित्त! तुम मुझको उधर ही ढकेल रहे हो। ज्ञात होता है कि तुम अपने पूर्व अभ्यस्त कर्म पर पुनः पहुँच गये हो! ॥1127॥

''तण्हा अविज्जा च पियापियं च, सुभानि रूपानि सुखा च वेदना।
मनापिया कामगुणा च वन्ता, वन्ते अहं आवमितुं न उस्सहे॥1128॥
''सब्बत्थ ते चित्त वचो कतं मया, बहूसु जातीसु न मेसि कोपितो।
अज्झत्तसम्भवो कतञ्ञुताय ते, दुक्खे चिरं संसरितं तया कते॥1129॥
'त्वञ्ञेव नो चित्त करोसि ब्राह्मणो , त्वं खत्तियो राजदसी करोसि।
वेस्सा च सुद्दा च भवाम एकदा, देवत्तनं वापि तवेव वाहसा॥1130॥
''तवेव हेतू असुरा भवामसे, त्वंमूलकं नेरयिका भवामसे।
अथो तिरच्छानगतापि एकदा, पेतत्तनं वापि तवेव वाहसा॥1131॥
''ननु दुब्भिस्ससि मं पुनप्पुनं, मुहुं मुहुं चारणिकंव दस्सयं।
उम्मत्तकेनेव मया पलोभसि, किञ्चापि ते चित्त विराधितं मया॥1132॥

(संस्कृतच्छाया)- ''तृष्णा अविद्या च प्रियाप्रियञ्च, शुभानि रूपाणि सुखानि वेदनाः।
मनप्रियाः कामगुणाश्च वन्ताः, वन्ते अहम् आवामितुं न उत्सहे॥1128॥
''सर्वत्र चित्ते वचः कृतं मया, बहुषु जातिषु न मे आसीत् कुपितः
अध्यात्मसम्भवः कृतज्ञतायै ते, दुःखम् चिरं संसरितं तव कृते॥1129॥
''त्वमेव नो चित्त! करोषि ब्राह्मणः, त्वं क्षत्रियः राजदर्शी करोषि।
वैश्यश्च शूद्रश्च भवाम: एकदा, देवत्वानां वापि तवैव वाहकः॥1130॥
''तवैव हेतुः असुरः भवामहे, त्वं मूलकं नैरथिकाः भवामहे।
अथ तिर्यञ्चगतापि एकदा, प्रेतत्वानां वापि तवैव वाहक:॥1131॥
''ननु दम्भ्यते मां पुनः पुनः, मुहुः मुहुः चारणिकमिव दर्शयम्।
उन्मत्तकेनैव मया प्रलोभसि, किञ्चापि ते चित्त! विरोधितं मया॥1132॥

(हिन्दी)- तृष्णा, अविद्या, प्रिय एवं अप्रिय तथा सुखप्रद रूपों के अनुभव, सुखप्रद वेदनाएँ, मनोभिलषित कामभोग-ये सभी दुर्गुण मैंने त्याग दिये हैं। मैं इन त्यागे हुए दुर्गुणों को पुनः स्वीकार करने में कोई उत्साह नहीं रखता॥1128॥

रे चित्त! मैंने तुम्हारा कथन सर्वत्र सभी जन्मों में माना था। तब तो तुम मुझ पर कुपित नहीं हुए! मैंने तुम्हारे प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिये तुम्हारा कहा हुआ सब कुछ किया, जिस कारण मैंने इस संसार में संसरण करते हुए बहुत समय तक अनेक कष्ट भोगे हैं॥1129॥

रे चित्त! तुमने ही मुझ को कभी ब्राह्मण बनाया, कभी क्षत्रिय बना कर राजसिंहासन तक पहुँचाया। तुम्हारे ही कारण मैं कभी वैश्य या कभी शूद्र बना। यहाँ तक कि तुम्हारे कारण देवत्व भी मुझको मिला॥1130॥

तुम्हारे कारण, कभी मुझको राक्षस बनना पड़ा, कभी नरक भोगना पड़ा। कभी तुम्हारे ही कारण पशुयोनि में तथा कभी प्रेतयोनि में भी जाना पड़ा॥1131॥

रे चित्त! तुम मुझ से बराबर क्यों विश्वासघात कर रहे हो, बार बार मुझको इधर से उधर क्यों घुमा रहे हो तुम मुझको उन्मत्त समझ कर निरन्तर कोई न कोई प्रलोभन देते रहते हो। रे चित्त! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है!॥1132॥

''इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अङ्कुसग्गहो॥1133॥
''सत्था च मे लोकमिमं अधिट्ठहि,अनिच्चतो अद्धुवतो असारतो।
पक्खन्द मं चित्त जिनस्स सासने, तारेहि ओघा महता सुदुत्तरा॥1134॥
''न ते इदं चित्त यथा पुराणकं, नाहं अलं तुय्ह वसे निवत्तितुं।
महेसिनो पब्बजितोम्हि सासने, न मादिसा होन्ति विनासधारिनो॥1135॥
''नगा समुद्दा सरिता वसुन्धरा, दिसा चतस्सो विदिसा अधो दिवा।
सब्बे अनिच्चा तिभवा उपद्दुता, कुहिं गतो चित्त सुखं रमिस्ससि॥1136॥
''धितिप्परं किं मम चित्त काहिसि, न ते अलं चित्त वसानुवत्तको।
न जातु भस्तं उभतोमुखं छुपे, धिरत्थु पूरं नव सोतसन्दनिं॥1137॥

(संस्कृतच्छाया)- ''इदं पुरे चित्तमचरत् चारिकाम्, यथेच्छं यथाकामं यथासुखम्।
तदद्याऽहं निग्रहीष्यामि योनिशः, हस्तिप्रभिन्नमिवांकुशग्राहः॥1133॥
''शास्ता च मे लोकमिमम् अधिष्ठायैः, अनित्यतः अध्रुवतः असारतः।
प्रक्षन्दं मां चित्त! जिनस्य शासने, तारय ओघाः महताः सुदुस्तराः॥1134॥
''न ते इदं चित्त! यथा पुराणकम्, नाहम् अलं तुह्यं वशात् निवर्तितुम्।
महेषिणा प्रव्रजितोऽस्मि शासने, न मादृशाः भवन्ति विनाशधारिणः॥1135॥
''नगाः समुद्राः सरिताः वसुन्धरा, दिशाः चतस्राः विदिशा अधः दिवाः।
सर्वा अनित्याः त्रिभवा उपद्रुताः, कुह गतः चित्त! सुखं रंस्यसे॥1136॥
''धृतिरपरं किं मां चित्त! करिष्यसि, न ते अलं चित्त! वशानुवर्तकः।
न जातु भस्त्रं उभयतो मुखं छुपम्, धिगस्तु पूर्णं नवस्रोतस्यन्दति॥1137॥

(हिन्दी)- यह मेरा चित्त पहले स्वेच्छया अपनी कामनाओं तथा सुविधा के अनुसार विचरण करता था, परन्तु मैं आज अपने इस चित्त को उसी प्रकार यथार्थतः निगृहीत करूँगा जैसे अङ्कुश ग्रहण करने वाला हस्तिशिक्षक किसी उन्मत्त हाथी को नियन्त्रित कर लेता है॥1133॥

शास्ता ने मुझको इस लोक के विषय में बताया है कि यह अनित्य, विनाशी एवं तुच्छ है। रे चित्त! तू मुझको तथागत के आदेशानुसार साधना करने दे। इस तरह मुझको इस संसार-प्रवाह से पार होने में सहायता कर॥1134॥

रे चित्त! अब पुरानी बात नहीं रह गयी है, अब मैं तुझको अपने नियन्त्रण से बाहर नहीं जाने दे सकता, क्योंकि मैं महर्षि द्वारा प्रोक्त धर्म में दीक्षा ले चुका हूँ। मैं उन लोगों में नहीं हूँ कि जो अपना विनाश स्वयं कर लिया करते हैं॥1135॥

रे चित्त! इस दृश्यमान् जगत की सभी वस्तुएँ जैसे-ये पर्वत, ये समुद्र, ये नदियाँ, यह पृथ्वी, ये चारों दिशाएँ, ऊपर नीचे की उपदिशाएँ आदि सभी कुछ तो अनित्य हैं, विनाशी हैं, रोग ग्रस्त हैं। तब कहाँ जा कर तू अपने को बहलायेगा॥1136॥

रे चित्त! अब तू मुझे धैर्यविहीन कर मेरा क्या करना चाह रहा है? मैं अब तेरे वश में रह कर तेरा अनुगमन नहीं कर सकता। लोक में जब दो मुख वाली भस्त्रा का ही कोई विश्वास नहीं करता तो इस शरीर में नौ द्वार हैं इसके लिये तो धिक्कार' शब्द का ही प्रयोग करना पड़ता है॥1137॥

''वराहएणेय्यविगाळ्हसेविते, पब्भारकुट्टे पकतेव सुन्दरे।
नवम्बुना पावुससित्थकानने, तहिं गुहागेहगतो रमिस्ससि॥1138॥
''सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुना, सुचित्तपत्तच्छदना विहङ्गमा।
सुमञ्जुघोसत्थनिताभिगज्जिनो, ते तं रमेस्सन्ति वनम्हि झायिनं॥1139॥
''वुट्ठम्हि देवे चतुरङ्गुले तिणे, संपुप्फिते मेघनिभम्हि कानने।
नगन्तरे विटपिसमो सयिस्सं, तं मे मुदू हेहिति तूलसन्निभं॥1140॥
''तथा तु कस्सामि यथापि इस्सरो, यं लब्भति तेनपि होतु मे अलं।
न ताहं कस्सामि यथा अतन्दितो, बिळारभस्तंव यथा सुमद्दितं॥1141॥
''तथा तु कस्सामि यथापि इस्सरो, यं लब्भति तेनपि होतु मे अलं।
वीरियेन तं मय्ह वसानयिस्सं, गजंव मत्तं कुसलङ्कुसग्गहो॥1142॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वराहैणविगाढसेविते, प्रभारकूटे प्रकृत्येव सुन्दरे।
नवाम्बुना प्रावृषसिक्तकानने, तत्र गुहागेहगतो रंस्यसे॥1138॥
''सुनीलग्रीवाः सुशिखाः सुप्रेक्षुणाः, सुचित्तपत्रच्छादना विहङ्गमाः।
सुमञ्जुघोषार्थनिताभिगर्जिनः, ते तं रंस्यध्वे वने ध्यायिनाम्॥1139॥
''वृष्टे देवे चतुराङ्गुले तृणे, सम्पुष्पिते मेघनिभे कानने।
नगरान्तरे विटपसमः शयिष्यम्, तत् मे मृदु भविष्यति तूलसन्निभम्॥1140॥
''तथा तु कृषामि यथापि ईश्वरः, यं लभते तेनापि भवतु मे अलम्।
न तस्याहं कृषामि यथा अतन्द्रितः, बिडालभस्त्रमिव यथा समुद्रितम्॥1141॥
''तथा तु कृषामि यथापि ईश्वरः, यं लभते तेनापि भवतु मे अलम्।
वीर्येण तं मह्यं वशानयिष्यम्, गजमिव मत्तं कुशल-अंकुशग्राहः॥1142॥

(हिन्दी)- अब जहाँ सुअर, मृग आदि जङ्गली पशु स्वच्छन्द रूप से विचरण कर रहे हैं, ऊँची ढलानों तथा शिखरों आदि के प्राकृत सौन्दर्य वाले, वर्षाऋतु के जल से सिक्त वनों वाले पर्वतों के इन गुफागृहों में तुम को स्थायी रूप से रहना पड़ेगा॥1138॥

नीलवर्णयुक्त सुन्दर ग्रीवाओं तथा चोटी एवं नेत्रपक्ष्म वाले सुन्दर एवं चित्रित पङ्खों वाले मनोहर मयूर पक्षी जहाँ मेघगर्जना की प्रतिध्वनि रूप केका ध्वनि कर रहे हों वैसे वनों में ध्यानाभ्यास करते हुए तुम को आनन्दानुभव होगा॥1139॥

जब तू वर्षा के कारण, चार चार अङ्गुलि बढ़े हुए घास से युक्त, पल्लवित, पुष्पित एवं मेघसदृश नील वन में वृक्षों के बीच किसी छोटे वृक्ष के रूप में अचल बैठा रहेगा तब मुझको मृदु रूई के समान बहुत सुख मिलेगा॥1140॥

मैं एक भू स्वामी कृषक की तरह साधना रूप कृषिकर्म कर रहा हूँ, इससे जो कुछ भी मिल जाय वही मेरे लिये पर्याप्त होगा। क्यों न मैं सावधान रह कर उतना ही कृषिकर्म करूँ जितना समुर्दित चर्मवाली लुहार की भस्त्रा हवा दिया करती है॥1141॥

मैं एक भूस्वामी कृषक के समान साधना रूप कृषि कर्म कर रहा हूँ। इस से जो कुछ भी मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहूँगा। मैं तुझको प्रयत्नपूर्वक उसी प्रकार नियन्त्रित रखूँगा जैसे अंकुश हाथ में ले कर कोई गजशिक्षक गज को नियन्त्रण में रखता है॥1142॥

''तया सुदन्तेन अवट्ठितेन हि, हयेन योग्गाचरियोव उज्जुना।
पहोमि मग्गं पटिपज्जितुं सिवं, चित्तानुरक्खीहि सदा निसेवितं॥1143॥
''आरम्मणे तं बलसा निबन्धिसं, नागंव थम्भम्हि दळ्हाय रज्जुया।
तं मे सुगुत्तं सतिया सुभावितं, अनिस्सितं सब्बभवेसु हेहिसि॥1144॥
''पञ्ञाय छेत्वा विपथानुसारिनं, योगेन निग्गय्ह पथे निवेसिय।
दिस्वा समुदयं विभवं च सम्भवं, दायादको हेहिसि अग्गवादिनो॥1145॥
''चतुब्बिपल्लासवसं अधिट्ठितं, गामण्डलंव परिनेसि चित्त मं।
ननु संयोजनबन्धनच्छिदं, संसेवसे कारुणिकं महामुनिं॥1146॥
''मिगो यथा सेरि सुचित्तकानने, रम्मं गिरिं पावुसअब्भमालिनिं।
अनाकुले तत्थ नगे रमिस्सं, असंसयं चित्त परा भविस्ससि॥1147॥

(संस्कृतच्छाया)- ''त्वां सुदान्तेन अवतिष्ठितेन हि, हयेन योग्याचार्येव रज्जुना।
प्रभवामि मार्गं प्रतिपादितुं शिवम्, चित्तानुरक्तैः सदा निसेवितम्॥1143॥
''आलम्बने त्वां बलात् निभन्त्स्यामि, नागमिव स्तम्भे दृढेन रज्जुना।
त्वं मे सुगुप्तं स्मृत्या सुभावितम्, अनिश्रितं सर्वभवेषु भविष्यसि॥1144॥
''प्रज्ञया छित्वा विपथानुसारिणाम्, योगेन निगृह्य पथे निवेश्य।
दृष्ट्वा समुदयं विभवञ्च सम्भवम्, दायादकः भविष्यसि अग्रवादिनः॥1145॥
''चतुर्विपर्यासवशम् अधिष्ठितम्, ग्राममण्डलमिव परिणयसि चित्तं मम।
ननु संयोजनबन्धनच्छिदम्, संसेवते कारुणिकं महामुनिम्॥1146॥
''मृगो यथा स्वैरी सुचित्तकानने, रम्यं गिरिं प्रावृषाभ्रमालिनम्।
अनाकुले तत्र नगे अरंस्त, असंशयं चित्त! परा भविष्यसि॥1147॥

(हिन्दी)- मैं एक सुयोग्य अश्वशिक्षक के समान किसी उच्च जाति के अश्व की तरह तुझ को उसी कल्याणमय मार्ग पर चलाने के लिये सन्नद्ध हो चुका हूँ जिस पर आज तक अन्य चित्तानुरक्षी साधक चलते आये हैं॥1143॥

मैं तुझको किसी आलम्बन से उसी प्रकार बलपूर्वक बाँध दूँगा जैसे किसी मत्त गज को सुदृढ रज्जु से बाँध दिया जाता है। इस प्रकार बँधा हुआ तू मेरे लिये स्मृति से सुभावित हो कर किसी पुनर्जन्म की आकांक्षा न कर पायेगा॥1144॥

तेरी कुमार्ग पर जाने की इच्छा होने पर प्रज्ञा द्वारा तेरे पङ्ख काट कर तथा योगाभ्यास से तुझको निगृहीत कर सत्पथ पर ले आऊँगा। तब तू दुःख का समुदय, नाश एवं उत्पत्ति को जान कर अग्रवादी भगवान् का उत्तराधिकारी बन जायेगा॥1145॥

रे चित्त! तू मुझको चारों विपर्यासों के वश में हो कर उनमें ही स्थिर हो कर समस्त संसार में इधर उधर घुमाना चाह रहा है। क्यों नहीं तू सांसारिक बन्धनों को समस्त रूप से छिन्न भिन्न करने वाले कृपालु महामुनि बुद्ध की सेवा करता है॥1146॥

रे चित्त! तू क्यों नहीं उस मृग की तरह किसी विशाल रम्य वन के बीच स्थित, वर्षाऋतु के मेघों से आच्छादित पर्वत की सुखमय तलहटी में रमण करता है, इससे तू वहाँ साधना करता हुआ उसकी परा भूमिका में पहुँच जायेगा॥1147॥

''ये तुय्ह छन्देन वसेन वत्तिनो, नरा च नारी च अनुभोन्ति यं सुखं।
अविद्दसू मारवसानुवत्तिनो, भवाभिनन्दी तव चित्त सावका''ति॥1148॥
... तालपुटो थेरो...। पञ्ञासनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – पञ्ञासम्हि निपातम्हि, एको तालपुटो सुचि।
गाथायो तत्थ पञ्ञास, पुन पञ्च च उत्तरीति॥

20. सट्ठिनिपातो

1. महामोग्गल्लानत्थेरगाथा-

''आरञ्ञिका पिण्डपातिका, उञ्छापत्तागते रता।
दालेमु मच्चुनो सेनं, अज्झत्तं सुसमाहिता॥1149॥
''आरञ्ञिका पिण्डपातिका, उञ्छापत्तागते रता।
धुनाम मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥1150॥
''रुक्खमूलिका सातातिका, उञ्छापत्तागते रता।
दालेमु मच्चुनो सेनं, अज्झत्तं सुसमाहिता॥1151॥

(संस्कृतच्छाया)- ''ये तव छन्दसा वशेन वर्तिनः, नराश्च नारी च अनुभवन्ति यं सुखम्।
अवित्सत् मारवशानुवर्तिनः, भवाभिनन्दिन: तव चित्त! श्रावकाः''इति॥1148॥

तत्रोदानम्– पञ्चाशते निपाते, एकः *तालपुटो* शुचि।
गाथाः तत्र पञ्चाशत्, पुनः पञ्च उत्तरीति॥ ●

1. ''आरण्यका: पिण्डपातिका, उञ्छा: पात्रागते रताः।
दरिष्यन्ति मृत्योः सेनाम्, अध्यात्मं सुसमाहिताः॥1149॥
''आरण्यकाः पिण्डपातिकाः, उञ्छा: पात्रागते रताः।
धुन्वन्ति मृत्योः सेनाम्, नलागारमिव कुञ्जरः॥1150॥
''वृक्षमूलिकाः सातातिकाः, उञ्छापात्रागते रताः।
दरिष्यन्ति मृत्योः सेनाम्, अध्यात्मं सुसमाहिताः॥1151॥

(हिन्दी)- रे चित्त! तुझको ये जो स्वेच्छाचारी लौकिक कामभोगी नर नारी सुख भोगते दिखायी दे रहे हैं वे तेरे शिष्य मूर्ख हैं, मार के अधीन हैं, जन्म परम्परा में ही सुख मानने वाले हैं॥1148॥.....तालपुट स्थविर.....॥
इस निपात की सूची- इस पञ्चाशत निपात में एक तालपुट स्थविर द्वारा कथित गाथाओं का ही वर्णन है॥ इस निपात में पचपनगाथाएँ वर्णित हैं॥ ●
अरण्य में रह कर या पिण्डपात के आश्रयण से या उञ्छवृत्ति से या पात्र में गिरे हुए अन्न से जीवनयापन करने वाले हम जैसे साधक ही, जो अन्तर्मन से समाहित हैं, इस मृत्यु सेना का दलन कर सकते हैं॥1149॥
अरण्य में रह कर या पिण्डपात के आश्रयण से या उञ्छवृत्ति से या पात्र में गिरे हुए अन्न से जीवनयापन करने वाले हम जैसे साधक ही, जो अन्तर्मन से समाहित हैं, इस मृत्यु सेना को उसी प्रकार कँपा सकते हैं जैसे कोई मत्त हाथी नरकट के समूह को कँपा देता है॥1150॥
वृक्षों के नीचे बैठ कर निरन्तर साधना करने वाले, या उञ्छवृत्ति या पात्र में गिरे हुए अन्न से जीवनयापन करने वाले हम जैसे साधक ही, जो अन्तर्मन से समाहित हैं, इस मृत्यु सेना का दलन कर सकते हैं॥1151॥

''रुक्खमूलिका सातितिका, उञ्छापत्तागते रता।
धुनाम मच्चुनो सेनं, नळागारंव कुञ्जरो॥1152॥
''अट्ठिकङ्कलकुटिके, मंसन्हारुपसिब्बिते।
धिरत्थु पुरे दुग्गन्धे, परगत्ते ममायसे॥1153॥
''गूथभस्ते तचोनद्धे, उरगण्डिपिसाचिनि।
नव सोतानि ते काये, यानि सन्दन्ति सब्बदा॥1154॥
''तव सरीरं नवसोतं, दुग्गन्धकरं परिबन्धं।
भिक्खु परिवज्जयते तं, मीळ्हं च यथा सुचिकामो॥1155॥
''एवञ्चे तं जनो जञ्ञा, यथा जानामि तं अहं।
आरका परिवज्जेय्य, गूथट्ठानंव पावुसे''॥1156॥

(संस्कृतच्छाया)- ''वृक्षमूलिकाः सातितिकाः, उञ्छापात्रागते रताः।
धुन्वन्ति मृत्योः सेनाम्, नलागारमिव कुञ्जरः॥1152॥
''अस्थिकङ्कालकुट्याम्, मांसस्नायुरुपसीबिते।
धिगस्तु! पुरे दुर्गन्धे, परगात्रे ममायसे॥1153॥
''गूथभस्त्रे त्वचाबद्धे, उरगण्डिपिशाचिनी।
नव स्रोतांसि तव काये, यानि स्यन्दन्ति सर्वदा॥1154॥
''तव शरीरं नवस्रोतः, दुर्गन्धकरं परिबन्धनम्।
भिक्षुः परिवर्जयते तम्, मीढं च यथा शुचिकामः॥1155॥
''एवञ्च त्वं जनः जन्या, यथा जानामि त्वाम् अहम्।
आरात् परिव्रजेत्, गूढस्थानमिव प्रावृषे॥1156॥

(हिन्दी)- वृक्षों के नीचेया पिण्डपात के आश्रयण से या उञ्छवृत्ति से या पात्र में गिरे हुए अन्न से जीवनयापन करने वाले हम जैसे साधक ही, जो अन्तर्मन से समाहित हैं, इस मृत्यु सेना को उसी प्रकार कँपा सकते हैं जैसे कोई मत्त हाथी नरकट के समूह को कँपा देता है॥1152॥

मांस एवं स्नायुओं से बँधी हुई और अस्थि-कङ्काल से निर्मित कुटी के समान इस दुर्गन्धमय परायी देह पर इतना ममत्व कर रहे हो! तुमको धिक्कार है॥1153॥

मल से पूर्ण भस्त्रा के समान, त्वचा से बँधी हुई, सर्पिणी के समान दुष्ट तुम्हारी इस काया में नौ (9) द्वार खुले हुए हैं जो सर्वदा बहते रहते हैं॥1154॥

भिक्षु! नौ स्रोत वाला तुम्हारा यह दुर्गन्धमय शरीर, जो सब ओर से बँधा हुआ है, इस को तू उसी प्रकार त्याग दे जैसे उदर की शुद्धि चाहने वाला मल को त्याग देता है॥1155॥

यदि उस को साधारण मनुष्य उसी प्रकार जान ले, जैसे मैं जानता हूँ, तो वह इस को वैसे ही दूर से त्याग देगा जैसे वर्षा के समय मलस्थान से दूर रहा जाता है॥1156॥

''एवमेतं महावीर, यथा समण भाससि।
एत्थ चेके विसीदन्ति, पङ्कम्हिव जरग्गवो॥1157॥
''आकासम्हि हलिद्दिया, यो मञ्ञेथ रजेतवे।
अञ्ञेन वापि रङ्गेन, विघातुदयमेव तं॥1158॥
''तदाकाससमं चित्तं, अज्झत्तं सुसमाहितं।
मा पापचित्ते आसादि, अग्गिखन्धंव पक्खिमा॥1159॥
''पस्स चित्तकतं बिम्बं, अरुकायं समुस्सितं।
आतुरं बहुसङ्कप्पं, यस्स नत्थि धुवं ठिति॥1160॥
''पस्स चित्तकतं रूपं, मणिना कुण्डलेन च।
अट्ठिं तचेन ओनद्धं, सह वत्थेहि सोभति॥1161॥
''अलत्तककता पादा, मुखं चुण्णकमक्खितं।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥1162॥

(संस्कृतच्छाया)- ''एवमेतत् महावीर!, यथा श्रमण भाषसे।
अत्र चैके विसीदन्ति, पङ्के इव जरद्गवः॥1157॥
''आकाशं हरिद्रया, यः मन्यते रञ्जितुं हेतवे।
अन्येन वापि रङ्गेन, विघातुमुदयमेव तत्॥1158॥
''तदाकाशसमं चित्तम्, अध्यात्मं सुसमाहितम्।
मा पापचित्ते! आसादयत्वम्, अग्निस्कन्धमिव पक्षिमान्॥1159॥
''पश्य चित्रीकृतं बिम्बम्, *अरुकायं* समुच्छ्रितम्।
आतुरं बहुसंकल्पम्, यस्य नास्ति ध्रुवं स्थितिः॥1160॥
''पश्य चित्रकृतं रूपम्, मणिना कुण्डलेन च।
अस्थिं त्वचया अवनद्धम्, सह वस्त्रैः शोभते॥1161॥
''अलक्तककृताः पादाः, मुखं चूर्णकमक्षितम्।
अलं बालाय मोहाय, नो च पारगवेषिणः॥1162॥

(हिन्दी)- हे महावीर! हे श्रमण यह बात वैसी ही है जैसा तुम कह रहे हो। परन्तु यहाँ कुछ लोग वैसे ही भ्रम में पड़ जाते हैं जैसे कोई बूढा बैल किसी कीचड़ के स्थान में धोखा खाता है॥1157॥
जो आकाश को हल्दी या किसी अन्य रंग में रंगने का विचार कर रहा है तो वह अपनी हानि की सोच रहा है॥1158॥
तेरा चित्त आकाश के समान निर्मल है, अध्यात्मरूप से वह भलीभाँति समाहित है। तू अपने चित्त को पापमय कर्मों की ओर उसी प्रकार न जाने दे जैसे कोई पक्षी अग्नि के पास नहीं जाता॥1159॥
चित्र में लिखित के समान इस शरीर को देख जो व्रणों से युक्त है, सर्वत्र शोथयुक्त, पीड़ित है, विविध सङ्कल्प-विकल्पों से पूर्ण है। इस को देखते हुए यहाँ किस की स्थायी स्थिति की कल्पना की जाय!॥1160॥
चित्र में लिखित के समान इस शरीर को देख जो ऊपर से मणि एवं कुण्डलों से विभूषित है, परन्तु अन्दर अस्थि एवं त्वचा से बँधा हुआ है, केवल ऊपर पहने हुए वस्त्रों से ही यह शोभित हो रहा है॥1161॥
ये (स्त्रियों के) आलता के रंगे हुए पैर, तथा गन्धचूर्ण से लिप्त मुख, मूर्खों को ही मुग्ध कर सकते हैं, साधना के पार पहुँचे हुए ज्ञानियों को नहीं॥1162॥

''अट्ठपदकता केसा, नेत्ता अञ्जनमक्खिता।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥1163॥
''अञ्जनीव नवा चित्ता, पूतिकायो अलङ्कतो।
अलं बालस्स मोहाय, नो च पारगवेसिनो॥1164॥
''ओदहि मिगवो पासं, नासदा वागुरं मिगो।
भुत्वा निवापं गच्छाम, कद्दन्ते मिगबन्धके॥1165॥
''छिन्नो पासो मिगवस्स, नासदा वागुरं मिगो।
भुत्वा निवापं गच्छाम, सोचन्ते मिगलुद्दके॥1166॥
''तदासि यं भिंसनकं, तदासि लोमहंसनं।
अनेकाकारसम्पन्ने, सारिपुत्तम्हि निब्बुते॥1167॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अष्टापदकृताः केशाः, नेत्रयो अञ्जनमक्षिता।
अलं बालाय मोहाय, नो च पारगेवेषिणः॥1163॥
''अञ्जनीव नवाः चित्ताः, पूतिकाय अलङ्कृतः।
अलं बालाय मोहाय, नो च पारगेवेषिणः॥1164॥
''अवडितं मृगयुः पाशम्, नास्ति वागुरिकः मृगम्।
भुङ्क्तवा निवापं गच्छाम, क्रन्दन्ते मृगबन्धकान्॥1165॥
''छिन्नः पाशः मृगस्य, नास्ति वागुरिकः मृगम्।
भुङ्क्तवा निवापं गच्छाम, शोचन्ति मृगलुब्धकः॥1166॥
''तदासीत् यं भीषणकम्, तदासीत् लोमहर्षणम्।
अनेकाकारसम्पन्ने, सारिपुत्रे निर्वृते॥1167॥

(हिन्दी)- वेणी में बँधे हुए केश, तथा अंजन से म्रक्षित नेत्र, मूर्खों को ही मुग्ध कर सकते हैं, साधना के पार पहुँचे हुए ज्ञानियों को नहीं॥1163॥

यह अंजन रखने की डब्बी के समान नयी एवं चित्र विचित्र रूप से अलंकृत दुर्गन्धमय काय मूर्खों को ही मुग्ध कर सकते हैं, साधना के पार पहुँचे हुए ज्ञानियों को नहीं॥1164॥

व्याध ने अपना जाल फैला दिया है, परन्तु मृग पकड़ने वाला कोई व्याध नहीं है। क्यों न हम यहाँ यथेच्छ खा पीकर इन व्याधों को रोता कलपता छोड़ कर निकल चलें॥1165॥

व्याध का जाल कट गया है, मृग पकड़ने वाले व्याध भी नहीं हैं। क्यों न हम यहाँ यथेच्छ खा पीकर इन व्याधों को रोते कलपते छोड़ कर चल दें॥1166॥

उस समय भयङ्कर एवं लोमहर्षक दृश्य उपस्थित हो गया था जब धर्मसाधना के विविध आकारों से सम्पन्न सारिपुत्त परिनिर्वृत हो गये! ॥1167॥

''अनिच्चा वत सङ्खारा उप्पादवय धम्मिनो॥
उपज्जित्वा निरुज्झन्ति, तेसं वूपसमो सुखो॥1168॥
''सुखुमं ते पटिविज्झन्ति, वालग्गं उसुना यथा।
ये पञ्चक्खन्धे पस्सन्ति, परतो नो च अत्ततो॥1169॥
''ये च पस्सन्ति सङ्खारे, परतो नो च अत्ततो।
पच्चब्याधिंसु निपुणं, वालग्गं उसुना यथा॥1170॥
''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
कामरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे॥1171॥
''सत्तिया विय ओमट्ठो, डय्हमानोव मत्थके।
भवरागप्पहानाय, सतो भिक्खु परिब्बजे''॥1172॥
''चोदितो भावितत्तेन, सरीरन्तिमधारिना।
मिगारमातुपासादं, पादङ्गुट्ठेन कम्पयिं॥1173॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अनित्यवत् संस्काराः, उत्पादव्यय धर्मिणः।
उत्पद्य निरुन्धन्ति, तेषाम् उपसमः सुखः॥1168॥
''सूक्ष्मं ते प्रतिविध्यन्ति, बालाग्रम्(केशाग्रं) इषुणा यथा।
ये पञ्चस्कन्धान् पश्यन्ति, परतो न च आत्मतः॥1169॥
''ये च पश्यन्ति संस्कारे, परतो न च आत्मतः।
प्रत्यविध्येत् निपुणम्, बालाग्रं इषुणा यथा॥1170॥
''शाक्त्या इव अवस्पृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
कामरागप्रहाणाय, स्मृतिमान् भिक्षुः परिव्रजेत्॥1171॥
''शाक्त्या इव अवस्पृष्टः, दह्यमान इव मस्तके।
भवरागप्रहाणाय, स्मृतो भिक्षुः परिव्रजेत्॥1172॥
''चोदितो भावितत्वेन, शरीरान्तिमधारिणाः।
मृगारमातुप्रासादम्, पादाङ्गुष्ठेन अकम्पे॥1173॥

(हिन्दी)- उत्पत्ति एवं नाश स्वभाव वाले सभी संस्कार अनित्य हैं...पूर्ववत्.... ॥1168॥
जो ज्ञानी पञ्च स्कन्धों को पराया समझते हैं, वे वैसे ही सूक्ष्म से सूक्ष्म तक पहुँचने का सामर्थ्य रखते हैं, जैसे धनुष से निकला हुआ तीक्ष्ण बाण से केश के अग्रभाग को बींधा जा सकता है॥1169॥
जो ज्ञानी संस्कारों को पराया ही समझते हैं अपना नहीं, वे सूक्ष्म से सूक्ष्म लक्ष्य को वेध सकते हैं, जैसे किसी केश के अग्रभाग को तीक्ष्ण बाण से बींधा जाय॥1170॥
जैसे कोई पीछे से भाला भोंकने को तैयार हो, या मस्तक पर अग्नि-जल रही हो, उस समय जो चित्त की उद्विग्नता होती है वैसी ही उद्विग्नता भिक्षु को कामरागप्रहाण में दिखाते हुए प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये॥1171॥
जैसे कोई पीछे से भाला भोंकने को तैयार हो, या मस्तक पर अग्नि-जल रही हो, उस समय जो चित्त की उद्विग्नता होती है वैसी ही उद्विग्ना से भिक्षु को भवराग प्रहाण हेतु प्रव्रज्या ग्रहण करनी चाहिये॥1172॥
उन अन्तिम शरीरधारी, विजितेन्द्रिय से प्रेरित हो कर मैंने अपने पैर के अंगूठे से मृगारमातुप्रासाद को हिला दिया॥1173॥

''नयिदं सिथिलमारब्भ, नयिदं अप्पेन थामसा।
निब्बानमधिगन्तब्बं, सब्बगन्थ-पमोचनं॥1174॥
''अयं च दहरो भिक्खु, अयमुत्तमपोरिसो।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं॥1175॥
''विवरमनुपभन्ति विज्जुता, वेभारस्स च पण्डवस्स च।
नगविवरगतो झायति, पुत्तो अप्पटिमस्स तादिनो॥1176॥
''उपसन्तो उपरतो, पन्तसेनासनो मुनि।
दायादो बुद्धसेट्ठस्स, ब्रह्मुना अभिवन्दितो॥1177॥
''उपसन्तं उपरतं, पन्तसेनासनं मुनिं।
दायादं बुद्धसेट्ठस्स, वन्द ब्राह्मण कस्सपं॥1178॥
''यो च जातिसतं गच्छे, सब्बा ब्राह्मणजातियो।
सोत्तियो वेदसम्पन्नो, मनुस्सेसु पुनप्पुनं॥1179॥

(संस्कृतच्छाया)- ''नेदं शिथिलमारब्धम्, नेदम् अल्पेन स्थामेन।
निर्वाणमधिगन्तव्यम्, सर्वग्रन्थ-प्रमोचनम्॥1174॥
''अयञ्च दहरो भिक्षुः, अयमुत्तमपुरुषः।
धारयति अन्तिमं देहम्, जित्वा मारं सवाहिनीम्॥1175॥
''विवरमनुप्रभन्ति विद्युता, वैभारस्य च पाण्डवस्य च।
नगविवरगतो ध्यायति, पुत्र अप्रतिमस्य तादिनः॥1176॥
''उपशान्त उपरतः, प्रान्तशयनासनो मुनिः।
दायादः बुद्धश्रेष्ठस्य, ब्रह्मणा अभिवन्दितः॥1177॥
''उपशान्तम् उपरतम्, प्रान्तशयनासनं मुनिम्।
दायादं बुद्धश्रेष्ठस्य, वन्देत ब्राह्मण! काश्यपम्॥1178॥
''यश्च जातिशतं गच्छेत्, सर्वेषु ब्राह्मणजातीसु।
श्रोत्रियः वेदसम्पन्नः, मनुष्येषु पुनः पुनः॥1179॥

(हिन्दी)- शिथिलता से साधना आरम्भ करने पर, या अल्प प्रयत्न करने पर यह सर्वविध बन्धनों का नाशक निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सकता॥1174॥

यह श्रेष्ठ पुरूष, युवक भिक्षु सेनासहित मार को जीत कर अन्तिम शरीर धारण किये हुए है॥1175॥

यह अनुपम ज्ञानी (बुद्ध) का शिष्य वैभार पर्वत एवं पाण्डव पर्वत की गुफा में बैठा हुआ अपने ज्ञानप्रकाश से उस गुफा को प्रकाशित कर रहा है॥1176॥

यह शान्तेन्द्रिय, संसार से विरक्त, एकाकी रहने वाला मुनि श्रेष्ठ बुद्ध का शिष्य है, जिसकी ब्रह्मा भी वन्दना करते हैं॥1177॥

अतः ब्राह्मण! तुम भी इन शान्तेन्द्रिय, संसार से विरक्त, एकाकी रहने वाले, और श्रेष्ठ बुद्ध के शिष्य मुनि काश्यप की वन्दना करो॥1178॥

जो पुरूष सभी ब्राह्मण जातियों में सौ बार जन्म ग्रहण करे या जो वेद का ज्ञाता श्रोत्रिय हो या जो बार बार मनुष्य जन्म पा चुका हो॥1179॥

''अज्झायकोपि चे अस्स, तिण्णं वेदान पारगू।
एतस्स वन्दनायेतं, कलं नाग्घति सोळसिं॥1180॥
''यो सो अट्ठ विमोक्खानि, पुरेभत्तं अफस्सयि।
अनुलोमं पटिलोमं, ततो पिण्डाय गच्छति॥1181॥
''तादिसं भिक्खुं मासादि, मात्तानं खणि ब्राह्मण।
अभिप्पसादेहि मनं, अरहन्तम्हि तादिने।
खिप्पं पञ्जलिको वन्द, मा ते विजटि मत्थकं॥1182॥
''नेसो पस्सति सद्धम्मं, संसारेन पुरक्खतो।
अधोगमं जिम्हपथं, कुम्मग्गमनुधावति॥1183॥
''किमीव मीळ्हसल्लित्तो, सङ्खारे अधिमुच्छितो।
पगाळ्हो लाभसक्कारे, तुच्छो गच्छति पोट्ठिलो॥1184॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अध्यायकोऽपि चेत् अस्य, त्रयाणां वेदानां पारगः।
एतेषां वन्दनायेताम्, कलां नार्हति षोडशम्॥1180॥
''यः स अष्ट विमोक्षानि, पुरेभुङ्क्तम् अस्पृशत्।
अनुलोमं प्रतिलोमम्, ततो पिण्डाय गच्छति॥1181॥
''तादृशं भिक्षुं मासादायत्, आत्मानं खनि ब्राह्मण!
अभिप्रासादैः मनः, अरहन्ते तादिने।
क्षिप्रं प्राञ्जलिकः वन्देत, मा ते व्यजटयत् मस्तकम्॥1182॥
''नैषः पश्यति सद्धर्मम्, संसारेण पुरेक्षतः।
अधोगमं जिह्मपथम्, कुमार्गमनुधावति॥1183॥
''कृमीव मीढसंलिप्तः, संस्कारे अधिमूञ्छितः।
प्रगाढः लाभसत्कारे, तुच्छो गच्छति *पोट्ठिलः*॥1184॥

(हिन्दी)- या जो सत् शास्त्रों का स्वाध्यायी हो, या तीनों वेदों का पारङ्गत हो, इन सबके प्रति की गयी वन्दना उस मुनि के प्रति की नयी वन्दना की सोलहवीं कला की भी समानता नहीं करती॥1180॥

अनुलोम प्रतिलोम पद्धति से आठ विमोक्षों का अभ्यास करने के बाद ही जो भिक्षाचर्या हेतु साधनास्थल से निकलता है॥1181॥

ब्राह्मण! ऐसे भिक्षु को अपमानित न कर और ऐसा करता हुआ तू अपनी जड़ ही न खोद। उनके प्रति अपने मन में श्रद्धा ला। अन्यथा तेरा मस्तक कट कर शरीर से पृथक् हो जायेगा॥1182॥

क्योंकि ऐसा करने वाला संसार को महत्त्व देता हुआ सद्धर्म का उचित रीति से समीक्षण नहीं करता, अपितु वह अधःपतन की ओर ले जाने वाले कुमार्ग की ओर ही दौड़ रहा है॥1183॥

या इसके लिये यह भी कहा जा सकता है कि यह वह कीड़ा है जो मल से लिपटा हुआ है। यह संस्कारों में आसक्त है, या अपने लाभ-सत्कार की प्राप्ति में ही उन्मत्त है। अन्त में यह अंगुलियाँ चटकाता हुआ खाली हाथ ही रह जायेगा॥1184॥

''इमञ्च पस्स आयन्तं, सारिपुत्तं सुदस्सनं।
विमुत्तं उभतोभागे, अज्झत्तं सुसमाहितं॥1185॥
''विसल्लं खीणसंयोगं, तेविज्जं मच्चुहायिनं।
दक्खिणेय्यं मनुस्सानं, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं॥1186॥
''एते सम्बहुला देवा, इद्धिमन्तो यसस्सिनो।
दस देवसहस्सानि, सब्बे ब्रह्मपुरोहिता।
मोग्गल्लानं नमस्सन्ता, तिट्ठन्ति पञ्जलीकता॥1187॥
''नमो ते पुरिसाजञ्ञ, नमो ते पुरिसुत्तम।
यस्स ते आसवा खीणा, दक्खिणेय्योसि मारिस'॥1188॥
''पूजितो नरदेवेन, उप्पन्नो मरणाभिभू।
पुण्डरीकंव तोयेन, सङ्खारेनुपलिप्पति॥1189॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अयञ्च पश्य आयान्तम्, सारिपुत्रं सुदर्शनम्।
विमुक्तम् उभौ अभागौ, अध्यात्मं सुसमाहितम्॥1185॥
''विशल्यं क्षीणसंयोगम्, त्रैविद्यं मृत्युहारिणम्।
दाक्षिणेयं मनुष्याणाम्, पुण्यक्षेत्रम् अनुत्तरम्॥1186॥
''एताः सम्बहुलाः देवाः, ऋद्धिमन्तः यशस्विनः।
दश देवसहस्राणि, सर्वे ब्रह्मपुरोहिताः।
मोग्गल्लानं नमन्तः, तिष्ठन्ति प्राञ्जलीकृताः॥1187॥
''नमो ते पुरुषाजन्यः, नमो ते पुरुषोत्तमः।
यस्य ते आस्रवाः क्षीणाः, दाक्षिणेयासीत् मार्षः॥1188॥
''पूजितः नरदेवेन, उत्पन्नः मरणाभिभूः।
पुण्डरीकमिव तोयेन, संस्कारे नोपलिप्यते॥1189॥

(हिन्दी)- और, इधर आते हुए इन प्रियदर्शन सारिपुत्र को देखो, जो उभयथा परिशुद्ध एवं आध्यात्मिक रूप से समाहितेन्द्रिय हैं॥1185॥

यह शल्य रहित है एवं इसके संसार से सभी संयोग क्षीण हो चुके हैं। यह तीनों विद्याएँ अधिगत कर चुका है, यह जन्म-मरण परम्परा को त्याग चुका है। यह दक्षिणा योग्य है, तथा मनुष्यों के लिये उत्तम पुण्यस्थली है॥1186॥

ये बहुत से ऋद्धिमान् एवं यशस्वी देवता दश हजार अन्य देवता तथा सभी ब्रह्मकायिकदेवता हाथ जोड़ कर मोग्गल्लान स्थविर को प्रणाम करते हुए खड़े हैं॥1187॥

हे उत्तम जाति के पुरूष! हे मानव श्रेष्ठ! मार्ष! क्योंकि आप के सभी चित्तविकार नष्ट हो चुके हैं, अतः आप दाक्षिणेय (पूजा योग्य) हैं॥1188॥

आप नरदेव द्वारा पूजित हैं। आपने जन्म-मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली है, आप संस्कारों से उसी प्रकार निर्लिप्त हैं जैसे कमलपत्र जल से निर्लिप्त रहता है॥1189॥

''यस्स मुहुत्तेन सहस्सधा लोको, संविदितो सब्रह्मकप्पो वसि।
इद्धिगुणे चुतुपपाते काले, पस्सति देवता स भिक्खु॥1190॥
''सारिपुत्तोव पञ्ञाय, सीलेन उपसमेन च।
योपि पारङ्गतो भिक्खु, एतावपरमो सिया॥1191॥
''कोटिसतसहस्सस्स, अत्तभावं खणेन निम्मिने।
अहं विकुब्बनासु कुसलो, वसीभूतोम्हि इद्धिया॥1192॥
''समाधिविज्जावसिपारमीगतो, मोग्गल्लानगोत्तो असितस्स सासने।
धीरो समुच्छिन्दि समाहितिन्द्रियो, नागो यथा पूतिलतंव बन्धनं॥1193॥
''परिचिण्णो मया सत्था, कतं बुद्धस्स सासनं।
ओहितो गरुको भारो, भवनेत्ति समूहता॥1194॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य मुहूर्तेन सहस्रधा लोकः, संविदितः सब्रह्मकल्पः।
वशी ऋद्धिगुणे चतुःप्रपादे, काले पश्यति देवतां सः भिक्षुः॥1190॥
''*सारिपुत्तो* इव प्रज्ञया, शीलेन उपशमेन च।
यः अपि पारङ्गतः भिक्षुः, एष एव परमः श्रेयः॥1191॥
''कोटिशतसहस्रस्य, आत्मभावं क्षणेन निर्मिते।
अहं विकुर्वनाशु कुशलः, वशीभूतोऽस्मि ऋद्ध्या॥1192॥
''समाधिविद्यावशिपारमीगतः, मोग्गल्लानगोत्र आसीत् तस्य शासने।
धीरः समुच्छिन्न समाहितेन्द्रियः, नागः यथा पूतिलतामिव बन्धनम्॥1193॥
''परिचीर्णः मया शास्ता, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अपहृतो गरुकः भारः, भवनेत्रि समूहता समूलं॥1194॥

(हिन्दी)- जिसने एक मुहूर्त में ब्रह्माण्डकल्प सहित हजारों लोकों को जानने का सामर्थ्य प्राप्त कर रखा है, समस्त ऋद्धियाँ एवं जन्म-मरण को हस्तगत कर लिया है, ऐसा भिक्षु देवताओं से साक्षात्कार भी करता है॥1190॥

प्रज्ञा, शील एवं समाधि-इन तीनों शिक्षाओं में सारिपुत्र सर्वश्रेष्ठ है। यदि अन्य कोई भिक्षु भी इन शिक्षाओं में पारङ्गत होगा तो भी सारिपुत्र ही श्रेष्ठ रहेंगे॥1191॥

मैं करोड़ों पुरूषों का शरीर एक साथ एक क्षण में धारण कर सकता हूँ। मैं इन सब ऋद्धियों में पूर्ण निष्णात हूँ। यों कहिये कि समस्त ऋद्धियाँ मेरे वश में हैं॥1192॥

भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म की साधना करते हुए मैं मौद्गल्यायन समाधि, विद्या एवं जितेन्द्रियता की सीमा तक साधना कर चुका हूँ। तथा समाहितेन्द्रिय हो कर मैंने धैर्यपूर्वक अपने सभी बन्धनों को उसी प्रकार काट डाला है जैसे कोई प्रबल हाथी जीर्ण लताओं के बन्धनों को तोड़ डालता है॥1193॥

शास्ता के धर्म का मैंने पूर्ण अभ्यास कर लिया है। मैं उनके आदेश का पालन कर रहा हूँ। मैंने अपने कन्धों से सर्वविध सांसारिक भार उतार दिया है तथा अपने सभी भवबन्धन काट दिये हैं॥1194॥

''यस्स चत्थाय पब्बजितो, अगारस्मानगारियं।
सो मे अत्थो अनुप्पत्तो, सब्बसंयोजनक्खयो॥1195॥
''कीदिसो निरयो आसि, यत्थ दुस्सी अपच्चथ।
विधुरं सावकमासज्ज, ककुसन्धञ्च ब्राह्मणं॥1196॥
''सतं आसि अयोसङ्कू, सब्बे पच्चत्तवेदना।
ईदिसो निरयो आसि, यत्थ दुस्सी अपच्चथ।
विधुरं सावकमासज्ज, ककुसन्धञ्च ब्राह्मणं॥1197॥
''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1198॥
''मज्झेसरस्मिं तिट्ठन्ति, विमाना कप्पठायिनो।
वेळुरियवण्णा रुचिरा, अच्चिमन्तो पभस्सरा।
अच्छरा तत्थ नच्चन्ति, पुथु नानत्तवण्णियो॥1199॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यस्य चार्थाय प्रव्रजितः, अगारादनागरिकम्।
सो मे अर्थ अनुप्राप्तः, सर्वसंयोजनक्षयः॥1195॥
''कीदृशः निरय आसीत्, यत्र द्वेषी अप्रत्यत।
विधुरं श्रावकमासज्य, ककुसन्धञ्च ब्राह्मणम्॥1196॥
''शतम् आसीत् अयोशंकुः, सर्वाः प्रत्यत्तवेदनाः।
ईदृशः निरय आसीत्, यत्र द्वेषी अप्रत्यत।
विधुरं श्रावकमासज्य, ककुसन्धञ्च ब्राह्मणम्॥1197॥
''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण दुःखम् निर्गच्छसि॥1198॥
''मध्येसरे तिष्ठन्ति, विमानाः कल्पस्थायिनः।
वैदूर्यवर्णाः रुचिराः, अर्चिष्मन्तः प्रभास्वराः।
अप्सराः तत्र नृत्यन्ति, पृथु नानत्ववर्णस्य॥1199॥

(हिन्दी)- जिस प्रयोजन की पूर्ति हेतु घर से निकल कर मैं प्रव्रजित हुआ था, वह सभी संयोजनों का क्षय रूप प्रयोजन मैंने पूर्ण कर लिया है॥1195॥

वह नरक कौन सा था जहाँ द्वेषी नामक मार एकाकी बुद्ध शिष्य तथा ककुसन्ध ब्राह्मण के अपमान रूप अपराध के कारण जा गिरा था॥1196॥

वह अयःशङ्कु नामक नरक था जहाँ प्रत्येक कष्ट को प्रति सौ बार भोगना पड़ता था। ऐसा वह नरक था, जहाँ वह द्वेषी मार उस एकाकी बुद्धशिष्य तथा ककुसन्ध ब्राह्मण का अपमान करने के कारण जा गिरा था॥1197॥

जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1198॥

महासमुद्र के मध्य कल्प पर्यन्त स्थिर रहने वाले कुछ विमान हैं जो दूर से वैदूर्यवर्ण वाले तथा सुन्दर दिखायी देते हैं, परन्तु उन में दिन रात भयङ्कर अग्नि प्रज्ज्वलित रहती है, वहाँ पृथक् पृथक् नाना वर्णों वाली अप्सराएँ नाचती रहती हैं॥1199॥

''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1200॥
''यो वे बुद्धेन चोदितो, भिक्खुसङ्घस्स पेक्खतो।
मिगारमातुपासादं, पादङ्गुट्ठेन कम्पयि॥1201॥
''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1202॥
''यो वेजयन्तपासादं, पादङ्गुट्ठेन कम्पयि।
इद्धिबलेनुपत्थद्धो, संवेजेसि च देवता॥1203॥
''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1204॥

(संस्कृतच्छाया)- ''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण दुःखम् निर्गच्छसि॥1200॥
''यः वे बुद्धेन चोदितः, भिक्षुसङ्घस्य प्रेक्षतः।
मृगारमातुप्रासादम्, पादाङ्गुष्ठेन अकम्पिष्ट॥1201॥
''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण दुःखम् निर्गच्छसि॥1202॥
''यः वैजयन्तप्रासादम्, पादाङ्गुष्ठेन अकम्पिषि।
ऋद्धि बलेनोपत्ध्यत्, संवेजयत् च देवता॥1203॥
''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण-दुःखम् निर्गच्छसि॥1204॥

(हिन्दी)- जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1200॥

जिसने भिक्षुसङ्घ के मध्य भगवान् से प्रेरित हो कर अपने पैर के अंगूठे से समस्त मृगारमातुप्रासाद को कँपा दिया था॥1201॥

जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1202॥

जिसने अपने ऋद्धिबल के प्रभाव से जिस वैजयन्त प्रासाद को अपने पैर के अंगूठे के स्पर्शमात्र से कँपा दिया था, जिससे देवगण अत्यधिक प्रभावित हो गये थे॥1203॥

जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1204॥

''यो वेजयन्तपासादे, सक्कं सो परिपुच्छति।
अपि आवुसो जानासि, तण्हक्खयविमुत्तियो।
तस्स सक्को वियाकासि, पञ्हं पुट्ठो यथातथं॥1205॥
''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1206॥
''यो ब्रह्मानं परिपुच्छति, सुधम्मायं ठितो सभं।
अज्जापि त्यावुसो सा दिट्ठि, या ते दिट्ठि पुरे अहु।
पस्ससि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं॥1207॥
''तस्स ब्रह्मा वियाकासि, पञ्हं पुट्ठो यथातथं।
न मे मारिस सा दिट्ठि, या मे दिट्ठि पुरे अहु॥1208॥
''पस्सामि वीतिवत्तन्तं, ब्रह्मलोके पभस्सरं।
सोहं अज्ज कथं वज्जं, अहं निच्चोम्हि सस्सतो॥1209॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यः वैजयन्तप्रासादे, शक्रं सः पर्यप्राक्षीत्।
अपि आवुसः जानासि, तृष्णाक्षयविमुक्तयः।
तस्य शक्र व्याकाषयत्, प्रश्नं पृच्छः यथार्थताम्॥1205॥
''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण-दुःखम् निर्गच्छसि॥1206॥
''यः ब्रह्माणं परिपृच्छति, सुधर्मायां स्थितः सभायाम्।
अद्यापि तवावुसः सः दृष्टिः, यः ते दृष्टिः पुरे अभूत्।
पश्यसि वीतिवर्तन्तम्, ब्रह्मलोके प्रभास्वरम्॥1207॥
''तस्य ब्रह्मा व्याकाषयत्, प्रश्नं पृच्छः यथार्थताम्।
न मे मार्ष सः दृष्टिः, यः मे दृष्टिः पुरे अभूत्॥1208॥
''पश्यामि वीतिवर्तन्तम्, ब्रह्मलोके प्रभास्वरम्।
सोऽहम् अद्य कथं वर्जम्, अहं नित्योऽस्मि शाश्वतम्॥1209॥

(हिन्दी)- उस वैजयन्त प्रासाद में देवराज शक्र ने मुझसे पूछा था कि तृष्णाक्षय से कैसे विमुक्ति होती है? मैंने इस विषय पर विस्तार से उस को प्रवचन किया था॥1205॥

जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1206॥

मैंने सुधर्मा में बैठे हुए ब्रह्मा से पूछा था,- क्या तुम्हारे अब भी वही विचार हैं, जो पहले थे? या इस प्रभास्वर ब्रह्मलोक को विनाशित्वधर्म से युक्त मानते हो? ॥1207॥

यह पूछने पर उसका ब्रह्मा ने यह उत्तर दिया था'-मार्ष! मेरी अब वह विचारधारा नहीं है जो पहले थी॥1208॥

अब तो मैं इस प्रभास्वर ब्रह्मलोक को विनाशी ही मानता हूँ। मैं अब इस निन्दनीय मत का पोषक कैसे हो सकता हूँ कि मैं नित्य एवं शाश्वत हूँ॥1209॥

यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1210॥
''यो महानेरुनो कूटं, विमोक्खेन अफस्सयि।
वनं पुब्बविदेहानं, ये च भूमिसया नरा॥1211॥
''यो एतमभिजानाति, भिक्खु बुद्धस्स सावको।
तादिसं भिक्खुमासज्ज, कण्ह दुक्खं निगच्छसि॥1212॥
''न वे अग्गि चेतयति, अहं बालं डहामीति।
बालोव जलितं अग्गिं, आसज्ज नं पडय्हति॥1213॥
''एवमेव तुवं मार, आसज्ज नं तथागतं।
सयं डहिस्ससि अत्तानं, बालो अग्गिंव सम्फुसं॥1214॥
''अपुञ्ञं पसवी मारो, आसज्ज नं तथागतं।
किं नु मञ्ञसि पापिम, न मे पापं विपच्चति॥1215॥

(संस्कृतच्छाया)- ''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासाद्य, कृष्ण-दुःखम् निर्गच्छसि॥1210॥
''यः महसुमेरौ कूटम्, विमोक्षेण अस्पृशत्।
वनं पूर्वविदेहानाम्, ये च भूमिशया नराः॥1211॥
''य एतमभिजानाति, भिक्षुः बुद्धस्य श्रावकः।
तादृशं भिक्षुमासद्य, कृष्ण-दुःखम् निर्गच्छसि॥1212॥
''न वै अग्निं चेतयति, अहं बालं डाह्यमिति।
बाल इव ज्वलितम् अग्निं, आसद्य न प्रडह्यति॥1213॥
''एवमेव त्वं मार, आसद्य नं तथागतम्।
स्वयं धक्ष्यसि आत्मानम्, बाल अग्निमिव संस्पृशम्॥1214॥
''अपुण्यं प्रसवी मारः, आसद्य नं तथागतम्।
किं नु मन्यसे पापिन्!, न मे पापं विपचति॥1215॥

(हिन्दी)- जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1210॥

जो महासुमेरू पर्वत के शिखर पर या पूर्वविदेह के वन में या पृथ्वी के किसी अन्य पर्वत पर विमोक्ष की साधनापूर्वक ध्यानाभ्यास करता है॥1211॥

जो बुद्धशिष्य भिक्षु इस बात को जानता है, वह ऐसे भिक्षु को प्राप्त कर अपने समस्त दुःखों के पार जा सकता है॥1212॥

जैसे अग्नि को यह संज्ञान नहीं होता कि वह बालक को जला रही है, अपितु वह बालक ही उस अग्नि के पास जा कर स्वयं जलने हेतु पहुँच जाता है॥1213॥

इसी प्रकार मार! तुम भी तथागत का अनादर कर, स्वयं उनके पास जा कर भस्म होने की स्थिति में पहुँच गये हो, जैसे वह बालक मूर्खतावश अग्नि के पास पहुँच कर स्वयं जल जाता है॥1214॥

मार! तुम ने तथागत का अनादर कर बहुत पाप कमाया है। अरे पापिन्! क्या तुम समझते हो कि यह पाप तुम को फल नहीं देगा? ॥1215॥

''करतो ते चीयते पापं, चिररत्ताय अन्तक।
मार निब्बिन्द बुद्धम्हा, आसं माकासि भिक्खुसु॥1216॥
''इति मारं अतज्जेसि, भिक्खु भेसकळावने।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथा''ति॥1217॥
इत्थं सुदं आयस्मा महामोग्गल्लानो थेरो गाथायो अभासित्थाति।

सट्ठिनिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – सट्ठिकम्हि निपातम्हि, मोग्गल्लानो महिद्धिको।
एकोव थेरगाथायो, अट्ठसट्ठि भवन्ति ताति॥

21. महानिपातो

1. वङ्गीसत्थेरगाथा-

''निक्खन्तं वत मं सन्तं, अगारस्मानगारियं।
वितक्का उपधावन्ति, पगब्भा कण्हतो इमे॥1218॥
''उग्गपुत्ता महिस्सासा, सिक्खिता दळ्हधम्मिनो।
समन्ता परिकिरेय्युं, सहस्सं अपलायिनं॥1219॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कुरुतः ते चीयते पापम्, चिररक्ताय अन्तकः।
मार निर्बिन्द बुद्धात्, माकाषयत् भिक्षुषु॥1216॥
''इति मारम् अतर्ज्यैसि, भिक्षु *भेसकळा*वने।
ततः सः दुर्मनः यक्षः, तत्रैवान्तरध्यायी'' इति॥1217॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् महामोग्गल्लानः स्थविरः गाथा अभाषतेति॥

तत्रोद्दानम् – षष्ठ्यां निपाते, *मोग्गल्लानो* महाऋद्धिकः।
एकैव स्थविरगाथाः, अष्टाषष्टि भवन्ति ते इति॥ ●

1. ''निष्क्रान्तं वत मम शान्तम्, अगारादनागारिकम्।
वितर्का उपधावन्ति, प्रगल्भाः कृष्णतः इमे॥1218॥
''उग्रपुत्राः महिस्सासा, शिक्षिता दृढधर्मिणः।
समन्ताः परिकरेयुः, सहस्रम् अपलायिनम्॥1219॥

(हिन्दी)- हे मार! तुम्हारे द्वारा ऐसा पाप किये जाने पर यह बहुत समय तक एकत्र रहेगा। अतः मार! तू बुद्ध के प्रति ऐसी मूर्खता न कर, तू भिक्षुओं से ऐसी आशा न रख कि वे तेरे पाश में बँध जायँगें॥1216॥
इस प्रकार भिक्षु ने भेसकड़ावन में मार को भय दिखा कर दूर भगाया। तब वह मार दुःखी चित्त हो कर वहीं अन्तर्हित हो गया॥1217॥ इस प्रकार आयुष्मान् महामौद्गल्यायन स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥
इस निपात की सूची- इस षष्टि निपात में केवल महान् ऋद्धिसम्पन्न मौद्गल्यायन स्थविर के प्रवचन का ही वर्णन है। तथा इस निपात में अड़सठ गाथाएँ वर्णित हैं॥ ●
घर से निकल कर प्रव्रज्या ग्रहण करते समय बहुत से पाप-पक्ष के दुःसाहसी विचार मेरे पीछे लग गये॥1218॥
मानो बड़े बड़े धनुष् वाले, शिक्षित, दृढसङ्कल्प वाले हजारों डाकू किसी भागते हुए शरणकामी पुरूष के पीछे लगे हों॥1219॥

''सचेपि एत्तका भिय्यो, आगमिस्सन्ति इत्थियो।
नेव मं ब्याधयिस्सन्ति, धम्मे सम्हि पतिट्ठितो॥1220॥
''सक्खी हि मे सुतं एतं, बुद्धस्सादिच्चबन्धुनो।
निब्बानगमनं मग्गं, तत्थ मे निरतो मनो॥1221॥
''एवं चे मं विहरन्तं, पापिम उपगच्छसि।
तथा मच्चु करिस्सामि, न मे मग्गम्पि दक्खसि॥1222॥
''अरतिञ्च रतिञ्च पहाय, सब्बसो गेहसितञ्च वितक्कं।
वनथं न करेय्य कुहिञ्चि, निब्बनथो अवनथो स भिक्खु॥1223॥
''यमिध पथविञ्च वेहासं, रूपगतं जगतोगधं किञ्चि।
परिजीयति सब्बमनिच्चं, एवं समेच्च चरन्ति मुतत्ता॥1224॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सचेतपि एततः भूयस्, आगमिष्यन्ति स्त्रियः।
नैव मे व्याधयिष्यन्ति, धर्मे स्वस्मिन् प्रतिष्ठिताम्॥1220॥
''साक्षात् हि मे श्रुतमेतद्, बुद्धस्य आदित्यबन्धुनः।
निर्वाणगमनः मार्गः, तत्र मे निरत: मनः॥1221॥
''एवं चेत् मां विरहन्तम्, पापिनम् उपगच्छसि।
तथा मृत्यु करिष्यामि, न मे मार्गमपि द्रक्षसि''॥1222॥
''अरतिञ्च रतिञ्चप्रहाय, सर्वशः गृहस्थं वितर्कम्।
वनथं न करेत् कुत्रञ्च, निर्वाणथ अवनथः स भिक्षुः॥1223॥
''यमिध पृथ्वीञ्च विहायसम्, रूपगतं जगतोगधं किञ्चित्।
परिजीर्यते सर्वमनित्यम्, एवं समेत्य चरन्ति मुक्ताः॥1224॥

(हिन्दी)- इतनी ही स्त्रियाँ भी यदि इधर उधर से आ कर मेरे पीछे लग जायँ तो भी वे सब मेरी कुछ भी हानि न कर पायेंगी, क्योंकि मैं अपनी धर्मसाधना में सुप्रतिष्ठित हूँ॥1220॥

मैंने आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध से जो निर्वाण की ओर ले जाने वाला मार्ग सुना है उसमें मेरा चित्त पूर्णतः संलग्न है॥1221॥

रे पापी मार! यदि तू इस प्रकार साधना करते हुए मेरे पीछे लगेगा तो मैं तुझको वह मार मारूँगा कि तुझको त्राण का कोई मार्ग भी नहीं दिखेगा॥1222॥

वास्तविक भिक्षु को संसार में रति तथा अरति-दोनों को तथा गृहस्थ धर्म पर आश्रित वितर्कों को भी त्याग कर कहीं भी तृष्णा नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार वीततृष्ण हो कर वह भिक्षु सर्वथा तृष्णारहित हो जाता है॥1223॥

जो कुछ भी इस पृथ्वी या आकाश में दृश्यमान जगत से सम्बद्ध रूपगत विषय हैं वे सब परिवर्तनशील एवं अनित्य हैं -ऐसा समझ कर ही मुक्तात्मा भिक्षु को संसार में विचरण करना चाहिये॥1224॥

''उपधीसु जना गधितासे, दिट्ठसुते पटिघे च मुते च।
एत्थ विनोदय छन्दमनेजो, यो हेत्थ न लिम्पति मुनि तमाहु॥1225॥
''अथ सट्ठिसिता सवितक्का, पुथुज्जनताय अधम्मा निविट्ठा।
न च वग्गगतस्स कुहिञ्चि, नो पन दुट्ठुल्लगाही स भिक्खु॥1226॥
''दब्बो चिररत्तसमाहितो, अकुहको निपको अपिहालु।
सन्तं पदं अज्झगमा मुनि, पटिच्च परिनिब्बुतो कङ्खति कालं॥1227॥
''मानं पजहस्सु गोतम, मानपथञ्च जहस्सु असेसं।
मानपथम्हि स मुच्छितो, विप्पटिसारीहुवा चिररत्तं॥1228॥
''मक्खेन मक्खिता पजा, मानहता निरयं पपतन्ति।
सोचन्ति जना चिररत्तं, मानहता निरयं उपपन्ना॥1229॥

(संस्कृतच्छाया)- ''उपधीषु जनाः गदितासे, दृष्टिश्रुते प्रतिघे च स्मृते च।
अत्र विनोदय छन्दमनेजः, यः ह्यत्र न लिम्पति मुनिः तमभूत्॥1225॥
''अथ षष्ठिसिताः सवितर्काः, पृथुजनताय अधर्माः निर्विष्ठाः।
न च वर्गगतस्य कुत्रञ्च, नो पन दुष्ठुल्लग्राह्यी सः भिक्षुः॥1226॥
''*दब्बो* चिररक्तसमाहितः, अकुहकः निपुण अस्पृहालु।
शान्तं पदम् अध्यगमाः मुनिः, प्रतीत्य परिनिर्वृतः कांक्षति कालम्॥1227॥
''मानं प्रजिहीस्व गौतम!, मानपथञ्च जिहीस्व अशेषम्।
मानपथे स मुञ्चितः, विप्रतिसार्याभूत् वा चिररक्तम्॥1228॥
''मक्षेण मक्षिता प्रजा, मानहताः निरयं प्रपतन्ति।
शोचन्ति जनाः चिररक्तम्, मानहताः निरयम् उत्पन्नाः॥1229॥

(हिन्दी)- यहाँ दृष्ट, श्रुत, स्मृत तथा द्वेषपूर्ण सांसारिक आसक्तियों से बाँधे हुए लोग अपना मनोरंजन करते रहते हैं। परन्तु इनमें जो लिप्त नहीं होता उसी को 'मुनि' कहा जाता है॥1225॥

ये अस्थियों तक प्रविष्ट हुए तथा वितर्क सहित और मूर्खता के लिये एकत्र हुए अधर्म सांसारिक बन्धनों से मुक्त भिक्षु की कुछ भी हानि नहीं कर सकते, क्योंकि सच्चा भिक्षु ऐसी हीन क्रियाओं का आलम्बन नहीं किया करता॥1226॥

यह द्रव्य भिक्षु बहुत समय से समाहितेन्द्रिय है, भिक्षुत्व का मिथ्या अभिनय नहीं करता। यह मुनि साधना द्वारा शान्तपद को प्राप्त कर चुका है। यह प्रतीत्यसमुत्पाद के द्वारा समीक्षा करता हुआ परिनिर्वाण तक पहुँच चुका है, समय की प्रतीक्षा कर रहा है॥1227॥

हे गौतमशिष्य! तू अपना वृथाभिमान त्याग दे तथा वृथाभिमान की ओर ले जाने वाले सभी मार्गों का भी त्याग कर दे। जो इस वृथाभिमानमार्ग पर चला वह बहुत काल तक पश्चात्ताप ही करता है॥1228॥

यह समस्त साधारण प्रजा दूसरों के गुणों को कोई महत्त्व न देती हुई उन का तिरस्कार ही करती है। ऐसे लोगों तथा उन वृथाभिमानी-दोनों का ही नरक में पतन होता है। ऐसे लोग नरक में उत्पन्न हो कर बहुत समय तक पश्चाताप करते हैं॥1229॥

''न हि सोचति भिक्खु कदाचि, मग्गजिनो सम्मा पटिपन्नो।
कित्तिञ्च सुखञ्चानुभोति, धम्मदसोति तमाहु तथत्तं॥1230॥
''तस्मा अखिलो इध पधानवा, नीवरणानि पहाय विसुद्धो।
मानञ्च पहाय असेसं, विज्जायन्तकरो समितावी॥1231॥
''कामरागेन डय्हामि, चित्तं मे परिडय्हति।
साधु निब्बापनं ब्रूहि, अनुकम्पाय गोतम॥1232॥
''सञ्ञाय विपरियेसा, चित्तं ते परिडय्हति।
निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रागूपसंहितं॥1233॥
''असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं।
सति कायगता त्यत्थु, निब्बिदाबहुलो भव॥1234॥

(संस्कृतच्छाया)- ''न हि शोचति भिक्षुः कदाचित्, मार्गजिनः सम्यक् प्रतिपन्नः।
कीर्तिञ्च सुखञ्चानुभवति, धर्मदर्शी इति तमभूत् तदर्थम्॥1230॥
''तस्मात् अखिल इध प्रधानवान्, नीवरणानि प्रहाय विसुद्धः।
मानञ्च प्रहाय अशेषम्, विद्ययान्तकरः शमितावी॥1231॥
''कामरागेण दह्यामि, चित्तं मे परिदहति।
साधु! निर्वाणपनं ब्रूहि, अनुकम्पया गौतम! ॥1232॥
''संज्ञायाः विपर्यायेण, चित्तं ते परिदहति।
निमित्तं परिव्रज, शुभं रागोपसंहितम्॥1233॥
''अशुभाय चित्तं भावयेः, एकाग्रं सुसमाहितम्।
स्मृतिः कायगताः त्यक्तु, निर्विदाबहुलः भव॥1234॥

(हिन्दी)- ऐसा भिक्षु कभी पश्चाताप नहीं करता, क्योंकि वह बुद्धोपदिष्ट मार्ग पर आरूढ़ है तथा उस के अनुसार अपनी साधना पूर्ण कर चुका है। इस लोक में कीर्ति तथा सुख-दोनों ही प्राप्त करता है। और उस स्थिति में पहुँचे हुए उसको जनता 'धर्मद्रष्टा' कहती है॥1230॥

अतः भिक्षु कठोरता त्यागकर तथा धर्माभ्यास में प्रयत्नवान् हो कर पाँचों नीवरणों से मुक्त होता हुआ विशुद्धचित्त हो जाता है। तब वह समस्त अभिमान त्याग कर, विद्या के द्वारा अपने सभी दुःखों का अन्त कर शान्त पद प्राप्त कर लेता है॥1231॥

प्रश्नः "मैं कामभोग रूप अग्नि से जल रहा हूँ, मेरा चित्त भी उससे दग्ध हो रहा है। हे गौतम! कृपया मुझ को ऐसा कोई उपाय बताइये कि मैं उस को शान्त कर सकूँ"?॥1232॥

उत्तरः "संज्ञा के विपर्यय (प्रतिकूलता) के कारण मेरा चित्त जल रहा है। शुभ निमित्तक रागयुक्त उत्पत्ति कारणों से स्वयं को मुक्त कर॥1233॥

चित्त को भलीभाँति एकाग्र एवं समाहित कर कायगत स्मृति की भावना करते हुए संसार के प्रति वैराग्य धारण कर॥1234॥

''अनिमित्तञ्च भावेहि, मानानुसयमुज्जह।
ततो मानाभिसमया, उपसन्तो चरिस्ससि॥1235॥
''तमेव वाचं भासेय्य, यायत्तानं न तापये।
परे च न विहिंसेय्य, सा वे वाचा सुभासिता॥1236॥
''पियवाचमेव भासेय्य, या वाचा पटिनन्दिता।
यं अनादाय पापानि, परेसं भासते पियं॥1237॥
''सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।
सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतिट्ठिता॥1238॥
''यं बुद्धो भासति वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वाचानमुत्तमा॥1239॥
''गम्भीरपञ्ञो मेधावी, मग्गामग्गस्स कोविदो।
सारिपुत्तो महापञ्ञो, धम्मं देसेति भिक्खुनं॥1240॥

(संस्कृतच्छाया)- ''अनिमित्तञ्च भावयेः, मानानुशयंमुञ्च।
ततो मानाभिसमयाः, उपशान्तः चरिष्यसि॥1235॥
''तामेव वाचं भाषेत्, य आत्मानं न तापयेत्।
परे च न विहिंसेत्, सा वै वाचाः सुभाषिताः॥1236॥
''प्रियवाचमेव भाषेत्, याः वाचः प्रतिनन्दिताः।
यम् अनादाय पापानि, परेषां भाषते प्रियम्॥1237॥
''सत्यं वै अमृता वाचा, एषः धर्मः सनातनः।
सत्ये अर्थे च धर्मे च, अभूत् शान्तः प्रतिष्ठितः॥1238॥
''यं बुद्धः भाषाते वाचम्, क्षेमं निर्वाणप्राप्तये।
दुःखस्यान्तकरणाय, सा वै वाचानामुत्तमा॥1239॥
''गम्भीरप्रज्ञः मेधावी, मार्गामार्गस्य कोविदः।
सारिपुत्तो महाप्रज्ञः, धर्मं देशयति भिक्षून्॥1240॥

(हिन्दी)- और अनिमित्त की भावना कर तथा मान की ओर झुकने वाले चित्त की प्रवृत्ति को दूर कर। तब तू मान के स्पर्श से बचता हुआ शान्त हो कर साधना कर पायेगा॥1235॥

वही वाणी बोल जो तुझको कभी कष्टप्रद न हो] तथा दूसरों को भी कष्ट न दे। ऐसी वाणी मनोहर कहलाती है॥1236॥

ऐसी प्रिय वाणी ही बोल, जिस को अन्य लोग सहर्ष स्वीकार कर सकें। जो दूसरों को प्रिय वाणी बोलता है वह पापों का संग्रह नहीं करता॥1237॥

"सत्यवचन ही अमृतवाणी है" यही सनातनधर्म है। सत्यमय अर्थ एवं धर्म में ही सन्तों की प्रतिष्ठा है॥1238॥

निर्वाणप्राप्ति के लिये भगवान् बुद्ध जिस मङ्गलमय वाणी से शिष्यों को उपदेश करते हैं वही वाणी सर्वश्रेष्ठ है॥1239॥

गम्भीरप्रज्ञावान्, मार्ग-अमार्ग के ज्ञाता, बुद्धिमान्, महाप्रज्ञ-सारिपुत्र भिक्षुओं को धर्मोपदेश करते हैं॥1240॥

''सङ्खित्तेनपि देसेति, वित्थारेनपि भासति।
सालिकायिव निग्घोसो, पटिभानं उदिय्यति॥1241॥
''तस्स तं देसयन्तस्स, सुणन्ति मधुरं गिरं।
सरेन रजनीयेन, सवनीयेन वग्गुना।
उदग्गचित्ता मुदिता, सोतं ओधेन्ति भिक्खवो॥1242॥
''अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया, भिक्खू पञ्चसता समागता।
संयोजनबन्धनच्छिदा, अनीघा खीणपुनब्भवा इसी॥1243॥
''चक्कवत्ती यथा राजा, अमच्चपरिवारितो।
समन्ता अनुपरियेति, सागरन्तं महिं इमं॥1244॥
''एवं विजितसङ्गामं, सत्थवाहं अनुत्तरं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥1245॥

(संस्कृतच्छाया)- ''संक्षिप्तेन देशयति, विस्तारेण भाषते।
सारिकेव निर्घोषः, प्रतिभानम् उदीरयति॥1241॥
''तस्य तं देशयन्तस्य, श्रुणन्ति मधुरां गिराम्।
स्वरेण रजनीयेन, सवनीयेन वर्गुणा।
उदग्रचित्ताः मुदिताः, श्रुतं अवदहन्ति भिक्षवः॥1242॥
''अद्य पूर्णरसे विशुद्धये, भिक्षवः पञ्चशतम् समागताः।
संयोजनबन्धनच्छिदा, अनीघा क्षीणपुनर्भवा ऋषयः॥1243॥
''चक्रवर्ति यथा राजा, अमात्यपरिवारितः।
समन्ता अनुपरियेति, सागरान्तं महे इमम्॥1244॥
''एवं विजितसङ्ग्रामम्, सार्थवाहम् अनुत्तरम्।
श्रावकाः पर्युपाशन्ति, त्रैविद्याः मुत्युहारिणः॥1245॥

(हिन्दी)- वे संक्षेप में भी धर्मोपदेश करते हैं और विस्तार से भी। उन की यह सारिका के समान मधुर वाणी श्रोता के चित्त में तत्काल ज्ञान उत्पन्न कर देती है॥1241॥

ऐसे मधुर स्वर से प्रिय वाणी बोलते हुए उन का उपदेश भिक्षुजन सावधानीपूर्वक, कान खोल कर तथा उत्साहपूर्वक प्रसन्न मन से सुनते हैं॥1242॥

आज पूर्णिमा के दिन चित्तविशुद्धि हेतु पाँच सौ भिक्षु एकत्र हो रहे हैं। वे सभी ऋषि सर्वविध संयोजन एवं बन्धनों से मुक्त, दुःखरहित तथा जन्म-परम्परा का क्षय कर चुके हैं॥1243॥

जैसे कोई चक्रवर्ती राजा अपने अमात्यों से घिरा हुआ इस समुद्रपर्यन्त समस्त पृथ्वी पर चारों ओर घूमते हैं॥1244॥

इसी प्रकार संग्रामविजयी, अनुपम सारथिरूप भगवान् बुद्ध के शिष्य की, विद्यात्रय-सम्पन्न, मार पर विजय प्राप्त करने वाले भिक्षुजन उपासना कर रहे हैं॥1245॥

''सब्बे भगवतो पुत्ता, पलापेत्थ न विज्जति।
तण्हासल्लस्स हन्तारं, वन्दे आदिच्चबन्धुनं॥1246॥
''परोसहस्सं भिक्खूनं, सुगतं पयिरुपासति।
देसेन्तं विरजं धम्मं, निब्बानं अकुतोभयं॥1247॥
''सुणन्ति धम्मं विमलं, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सोभति वत सम्बुद्धो, भिक्खुसङ्घपुरक्खतो॥1248॥
''नागनामो'सि भगवा, इसीनं इसिसत्तमो।
महामेघोव हुत्वान, सावके अभिवस्ससि॥1249॥
''दिवा विहारा निक्खम्म, सत्थुदस्सनकम्यता।
सावको ते महावीर, पादे वन्दति वङ्गिसो॥1250॥

(संस्कृतच्छाया)- ''सर्वेः भगवतः पुत्राः, प्रलापार्थ न विद्यते।
तृष्णाशल्यं हन्तारम्, वन्दे आदित्यबन्धुवे॥1246॥
''परसहस्रं भिक्षुणा, सुगतं पर्युपासते।
देशयन्तं विरजं धर्मम्, निर्वाणम् अकुतोभयम्॥1247॥
''शृण्वन्ति धर्मं विमलम्, सम्यक्सम्बुद्धदेशितम्।
शोभते वत सम्बुद्धः, भिक्षुसङ्घपुरक्षतः॥1248॥
'' 'नागनामः' आसीत् भगवान्, ऋषीणाम् ऋषिसत्तमः।
महामेघ इव भूत्वा, श्रावके अभिवर्षसि॥1249॥
''दिवाः विहाराः निष्क्रम्य, शास्तादर्शनकाम्यता।
श्रावकः ते महावीरः, पादौ वन्दति *वङ्गिसः*॥1250॥

(हिन्दी)- ये सभी भगवान् के साक्षात् शिष्य हैं। ये प्रलाप से दूर रहते हैं। मैं ऐसे तृष्णाकण्टक को उखाड़ फेंकने वाले आदित्यबन्धु भगवान् बुद्ध को प्रणाम करता हूँ॥1246॥

ये भिक्षुजन हजारों की संख्या में सुगत की आराधना इस लिये करते हैं कि वे इन को निर्मल एवं निर्भीक निर्वाण धर्म का उपदेश करते हैं॥1247॥

इस प्रकार सम्यक्सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म का श्रवण करते हुए इन भिक्षुजनों से परिवृत हो कर वे भगवान् बहुत अधिक शोभित हो रहे हैं॥1248॥

इन भगवान् को जनता 'नाग' नाम से सम्बोधन करती है। ये ऋषियों में उत्तम ऋषि हैं तथा ये महामेघ के समान श्रावकों पर धर्मवृष्टि करते रहते हैं॥1249॥

दैनिक साधनाभ्यास से निवृत्त होकर शास्ता के दर्शन की इच्छा से हे महावीर! आपका यह शिष्य वङ्गीश आपको प्रणाम करता है॥1250॥

''उम्मग्गपथं मारस्स, अभिभुय्य चरति पभिज्ज खीलानि।
तं पस्सथ बन्धपमुञ्चकरं, असितंव भागसो पविभज्ज॥1251॥
''ओघस्स हि नितरणत्थं, अनेकविहितं मग्गं अक्खासि।
तस्मिञ्च अमते अक्खाते, धम्मदसा ठिता असंहीरा॥1252॥
''पज्जोतकरो अतिविज्झ, सब्बठितीनं अतिक्कममद्दस।
ञत्वा च सच्छिकत्वा च, अग्गं सो देसयि दसद्धानं॥1253॥
''एवं सुदेसिते धम्मे, को पमादो विजानतं धम्मं।
तस्मा हि तस्स भगवतो सासने, अप्पमत्तो सदा नमस्समनुसिक्खे॥1254॥
''बुद्धानुबुद्धो यो थेरो, कोण्डञ्ञो तिब्बनिक्कमो।
लाभी सुखविहारानं, विवेकानं अभिण्हसो॥1255॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कुमार्गपथं मारस्य, अभिभूय चरति प्रभिद्य क्षीणानि।
तं पश्यत बन्धप्रमुञ्चकरम्, असितमिव भागस् प्रविभज्य॥1251॥
''ओघाय हि नितरणार्थम्, अनेकविहितं मार्गम् अक्षसि।
तस्मिन् च अमृते आख्याते, धर्मदशाः स्थिताः असंहृया॥1252॥
''प्रज्जोतकर अतिविध्य, सर्वस्थितीनाम् अतिक्रममद्रशत्।
ज्ञात्वा च साक्षीकृत्य च, अग्रं स अदेशयत् दशाद्धानाम्॥1253॥
''एवं सुदेशिते धर्मे, कः प्रमादः विजानतं धर्मम्।
तस्मात् हि तस्य भगवत्-शासने, अप्रमत्तः सदा नमस्यमनुशिक्षे॥1254॥
''बुद्धानुबुद्धः यः स्थविरः, कौण्डिन्यतीव्रनिष्क्रमः।
लाभी सुखविहाराणाम्, विवेकानाम् अभिण्हसः॥1255॥

(हिन्दी)- ये मार द्वारा निर्दिष्ट कुटिल मार्ग का त्याग कर, समस्त कठोरताओं को नष्ट कर (लोक में) विचरण कर रहे हैं। समस्त अकुशल कर्मों को विस्तार से बता कर सभी बन्धनों से मुक्त कराने वाले इन भगवान् के दर्शन करो॥1251॥

इन्होंने जगत्प्रवाह को पार करने के लिये विविध साधनामार्गों का उपदेश किया है। इनके द्वारा अमृतमय उपदेश करने के बाद धर्म की स्थिति असंहार्य (अकम्प्य) हो गयी है॥1252॥

उन धर्मप्रकाशक ने धर्म का सूक्ष्मता से समीक्षण कर धर्म की सभी स्थितियों की परीक्षा की। तदनन्तर, उन को जान कर, उस का साक्षात्कार कर उन श्रेष्ठ दश कुशल कर्मपथों की देशना की॥1253॥

इस प्रकार धर्म का भलीभाँति व्याख्यान कर दिये जाने के बाद, विज्ञ जन इसकी साधना में क्या प्रमाद कर सकते हैं। अतः इन भगवान् के धर्मोपदेश के प्रति सावधान हो कर, इनको प्रणाम करते हुए धर्म का अभ्यास करना चाहिये॥1254॥

बुद्ध के द्वारा धर्मोपदेश प्राप्त कर यह कौण्डिन्य स्थविर धर्मसाधना में अतिशय प्रयत्न कर ऐकान्तिक सुखविहारों को पा गया॥1255॥

''यं सावकेन पत्तब्बं, सत्थु सासनकारिना।
सब्बस्स तं अनुप्पत्तं, अप्पमत्तस्स सिक्खतो॥1256॥
''महानुभावो तेविज्जो, चेतोपरियकोविदो।
कोण्डञ्ञो बुद्धदायादो, पादे वन्दति सत्थुनो॥1257॥
''नगस्स पस्से आसीनं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
सावका पयिरुपासन्ति, तेविज्जा मच्चुहायिनो॥1258॥
''चेतसा अनुपरियेति, मोग्गल्लानो महिद्धिको।
चित्तं नेसं समन्वेसं, विप्पमुत्तं निरूपधिं॥1259॥
''एवं सब्बङ्गसम्पन्नं, मुनिं दुक्खस्स पारगुं।
अनेकाकारसम्पन्नं, पयिरुपासन्ति गोतमं॥1260॥
''चन्दो यथा विगतवलाहके नभे, विरोचति वीतमलोव भाणुमा।
एवं पि अङ्गीरस त्वं महामुनि, अतिरोचसि यससा सब्बलोकं॥1261॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यं श्रावकेन प्राप्तव्यम्, शास्ता शासनकारिणः।
सर्वस्य तम् अनुप्राप्तम्, अप्रमत्ताय शिक्षितः॥1256॥
''महानुभावः त्रैविद्यः, चित्तोपर्यकोविदः।
कौण्डिन्यः बुद्धदायादः, पादौ वन्दति शास्तुः॥1257॥
''नागस्य पार्श्वे आसीनम्, मुनि दुःखस्य पारगः।
श्रावकाः पर्युपाशन्ति, त्रैविद्याः मृत्युहारिणः॥1258॥
''चेतस अनुपर्येति, मोग्गल्लानो महाऋद्धिकः।
चित्तं नैषां समन्वेषम्, विप्रमुक्तं निरूपधिम्॥1259॥
''एवं सर्वाङ्गसम्पन्नम्, मुनि दुःखस्य पारगः।
अनेकाकारसम्पन्नम्, पर्युपाशन्ति गौतमम्॥1260॥
''चन्द्रः यथा विगतवलाहके नभे, विरोचति वीतमल इव भानुमान।
एवमपि *अङ्गीरस* त्वं महामुनि, अतिरोचसि यशेन सर्वलोकम्॥1261॥

(हिन्दी)- शास्ता के उपदेशानुसार साधना करने वाले साधक द्वारा जो कुछ प्राप्त किया जा सकता है वह सब इसने सावधानी से साधना कर पा लिया॥1256॥

अतः यह महाप्रतापी, तीनों विद्याओं में निपुण, चित्त की क्रियाओं का ज्ञाता बुद्धशिष्य कौण्डिन्य भगवान् के चरणों की वन्दना कर रहा है॥1257॥

पर्वत के एक पार्श्व में विराजमान, दुःखों को अतिक्रान्त करने वाले मुनि (मौद्गल्यायन) की ये विद्यात्रयसम्पन्न तथा मार को पराजित करने वाले शिष्य उपासना कर रहे हैं॥1258॥

उधर महान् ऋद्धिसम्पन्न मौद्गल्यायन भी स्वचित्त से उनके विप्रमुक्त एवं विकारहीन चित्त की समीक्षा कर रहे हैं॥1259॥

इसी प्रकार, दुःखों के पारगामी तथा सर्वाङ्गसम्पन्न गौतम मुनि की भी शिष्यजन सेवा कर रहे हैं॥1260॥

जैसे मेघरहित आकाश में चन्द्रमा एवं सूर्य प्रकाशित होते हैं, वैसे ही हे महामुनि अङ्गिरस आप भी अपने यश से समस्त लोक को प्रभासित कर रहे हैं॥1261॥

''कावेय्यमत्ता विचरिम्ह पुब्बे, गामा गामं पुरा पुरं।
अथद्दसाम सम्बुद्धं, सब्बधम्मान पारगुं॥1262॥
''सो मे धम्ममदेसेसि, मुनि दुक्खस्स पारगू।
धम्मं सुत्वा पसीदिम्ह, सद्धा नो उदपज्जथ॥1263॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, खन्धे आयतनानि च।
धातुयो च विदित्वान, पब्बजिं अनगारियं॥1264॥
''बहूनं वत अत्थाय, उप्पज्जन्ति तथागता।
इत्थीनं पुरिसानञ्च, ये ते सासनकारका॥1265॥
''तेसं खो वत अत्थाय, बोधिमज्झगमा मुनि।
भिक्खूनं भिक्खुनीनञ्च, ये निरामगतद्दसा॥1266॥
''सुदेसिता चक्खुमता, बुद्धेनादिच्चबन्धुना।
चत्तारि अरियसच्चानि, अनुकम्पाय पाणिनं॥1267॥

(संस्कृतच्छाया)- ''कावेत्मत्ता विचर्यहं पूर्वे, ग्रामात् ग्रामं पुरात् पुरम्।
अथाद्राक्ष्यां सम्बुद्धम्, सर्वधर्माणां पारगूम्॥1262॥
''सो मे धर्ममदेशयत्, मुनि दुःखस्य पारगू।
धर्मं श्रुत्वा प्रसीद्यहम्, श्रद्धा नो उत्पदध्यत्॥1263॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, स्कन्धा आयतनानि च।
धातवश्च विदित्वा, प्रव्रज्यम् अनागरिकम्॥1264॥
''बहूनाय वत अर्थाय, उत्पद्यन्ते तथागतः।
स्त्र्यै पुरुषाय च, ये ते शासनकारकाः॥1265॥
''तेषां खलु वत अर्थाय, बोधिमध्यगमा मुनिः।
भिक्षूणां भिक्षुणीनाञ्च, ये निरामगताद्रशता॥1266॥
''सुदेशिता चक्षुष्मता, बुद्धेनादित्यबन्धुना।
चत्वारि आर्यसत्यानि, अनुकम्पाय प्राणिनाम्॥1267॥

(हिन्दी)- पहले हम ग्राम ग्राम नगर नगर में लौकिक गीत गाते हुए विचरण करते थे। परन्तु अब हमने सभी धर्मों के पारदर्शी भगवान् बुद्ध के दर्शन किये॥1262॥

जब उन दुःखसंहारक मुनि ने हमको धर्मोपदेश किया। उस धर्म को सुनने के बाद, हमारा चित्त प्रसन्न हुआ और हमारी उन के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई॥1263॥

मैंने उन का उपदेश सुन कर और उस के माध्यम से स्कन्ध, आयतन, धातुओं के विषय में जान कर गृहस्थ धर्म त्याग कर प्रव्रज्या ग्रहण की॥1264॥

ये पूज्य तथागत लोक में बहुत लोगों के प्रयोजन की सिद्धि हेतु उत्पन्न होते हैं। फिर वे भले ही पुरूष हों या स्त्री, उन सभी को उन के उपदेशानुसार साधना करने वाला होना चाहिये॥1265॥

उन अपक्व विचारों वाले भिक्षु, भिक्षुणियों की ही प्रयोजनसिद्धि हेतु मुनि ने बोधि का साक्षात्कार किया है॥1266॥

प्राणियों पर कृपा करके आदित्यबन्धु, ज्ञानी बुद्ध ने चार आर्यसत्यों का भलीभाँति उपदेश किया है॥1267॥

''दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥1268॥
''एवमेते तथा वुत्ता, दिट्ठा मे ते यथा तथा।
सदत्थो मे अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं॥1269॥
''स्वागतं वत मे आसि, मम बुद्धस्स सन्तिके।
सुविभत्तेसु धम्मेसु, यं सेट्ठं तदुपागमिं॥1270॥
''अभिञ्ञापारमिप्पत्तो, सोतधातु विसोधिता।
तेविज्जो इद्धिपत्तोम्हि, चेतोपरियकोविदो॥1271॥
''पुच्छामि सत्थारमनोमपञ्ञं, दिट्ठेव धम्मे यो विचिकिच्छानं छेत्ता।
अग्गाळवे कालमकासि भिक्खु, ञातो यसस्सी अभिनिब्बुतत्तो॥1272॥

(संस्कृतच्छाया)- ''दुःखम् दुःखसमुत्पादम्, दुःखस्य च अतिक्रमम्।
आर्यञ्चाष्टाङ्गिकं मार्गम्, दुःखोपशमगामिनाम्॥1268॥
''एवमेते तथोक्ता, दृष्टा मे ते यथा तथा।
सदर्थो मे अनुप्राप्तः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥1269॥
''स्वागतं वत मे आसीत्, मम बुद्धस्य सन्तिके।
सुविभक्तेषु धर्मेषु, यः श्रेष्ठं तदुपागमम्॥1270॥
''अभिज्ञापारमिताप्राप्तः, श्रोतधातुः विशोधिता।
त्रैविद्या ऋद्धिप्राप्तोऽस्मि, चित्तोपर्यकोविदः॥1271॥
''पृच्छामि शास्तारमनोमप्रज्ञा, दृष्टिरेव धर्मे यः विचिकित्सानां छित्वा।
अग्रालवे कालमकार्षयत् भिक्षुः, ज्ञातः यशस्वी अभिनिर्वृतत्तः॥1272॥

(हिन्दी)- दुःख, दुःखसमुदय, दुःखनिरोध तथा उस दुःखनिरोध के उपायभूत आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग का उपदेश किया है॥1268॥

उन्होंने इन चारों धर्मों का जैसा उपदेश किया, उन की उसी प्रकार साधना करते हुए मैंनें आत्मकल्याण प्राप्त कर लिया॥1269॥

यह हर्ष की बात है कि अब भगवान् की दृष्टि में मैं भी एक प्रशस्त भिक्षु बन गया हूँ, क्योंकि उन के द्वारा विस्तृत रूप से व्याख्यात धर्मों में जो श्रेष्ठ है उस को मैं प्राप्त कर चुका हूँ॥1270॥

मैं अभिज्ञापारमिता प्राप्त कर चुका हूँ, तथा मेरी श्रोत्रधातु भी विशुद्ध हो चुकी है। मैंने तीनों विद्याएँ तथा ऋद्धि प्राप्त कर लीं हैं और मैं स्वचित्त से परचित्त ज्ञान में भी कुशल हो चुका हूँ॥1271॥

अभी कुछ ही समय पूर्व एक प्रसिद्ध, यशस्वी, शान्तचित्त भिक्षु का अग्रालव में देहपात हो गया था, उसी के विषय में मैंने श्रेष्ठप्रज्ञ अतएव सर्वसंशयनाशक भगवान् से जिज्ञासा प्रकट की-॥1272॥

''निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तया कतं भगवा ब्राह्मणस्स।
सो तं नमस्सं अचरि मुत्यपेखो, आरद्धवीरियो दळ्हधम्मदस्सी॥1273॥
''तं सावकं सक्क मयम्पि सब्बे, अञ्ञातुमिच्छाम समन्तचक्खु।
समवट्ठिता नो सवनाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि''॥1274॥
छिन्द नो विचिकिच्छं ब्रूहि मेतं, परिनिब्बुतं वेदय भूरिपञ्ञ।
मज्झेव नो भास समन्तचक्खु, सक्कोव देवान सहस्सनेत्तो॥1275॥
''ये केचि गन्था इध मोहमग्गा, अञ्ञाणपक्खा विचिकिच्छठाना।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुञ्हि एतं परमं नरानं॥1276॥
''नो चे हि जातु पुरिसो किलेसे, वातो यथा अब्भघनं विहाने।
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, जोतिमन्तोपि न पभासेय्युं॥1277॥

(संस्कृतच्छाया)- ''निग्रोधस्य इति तस्य नामः, त्वया कृतं भगवान् ब्राह्मणस्य।
सः त्वं नमस्यम् अचरयत् मुक्तपेक्षः, आरब्धवीर्यः दृढधर्मदर्शी॥1273॥
''तं श्रावकं शाक्य! वयमपि सर्वे, अज्ञातुमिच्छाम समन्तचक्षुः।
समवर्तिता नो श्रवणाय श्रोतः, त्वं नो शास्ता त्वमनुत्तर असि॥1274॥
''छिन्द नो विचिकित्सां ब्रूहि मे त्वम्, परिनिर्वृतं वेदयत् भूरिप्रज्ञ।
मध्येव नो भाषः समन्तचक्षुः, शक्र इव देवानां सहस्रनेत्रः॥1275॥
''ये केचित् ग्रन्था इध मोहमार्गाः, अज्ञानपक्षाः विचिकित्सा स्थानाः।
तथागतं प्राप्य न ते भवन्ति, चक्षुं हि एतं परम् नराणाम्॥1276॥
''नो चेत् हि जातु पुरुषः क्लेशे, वातः यथा अभ्रघनं विहाने।
तमोवत् निर्वृतः सर्वलोकः, ज्योतिमानोऽपि न प्रभासेयुः॥1277॥

(हिन्दी)- भन्ते! इस ब्राह्मण का न्यग्रोधकल्प, नाम आपने ही रखा था। वह मुक्ति की अपेक्षा से, आपको प्रणाम कर, प्रयत्नपूर्वक दृढसङ्कल्पपूर्वक साधना में लगा हुआ था॥1273॥

हे सर्वद्रष्टा! हे शाक्य! हम सब आप के उस शिष्य के विषय में जानना चाहते हैं। हमने उसी के विषय में सत्य सुनने के लिये अपने कान आप की ओर लगा रखे हैं, और आप हैं कि कुछ उत्तर ही नहीं दे रहे हैं॥1274॥

हे बहुप्रज्ञ! उस परिनिर्वृत भिक्षु की वास्तविकता बताकर हमारा सन्देह दूर कीजिए। हे सर्वद्रष्टा! आप हमारे बीच उसी प्रकार सामर्थ्यशाली के रूप में विराजमान हैं जैसे देवताओं के मध्य देवराज शक्र होते हैं॥1275॥

जितने भी बन्धनस्थान हैं, मोह के मार्ग हैं, अज्ञानपक्ष के धर्म हैं, जितने भी सन्देहास्पद विषय हैं- इन सब का यथातथ ज्ञान तथागत के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं है॥1276॥

यदि कदाचित् पुरूष अपने क्लेशों को उसी प्रकार नष्ट न कर पाये जैसे वायु कभी कभी समस्त मेघों को आकाश से नहीं उठा पाता है तब तो समस्त लोक अन्धकार युक्त ही हो जायगा जैसे मेघों के कारण प्रकाश क्षीण हो जाता है॥1277॥

‘‘धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं वीर तथेव मञ्ञे।
विपस्सिनं जानमुपागमिम्ह, परिसासु नो आविकरोहि कप्पं॥1278॥
‘‘खिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गय्ह सणिकं निकूज।
बिन्दुस्सरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगता सुणोम॥1279॥
‘‘पहीनजातिमरणं असेसं, निग्गय्ह धोनं वदेस्सामि धम्मं।
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, सङ्खेय्यकारो च तथागतानं॥1280॥
‘‘सम्पन्नवेय्याकरणं तवेदं, समुज्जुपञ्ञस्स समुग्गहीतं।
अयमञ्जलि पच्छिमो सुप्पणामितो, मा मोहयी जानमनोमपञ्ञ॥1281॥
‘‘परोपरं अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जानमनोमवीरिय।
वारिं यथा घम्मनि घम्मतत्तो, वाचाभिकङ्खामि सुतं पवस्स॥1282॥

(संस्कृतच्छाया)- ‘‘धीराश्च प्रद्योतकराः भवन्ति, तं तम् अहं वीर! तथैव मन्येत्।
विपश्यीनां ज्ञानमुपागमतह्म, परिषत्सु नो आविष्करोषि कल्पम्॥1278॥
‘‘क्षिप्रं गिरं एरय वल्गुं वल्गुम्, हंस इव प्रगृह्य शनकैस् निकूजति।
विन्दुस्वरेण सुविकल्पितेन, सर्वेव ते ऋजुगता श्रुणोम॥1279॥
‘‘प्रहीणजातिमरणम् अशेषम्, निर्गृह्य धोनं(बुद्धिमान्) वदिष्यामि धर्मम्।
न कामकरः हि पृथुजनानाम्, सङ्केतकारः च तथागतानाम्॥1280॥
‘‘सम्पन्नवैय्याकरणं तवेदम्, समुज्झप्रज्ञाय समुग्रहीतम्।
अयमञ्जलि पश्चिमः सुप्रणामितः, मा मोहयी ज्ञानमनोमप्रज्ञः॥1281॥
‘‘परापरम् आर्यधर्मं विदित्वा, मा मोहयी ज्ञानमनोमवीर्यः।
वारिं यथा घर्मणि घर्मतप्तः, वाचाभिकांक्ष्यामि श्रुतं प्रवर्षः॥1282॥

(हिन्दी)- धैर्यवान् तो प्रकाशकर होते हैं। हे वीर !आप को भी मैं ऐसा ही मानता हूँ। आप सर्वद्रष्टा के पास हम लोग इसीलिये आये हैं कि इस परिषद् के सम्मुख यथार्थता स्पष्ट करें॥1278॥

आप शीघ्र ही हंस पक्षी के समान अपनी गम्भीर वाणी के विन्दुस्वर से इस विषय में कुछ कहें, जिससे हम सब लोग उसको सुन सकें॥1279॥

उत्तर "मैं अपने समस्त जन्म-मरण को प्रहीण कर चुके बुद्धिमान् साधकों को ही विग्रह करके धर्मोपदेश किया करता हूँ। पृथग्जनों के प्रत्येक कार्य को करना या किसी विषय की गणना करना तथागत का कार्य नहीं है"॥1280॥

प्रश्न "भन्ते! आप किसी भी वस्तु का विशेष व्याख्यान करने में कुशल हैं और आप जैसे तीक्ष्णमति के लिये यह बताना भी बहुत सरल है। अतः हम आप से पुनः हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए पुनः निवेदन करते हैं कि हमारा उत्तर न देकर आप हमें मोह में न डालिये॥1281॥

हे वीर्यवान्! आप इस परम आर्य धर्म को जान कर भी हम लोगों को भ्रम में न रखे। जैसे गर्मी में झुलसा हुआ कोई पुरूष जल की खोज करता है, वैसे ही हम भी इस विषय में आप के द्वारा वाग्वर्षा की प्रतीक्षा कर रहे हैं॥1282॥

''यदत्थिकं ब्रह्मचरियं अचरी, कप्पायनो कच्चिस्सतं अमोघं।
निब्बायि सो आदु सउपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुणोम॥1283॥
''अच्छेच्छि तण्हं इध नामरूपे,कण्हस्स सोतं दीघरत्तानुसयितं।
अतारि जातिं मरणं असेसं', इच्चब्रवि भगवा पञ्चसेट्ठो॥1284॥
''एस सुत्वा पसीदामि, वचो ते इसिसत्तम।
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो॥1285॥
''यथा वादी तथा कारी, अहु बुद्धस्स सावको।
अच्छेच्छि मच्चुनो जालं, ततं मायाविनो दळ्हं॥1286॥
''अद्दस भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो।
अच्चगा वत कप्पानो, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं॥1287॥

(संस्कृतच्छाया)- ''यदर्थिकं ब्रह्मचर्यम् अचरयत्, कल्पायनः कृत्यष्यतम् अमोघम्।
निर्वारयत् स *आदु*• सोपादिशेषः, यथा विमुक्त अभूत् तं शृणुयाम्॥1283॥
अच्छेच्छि(आश्चर्यः) तृष्णाम् इध नामरूपे, (इति भगवान्) कृष्णस्य श्रोतं दीघरक्तानुशयितम्।
अतारयत् जातिं मरणम् अशेषम्, इत्यब्रवीत् भगवान् पञ्चश्रेष्ठः॥1284॥
''एषः श्रुत्वा प्रसीदामि, वचः ते ऋषिश्रेष्ठम्।
अमोघं किल मे पुष्टम्, न मं वञ्चयत् ब्राह्मणः॥1285॥
''यथा वादी तथा कारी, अभूत् बुद्धस्य श्रावकः।
अच्छेच्छि(आश्चर्यः) मृत्युनः जालम्, ततं मायाविनः दृढम्॥1286॥
''अद्रशत् भगवान् आदिम्, उपादानस्य कल्पियः।
अत्यागम् वत कल्पानः, मृत्युधेयं सुदुस्तरम्॥1287॥

(हिन्दी)- जिस प्रयोजन से उन न्यग्रोधकल्प ने धर्मसाधना की थी, उस का निर्वाण हुआ कि नहीं? यदि निर्वाण हुआ तो सोपधिशेष निर्वाण हुआ कि निरूपधिशेष? इसी का उत्तर हम आपके श्रीमुख से सुनना चाहते हैं॥1283॥

उत्तर : (आश्चर्य)"उस (भिक्षु) ने तृष्णा एवं नामरूप को काट कर, चिर काल से चले आ रहे पापस्रोतों को विनष्ट कर उसने अपनी समस्त जन्म-मरण परम्परा को समाप्त कर लिया। "यह पाँचों योनियों में श्रेष्ठ भगवान् ने कहा॥1284॥

भगवान् के ये वचन सुनकर मेरा चित्त प्रसन्न हुआ। तब मैं बोला'-हे ऋषिश्रेष्ठ! आपने मेरी जिज्ञासा सफल कर दी। आपने मुझको भ्रम में नहीं रखा॥1285॥

(आश्चर्य) उस बुद्ध शिष्य ने जो कहा वह कर दिखाया। उसने मायावी मृत्यु का दृढ एवं विस्तृत जाल काट दिया॥1286॥

भन्ते! उसने आसक्ति का आरम्भ देख लिया तथा उस ने कठिनता से पार जा सकने योग्य इस मृत्युसागर को पार कर लिया॥1287॥

• निपात शब्द ।

''तं देवदेवं वन्दामि, पुत्तं ते द्विपदुत्तम।
अनुजातं महावीरं, नागं नागस्स ओरसं''ति ॥1288॥
इत्थं सुदं आयस्मा वङ्गीसो थेरो गाथायोअभासित्थाति।

महानिपातो निट्ठितो।

तत्रुद्दानं – सत्ततिम्हि निपातम्हि, वङ्गीसो पटिभाणवा।
एकोव थेरो नत्थञ्ञो, गाथायो एकसत्ततीति॥

तत्रुद्दानं – सहस्सं होन्ति ता गाथा, तीणि सट्ठिसतानि च।
थेरा च द्वे सता सट्ठि, चत्तारो च पकासिता॥
सीहनादं नदित्वान, बुद्धपुत्ता अनासवा।
खेमन्तं पापुणित्वान, अग्गिखन्धाव निब्बुताति॥

थेरगाथापालि निट्ठिता।

(संस्कृतच्छाया)- ''तं देवदेवं वन्दामि, पुत्रं ते द्विपदोत्तमम्।
अनुजातं महावीरम्, नागं नागाय औरसम्''इति॥1288॥
इत्थं स्विद् आयुष्मान् वङ्गीशः स्थविरः गाथा अभाषत् इति॥

तत्रोद्दानम्- सप्तत्यां निपाते, *वङ्गीसो* प्रतिभाणवान्।
एक एव स्थविरः नास्त्यन्यो, गाथा एकसप्ततीति॥ ●

तत्रोद्दानम्- सहस्रं भवन्ति ते गाथाः, त्रीणि षष्ठिशतानि च।
स्थविराश्च द्वे शताः षष्ठिः, चत्वारश्च प्रकाशिताः॥
सिंहनादं नदित्वा, बुद्धपुत्रा अनास्रवाः।
क्षेमन्तं प्राप्यत्, अग्निस्कन्धे एव निर्वृतेति॥

(हिन्दी)- हे पुरूषश्रेष्ठ! आप के उस देवोपम शिष्य को मैं प्रणाम करता हूँ जो द्विपदों में उत्तम है। महावीर के बाद उत्पन्न हुआ तथा नाग का औरस पुत्र नाग के समान है॥ इस प्रकार आयुष्मान् वङ्गीश स्थविर ने ये गाथाएँ कहीं॥1288॥

इस निपात में वर्णित स्थविर एवं गाथाओं की सूची– इस सप्तति निपात में प्रतिभावान् वङ्गीश एक ही स्थविर वर्णित है, अन्य कोई नहीं। तथा इस निपात में इकहत्तर गाथाएँ वर्णित है॥ ●

समस्त थेरगाथा ग्रन्थ की संक्षिप्त सूची-

इस थेरगाथा ग्रन्थ में एक हजार तीन सौ साठ गाथाऐं है। तथा दो सौ चौसठ स्थविरों का वर्णन है॥ इन अनास्रव बुद्धपुत्रों ने सिंहनाद कर, अपना दुःखक्षय कर अग्निस्कन्ध के समान निर्वाण प्राप्त किया था॥

॥थेरगाथापालि समाप्त॥

*****

टिप्पणी- थेरगाथा ग्रन्थ में कुल गाथाओं की संख्या एक हजार दो सौ अठासी प्राप्त हैं।

॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥

॥ नमस्तस्मै भगवते अर्हते सम्यक्सम्बुद्धाय॥

खुद्दकनिकाये

थेरीगाथापालि

1. एककनिपातो

1. अञ्ञतराथेरीगाथा -

''सुखं सुपाहि थेरिके, कत्वा चोळेन पारुता।
उपसन्तो हि ते रागो, सुक्खडाकं व कुम्भियं''ति॥1॥
इत्थं सुदं अञ्ञतरा थेरी अपञ्ञाता भिक्खुनी गाथं अभासित्थाति।

2. मुत्ताथेरीगाथा-

''मुत्ते मुच्चस्सु योगेहि, चन्दो राहुग्गहा इव।
विप्पमुत्तेन चित्तेन, अनणा भुञ्ज पिण्डकं''ति॥2॥
इत्थं सुदं भगवा मुत्तं सिक्खमानं इमाय गाथाय अभिण्हं ओवदतीति।

3. पुण्णाथेरीगाथा-

''पुण्णे पूरस्सु धम्मेहि, चन्दो पन्नरसेरिव।
परिपुण्णाय पञ्ञाय, तमोखन्धं पदालया''ति॥3॥....पुण्णा थेरी.....।

(संस्कृतच्छाया) -1. ''सुखं स्वपिहि स्थविरके!, कृत्वा चैलेन प्रावृता।
उपशान्तो हि ते रागः, शुष्कसाकमिव कुम्भ्याम्॥1॥
इत्थं स्विद् अन्यतरा थेरी अप्रज्ञाता भिक्षुणी गाथाम् अभाषतेति।।

2. ''मुक्ते! मुञ्चस्व योगेभ्यश्चन्द्रः राहुग्रहादिव।
विमुक्तेन चित्तेन, अनृणा भुञ्ज पिण्डकम्" इति॥2॥
इत्थं स्विद् भगवान् मुक्तां शिक्षमाणामनया गाथया अभीक्षणम् अवदतीति।

3. ''पूर्णे! पूर्णस्व धर्मैः, चन्द्रः पूर्णमास्यामिव।
परिपूर्णप्रज्ञया, तमस्स्कन्धं प्रदारय" इति॥3॥

(हिन्दी) - हे स्थविरिके! अपने से ही बनाये वस्त्र को ओढ़कर, सुख की नींद सो। क्योंकि कढ़ाई में पड़े हुए सूखे शाक के समान, तेरा राग जलकर शान्त हो गया॥1॥ इस प्रकार किसी अप्रज्ञात भिक्षुणी ने यह गाथा कही॥

हे मुक्ता! तुम राहु के ग्रहण से मुक्त हुए चन्द्रमा की तरह मुक्त हो जाओ। सभी योगों से मुक्त हो जाओ। विमुक्ति-प्राप्त चित्त के द्वारा कर्ज मुक्त हो कर तुम भोजन को ग्रहण करो॥2॥ इस प्रकार भगवान् ने मुक्ता शिक्षामाना का इस गाथा से सतत अनुशासन किया॥

पूर्णे! तुम पूनम के चन्द्र के समान कल्याणकारी धर्मो में पूर्णता प्राप्त करो। प्रज्ञा की परिपूर्णता से अन्धकार समूह को विदीर्ण करो॥3॥ इस प्रकार पूर्णाथेरी ने यह गाथा कही।

4. तिस्साथेरीगाथा-

''तिस्से सिक्खस्सु सिक्खाय, मा तं योगा उपच्चगुं।
सब्बयोगविसंयुत्ता, चर लोके अनासवा''ति॥4॥ ... तिस्सा थेरी...।

5. अञ्ञतरातिस्साथेरीगाथा-

''तिस्से युञ्जस्सु धम्मेहि, खणो तं मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता''ति॥5॥
...अञ्ञतरा तिस्सा थेरी...।

6. धीराथेरीगाथा-

''धीरे निरोधं फुसेहि, सञ्ञावूपसमं सुखं।
आराधयाहि निब्बानं, योगक्खेममनुत्तरं''ति॥6॥ ... धीरा थेरी...।

7. वीराथेरीगाथा-

''वीरा वीरेहि धम्मेहि, भिक्खुनी भावितिन्द्रिया।
धारेहि अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहिनिं''ति॥7॥ ... वीरा थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) -4. ''तिष्ये शिक्षस्व शिक्षायाम्, मा त्वां योगा उपागच्छेयुः।
सर्वयोगविसंयुक्तात्, चर लोके अनास्रवात्" इति॥4॥

5. ''तिष्ये! युज्यस्व धर्मैः, क्षणः त्वां मा उपात्यगात्।
क्षणातीताः हि शोचन्ति, निरये हि समर्पिताः" इति॥5॥

6. ''धीरे! निरोधं स्पृश, संज्ञोपशमं सुखम्।
आराधय निर्वाणम्, योगक्षेममनुत्तरम्" इति॥6॥

7. ''वीरा! वीरैः धर्मैः, भिक्षुणी भावितेन्द्रिया।
धारय अन्तिमं देहम्, जित्वा मारं सवाहिनीम्" इति॥7॥

(हिन्दी) - तिष्ये! तुम शिक्षाओं को सीखो। योग (काम, भव, मिथ्यादृष्टि, अविद्या) तुम्हारा अतिक्रमण नही कर सकें। सभी योगों से दूर रहकर तुम अनास्रव चित्त से लोक में विचरण करो॥4॥

तिष्ये! तुम कल्याणकारी धर्मो से युक्त हो जाओ। तुम्हारा समय निकल न जाय। जिनका समय निकला जाता है, वे पश्चाताप करते हैं, और नरक-गति को प्राप्त होते हैं॥5॥

धीरा! तुम उस निरोध-समाधि का स्पर्श करो, जहाँ संज्ञाओं का निरोध है, परम सुख है। तुम उस निर्वाण की आराधना करो जो योगक्षेम और अनुत्तर है॥6॥

भिक्षुणी वीरा! तुम ने दृढ़ इच्छाशक्तियों से श्रद्धादि आध्यात्मिक शक्तियों का विकास किया है। अब तुम ने मार और उसकी सेना को पराजित कर दिया है, यह तुम्हारा अंतिम शरीर धारण है॥7॥

8. मित्ताथेरीगाथा-

''सद्धाय पब्बजित्वान, मित्ते मित्तरता भव।
भावेहि कुसले धम्मे, योगक्खेमस्स पत्तिया''ति॥8॥ ... मित्ता थेरी...।

9. भद्राथेरीगाथा-

''सद्धाय पब्बजित्वान, भद्रे भद्ररता भव।
भावेहि कुसले धम्मे, योगक्खेममनुत्तरं''ति॥9॥ ... भद्रा थेरी...।

10. उपसमाथेरीगाथा-

''उपसमे तरे ओघं, मच्चुधेय्यं सुदुत्तरं।
धारेहि अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहनं''ति॥10॥ ... उपसमा थेरी...।

11. मुत्ताथेरीगाथा-

''सुमुत्ता साधुमुत्ताम्हि, तीहि खुज्जेहि मुतिया।
उदुक्खलेन मुसलेन, पतिना खुज्जकेन च।
मुत्ताम्हि जातिमरणा, भवनेत्ति समूहता''ति॥11॥ ... मुत्ता थेरी...।

(संस्कृतच्छाया)–8. ''श्रद्धया प्रव्रज्य, मित्रे! मित्ररता भव।
भावय कुशलान् धर्मान्, योगक्षेमस्य प्राप्तये"इति॥8॥

9. ''श्रद्धया प्रव्रज्य, भद्रे! भद्ररता भव।
भावय कुशलान् धर्मान्, योगक्षेममनुत्तरम्"इति॥9॥

10. ''उपशमे! तरे ओघम्, मृत्युध्येयं सुदुस्तरम्।
धारय अन्तिमं देहम्, जित्वा मारं सवाहनम्"इति॥10॥

11. ''सुमुक्ता साधुमुक्तास्मि, तिसृभिः क्षुद्राभिः मुक्तिभिः।
उलूखलेन मूसलेन, पत्या क्षुद्रकेण च।
मुक्तास्मि जन्ममरणेभ्यः भवनेत्री समूलं हता" इति॥11॥

(हिन्दी) – भिक्षुणी मित्रा! तुम ने श्रद्धा से प्रव्रज्या ग्रहण की है, अब तुम मैत्री-भावना में लग जाओ। योगक्षेम की प्राप्ति के लिए कुशल धर्मो की भावना करो॥8॥

भद्रे! तुम श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित होकर भद्र हो जाओ। योगक्षेम की प्राप्ति के लिए कुशल धर्मों की भावना करो॥9॥ उपशमे! तुम मृत्यु रूपी दुस्तर बाढ़ को पार करो, तथा मार और उसकी सेना को जीतकर, तुम यह अन्तिम देह धारण करो॥10॥

मैं सुमुक्त हो गई, अच्छी विमुक्त हो गई, मैं ओखली से, मूसल से, और कूबडे स्वामी से, इन तीन क्षुद्र वस्तुओं से भली-भाँति विमुक्त हो गई। मैं जरा और मरण से भी मुक्त हो गई, मेरी भव-रज्जु भी कट चुकी है॥11॥

12. धम्मदिन्नाथेरीगाथा-

''छन्दजाता अवसायी, मनसा च फुटा सिया।
कामेसु अप्पटिबद्धचित्ता, उद्धंसोताति वुच्चती''ति॥12॥...धम्मदिन्ना थेरी...।

13. विसाखाथेरीगाथा-

''करोथ बुद्धसासनं, यं कत्वा नानुतप्पति।
खिप्पं पादानि धोवित्वा, एकमन्ते निसीदथा''ति॥13॥ ... विसाखा थेरी...।

14. सुमनाथेरीगाथा-

''धातुयो दुक्खतो दिस्वा, मा जातिं पुनरागमि।
भवे छन्दं विराजेत्वा, उपसन्ता चरिस्ससी''ति॥14॥ ... सुमना थेरी...।

15. उत्तराथेरीगाथा-

''कायेन संवुता आसिं, वाचाय उद चेतसा।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, सीतिभूताम्हि निब्बुता''ति॥15॥ ... उत्तरा थेरी...।

16. वुड्ढपब्बजितसुमनाथेरीगाथा-

''सुखं त्वं वुड्ढिके सेहि, कत्वा चोळेन पारूता।
उपसन्तो हि ते रागो, सीतिभूतासि निब्बुता''ति॥16॥ वुड्ढ.सुमना थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) –12. ''छन्दजाता अवसायिनी, मनसा च स्पृष्टा स्यात्।
कामेषु अप्रतिबद्धचित्ता, ऊर्ध्वस्रोता इत्युच्यते"इति॥12॥

13. ''कुरुथ बुद्धशासनम्, यं कृत्वा नानुतप्यते।
क्षिप्रं पादौ धावित्वा, एकान्ते निसीदथ" इति॥13॥

14. ''धातून् दुःखतः दृष्ट्वा, मा जातिं पुनरागमत्।
भवे छन्दं विराज्य, उपशान्ता चरिष्यसि" इति॥14॥

15. ''कायेन संवृता आसम्, वाचा उत चेतसा।
समूलं तृष्णाम् अभ्युह्य, शीतिभूतास्मि निर्वृता" इति॥15॥

16. ''सुखं स्वपिहि त्वं वृद्धे!, कृत्वा चैलेन प्रावृता।
उपशान्तो हि ते रागः, शीतिभूतासि विनिर्वृता" इति॥16॥

(हिन्दी)- जिसके मन में परम लक्ष्य के लिए इच्छा उत्पन्न हुई है, और इस इच्छा ने पूरे चित्त को भर दिया है, जिसका चित्त कामभोगों में बंधा नहीं है, वह 'ऊर्ध्वस्रोता' कहलाती है॥12॥

बुद्ध शासन को करो, जिसे करके पश्चाताप नहीं होता। शीघ्र पैरों को धोकर, एकान्त में बैठ जाओ॥13॥

सभी धातुओं में दुःख को देखकर पुनर्जन्म की आसक्ति मत करो। संसार की आसक्ति को त्याग कर तुम शान्त होकर विचरण करोगी॥14॥

एकनिष्ठ होकर मैंने काय, मन और वाणी को संयत किया। फिर मैंने तृष्णा को समूल उखाड़ कर फेंक दिया, अब मैं शान्त और निर्वृत हूँ॥15॥

वृद्धा! तुम अपने से ही बनाये वस्त्र को ओढ़ कर, सुख की नींद सो जाओ। क्योंकि, तुम्हारा राग शान्त हो गया है, तुम शान्त और निर्वृत हो॥16॥

17. धम्माथेरीगाथा-

''पिण्डपातं चरित्वान, दण्डमोलुब्भ दुब्बला।
वेधमानेहि गत्तेहि, तत्थेव निपतिं छमा।
दिस्वा आदीनवं काये, अथ चित्तं विमुच्चि मे''ति॥17॥ ... धम्मा थेरी...।

18. सङ्घाथेरीगाथा-

''हित्वा घरे पब्बजित्वा, हित्वा पुत्तं पसुं पियं।
हित्वा रागं च दोसं च, अविज्जं च विराजिय।
समूलं तण्हमब्बुय्ह, उपसन्ताम्हि निब्बुता''ति॥18॥ ... सङ्घा थेरी...।

एककनिपातो निट्ठितो।

2. द्वकनिपातो

1. अभिरूपनन्दाथेरीगाथा-

''आतुरं असुचिं पूतिं, पस्स नन्दे समुस्सयं।
असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं॥19॥
''अनिमित्तं च भावेहि, मानानुसयमुज्जह।
ततो मानाभिसमया, उपसन्ता चरिस्ससी''ति॥20॥

(संस्कृतच्छाया) -17. ''पिण्डपातं चरित्वा हि, दण्डमालभ्य दुर्बला।
वेधमानै: गात्रैश्च, तत्रैव न्यपतं क्षमायाम्।
दृष्ट्वा आदीनवं काये, अथ चित्तं व्यमुञ्चत् मे"इति॥17॥

18. ''हित्वा गृहं प्रव्रज्य, हित्वा पुत्रं पशुं प्रियम्।
हित्वा रागञ्च दोषञ्च, अविद्याञ्च विराज्य।
समूलां तृष्णाम् अभ्युह्य, उपशान्तास्मि निर्वृता" इति॥18॥

1. ''आतुरम् अशुचिं पूतिम्, पश्य नन्दे! समुच्छ्रयम्।
अशुभाय चित्तं भावये:, एकाग्रं सुसमाहितम्॥19॥
''अनिमित्तञ्च भावये:, मानानुशयमुज्झ।
ततो मानाभिसमया, उपशान्ता चरिष्यसि" इति॥20॥

(हिन्दी)- मैं दुर्बल शरीर वाली भिक्षापात्र लेकर भिक्षा के लिए निकली थी, तभी क्लान्त और कम्पित हो कर वहीं पृथ्वी पर गिर पड़ी। मैंने इस काया के दोषों को देखा, तभी मेरा चित्त विमुक्त होकर ऊर्ध्वगामी हो गया॥17॥

प्रव्रज्या लेकर मैंने घर त्याग दिया, प्रिय संतान और प्रिय पशुओं को त्याग दिया। राग और द्वेष भी त्याग दिया, अविद्या से विरक्त होकर तृष्णा को समूल नष्टकर अब शान्त और निर्वृत हूँ॥18॥

नन्दा! तुम अशुचि, दुर्गन्धमय और व्याधि के समूह इस शरीर का ध्यान से अवलोकन कर। एकाग्र और अच्छी प्रकार समाधिनिष्ठ होकर तुम अशुभ की भावना में अपने चित्त को लगाओ॥19॥

नन्दा! तुम उस ध्यान का अभ्यास करो, जहाँ निमित्त अनित्य, दुःख, अनात्म नहीं है। अहंभाव के सम्यक् दमन करने पर, तुम शान्त होकर विचरण करोगी॥20॥इस प्रकार भगवान् ने अभिरूपनंदा को शिक्षा हेतु ये गाथायें कहीं॥

इत्थं सुदं भगवा अभिरूपनन्दं सिक्खमानं इमाहि गाथाहि अभिण्हं ओवदतीति।।

2. जेन्ताथेरीगाथा-

''ये इमे सत्त बोज्झङ्गा, मग्गा निब्बानपत्तिया।
भाविता ते मया सब्बे, यथा बुद्धेन देसिता॥21॥
''दिट्ठो हि मे सो भगवा, अन्तिमोयं समुस्सयो।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥22॥...जेन्ता थेरी.....।

3. सुमङ्गलमाताथेरीगाथा-

''सुमुत्तिका सुमुत्तिका, साधुमुत्तिकाम्हि मुसलस्स।
अहिरिको मे छत्तकं वापि, उक्खलिका मे देड्डुभं वाति"॥23॥
''रागं च अहं दोसं च, चिच्चिटि चिच्चिटीति विहनामि।
सा रुक्खमूलमुपगम्म, अहो सुखं ति सुखतो झायामी''ति॥24॥

... सुमङ्गलमाता थेरी.....।

(संस्कृतच्छाया)- इत्थं स्विद् भगवान् अभिरूपनन्दां शिक्षमाणामाभिः गाथाभि अभीक्ष्णम् अवदतीति।

2. ''ये इमे सप्त बोध्यङ्गाः, मार्गाः निर्वाणप्राप्तये।
भावितास्ते मया सर्वे, यथा बुद्धेन देशिताः॥21॥
''दृष्टः हि मया स भगवान्, अन्तिमोऽयं समुच्छ्रयः।
विक्षीणः जातिसंसारः, नास्तीदानीं पुनर्भवः" इति॥22॥

3. ''सुमुक्तिका सुमुक्तिका, साधुमुक्तिकास्मि मूसलस्य।
अह्रीको मे छत्रकं वा अपि, उखालिका मे दुण्डुभ इवेति॥23॥
''अहं रागञ्च दोषञ्च, चिच्चिटि चिच्चिटि इति विहन्मि।
सा वृक्षमूलमुपगम्य, अहो सुखमिति सुखतः ध्यायामि"इति॥24॥

(हिन्दी) –निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप ये जो बोधि के सात अंग-स्मृति, धर्म-विचय, वीर्य, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि और उपेक्षा और मार्ग है, भगवान् बुद्ध के उपदेश के अनुसार मैंने उन सब की भावना की॥21॥

मैंने भगवान् के दर्शन किए, और मुझे अनुभव हुआ कि यह मेरा अन्तिम शरीर है। मेरा आवागमन नष्ट हो गया, और अब मेरा पुनर्जन्म नहीं होगा॥22॥

अहो! मैं सुमुक्त हो गई, मैं अच्छी तरह से मुक्त हूँ, पहले मैं मूसल लेकर धान कूटा करती थी, उससे मुक्त हुई। मेरी दरिद्रावस्था के वे छोटे-छोटे बर्तन, जिनके बीच में मैं मैली-कुचैली बैठती थी, और मेरा निर्लज्ज पति मुझे उन छातों से भी तुच्छ समझता था, जिन्हें वह अपनी जीविका के लिए बनाता था॥23॥

मैंने राग और दोष को चुन-चुन कर नष्ट कर दिया है। मैं वृक्ष-मूलों में ध्यान करती हुई जीवन-यापन करती हूँ। अहो! मैं कितनी सुखी हूँ! मैं कितने सुख से ध्यान करती हूँ॥24॥

4. अड्ढकासिथेरीगाथा-

"याव कासिजनपदो, सुङ्को मे तत्थको अहु।
तं कत्वा नेगमो अग्घं, अड्ढेनग्घं ठपेसि मं"॥25॥
''अथ निब्बिन्दहं रूपे, निब्बिन्दञ्च विरज्जहं।
मा पुन जातिसंसारं, सन्धावेय्यं पुनप्पुनं।
तिस्सो विज्जा सच्छिकता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥26॥

... अड्ढकासि थेरी...।

5. चित्ताथेरीगाथा-

''किञ्चापि खोम्हि किसिका, गिलाना बाळ्हदुब्बला।
दण्डमोलुब्भ गच्छामि, पब्बतं अभिरूहिय॥27॥
''सङ्घाटिं निक्खिपित्वान, पत्तकञ्च निकुज्जिय।
सेले खम्भेसिमत्तानं, तमोखन्धं पदालिया''ति॥28॥ ... चित्ता थेरी...।

(संस्कृतच्छाया)-4. ''यावत् काशीजनपद,: शुल्क: मे तत्रक: अभूत्।
तं कृत्वा नैगम: अर्घम्, अर्धेनार्घं स्थापयति माम्॥25॥
''अथ निर्वेदमहं रूपात्, निर्वेदाच्च विरज्यमहम्।
मा पुन: जातिसंसारम्, सन्धावेयं पुनर्पुन:।
तिस्रो विद्या: साक्षात्कृता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥26॥

5. ''किञ्चिदपि खल्वहम् कृषिका, ग्लाना बहुदुर्बला।
दण्डमालभ्य गच्छामि, पर्वतमभिरुह्य॥27॥
''सङ्घाटिं निक्षिप्य, पात्रकञ्च निकुज्य।
शैले व्यष्टभमात्मानम्, च तमस्स्कन्धं प्रदारय" इति॥28॥

(हिन्दी) –जितनी समस्त काशी-राज्य की एक दिन की आय है, उतना ही मेरा एक रात का शुल्क था। उतना मूल्य निगम के द्वारा मेरा पारिश्रमिक-स्वरूप निश्चित था॥25॥

किन्तु उसी रूप से मुझे घृणा उत्पन्न हो गई और घृणा से वैराग्य उत्पन्न हो गया। अब मेरा मृत्यु और पुनर्जन्म नहीं है। क्योंकि मैंने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर, भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध के शासन को पूरा किया है॥26॥

मैं क्षीण, बीमार और बहुत दुर्बल थी, फिर भी लकुटी की सहायता से मैंने पर्वत की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया॥27॥

मेरे कन्धे से वस्त्र गिर गया, भिक्षा पात्र भी उलट कर गिर गया। पर्वत का सहारा लेकर मैं अपनी देह को सम्भाल ही रही थी कि मेरा अज्ञानान्धकार विदीर्ण हो गया॥28॥

6. मेत्तिकाथेरीगाथा-

''किञ्चापि खोम्हि दुक्खिता, दुब्बला गतयोब्बना।
दण्डमोलुब्भ गच्छामि, पब्बतं अभिरूहिय॥29॥
''निक्खिपित्वान सङ्घाटिं, पत्तकं च निकुज्जिय।
निसिन्ना चम्हि सेलम्हि, अथ चित्तं विमुच्चि मे।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥30॥ ... मेत्तिका थेरी...।

7. मित्ताथेरीगाथा-

''चातुद्दसिं पञ्चदसिं, या च पक्खस्स अट्ठमी।
पाटिहारियपक्खं च, अट्ठङ्गसुसमागतं"॥31॥
''उपोसथं उपागच्छिं, देवकायाभिनन्दिनी।
साज्ज एकेन भत्तेन, मुण्डा सङ्घाटिपारुता।
देवकायं न पत्थेहं, विनेय्य हृदये दरं''ति॥32॥ ... मित्ता थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) -6. ''किञ्चापि खल्वहं दु:खिता, दुर्बला गतयौवना।
दण्डमालभ्य गच्छामि, पर्वतमारुह्य॥29॥
''निक्षिप्य सङ्घाटिम्, पात्रकञ्च निकुज्य।
निषण्णा चास्मि शैले, अथ मे चित्तं विमुञ्चितम्।
तिस्र: विद्या अनुप्राप्ता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥30॥

7. ''चतुर्दशीं पञ्चदशीम्, या च पक्षस्य अष्टमीम्।
प्रातिहार्य पक्षञ्च, अष्टाङ्गसुसमागतम्"॥31॥
''उपोषथम् उपागच्छत्, देवकायाभिनन्दिनी।
साद्य एकेन भक्तेन, मुण्डिता सङ्घाटिप्रावृता।
देवकायं न प्रार्थयेऽहम्, विनीयेत् हृदये दरम्" इति॥32॥

(हिन्दी) – मैं दु:खित, बलहीन और गतयौवना थी, फिर भी लकड़ी की सहायता से मैनें पर्वत की चोटी पर चढ़ने का प्रयत्न किया॥29॥

वहीं मेरे कंधे से वस्त्र गिर गया, भिक्षा-पात्र भी उलट कर गिर गया। मैं पर्वत की चोटी पर बैठ गई। वहीं मेरा चित्त मुक्त हो गया। मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, और बुद्ध-शासन को किया॥30॥

चतुर्दशी को, अमावस्या को, पूर्णमासी को और प्रत्येक पक्ष की अष्टमी को, मैं व्रत रखती थी, अष्टांग-युक्त उपोसथ यह सोचकर रखती थी, कि देव-योनि को प्राप्त कर मैं आनन्द करूँगी॥31॥

वही मैं आज नित्य ही एकाहारी हूँ, मुंड़े हुए सिर वाली हूँ, चीवर पहनने वाली हूँ। किन्तु आज मुझे देव-योनि की इच्छा नहीं है, क्योंकि, मैंने हृदय की चिन्ताओं को ही दूर फेंक दिया है॥32॥

8. अभयमातुथेरीगाथा-

''उद्धं पादतला अम्म, अधो वे केसमत्थका।
पच्चवेक्खस्सुमं कायं, असुचिं पूतिगन्धिकं॥33॥
''एवं विहरमानाय, सब्बो रागो समूहतो।
परिळाहो समुच्छिन्नो, सीतिभूताम्हि निब्बुता''ति॥34... अभयमातु थेरी...।

9. अभयाथेरीगाथा-

''अभये भिदुरो कायो, यत्थ सता पुथुज्जना।
निक्खिपिस्सामिमं देहं, सम्पजाना सतीमती॥35॥
''बहूहि दुक्खधम्मेहि, अप्पमादरताय मे।
तण्हक्खयो अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥36॥... अभया थेरी...।

10. सामाथेरीगाथा-

''चतुक्खत्तुं पञ्चक्खत्तुं, विहारा उपनिक्खमिं।
अलद्धा चेतसो सन्तिं, चित्ते अवसवत्तिनी॥37॥

(संस्कृतच्छाया) –8. ''ऊर्ध्वं पादतलात् अम्ब!, अधो वै केशमस्तकात्।
प्रत्यवेक्षस्व मम कायम्, अशुचिं पूतिगन्धकम्॥33॥
''एवं विहरमाणाया:, सर्व: राग: समूहत:।
परिदाह: समुच्छिन्न:, शीतिभूतास्मि निर्वृता"इति॥34॥

9. ''अभये! भिदुर: काय:, यत्र सक्ता: पृथक्जना:।
निक्षेप्स्यामीमं देहम्, सम्प्रजानाना स्मृतिमती॥35॥
''बहुभ्य: दु:खधर्मेभ्य:, अप्रमादरतायै मे।
तृष्णाक्षय: अनुप्राप्त:, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥36॥

10. ''चतु:कृत्वा पञ्चकृत्वा, विहारातुपन्यक्राम्यम्।
अलब्धा चेतस: शान्ति:, चित्ते अवशवर्तिनी॥37॥

(हिन्दी)- माता! अशुचि और दुर्गन्धमय इस काया को तू पैरों के तलवों से ऊपर और मस्तक के केशों से नीचे तक प्रत्यवेक्षण कर। इस शिक्षा में ध्यानस्थ होकर मैंने तदनुकूल आचरण किया॥33॥

सभी प्रकार के रागों को नष्ट कर दिया, अब मेरी मानसिक जलन शान्त हो गई, और निर्वाण को प्राप्त कर आज मैं परम शांत हूँ॥34॥

अभया! यह देह क्षण-भंगुर है। अज्ञानी जन इसमें आसक्त हैं। मैं चित्त को स्थिर कर, ज्ञान और स्मृति के साथ ही इस शरीर को छोड़ूँगी॥35॥

मैनें अनेकों दु:खधर्मों से अप्रमादतापूर्वक तृष्णाक्षय को प्राप्त किया, और बुद्ध के शासन को किया॥36॥

चार-पाँच बार, मैं चित्त को वश में करने के लिए विहार से बाहर निकल कर आयी, परन्तु मुझे चित्त की शांति नहीं मिली॥37॥

''तस्सा मे अट्ठमी रत्ति, यतो तण्हा समूहता।
बहूहि दुक्खधम्मेहि, अप्पमादरताय मे।
तण्हक्खयो अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥38॥... सामा थेरी...।

दुकनिपातो निट्ठितो।

3. तिकनिपातो

1. अपरासामाथेरीगाथा-

''पण्णवीसतिवस्सानि , यतो पब्बजिताय मे।
नाभिजानामि चित्तस्स, समं लद्धं कुदाचनं॥39॥
''अलद्धा चेतसो सन्तिं, चित्ते अवसवत्तिनी।
ततो संवेगमापादिं, सरित्वा जिनसासनं॥40॥
''बहूहि दुक्खधम्मेहि, अप्पमादरताय मे।
तण्हक्खयो अनुप्पत्तो, कतं बुद्धस्स सासनं॥
अज्ज मे सत्तमी रत्ति, यतो तण्हा विसोसिता''ति॥41॥... अपरासामा थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्या: मम अष्टमी रात्रि:, यतस्तृष्णा: समवहता:।
बहूभ्य: दु:खधर्मेभ्य:, अप्रमादरत्या मया।
तृष्णाक्षय अनुप्राप्त:, कृतं बुद्धस्य शासनमिति।॥38॥

1. ''पञ्चविंशतिवर्षाणि, यत: प्रव्रजितायं मे।
नाभिजानामि चित्तस्य, शमं लब्धं कदाचन॥39॥
''अलभ्य चेतस: शान्तिम्, चित्ते अवशवर्त्तिनी।।
तत: संवेगमापद्यम्, स्मृत्वा तु जिनशासनम्॥40॥
''बहूभ्य:दु:खधर्मेभ्य:, अप्रमादरत्या मया।
तृष्णाक्षय: अनुप्राप्त:, कृतं बुद्धस्य शासनम्।
अद्य मे सप्तमीरात्रि:, यतस्तृष्णा विशोषिता"इति॥41॥

(हिन्दी)- आज आठवीं रात है, अब मेरे अन्दर तृष्णा समूल नष्ट हो गई। मैनें अनेकों दु:खधर्मों से अप्रमादतापूर्वक तृष्णाक्षय को प्राप्त किया, और बुद्ध के शासन को किया॥38॥

पूरे पच्चीस वर्ष मुझे संसार त्याग किये हो गए, किन्तु कभी मैंने चित्त की शांति की हो, ऐसा मैं नहीं जानती॥39॥

चिर-ईप्सित (चित्त-शांति को जब मैंने नहीं पाया, मेरा मन जब वशवर्ती नहीं हुआ, तब विजयी पुरुष) बुद्ध के शासन को सुनकर मुझे संवेग उत्पन्न हुआ॥40॥

बड़े गम्भीर दु:खों के साथ निरन्तर युद्ध करते हुए अन्त में मुझे अप्रमादिनी को जय मिली! वासना का क्षय हो गया, बुद्ध का अनुशासन पूरा कर लिया गया! आज सातवीं रात है, जबकि मेरी वासना का समूल उच्छेदन हो गया॥41॥

2. उत्तमाथेरीगाथा-

''चतुक्खत्तुं पञ्चक्खत्तुं, विहारा उपनिक्खमिं।
अलद्धा चेतसो सन्तिं, चित्ते अवसवत्तिनी॥42॥
''सा भिक्खुनिं उपगच्छिं, या मे सद्धायिका अहु।
सा मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो॥43॥
''तस्सा धम्मं सुणित्वान, यथा मं अनुसासि सा।
सत्ताहं एकपल्लङ्केन, निसीदिं पीतिसुखसमप्पिता
अट्ठमिया पादे पसारेसिं, तमोखन्धं पदालिया''ति॥44॥ ... उत्तमा थेरी...।

3. अपराउत्तमाथेरीगाथा-

''ये इमे सत्त बोज्झङ्गा, मग्गा निब्बानपत्तिया।
भाविता ते मया सब्बे, यथा बुद्धेन देसिता॥45॥

(संस्कृतच्छाया) -2. ''चतुःकृत्वा पञ्च कृत्वा, विहारातुपन्यक्राम्यम्।
अलब्धा चेतसः शान्तिम्, चित्ते अवशवर्तिनी॥42॥
''तां भिक्षुणीमुपागमत्, या मह्यं श्रद्द्धायिकाभूत्।
सा मां धर्ममादेशय, स्कन्धायतनधातून्॥43॥
''तस्या धर्मं श्रुत्वा मया, यथा माम् अन्वशिषत् सा।
सप्ताहम् एकपर्यङ्केन, न्यसीदम् प्रीतिसुखसमर्पिता।
अष्टम्यां पादौ प्रासारयम्, तमस्स्कन्धं प्रदारय" इति॥44॥

3. ''ये इमानि सप्त बोध्यङ्गानि, मार्गाः निर्वाणप्राप्तये।
भावितास्ते मया सर्वे, यथा बुद्धेन देशिताः॥45॥

(हिन्दी)- अ-प्राप्त चित्त-शांति को प्राप्त करने के लिए और विद्रोही मन को वश में करने के अभिप्राय से, चार-पाँच बार विहार से निकल कर मैं इधर-उधर बाहर टहलती रही॥42॥

फिर उस भिक्षुणी के पास गई, वह जो मेरी श्रद्धेया (धर्ममाता) थी, उसने मुझे धर्मोपदेश दिया, स्कंध, आयतन और धातुओं का ज्ञान बतलाया॥43॥

उस महाभागिनी के उपदेश को सुनकर मैंने वैसा ही किया जैसा उसने मुझे आदेश दिया। मैं एक सप्ताह भर तक एक ही आसन से बैठकर ध्यान करती रही। ध्यान के आनन्द से, प्रीति और सुख से, मेरा मन पूरित हो गया। आठवें दिन जब मैंने आसन छोड़ा और अपने पैर फैलाये, तो मेरा चित्त शांत था, मेरा अज्ञानांधकार छिन्न हो गया था॥44॥

बुद्ध-शासन की अनुवर्तिनी होकर मैंने निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग-स्वरूप बोधि के सात अंगों-की भावना की, जैसा कि भगवान् बुद्ध ने उन्हें सिखाया॥45॥

''सुञ्ञतस्सानिमित्तस्स, लाभिनीहं यदिच्छकं।
ओरसा धीता बुद्धस्स, निब्बानाभिरता सदा॥46॥
''सब्बे कामा समुच्छिन्ना, ये दिब्बा ये च मानुसा।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥47॥

....अपरा उत्तमा थेरी.....।

4. दन्तिकाथेरीगाथा-

''दिवाविहारा निक्खम्म, गिज्झकूटम्हि पब्बते।
नागं ओगाहमुत्तिण्णं, नदीतीरम्हि अद्दसं॥48॥
''पुरिसो अङ्कुसमादाय, 'देहि पादं'ति याचति।
नागो पसारयी पादं, पुरिसो नागमारुहि॥49॥
''दिस्वा अदन्तं दमितं, मनुस्सानं वसं गतं।
ततो चित्तं समाधेसिं, खलु ताय वनं गता''ति॥50॥... दन्तिका थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) - ''शून्यत्वस्यानिमित्तस्य, लाभिन्यहं यदृच्छकम्।
औरसा दुहिता बुद्धस्य, निर्वाणाभिरता सदा॥46॥
''सर्वे कामा: समुच्छिन्ना:, ये दिव्या: ये च मानुसा:।
विक्षीणो जातिसंसार:, नास्ति इदानीं पुनर्भव:"इति॥47॥

4. ''दिवाविहारात् निष्क्रम्य, गृद्धकूटे पर्वते।
नागम् अवगाहमुत्तीर्णम्, नदीतीरे अद्राक्षम्॥48॥
''पुरुष अङ्कुशमादाय, देहि पादमिति याचते।
नाग: प्रासारयत् पादम्, पुरुष: नागमारुक्षत्॥49॥
''दृष्ट्वा अदम्यं दमितम्, मनुष्याणां वशं गतम्।
तत: चित्तं समाधेहि, खलु तया वनं गतम्" इति॥50॥

(हिन्दी) - मेरे हृदय की इच्छा इस समय पूर्ण हो गई, मुझे शून्यता-ध्यान की प्राप्ति हो गई,अ-निमित्त (निरालम्ब चित्तसमाधि) को मैंने पाया, लोभ, द्वेष और मोह से शून्य अवस्था की प्राप्ति हो गई जो कुछ भी अनित्य, दु:ख और अनात्म है, उसमें मेरी आसक्ति नष्ट हो गई! अहो! मैं बुद्ध की औरस (हृदय से उत्पन्न) कन्या हूँ। मैं निर्वाण के प्रयत्न में सदा लीन हूँ॥46॥

मेरी सभी मानुषी और दैवी भोगेच्छाएँ नष्ट हो गईं, मेरा आवागमन क्षीण हो गया, अब मेरा पुनर्जन्म होना नहीं है॥47॥

गृध्रकूट पर्वत पर दिन का विश्राम करने के पश्चात् मैं बाहर आई। वहाँ देखती हूँ कि एक हाथी जल में अवगाहन करने के बाद नदी के किनारे पर बैठा है॥48॥

एक अंकुशधारी ने उसे आदेश दिया, ''पैर पसार''। हाथी ने पैर पसार दिये, पुरुष उस पर चढ़ गया॥49॥

अ-दांत (हाथी) को दमित होते और मनुष्य की अधीनता स्वीकार करते देख, उस गम्भीर अरण्य में प्रवेश कर मैंने भी अपने चित्त को दमित और वशीभूत कर लिया॥50॥

5. उब्बिरिथेरीगाथा-

''अम्म जीवाति वनम्हि कन्दसि, अत्तानं अधिगच्छ उब्बिरि।
चुल्लासीतिसहस्सानि , सब्बा जीवसनामिका।
एतम्हाळाहने दड्ढा, तासं कमनुसोचस॥51॥
''अब्बही वत मे सल्लं, दुद्दसं हृदयस्सितं।
यं मे सोकपरेताय, धीतुसोकं ब्यपानुदि॥52॥
''साज्ज अब्बूळ्हसल्लाहं, निच्छाता परिनिब्बुता।
बुद्धं धम्मं च सङ्घं च, उपेमि सरणं मुनिं''ति॥53॥ ... उब्बिरी थेरी...।

6. सुक्काथेरीगाथा-

''किंमे कता राजगहे मनुस्सा, मधुं पीताव अच्छरे।
ये सुक्कं न उपासन्ति, देसेन्तिं बुद्धसासनं॥54॥
''तं च अप्पटिवानीयं, असेचनकमोजवं।
पिवन्ति मञ्ञे सप्पञ्ञा, वलाहकमिवद्धगू॥55॥

(संस्कृतच्छाया) -5. ''अम्ब जीवे! इति वने, क्रन्दसि आत्मानमधिगच्छ *उब्बिरे* !
चतुरशीतिसहस्राणि, सर्वा: जीवसनामिका:।
एतस्मिन् आदाहने दग्धा, तासां कमनुशोचसि?॥51॥
''अवहत् बत मम शल्यम्, दुर्दशं हृदयनि:श्रितम्।
यन्मे शोकपरीताय, दुहिताशोको व्यपानुदत्॥52॥
''साद्याब्यूढशल्याहम्, नि:स्राता परिनिर्वृता।
बुद्धं धर्मञ्च सङ्घञ्च, उपेमि शरणं मुनिम्" इति॥53॥
6. ''किमिमे कृता: राजगृहे मनुष्या:, मधुं पीत्वा इव अच्छन्ति।
ये शुक्लां न उपासन्ते, देशयन्ति बुद्धशासनम्॥54॥
''तं च अप्रतिवाणीयम्, आसेचनकमोजवत्।
पिबन्ति मन्ये सत्प्राज्ञा:, वलाहकमिवाध्वगा:॥55॥

(हिन्दी) – अम्म जीवा' 'अम्म जीवा' कह-कह कर तू पागल हुई, वन-वन में विलाप करती हुई फिरती है। उब्बिरे! आत्मस्थ हो। तेरी चौरासी हजार जीवन्ती नाम की कन्याएँ इसी श्मशान में जलाई गई है। बता, तू उनमें से किस जीवन्ती के लिए शोक करती है?॥51॥

मेरे हृदय में अदृश्य रूप से बिंधा हुआ तीर निकल गया! प्यारी पुत्री का शोक मेरे संपूर्ण जीवन को विषाक्त बनाए हुए था, मेरे प्राण हरण कर रहा था॥52॥

अब वह शोक नहीं रहा! आज मेरा हृदय शांत है, आकुलता-रहित है, मेरा चित्त आज निर्मल और शांतिपूर्ण है! मैं मुनि बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण लेता हूँ॥53॥

राजगृह-निवासियों! शुक्ला के द्वारा प्रचारित बुद्ध-वाणी को सुनकर तुम यहाँ शराब पीकर मस्त हुए जैसे क्यों सोये पड़े हो? जाकर उस बुद्ध शासन का उपदेश करने वाली की उपासना क्यों नहीं करते?॥54॥

शुक्ला की सुमधुर, ओजपूर्ण, वाणी रूपी जतीवनी-सुधा को, जो एक बार प्राप्त करने पर फिर कभी नष्ट नहीं होती, ज्ञानी जन उसी प्रकार पान करते हैं, जैसे पथिक गण वर्षा के जल को॥55॥

''सुक्का सुक्केहि धम्मेहि, वीतरागा समाहिता।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहनं''ति॥56॥... सुक्का थेरी...।

7. सेलाथेरीगाथा-

''नत्थि निस्सरणं लोके, किं विवेकेन काहसि।
भुञ्जाहि कामरतियो, माहु पच्छानुतापिनी॥57॥
''सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।
यं त्वं 'कामरतिं' ब्रूसि, 'अरती' दानि सा मम॥58॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥59॥... सेला थेरी...।

8. सोमाथेरीगाथा-

''यं तं इसीहि पत्तब्बं, ठानं दुरभिसम्भवं।
न तं द्वङ्गुलपञ्ञाय, सक्का पप्पोतुमित्थिया'॥60॥

(संस्कृतच्छाया) - ''शुक्ला शुक्लैः धर्मैः, वीतरागा समाहिता।
धारयति अन्तिमं देहम्, जित्वा मारं सवाहनम्" इति॥56॥

7. ''नास्ति निस्सरणं लोके, किं विवेकेन करिष्यसि।
भुङ्क्ष्व कामरतीः, माभूत् पश्चानुतापिनी॥57॥
''शक्तिशूलोपमाः कामाः, स्कन्धानामधिकुट्टनाः।
यं त्वं कामरतिं ब्रूषे, अरति इदानीं सा मम॥58॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानीहि पापिन्!, निहतः त्वमसि अन्तक"इति॥59॥

8. ''यत् तत् ऋषिभिः प्राप्तव्यम्, स्थानं दुरभिसम्भवम्।
न तं द्वयङ्गुलप्रज्ञया, शक्यं प्राप्तुं स्त्रिया॥60॥

(हिन्दी) – शुक्ला! शुक्ल (उजले) धर्मों के अभ्यास से तू वासना से मुक्त हुई है। अब तू शांत-चित्त और अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है। मार और उसकी सेना को जीतकर तू यह अन्तिम देह धारण करती है!॥56॥

शैला! लोक में मुक्ति जैसी कोई चीज नहीं है! फिर निर्जन-वास से तुझे क्या लाभ? समय रहते भोग-सुख का आनन्द ले, अन्यथा पीछे पछतायेगी!॥57॥

पापी मार! भोग का सुख तो मुझे भाले के प्रहार के समान ही इस नश्वर देह को विद्ध करने वाला लगता है। जिसको तू विषयों का सुख कहता है, वह तो मेरे लिए घृणा की चीज है॥58॥

पापी मार! मेरी भोगासक्ति सभी जगहों से दमित हो गई, मेरा अज्ञानांधकार विदीर्ण हो गया है। पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले। आज तेरा ही अन्त कर डाला गया! दुष्ट! तू मार दिया गया॥59॥

जो स्थान ऋषियों के द्वारा भी प्राप्त करने में अत्यन्त कठिन है, उसे दो अंगुलि-मात्र प्रज्ञा वाली स्त्री प्राप्त कर लेगी, यह कभी सम्भव नहीं॥60॥

''इत्थिभावो नो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
ञाणम्हि वत्तमानम्हि, सम्मा धम्मं विपस्सतो॥61॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥62॥ ... सोमा थेरी...।

तिकनिपातो निट्ठितो।

4. चतुक्कनिपातो

1. भद्दाकापिलानीथेरीगाथा-

''पुत्तो बुद्धस्स दायादो, कस्सपो सुसमाहितो।
पुब्बेनिवासं योवेदि, सग्गापायं च पस्सति॥63॥
''अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि।
एताहि तीहि विज्जाहि, तेविज्जो होति ब्राह्मणो॥64॥
''तथेव भद्दा कापिलानी, तेविज्जा मच्चुहायिनी।
धारेति अन्तिमं देहं, जेत्वा मारं सवाहनं॥65॥

(संस्कृतच्छाया) - ''स्त्रीभावो नः किं कुर्यात्, चित्ते सुसमाहिते।
ज्ञाने वर्तमाने, सम्यक् धर्मं विपश्यतः॥61॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानीहि पापिन्!, निहतः त्वमसि अन्तक"इति॥62॥●

1. ''पुत्रः बुद्धस्य दायादः, कश्यपः सुसमाहितः।
पूर्वनिवासं यो वेत्ति, स्वर्गोपायञ्च पश्यति॥63॥
''अथ जातिक्षयं प्राप्तः, अभिज्ञाव्यवसितः मुनिः।
एताभिः तिसृभिः विद्याभिः, त्रिविद्यो भवति ब्राह्मणः॥64॥
''तथैव भद्रा कापिलानी, त्रैविद्या मृत्युहारिणी।
धारयति अन्तिमं देहम्, जित्वा मारं सवाहनम्॥65॥

(हिन्दी) – जब चित्त अच्छी प्रकार समाधि में स्थित है, ज्ञान नित्य विद्यमान है, और अन्तर्ज्ञान-पूर्वक धर्म का सम्यक् दर्शन कर लिया गया है, तो स्त्रीत्व इसमें हमारा क्या करेगा?॥61॥

देख! मैंने सभी जगह से अपनी वासना का संपूर्ण विनाश कर दिया है! अज्ञानांधकार को विदीर्ण कर दिया है! पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले! आज तेरा ही अन्त कर दिया गया!॥62॥

शांत, समाधि-निष्ठ, महाकाश्यप, भगवान् बुद्ध का उत्तराधिकारी पुत्र है! पूर्व-जन्मों को वह जानता है, जन्म और मृत्यु उससे कुछ अविदित नहीं है॥63॥

अभिज्ञा की पूर्णता में वह स्थित है; उस मुनि का आवागमन क्षीण हो गया है। तीनों विद्याओं को जानने के कारण वह त्रैविद्य है, (वास्तविक अर्थों में) ब्राह्मण है॥64॥

भद्रा कापिलायिनी भी उसी के समान तीनों विद्याओं को जानने वाली है, मृत्युविजयिनी है। मार और उसकी सेना को जीत कर वह यह अन्तिम देह धारण करती है॥65॥

''दिस्वा आदीनवं लोके, उभो पब्बजिता मयं।
त्यम्ह खीणासवा दन्ता, सीतिभूतम्ह निब्बुता''ति॥66॥

... भद्दा कापिलानी थेरी...।

चतुक्कनिपातो निट्ठितो।

5. पञ्चकनिपातो

1. अञ्ञतराथेरीगाथा-

''पण्णवीसतिवस्सानि , यतो पब्बजिता अहं।
नाच्छरासङ्घातमत्तं पि, चित्तस्सूपसमज्झगं॥67॥
''अलद्धा चेतसो सन्तिं, कामरागेनवस्सुता।
बाहा पग्गय्ह कन्दन्ती, विहारं पाविसिं अहं॥68॥
''सा भिक्खुनिं उपागच्छिं, या मे सद्धायिका अहु।
सा मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो॥69॥

(संस्कृतच्छाया) - ''दृष्ट्वा आदीनवं लोके, उभौ प्रव्रजितौ आवाम्।
तौ स्वः क्षीणास्रवौ दान्तौ, शीतिभूतौ स्वः निर्वृतौ"इति॥66॥

1. ''पञ्चविंशतिवर्षाणि, यतः प्रव्रजिता अहम्।
नाक्षरासङ्घातमत्तमपि, चित्तस्योपशममध्यगम्॥67॥
''अलभ्य चेतसः शान्तिम्, कामरागेणावसुता।
बाहुं प्रगृह्य क्रन्दन्ती, विहारं प्राविशमहम्॥68॥
''सा भिक्षुणीमुपागच्छत्, या मे श्रद्धायिका अभूत्।
सा मां धर्ममदेशयत्, स्कन्धायतनधातुकम्॥69॥

(हिन्दी) – सांसारिक जीवन के दोषों और दुष्परिणामों को देखकर हम दोनों ने संसार से संन्यास ले लिया! आज हम दोनों की आत्मा-विजयी हैं, सर्वथा निष्पाप हैं, निर्वाण प्राप्त कर हम दोनों परम शांत हैं! निर्वाण की परम शांति का हमने साक्षात्कार किया है॥66॥

गृह-त्याग के बाद पच्चीस वर्ष तक मैंने मुहूर्त भर के लिए भी चित्त की शांति अनुभव नही की॥67॥

मेरी प्रत्येक चिंता-धारा में काम की आसक्ति समाई हुई थी! शांति मुझे नहीं मिलती थी! दोनों बांहें फैला कर रोती हुई मैं एक दिन विहार के अन्दर गई॥68॥

वहाँ उस भिक्षुणी के पास गई जो मेरी श्रद्धेया (धर्ममाता) थी। वह मुझे धर्मोपदेश करने लगी। उसने मुझे स्कंध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया॥69॥

''तस्सा धम्मं सुणित्वान, एकमन्ते उपाविसिं।
पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खु विसोधितं॥70॥
''चेतोपरिच्चञाणं च, सोतधातु विसोधिता।
इद्धीपि मे सच्छिकता, पत्तो मे आसवक्खयो।
छळभिञ्ञा सच्छिकता, कतं बुद्धस्स सासनं'' ति॥71॥...अञ्ञतरा थेरी...।

2. विमलाथेरीगाथा-

''मत्ता वण्णेन रूपेन, सोभग्गेन यसेन च।
योब्बनेन चुपत्थद्धा, अञ्ञासमतिमञ्ञिहं॥72॥
''विभूसेत्वा इमं कायं, सुचित्तं बाललापनं।
अट्ठासिं वेसिद्वारम्हि, लुद्दो पासमिवोड्डिय॥73॥
''पिलन्धनं विदंसेन्ती, गुय्हं पकासिकं बहुं।
अकासिं विविधं मायं, उज्जग्घन्ती बहुं जनं॥74॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्याः धर्मं श्रुत्वा, एकान्ते उपाविशम्।
पूर्वनिवासं जानामि, दिव्यचक्षुः विशोधितम्॥70॥
''चेतः परीत्यज्ञानञ्च, श्रौतधातुः विशोधिता।
ऋद्धिरपि मे साक्षीकृता, प्राप्तः मे आस्रवक्षयः।
षड्भिज्ञाश्च साक्षीकृता, कृतं बुद्धस्य शासनम्"इति॥71॥

2. ''मत्ता वर्णेन रूपेण, सौभाग्येन यशसा च।
यौवनेन चोपस्तब्धा, अन्यासामत्यमंस्यहम्॥72॥
''विभूष्य इमं कायम्, सुचित्रं बाललपनम्।
अस्थां वेश्याद्वारे, लुब्धः पाशमिवोड्डीय॥73॥
''पिनद्धनं विदर्शयन्ती, गुह्यं प्रकाशकं बहु।
अकार्षं विविधां मायाम्, उद्धनन्ती बहून् जनान्॥74॥

(हिन्दी)- उसके धर्मोपदेश को सुन कर मैं एकान्त में ध्यान के लिए बैठ गई। इस समय अपने अतीत जन्म मुझे ज्ञात हैं, विशोधित हुए मेरे चक्षु दिव्य हैं॥70॥

पर-चित्त-ज्ञान मुझे लब्ध है, विशोधित हुए श्रोत्रों से मैं अलक्ष्य वस्तुओं को भी श्रवण कर सकती हूँ। योग-विभूतियाँ भी मैंने संपादित की, छह अभिज्ञाओं (गूढ ज्ञानों) का मैंने साक्षात्कार किया, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा कर लिया॥71॥

रूप-लावण्य, सौभाग्य और यश से मतवाली हुई, यौवन के अहंकार में मस्त, मैं अज्ञानी, अपने को कितना गौरवमयी समझती थी॥72॥

गहनों से शरीर को विभूषित और चित्रित किये हुए, मैं उसे अनेक तरुणों से बातचीत का माध्यम बनाती थी। वेश्या-गृह के द्वार पर सतर्क दृष्टि से बैठी हुई मैं व्याध के समान जालों को फैलाती थी॥73॥

लज्जा-शर्म को छोड़कर मैं अपने आभूषणों को उघाड़ कर दिखाती थी और अपने गुह्य अंगों तक को दिखा देती थी। मनुष्यों के पतन के लिए मैं अनेक मायाएँ रचती थी॥74॥

''साज्ज पिण्डं चरित्वान, मुण्डा सङ्घाटिपारुता।
निसिन्ना रुक्खमूलम्हि, अवितक्कस्स लाभिनी॥75॥
''सब्बे योगा समुच्छिन्ना, ये दिब्बा ये च मानुसा।
खेपेत्वा आसवे सब्बे, सीतिभूताम्हि निब्बुता''ति॥76॥

... विमला पुराणगणिका थेरी...।

3. सीहाथेरीगाथा-

''अयोनिसो मनसिकारा, कामरागेन अट्टिता।
अहोसिं उद्धता पुब्बे, चित्ते अवसवत्तिनी॥77॥
''परियुट्ठिता क्लेसेहि, सुभसञ्ञानुवत्तिनी।
समं चित्तस्स न लभिं, रागचित्तवसानुगा॥78॥
''किसा पण्डु विवण्णा च, सत्त वस्सानि चारिहं।
नाहं दिवा वा रत्तिं वा, सुखं विन्दिं सुदुक्खिता॥79॥

(संस्कृतच्छाया) - ''साद्य पिण्डं चरित्वा, मुण्डा सङ्घाटिप्रावृता।
निषिण्णा वृक्षमूले, अवितर्कस्य लाभिनी॥75॥
''सर्वे योगा: समुच्छिन्ना:, ये दिव्या: ये च मानुषा:।
क्षिपित्वा आस्रवान् सर्वान्, शीतिभूतास्मि निर्वृता" इति॥76॥

3. ''अयोनिशो मनसिकारा:•, कामरागेण अर्तिता:।
अभूवमुद्धता पूर्वम्, चित्ते अवशवर्तिनी॥77॥
''पर्युषिता क्लेशै:, शुभसंज्ञानुवर्तिनी।
शमं चित्तस्य नो लेभे, रागचित्तवशानुगा॥78॥
''कृशा पाण्डुविवर्णा च, सप्तवर्षाणि अचरमहम्।
नाहं दिवा वा रात्रिं वा, सुखं विन्दामि सुदु:खिता॥79॥

(हिन्दी)-वही मैं आज भिक्षाचारिणी, मुंडे हुए सिर वाली हूँ, चीवर-वसना हूँ। वृक्षों के नीचे बैठकर ध्यान-रत हुई मैं अवितर्क ध्यान को प्राप्त कर विहरती हूँ॥75॥

दैवी और मानुषी कामनाओं के सभी बंधन मेरे उच्छिन्न हो गये हैं। सब पापों को मैंने दूर फेंक दिया है, आज मैं निर्वाण की परम शांति का अनुभव कर रही हूँ, मैं निर्वाण-प्राप्त हूँ, परम शांत हूँ॥76॥

असंगत विचारों को मन में करने के कारण, मैं पहले काम-वासना से सदा ही पीड़ित रहती थी। विद्रोही, वश में न हुए, चित्त से मैं सदा ही डसी जाती थी॥77॥

चित्त-मलों से भरी हुई मैं सुख-स्वप्नों को ही देखा करती, किंतु भोग-तृष्णा में चित्त को फँसा कर मैंने चित्त की शांति (समता) कभी नहीं पाई॥78॥

(चित्त-शांति को प्राप्त न कर सकने के कारण) मैं दिन-दिन कृश होने लगी, पीली पड़ गई, मेरा रंग फीका पड़ गया। इसी दु:खी अवस्था में मैं सात वर्ष तक जीवन-यापन करती रही। न दिन में न रात में, मुझ अभागिनी ने कभी सुख अनुभव किया॥79॥

• अनित्येषु नित्यत्वभावना इति।।

''ततो रज्जुं गहेत्वान, पाविसिं वनमन्तरं।
वरं मे इध उब्बन्धं, यञ्च हीनं पुनाचरे॥80॥
''दळ्हपासं करित्वान, रुक्खसाखाय बन्धिय।
पक्खिपिं पासं गीवायं, अथ चित्तं विमुच्चि मे''ति॥81॥ ... सीहा थेरी...।

4. सुन्दरीनन्दाथेरीगाथा-

''आतुरं असुचिं पूतिं, पस्स नन्दे समुस्सयं।
असुभाय चित्तं भावेहि, एकग्गं सुसमाहितं॥82॥
''यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
दुग्गन्धं पूतिकं वाति, बालानं अभिनन्दितं॥83॥
''एवमेतं अवेक्खन्ती, रत्तिन्दिवमतन्दिता।
ततो सकाय पञ्ञाय, अभिनिब्बिज्झ दक्खिसं॥84॥

(संस्कृतच्छाया) - ''ततो रज्जुं गृहीत्वा, प्राविशं वनमन्तरम्।
वरो मे इह उद्बन्धो, येन च हीनं पुनाचरे॥80॥
''दृढपाशं कृत्वा, वृक्षशाखायां बन्धित:।
प्राक्षिपम् पाशं ग्रीवायाम्, अथ चित्तं विमुक्तं मे" इति॥81॥

4. ''आतुरमशुचिं पूतिम्, पश्य नन्दे! समुच्छ्रयम्।
अशुभाय चित्तं भावय, एकाग्रं सुसमाहितम्॥82॥
''यथेदं तथैतद्, यथैतत्तथेदम्।
दुर्गन्धं पूतिकं वाति, बालानामभिनन्दितम्॥83॥
''एवमेतदवेक्षन्ती, रात्रिदिवमतन्द्रिता।
तत: स्वकाय प्रज्ञाय, अभिनिर्विद्य दर्शितम्॥84॥

(हिन्दी)- हताश होकर, एक दिन रस्सी को लेकर मैं घने वन के अन्दर घुस गई। सोचा, 'पुन: हीन आचरण करने से तो मेरे लिए यही श्रेयस्कर है कि मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँ॥80॥

दृढ़ फाँसी लगा कर वृक्ष की शाखा में बाँध दी। जैसे ही मैं फाँसी अपने गले में डाल रही थी कि मेरा चित्त (कामासक्ति से) विमुक्त हो गया॥81॥

नंदा! इस गन्दे सम्मिश्रण (शरीर) को देख! अशुचि, दुर्गंधमय और व्याधि के समूह इस शरीर को तू देख! एकाग्र चित्त और अच्छी प्रकार समाधि में स्थित होकर तू अशुभ-भावना में चित्त को लगा॥82॥

जैसी यह देह है, वैसी ही तेरी देह भी है; जो इस सौंदर्य का परिणाम है, वही तेरे सौंदर्य का भी परिणाम होगा! इस दुर्गंध-मय अपवित्र शरीर का यही परिणाम है! केवल अज्ञानी लोग ही इसे अभिनन्दनीय वस्तु समझते हैं॥83॥

इसलिए नंदा! रात-दिन अ-तंद्रित होकर तू इस काया का इस प्रकार अवेक्षण कर। ऐसी करती हुई तू अपनी प्रज्ञा से सौंदर्य के मोह से विमुक्त होकर सत्य को देखेगी॥84॥

''तस्सा मे अप्पमत्ताय, विचिनन्तिया योनिसो।
यथाभूतं अयं कायो, दिट्ठो सन्तरबाहिरो॥85॥
''अथ निब्बिन्दहं काये, अज्झत्तं च विरज्जहं।
अप्पमत्ता विसंयुत्ता, उपसन्ताम्हि निब्बुता''ति॥86॥ ... सुन्दरीनन्दा थेरी...।

5. नन्दुत्तराथेरीगाथा-

"अग्गिं चन्दं च सूरियं च, देवता च नमस्सिहं।
नदीतित्थानि गन्त्वान, उदकं ओरुहामिहं॥87॥
''बहूवतसमादाना , अड्ढं सीसस्स ओलिखिं।
छमाय सेय्यं कप्पेमि, रत्तिं भत्तं न भुञ्जहं॥88॥
''विभूसामण्डनरता, न्हापनुच्छादनेहि च।
उपकासिं इमं कायं, कामरागेन अट्टिता॥89॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्याः मे अप्रमत्तायाः, विचिन्त्य योनिशः।
यथाभूतमयं कायः, दृष्टः सान्तरः बहिः॥85॥
''अथ निर्वेदाहं काये, अध्यात्मं व्यरज्येऽहम्।
अप्रमत्ता विसंयुक्ता, उपशान्तास्मि निर्वृता"इति॥86॥

5. ''अग्निं चन्द्रञ्च सूर्यञ्च, देवताश्च नमाम्यहम्।
नदीतीर्थानि गत्वा, उदके अवगाहयाम्यहम्॥87॥
''बहुव्रतसमादाना, अर्धं शीशस्यावालिखम्।
क्षमायां शयनम् अकरवम्, रात्रिं भक्तं नाभौक्षमहम्॥88॥
''विभूषामण्डनरता, स्नानानुच्छादनैश्च।
उपाकाशत इमं कायम्, कामरागेन अर्तिता॥89॥

(हिन्दी)- शास्ता के उपदेश को सुनकर मैंने ठीक प्रकार से, अ-तंद्रिय होकर इस शरीर के हेतु का चिन्तन किया। जैसा इस काया का वास्तविक स्वरूप है, मैंने ठीक तरह बाहर-भीतर से उसे वैसा ही देख लिया॥85॥
तब इस देह में मुझे निर्वेद उत्पन्न हुआ। मैं अन्दर से राग-मुक्त हो गई, देह से अपनापन तोड़ दिया। पुरुषार्थ में लीन, अनासक्त, उपशांत, आज मैं निर्वाण की परम शांति का अनुभव कर रही हूँ। आज मैं निर्वाण-प्राप्त हूँ, परम शांत हूँ॥86॥
अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य और अन्य अनेक देवताओं की मैं पूजा-वंदना करती थी, नदी के घाटों पर जाकर जल में डुबकी भी लगाती थी॥87॥
आधे सिर का मुंडन, पृथ्वी पर शयन, रात्रि-भोजन का त्याग— इस प्रकार मैं अनेक व्रतों का पालन करती थी॥88॥
(साथ ही) विषय-वासना के उद्दोपन के लिए मैं गहनों से अपने शरीर को सजाती भी थी,काम- वासना से पीड़ित होकर स्नान, सुगन्ध और लेप आदि से भी अपने को विभूषित करती थी॥89॥

''ततो सद्धं लभित्वान, पब्बजिं अनगारियं।
दिस्वा कायं यथाभूतं, कामरागो समूहतो॥90॥
''सब्बे भवा समुच्छिन्ना, इच्छा च पत्थनापि च।
सब्बयोगविसंयुत्ता, सन्तिं पापुणि चेतसो''ति॥91॥ ... नन्दुत्तरा थेरी...।

6. मित्ताकाळीथेरीगाथा-

''सद्धाय पब्बजित्वान, अगारस्मानगारियं।
विचरिंहं तेन तेन, लाभसक्कारउस्सुका॥92॥
''रिञ्चित्वा परमं अत्थं, हीनमत्थं असेविहं।
किलेसानं वसं गन्त्वा, सामञ्ञत्थं न बुज्झिहं॥93॥
''तस्सा मे अहु संवेगो, निसिन्नाय विहारके।
उम्मग्गपटिपन्नाम्हि, तण्हाय वसमागता॥94॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तत: श्रद्धां लभित्वा, प्रावीव्रजमनगारिकम्।
दृष्ट्वा कायं यथाभूतम्, कामराग: समूलं हत:॥90॥
''सर्वे भावा: समुच्छिन्ना:, इच्छा प्रार्थना अपि च।
सर्वयोगविसंयुक्ता:, शान्तिं प्रापम् चेतस:" इति॥91॥

6. ''श्रद्धया प्रव्रज्य, आगारादनागारिकम्।
व्यचरमहं तत्र तत्र, लाभसत्कारोत्सुका॥92॥
''रिञ्चित्वा परममर्थम्, हीनमर्थमसेवमहम्।
क्लेशानां वशं गत्वा, श्रामण्यार्थञ्च नाबोधमहम्॥93॥
''तस्या: मे अभूत्संवेग:, निषण्णाय विहारके।
उन्मार्गप्रतिपन्नास्मि, तृष्णाया: वशमागता॥94॥

(हिन्दी)- फिर मैंने श्रद्धापूर्वक घर से बेघर हो प्रव्रज्या ग्रहण की। फिर इस काया के यथाभूत रूप को देखकर विषय-वासना में मेरी आसक्ति जड़ से नष्ट हो गई है॥90॥

मेरे सभी भाव (जीवन की आसक्तियां) विच्छिन्न हो गए, इच्छाएँ भी और अभिलाषाएँ भी, सब नष्ट हो गईं; सब बन्धनों से विमुक्त होकर अब मुझे चित्त की शांति मिली है॥91॥

श्रद्धापूर्वक घर से बेघर होकर मैंने प्रव्रज्या ली, फिर भी जगह-जगह लाभ और सत्कार पाने की इच्छा से ही बिचरती॥92॥

परमार्थ की अवहेलना कर मैं तुच्छ पदार्थ के ही सेवन में लगी रही, चित्त के वश में मैंने प्रव्रज्या के वास्तविक प्रयोजन को पूरा करने के लिये कोई प्रयास नहीं किया॥93॥

अपने छोटे से विहार में बैठकर एक दिन मैंने उदासीनतापूर्वक विचार किया- हाय! मैं तृष्णा के फंदें में फंसकर उन्मार्ग-गामिनी हो गयी॥94॥

''अप्पकं जीवितं मय्हं, जरा ब्याधि च मद्दति।
पुरायं भिज्जति कायो, न मे कालो पमज्जितुं॥95॥
''यथाभूतमवेक्खन्ती, खन्धानं उदयब्बयं।
विमुत्तचित्ता उट्ठासिं, कतं बुद्धस्स सासनं''ति॥96॥...मित्ता काळी थेरी...।

7. सकुलाथेरीगाथा-

''अगारस्मिं वसन्तीहं, धम्मं सुत्वान भिक्खुनो।
अद्दसं विरजं धम्मं, निब्बानं पदमच्चुतं॥97॥
''साहं पुत्तं धीतरं च, धनधञ्ञं च छड्डिय।
केसे छेदापयित्वान, पब्बजिं अनगारियं॥98॥
''सिक्खमाना अहं सन्ती, भावेन्ती मग्गमञ्जसं।
पहासिं रागदोसं च, तदेकट्ठे च आसवे॥99॥

(संस्कृतच्छाया) – ''अल्पकं जीवितं मम, जरा व्याधिं च मर्दति।
पुरायं भिद्यते काय:, न मे काल: प्रमाद्यतुम्॥95॥
''यथाभूतमवेक्षन्ती, स्कन्धानाम् उदयव्ययम्।
विमुक्तचित्ता उदतिष्ठम्, कृतं बुद्धस्य शासनम्" इति॥96॥

7. ''अगारे वसन्ती अहम्, धर्मं श्रुत्वा हि भिक्षो:।
अद्राक्षं विरजं धर्मम्, निर्वाणं पदमच्युतम्॥97॥
''साहं पुत्रं दुहितरञ्च, धनधान्यञ्च छर्दितम्।
केशान् छेदयित्वा, प्राव्रजमनगारिकम्॥98॥
''शिक्षमाना अहमासम्, भावयन्ती मार्गमञ्जसम्।
प्रहासिषं रागदोषञ्च, तानेकस्थान् चास्रवान्॥99॥

(हिन्दी)- मेरा जीवन समाप्त होने वाला है, जरा और व्याधि मर्दन के लिये तैयार हैं, इस शरीर के नष्ट होने के पूर्व ही कुछ करना चाहिये, मेरे लिये प्रमाद का समय नहीं है॥95॥

उसी समय मैंने स्कन्धों की उत्पत्ति और विनाश का यथाभूत चिन्तन किया, और विमुक्त-चित्त होकर आसन छोड़ दिया, और बुद्ध-शासन को किया॥96॥

गृहवास के समय ही एक भिक्षु के धर्मोपदेश को सुनकर मैंने उस विमल, अच्युत पद, निर्वाण के दर्शन किए॥97॥

पुत्र, कन्या, धन-धान्यादि सब मैंने छोड़ दिया, केशों को कटवाकर बस मैंने घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली॥98॥

शिक्षार्थिनी होकर ऋजु मार्ग का अभ्यास मैं करने लगी, राग-द्वेष और सभी आश्रवों को मैंने इकट्ठे, एक साथ ही, या एक-एक करके छोड़ दिया॥99॥

''भिक्खुनी उपसम्पज्ज, पुब्बजातिमनुस्सरिं।
दिब्बचक्खु विसोधितं, विमलं साधुभावितं॥100॥
''सङ्खारे परतो दिस्वा, हेतुजाते पलोकिते।
पहासिं आसवे सब्बे, सीतिभूताम्हि निब्बुता''ति॥101॥ ...सकुला थेरी...।

8. सोणाथेरीगाथा-

''दस पुत्ते विजायित्वा, अस्मिं रूपसमुस्सये।
ततोहं दुब्बला जिण्णा, भिक्खुनिं उपसङ्कमिं॥102॥
''सा मे धम्ममदेसेसि, खन्धायतनधातुयो।
तस्सा धम्मं सुणित्वान, केसे छेत्वान पब्बजिं॥103॥
''तस्सा मे सिक्खमानाय, दिब्बचक्खु विसोधितं।
पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे॥104॥

(संस्कृतच्छाया) - ''भिक्षुणी उपसम्पद्य, पूर्वजातिमन्वस्मरम्।
दिव्यचक्षुः विशोधितम्, विमलं साधुभावितम्॥100॥
''संस्कारान् परितः दृष्ट्वा, हेतुजातान् प्रलोकितम्।
प्रहासिषममास्रवान् सर्वान्, शीतिभूतास्मि निर्वृता" इति॥101॥

8. ''दश पुत्रान् विजाय, अस्मिन् रूपसमुच्छ्रये।
ततोऽहं दुर्बला जीर्णा, भिक्षुणीमुपसमक्रमिषम्॥102॥
''सा मां धर्ममदिशत्, स्कन्धायतनधातवः।
तस्याः धर्मं श्रुत्वा, केशानुच्छिद्य प्राव्रजम्॥103॥
''तस्याः मे शिक्षमानायाः, दिव्यचक्षुः विशोधितम्।
पूर्वेनिवासं जानामि, यत्र मया उषितं पुरे॥104॥

(हिन्दी)- फिर भिक्षुणी-पद की उपसंपदा लेकर मुझे अपने पूर्वजन्मों का स्मरण हुआ, ध्यान के उत्कर्ष में मुझे विशुद्ध, विमल, दिव्य दृष्टि मिली॥100॥

सभी संस्कारों को अनित्य, दुःख और अनात्म के रूप में देखकर और उन्हें हेतुओं से उत्पन्न और क्षणिक जानकर, मैंने सब मलिनताओं को छोड़ दिया। मैं परम शांत हुई, मैंने निर्वाण की परम शांति का साक्षात्कार किया॥101॥

रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान के मिलन-क्षेत्र इस शरीर में, मैंने दस पुत्रों को पैदा किया। फिर दुर्बल और जीर्ण होकर मैं एक भिक्षुणी के पास गई॥102॥

उसने मुझे स्कंध, आयतन और धातुओं का उपदेश दिया। उसके धर्मोपदेश को सुनकर मैं केश कटवा कर प्रव्रजित हो गई॥103॥

उसकी विद्यार्थिनी होकर साधना करते हुए अपने चक्षुओं को शोधित कर मैंने दिव्य बना लिया। आज मैं अपने पूर्व जन्मों को, जहाँ-जहाँ मैंने जन्म धारण किए, स्मरण करती हूँ॥104॥

''अनिमित्तं च भावेमि, एकग्गा सुसमाहिता।
अनन्तराविमोक्खासिं, अनुपादाय निब्बुता॥105॥
''पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता, तिट्ठन्ति छिन्नमूलका।
धि तवत्थु जरे जम्मे, नत्थि दानि पुनब्भवो''ति॥106॥ ... सोणा थेरी...।

9. भद्दाकुण्डलकेसाथेरीगाथा-

''लूनकेसी पङ्कधरी, एकसाटी पुरे चरिं।
अवज्जे वज्जमतिनी, वज्जे चावज्जदस्सिनी॥107॥
''दिवाविहारा निक्खम्म, गिज्झकूटम्हि पब्बते।
अद्दसं विरजं बुद्धं, भिक्खुसङ्घपुरक्खतं॥108॥
''निहच्च जाणुं वन्दित्वा, सम्मुखा अञ्जलिं अकं।
'एहि भद्दे'ति मं अवच, सा मे आसूपसम्पदा॥109॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अनिमित्तञ्च भावयामि, एकाग्रा सुसमाहिता।
अनन्तराव्यमुञ्चम्, अनुपादाय निर्वृता॥105॥
''पञ्चस्कन्धा: परिज्ञाता:, तिष्ठन्ति छिन्नमूलका:।
धिक्! तवास्तु जरे! जन्मे!, नास्ति इदानीं पुनर्भव:"इति॥106॥

9. ''न्यूनकेशी पङ्कधारी, एकशाटी पूर्वेऽचरम्।
अवर्ज्ये वर्ज्यमतिनी, वर्ज्ये चावर्ज्यदर्शिनी॥107॥
''दिवाविहारात् निष्क्रम्य, गृध्रकूटे पर्वते।
अद्राक्षं विरजं बुद्धम्, भिक्षुसङ्घपुरस्थितम्॥108॥
''निधाय जानुं वन्दित्वा, सम्मुखा अञ्जलिमकम्।
'एहि भद्रे' इति मामवोचत्, सा मे आसीदुपसम्पदा॥109॥

(हिन्दी)- एकाग्र, समाधि-निष्ठ, होकर मैं अ-निमित्त (ध्यान) की भावना करती हूँ। संसार के सारे पदार्थों को अनित्य दु:ख और अनात्मा के रूप में देखती हूँ। किसी भी वस्तु का उपादान न कर मैंने निर्वाण में प्रवेश किया है, मुझे विमोक्ष-सुख प्राप्त हुआ है॥105॥

पंच स्कन्धों का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर मैंने उनकी जड़ें काट दी हैं। (उनकी परिपाटी अब संसार के रूप में कैसे प्रवाहित होगी?) किसी भी स्थितिशील (आधार वाली) वस्तु के लिये मेरे हृदय में इच्छा नहीं रही। मैं पुनर्जन्महीन हूँ! अब मेरा दूसरा जन्म होना नहीं है॥106॥

लुंचित किये गये बालों वाली, (वासना रूपी) कीचड़ में सनी हुई, केवल एक वस्त्र पहने हुए, पहले मैं घूमती रहती थी। जो ग्रहण करने योग्य, निर्दोष कर्म थे, उन्हें मैं दोषयुक्त समझती थी; जो न करने योग्य, सदोष कर्म थे, उन्हें मैं निर्दोष देखती थी॥107॥

एक दिन दोपहर के विश्राम के लिए बाहर निकल कर मैं गृध्रकूट पर्वत पर गई। वहाँ मैंने भिक्षु- संघ से पूजित, विमल, भगवान् बुद्ध को देखा॥108॥

घुटने टेक कर मैंने अंजलि बाँधी और भगवान् के सामने जाकर उनकी वंदना की।"आ भद्रा!" ऐसा उन भगवान् ने मुझसे कहा! यही मेरी (भिक्षुणी-पद की) उपसंपदा हुई॥109॥

''चिण्णा अङ्गा च मगधा, वज्जी कासी च कोसला।
अनणा पण्णासवस्सानि, रट्ठपिण्डं अभुञ्जहं॥110॥
''पुञ्ञं वत पसवि बहुं, सप्पञ्ञो वतायं उपासको।
यो भद्दाय चीवरं अदासि, विप्पमुत्ताय सब्बगन्थेही''ति॥111॥

... भद्दा कुण्डलकेसा थेरी...।

10. पटाचाराथेरीगाथा-

''नङ्गलेहि कसं खेत्तं, बीजानि पवपं छमा।
पुत्तदारानि पोसेन्ता, धनं विन्दन्ति माणवा॥112॥
''किमहं सीलसम्पन्ना, सत्थुसासनकारिका।
निब्बानं नाधिगच्छामि, अकुसीता अनुद्धता॥113॥
''पादे पक्खालयित्वान, उदकेसु करोमहं।
पादोदकञ्च दिस्वान, थलतो निन्नमागतं॥114॥

(संस्कृतच्छाया) - ''चीर्णा अङ्गा च मगधा, वज्जी काशी च कोसला।
अनृणा पञ्चाशत् वर्षाणि, राष्ट्रपिण्डमभुञ्ज्यहम्॥110॥
''पुण्यं वत प्रासूतं बहु, सप्रज्ञ: वतायमुपासक:।
यो भद्रायै चीवरमदाद्विप्रमुक्तायै सर्वग्रन्थै:"इति॥111॥
10. ''लाङ्गलै: कृष्टं क्षेत्रम्, बीजानि प्रवपं क्षमा।
पुत्रदारा: पोषयन्त:, धनं विदन्ति मानवा:॥112॥
''किमहं शीलसम्पन्ना, शास्तु: शासनकारिका।
निर्वाणं नाधिगच्छामि, अकुत्सिता अनुद्धता॥113॥
''पादौ प्रक्षाल्य, उदकेषु करोम्यहम्।
पादोदकञ्च दृष्ट्वा, स्थलतो निम्नमागतम्॥114॥

(हिन्दी)- तब से लेकर अंग, मगध, वज्जी, काशी और कोसल जनपदों में मैं लगातार पचास वर्ष तक घूमती रही हूँ, इस इतने समय तक ऋण मुक्त (अर्हत्) होकर ही मैंने राष्ट्र का अन्न खाया॥110॥

इस ज्ञानी उपासक ने बड़ा भारी पुण्य कमाया, जिसने भद्रा के लिए चीवर-दान किया, भद्रा, जो सब मलिन गंधों से मुक्त हो गई है॥111॥

हल से भूमि को जोत कर मनुष्य उसमें बीज बोते हैं, इस प्रकार वे धन उपार्जन करते और अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन करते हैं॥112॥

तो फिर क्यों न मैं साधिका निर्वाण की प्राप्त कर पाती? मैं जो कि शील से सम्पन्न हूँ, अपने शास्ता के शासन को करने वाली हूँ, अप्रमादिनी हूँ, अचंचल और विनीत हूँ॥113॥

एक दिन पैर धोने के बाद मैंने फैंके हुए पानी को ऊँची जगह से नीची जगह की ओर जाते देखा, मैंने अपने चित्त को, श्रेष्ठ जाति के घोड़े की सवारी में शिक्षित करने के समान, समाधि में लगाया॥114॥

''ततो चित्तं समाधेसिं, अस्सं भद्रंवजानियं।
ततो दीपं गहेत्वान, विहारं पाविसिं अहं।
सेय्यं ओलोकयित्वान, मञ्चकम्हि उपाविसिं॥115॥
''ततो सूचिं गहेत्वान, वट्टिं ओकस्सयामहं।
पदीपस्सेव निब्बानं, विमोक्खो अहु चेतसो''ति॥116॥ ... पटाचारा थेरी...।

11. तिंसमत्ताथेरीगाथा-

''मुसलानि गहेत्वान, धञ्ञं कोट्टेन्ति माणवा।
पुत्तदारानि पोसेन्ता, धनं विन्दन्ति माणवा॥117॥
''करोथ बुद्धसासनं, यं कत्वा नानुतप्पति।
खिप्पं पादानि धोवित्वा, एकमन्ते निसीदथ।
चेतोसमथमनुयुत्ता, करोथ बुद्धसासनं'॥118॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तत: चित्तं समादधाम्, अश्वं भद्रमिव योनिकम्।
तत: दीपं गृहीत्वा, विहारं प्राविशमहम्।
शय्यामालोक्य, मञ्चके उपाविशम्॥115॥
''तत: सूचिकां गृहीत्वा, वर्तिकामवाकर्षमहम्।
प्रदीपस्येव निर्वाणम्, विमोक्षोऽभूत् चेतस:"इति॥116॥

11. ''मुसलानि गृहीत्वा, धान्यं कुट्टन्ति मानवा:।
पुत्रदारा: पोषयन्त:, धनं विन्दन्ति मानवा:॥117॥
''कुरुत बुद्धशासनम्, यत् कृत्वा नानुतप्यते।
क्षिप्रं पादौ धावित्वा, एकस्मिन्नन्ते न्यसीदत।
चेतस: शमथ(समाधि)मनयुक्ता, कुरुत बुद्धशासनम्॥118॥

(हिन्दी)- फिर मैं दीपक लेकर बिहार के कोठे के अन्दर गई। वहाँ जाकर प्रकाश में चारपाई पर बैठ गई और दीपशिखा पर ध्यान करने लगी॥115॥

फिर सुई लेकर दीपक की बत्ती को जैसे ही नीची करने के लिए तेल में डुबोने लगी कि दीपक बुझ गया। दीपक का निर्वाण प्राप्त करना था कि उसके साथ ही मेरे चित्त का भी निर्वाण हो गया। तृष्णा की लौ सदा के लिए बुझ गई॥116॥

पटाचारा की शिष्या तीस भिक्षुणियाँ- "लोग मूसलों से अन्न कूट-कूट कर वित्तार्जन करते हैं और अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन पोषण करते हैं॥117॥

तो फिर तुम भी बुद्ध के शासन का अभ्यास क्यों नहीं करतीं, जिसे करके पछताना नहीं होता। अभी शीघ्र पैर धोकर, एकांत ध्यान में बैठ जाओ, चित्त की समाधि से युक्त होकर, बुद्ध-शासन को पूरा करो"॥118॥

''तस्सा ता वचनं सुत्वा, पटाचाराय सासनं।
पादे पक्खालयित्वान, एकमन्तं उपाविसुं।
चेतोसमथमनुयुत्ता, अकंसु बुद्धसासनं॥119॥
''रत्तिया पुरिमे यामे, पुब्बजातिमनुस्सरुं।
रत्तिया मज्झिमे यामे, दिब्बचक्खुं विसोधयुं।
रत्तिया पच्छिमे यामे, तमोखन्धं पदालयुं॥120॥
''उट्ठाय पादे वन्दिंसु, 'कता ते अनुसासनी।
इन्दंव देवा तिदसा, सङ्गामे अपराजितं।
पुरक्खत्वा विहस्साम, तेविज्जाम्ह अनासवा''ति॥121॥
इत्थं सुदं तिंसमत्ता थेरी भिक्खुनियो पटाचाराय सन्तिके अञ्ञं ब्याकरिंसूति।

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्याः ता वचनं श्रुत्वा, पटाचारायाः शासनम्।
पादौ प्रक्षाल्य, एकान्ते उपाविशाम।
चेतसः शमथमनयुक्ताः, अकार्षुः बुद्धशासनम्॥119॥
''रात्रेः प्रथमे यामे, पूर्वजातिमन्वस्मार्ष्म।
रात्रेः मध्यमे यामे, दिव्यचक्षुं व्यशुधाम।
रात्रेः अन्तिमे यामे, तमोस्कन्धं प्रादीर्ण॥120॥
''उत्थाय पादौ अवन्दिष्महि, कृतं ते अनुशासनम्।
इन्द्रमिव देवाः त्रिदशाः, संग्रामे अपराजिताः।
पुरस्कृत्य विहरिष्यामः, त्रिविद्यास्मानास्रवा" इति॥121॥
इत्थं स्विद् त्रिंशमात्रा थेरी भिक्षुण्यः पटाचारायाः सन्तिके अन्यं व्याकार्षुः इति।।

(हिन्दी)- पटाचारा के शासन के इन वचनों को उससे सुनकर, हम सब पैर धोकर एकांत में ध्यान के लिए बैठ गईं; और चित्त की समाधि से युक्त होकर हमने बुद्ध-शासन को पूरा किया॥119॥

रात्रि के प्रथम याम में हमने अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण किया, रात्रि के मध्यम याम में हमने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया, रात्रि के अन्तिम याम में अंधकार-पुंज को विनष्ट कर दिया॥120॥

समाधि से उठ कर हम सब ने पटाचारा के पैर छुए और वन्दना करते हुए कहा, "देवी! आपका अनुशासन पूरा किया। संग्राम में विजय-प्राप्त इंद्र की जिस प्रकार तीसों देवता पूजा करते हैं, उसी प्रकार हम तीसों आपकी पूजा करेंगी और आपके नेतृत्व में रहेंगी। देवी! आपकी शिक्षा से हम सब आज तीनों विद्याओं की ज्ञाता हैं सब चित्त-मलों से रहित हैं॥121॥ इस प्रकार त्रिंशमात्रा भिक्षुणी ने पटाचारा भिक्षुणी के पास इस प्रकार कहा।

12. चन्दाथेरीगाथा-

''दुग्गताहं पुरे आसिं, विधवा च अपुत्तिका।
विना मित्तेहि ञातीहि, भत्तचोळस्स नाधिगं॥122॥
''पत्तं दण्डं च गण्हित्वा, भिक्खमाना कुला कुलं।
सीतुण्हेन च डय्हन्ती, सत्त वस्सानि चारिहं॥123॥
''भिक्खुनिं पुन दिस्वान, अन्नपानस्स लाभिनिं।
उपसङ्कम्म अवोचं 'पब्बज्जं अनगारियं'॥124॥
''सा च मं अनुकम्पाय, पब्बाजेसि पटाचारा।
ततो मं ओवदित्वान, परमत्थे नियोजयि॥125॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, अकासिं अनुसासनिं।
अमोघो अय्यायोवादो, तेविज्जाम्हि अनासवा''ति॥126॥ ... चन्दा थेरी...।

पञ्चकनिपातो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया) -12. ''दुर्गताहं पुरे आसम्, विधवा च अपुत्रिका।
विना मित्रै: ज्ञातिभि:, भक्तं चोलञ्च नाध्यगमम्॥122॥
''पात्रं दण्डञ्च गृहीत्वा, भिक्षमाना कुलात् कुलम्।
शीतोष्णेन च दह्यन्ती, सप्तवर्षाणि अचारीदहम्॥123॥
''भिक्षुणीं पुन: दृष्टवा, अन्नपानस्य लाभिनीम्।
उपसङ्क्रम्यावोचम्, प्रव्रज्याम् अनगारिकम्॥124॥
''सा च माम् अनुकम्प्य, प्राव्राजीत् पटाचारा।
तत: मामववन्द्य, परमार्थे न्ययुजत्॥125॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, अकार्षमनुशासनम्।
अमोघ आर्याया अववाद:, त्रैविद्यास्मि अनास्रवा"इति॥126॥

(हिन्दी)- विधवा और निस्संतान, मैं पहले बड़ी मुसीबत में पड़ी थी। मित्र मेरे कोई नहीं थे, जाति वाले मेरे कोई नहीं थे। भोजन और वस्त्र भी मैं नहीं पाती थी॥122॥

लकड़ी और भिक्षा-पात्र लेकर मैं घर से घर भिक्षा माँगती फिरती थी; गर्मी और सर्दी से व्याकुल हुई, मैं सात वर्ष तक इसी प्रकार घूमती रही॥123॥

एक दिन एक भिक्षुणी के मुझे दर्शन हुए। उसने मुझे भोजन और जल देकर अनुगृहीत किया। फिर मैंने उसके पास जाकर प्रार्थना की, "मैं प्रव्रज्या लूंगी॥124॥

उस दयामयी पटाचारा ने अनुग्रहपूर्वक मुझे प्रव्रज्या दी। फिर धर्मोपदेश देकर उसने मुझे परमार्थ में लगाया॥125॥

उसके उपदेश को सुन कर, मैंने उसके अनुशासन को पूरा किया! अहो! अमोघ था देवी का उपदेश! मैं आज तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूँ। सब चित्त-मलों से विमुक्त हूँ॥126॥

6. छक्कनिपातो

1. पञ्चसतमत्ताथेरीगाथा-

''यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
तं कुतो चागतं सत्तं, 'मम पुत्तो'ति रोदसि॥127॥
''मग्गं च खोस्स जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
न नं समनुसोचेसि, एवंधम्मा हि पाणिनो॥128॥
''अयाचितो ततागच्छि, नानुञ्ञातो इतो गतो।
कुतोचि नून आगन्त्वा, वसित्वा कतिपाहकं।
इतोपि अञ्ञेन गतो, ततोपञ्ञेन गच्छति॥129॥
''पेतो मनुस्सरूपेन, संसरन्तो गमिस्सति।
यथागतो तथा गतो, का तत्थ परिदेवना''॥130॥
''अब्बही वत मे सल्लं, दुद्दसं हृदयस्सितं।
या मे सोकपरेताय, पुत्तसोकं ब्यपानुदि॥131॥

(संस्कृतच्छाया) -1. ''यस्य मार्गं न जानासि, आगतस्य गतस्य वा।
तत् कुतः चागतं सत्त्वम्, 'मम पुत्रः' इति रोदिषि॥127॥
''मार्गञ्च खल्वस्य जानासि, आगतस्य गतस्य वा।
न तं समनुशोचेः, एवं धर्मो हि प्राणिनः॥128॥
''अयाचितः तदागच्छत्, नानुज्ञात इतः गतः।
कुतश्चित् नूनम् आगत्य, उषित्वा कतिपयदिवसम्।
इतोऽपि अन्यत्र गतः, ततोऽपि अन्यत्र गच्छति॥129॥
''प्रेतः मनुष्यरूपेण, संसरन्तो गमिष्यति।
यथागतः तथा गतः, का तत्र परिदेवना॥130॥
''न्यवहत् वत मे शल्यम्, दुर्दशं हृदयाश्रितम्।
यो मे शोकपरेतायाः, पुत्रशोकं व्यपानुदत्॥131॥

(हिन्दी)- वह किस पथ से आया, किस पथ से चला गया! इतना तक जिसके विषय में तू नहीं जानती; तब उसके लिए जो तेरे पास कुछ समय के लिए था, तू 'मेरा पुत्र!' कह-कहकर क्यों रोदन करती है?॥127॥

वह किस पथ से आया, किस पथ से चला गया! इतना यदि तुझे ज्ञात भी हो; तो भी तू रोदन क्यों करे? यह तो प्राणियों का स्वभाव ही है॥128॥

बिना पूछे वह आया था, बिना आज्ञा लिए चला गया! कतिपय दिनों के लिए वह कहीं से आया था, कतिपय दिन ठहर कर वह फिर कहीं चल दिया॥129॥

एक पथ से आगमन, दूसरे पथ से गमन, यहाँ एक मार्ग से आया, यहाँ से दूसरे मार्ग से चला गया! मृत्यु होने पर प्राणी यही रूपान्तर किया करता है; जिस रूप में उसका आगमन, उसी रूप में उसका गमन, फिर शोक किसके लिए?॥130॥

पुत्र शोक-रूपी जो सूक्ष्म शल्य मुझ दुखिया के हृदय में गहरा बिंधा हुआ था, जो मुझे मारे डाल रहा था, वह आज निकल गया॥131॥

''साज्ज अब्बूळ्हसल्लाहं, निच्छाता परिनिब्बुता।
बुद्धं धम्मं च सङ्घं च, उपेमि सरणं मुनिं''॥132॥
इत्थं सुदं पञ्चसतमत्ता थेरी भिक्खुनियो...पे॰...।

2. वासेट्ठीथेरीगाथा-

''पुत्तसोकेनहं अट्टा, खित्तचित्ता विसञ्ञिनी।
नग्गा पकिण्णकेसी च, तेन तेन विचारिहं॥133॥
''वीथि सङ्कारकूटेसु, सुसाने रथियासु च।
अचरिं तीणि वस्सानि, खुप्पिपासासमप्पिता॥134॥
''अथद्दसासिं सुगतं, नगरं मिथिलं पति।
अदन्तानं दमेतारं, सम्बुद्धमकुतोभयं॥135॥
''सचित्तं पटिलद्धान, वन्दित्वान उपाविसिं।
सो मे धम्ममदेसेसि, अनुकम्पाय गोतमो॥136॥

(संस्कृतच्छाया) - ''साद्य अपगतशल्याहम्, निःप्साता परिनिर्वृता।
बुद्धं धर्मञ्च सङ्घञ्च, उपैमि शरणं मुनिम्॥132॥
इत्थं स्विद् पञ्चशतमात्रा थेरी भिक्षुण्यः .....पूर्ववत् .....।

2. ''पुत्रशोकेनाहम् आर्तिता, खिन्नचित्ता विसंज्ञिनी।
नग्ना प्रकीर्णकेशी च, यत्र तत्र व्यचरमहम्॥133॥
''वीथिसङ्कारकूटेसु, श्मशाने रथ्यासु च।
अचरम् त्रीणिवर्षाणि, क्षुत्पिपासासमर्पिता॥134॥
''अथाद्राक्षं सुगतम्, नगरी मिथिलां प्रति।
अदान्तानां दमयितारम्, सम्बुद्धमकुतोभयम्॥135॥
''स्वचितं प्रतिलभ्य, वन्दित्वा उपावात्सम्।
स मां धर्ममदिशत्, अनुकम्प्य गौतमः॥136॥

(हिन्दी)-आज मेरा हृदय शांत है, मैं परिनिर्वृत्त हुई, व्याकुलता समाप्त हुई, आज मैं मुनि बुद्ध, उनके धर्म और संघ की शरण लेती हूँ॥132॥

पुत्र-शोक से दुःखी, विक्षिप्त चित्त वाली, संज्ञा-विहीन, नंगी, बालों को बिखेरे हुए, मैं इधर-उधर घूमती थी॥133॥

कभी जंगली रास्तों में, कभी कूड़े-करकट के ढेरों में, कभी स्तूपों में, कभी मरघटों में, कभी रथों के मार्गों में, भूख और प्यास से सताई हुई मैं तीन वर्ष तक घूमती रही॥134॥

फिर मैंने मिथिला नगर में गये हुए उन सुन्दर गति वाले भगवान् बुद्ध के दर्शन किए। भगवान् सुगत, जो कि अ-दांतों को दमन करने वाले, पूर्ण निर्भय पुरुष, और सम्यक् संबुद्ध हैं॥135॥

मेरा मन मुझे फिर मिल गया, मैंने चित्त की स्वस्थता अनुभव की, मैंने उनकी वन्दना की और एक ओर नीचे बैठ गई। उन भगवान् गौतम ने अनुकंपापूर्वक मुझे उपदेश दिया॥136॥

''तस्स धम्मं सुणित्वान, पब्बजिं अनगारियं।
युञ्जन्ती सत्थुवचने, सच्छाकासिं पदं सिवं॥137॥
''सब्बे सोका समुच्छिन्ना, पहीना एतदन्तिका।
परिञ्ञाता हि मे वत्थू, यतो सोकान सम्भवो''ति॥138॥...वासेट्ठी थेरी...।

3. खेमाथेरीगाथा-

''दहरा त्वं रूपवती, अहम्पि दहरो युवा।
पञ्चङ्गिकेन तुरियेन, एहि खेमे रमामसे॥139॥
''इमिना पूतिकायेन, आतुरेन पभङ्गुना।
अट्टियामि हरायामि, कामतण्हा समूहता॥140॥
''सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।
यं 'त्वं कामरतिं' ब्रूसि, 'अरती' दानि सा मम॥141॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्य धर्मं श्रुत्वा, प्राव्रजमनगारिकम्।
युञ्जती शास्तावचनानि, साक्ष्यमकार्षम् पदं शिवम्॥137॥
''सर्वे शोका: समुच्छिन्ना:, प्रहीणा एतदन्तिका:।
परिज्ञातो हि मया वस्तु, यत: शोको न सम्भव:"इति॥138॥

3. ''दहरा त्वं रूपवती, अहमपि दहर: युवा।
पञ्चाङ्गिकेन तुर्येण, एहि क्षेमे रमावहे॥139॥
''अनेन पूतिकायेन, आतुरेण प्रभङ्गुणा।
आर्तिकाहं जिह्रेमि, कामतृष्णा समवहता॥140॥
''शक्तिशूलोपमा: कामा:, स्कन्धानाम् अधिकुट्टना।
यां त्वं कामरतिं ब्रूषे, 'अरति' इदानीं सा मम॥141॥

(हिन्दी)- उनके उपदेश को सुनकर मैं घर छोड़ बे-घर हो प्रव्रजित हो गई। शास्ता के वचन का पालन कर मैंने मंगलमय (शिव) पद (निर्वाण) का साक्षात्कार किया, मैं सर्वोत्तम मंगल की अधिकारिणी हो गई॥137॥

अब मेरे सब शोक दूर हो गए! वह वस्तु ही मुझे पूर्णत: ज्ञात हो गई, जिसके शोक की उत्पत्ति होती है॥138॥

क्षेमा! तू रूपवती युवती है, मैं भी रूपवान् युवक हूँ। आ क्षेमा! पाँच अंगों से युक्त तूर्य ध्वनि (वाद्य-संगीत) के साथ हम यहाँ विषय-सुख का आनन्द लें॥139॥

इस गन्दे, घृणित, व्याधि के घर, क्षणभंगुर शरीर से विषय-सुख अनुभव करने में मुझे घृणा आती है, मैं लज्जा अनुभव करती हूँ; मैंने काम-तृष्णा की जड़ को काट दिया॥140॥

देख, यह काम-तृष्णा भाले के समान विद्ध करने वाली है; ये स्कंध-समूह छुरी के समान काटने वाले हैं; जिसे तू भोग का आनन्द कहता है, वही मेरे लिए घृणा का उत्पादक है॥141॥

''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक॥142॥
''नक्खत्तानि नमस्सन्ता, अग्गिं परिचरं वने।
यथाभुच्चमजानन्ता, बाला सुद्धिममञ्ञथ॥143॥
''अहं च खो नमस्सन्ती, सम्बुद्धं पुरिसुत्तमं।
पमुत्ता सब्बदुक्खेहि, सत्थुसासनकारिका''ति॥144॥... खेमा थेरी...।

4. सुजाताथेरीगाथा-

''अलङ्कता सुवसना, मालिनी चन्दनोक्खिता।
सब्बाभरणसञ्छन्ना, दासीगणपुरक्खता॥145॥
''अन्नं पानं च आदाय, खज्जं भोज्जं अनप्पकं।
गेहतो निक्खमित्वान, उय्यानमभिहारयिं॥146॥

(संस्कृतच्छाया) - ''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानीहि पापिन्, निहतः त्वमसि अन्तकः॥142॥
''नक्षत्राणि नमन्ति, अग्निं परिचरन्ति वने।
यथाभूतमजानन्ताः, बालाः शुद्धिममन्यन्॥143॥
''अहञ्च खलु नमामि, सम्बुद्धं पुरुषोत्तमम्।
प्रमुक्ता सर्वदुःखेभ्यः, शास्तुः शासनकारिका" इति॥144॥

4. ''अलङ्कृता सुवसना, मालिनी चन्दनोक्षिता।
सर्वाभरणसंछन्ना, दासीगणपुरस्कृता॥145॥
''अन्नं पानञ्चादाय, खाद्यं भोज्यमनल्पकम्।
गेहतो निष्क्रम्य, उद्यानमभ्यहार्षम्॥146॥

(हिन्दी)- सब प्रकार की भोग-तृष्णा का मैंने विनाश कर दिया है, अंधकार-पुंज को हटा दिया है! पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तू पराजित कर दिया गया! तेरा ही अंत कर दिया गया॥142॥

सत्य को यथार्थ रूप से न जाने हुए ही, मूढ जन नक्षत्रों को नमस्कार करते हैं, वनों में अग्नि- पूजा करते हैं, और इस प्रकार शुद्धि-प्राप्ति की आशा करते हैं॥143॥

मैंने सर्वोत्तम पुरुष भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध की पूजा की है, शास्ता के शासन को पूरा कर मैं अब सब दुःखों से विमुक्त हो गई हूँ॥144॥

सुन्दर वस्त्र, सुन्दर गहने और सुगन्धित मालाएं पहने हुए, चन्दन से शरीर को लेप किए हुए, आभरणों से ढँकी हुई, दासियों के सहित,॥145॥

बहुत मात्रा में स्वादिष्ट भोजन और पेय पदार्थों को लिए हुए, मैं एक दिन घर से निकल कर प्रमोद-वन में विहार करने गई॥146॥

''तत्थ रमित्वा कीळित्वा, आगच्छन्ती सकं घरं।
विहारं दट्ठुं पाविसिं, साकेते अञ्जनं वनं॥147॥
''दिस्वान लोकपज्जोतं, वन्दित्वान उपाविसिं।
सो मे धम्ममदेसेसि, अनुकम्पाय चक्खुमा॥148॥
''सुत्वा च खो महेसिस्स, सच्चं सम्पटिविज्झहं।
तत्थेव विरजं धम्मं, फुसयिं अमतं पदं॥149॥
''ततो विञ्ञातसद्धम्मा, पब्बजिं अनगारियं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, अमोघं बुद्धसासनं''ति॥150॥ ... सुजाता थेरी...।

5. अनोपमाथेरीगाथा-

''उच्चे कुले अहं जाता, बहुवित्ते महद्धने।
वण्णरूपेन सम्पन्ना, धीता मज्झस्स अत्तजा॥151॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तत्र रत्वा क्रीडित्वा, आगच्छती स्वकं गृहम्।
विहारं द्रष्टुं प्राविशम्, साकेते अञ्जनं वनम्॥147॥
''दृष्ट्वा लोकप्रद्योतम्, वन्दित्वा उपावात्सम्।
स मां धर्ममदिशत्, अनुकम्पया चक्षुष्मान्॥148॥
''श्रुत्वा च खलु महर्षेः, सत्यं सम्प्रत्यविध्यमहम्।
तत्रैव विरजं धर्मम्, अस्पृक्षम् अमृतं पदम्॥149॥
''ततो विज्ञातसद्धर्मा, प्राव्रजमनागारिकम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, अमोघं बुद्धशासनम्" इति॥150॥

5. ''उच्चे कुले अहं जज्ञे, बहुवित्ते महद्धने।
वर्णरूपेण सम्पन्ना, दुहिता मध्यस्य आत्मजा॥151॥

(हिन्दी)-वहाँ क्रीड़ा और रमण कर मैं अपने घर की ओर आ रही थी, रास्ते में साकेत के निकट स्थित अंजन-वन के दर्शन करने के लिए मैं उसके अन्दर चली गई॥147॥

वहाँ मैंने लोक के प्रकाश-स्वरूप भगवान् बुद्ध के दर्शन किए; वन्दना कर एक ओर नीचे बैठ गई। अनुकंपा कर उन चक्षुष्मान् ने मुझे धर्मोपदेश किया॥148॥

महर्षि के उपदेश को सुनकर मैंने सत्य को अपनी प्रज्ञा से बेधा, उसका अन्तर्ज्ञान प्राप्त किया। वहीं बैठे- बैठे मैंने अमृत-पद (निर्वाण) को स्पर्श किया, विमल धर्म को प्राप्त किया॥149॥

सद्धर्म का ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, बाद में मैंने घर से बेघर हो प्रव्रज्या ले ली। मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, अहो! अमोघ है बुद्ध का शासन॥150॥

ऊँचे, महाधनी, महा-ऐश्वर्यशाली कुल में मैं पैदा हुई; मध्य की कन्या, रंग और रूप से सम्पन्न॥151॥

''पत्थिता राजपुत्तेहि, सेट्ठिपुत्तेहि गिज्झिता।
पितु मे पेसयी दूतं, देथ मय्हं अनोपमं॥152॥
''यत्तकं तुलिता एसा, तुय्हं धीता अनोपमा।
ततो अट्ठगुणं दस्सं, हिरञ्ञं रतनानि च॥153॥
''साहं दिस्वान सम्बुद्धं, लोकजेट्ठं अनुत्तरं।
तस्स पादानि वन्दित्वा, एकमन्तं उपाविसिं॥154॥
''सो मे धम्ममदेसेसि, अनुकम्पाय गोतमो।
निसिन्ना आसने तस्मिं, फुसयिं ततियं फलं॥155॥
''ततो केसानि छेत्वान, पब्बजिं अनगारियं।
अज्ज मे सत्तमी रत्ति, यतो तण्हा विसोसिता''ति॥156॥...अनोपमा थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) - ''प्रार्थिता राजपुत्रैः, श्रेष्ठिपुत्रैः गृधिता।
पितुः मे(समीपं) प्रेषितं दूतम्, देहि मह्यमनुपमाम्॥152॥
''यावती तुलिता एषा, तव दुहिता अनुपमा।
तत अष्टगुणं दास्यामि, हिरण्यं रत्नानि च॥153॥
''साऽहं दृष्ट्वा सम्बुद्धम्, लोकज्येष्ठमनुत्तरम्।
तस्य पादौ वन्दित्वा, एकस्मिनन्ते उपावसम्॥154॥
''स मां धर्मं दिदेश, अनुकम्पया गौतमः।
निषण्णा आसने तस्मिन्, अस्पृक्षं तृतीयं फलम्॥155॥
''ततः केशान् छित्वा, प्राव्रजमनगारिकम्।
अद्य मे सप्तमी रात्रिः, यतः तृष्णा विशोषिता"इति॥156॥

(हिन्दी)-बड़े-बड़े राजपुत्रों और सेठों के पुत्रों ने मेरे साथ विवाह के लिए प्रार्थनाएँ कीं, उत्कट लालसाएँ प्रकट कीं, मेरे पिता के पास दूतों को कह कर भिजवाया— "अनुपमा को हमें दो। हम तुम्हारी बेटी को तौल कर उसके आठ गुने रत्न और अशर्फियाँ देंगे"॥152-153॥

किन्तु मैं तो संसार के सबसे बड़े पुरुष, अद्वितीय, भगवान् सम्यक् संबुद्ध के दर्शन कर चुकी थी! उनके चरणों की वन्दना कर एक ओर बैठ गई॥154॥

उन भगवान् गौतम ने अनुकंपापूर्वक मुझे धर्मोपदेश किया; वहाँ उसी आसन पर बैठे हुए मैंने ब्रह्मचर्य-मार्ग के तृतीय फल (अनागामि-फल) को स्पर्श किया॥155॥

फिर केशों को कटवाकर घर से बेघर हो मैंने प्रव्रज्या ली; आज सातवीं रात है, जबकि मेरी वासना पूरी तरह विशोषित हो गई॥156॥

6. महापजापतिगोतमीथेरीगाथा-

''बुद्ध वीर नमो त्यत्थु, सब्बसत्तानमुत्तम।
यो मं दुक्खा पमोचेसि, अञ्ञञ्च बहुकं जनं॥।157।।
''सब्बदुक्खं परिञ्ञातं, हेतुतण्हा विसोसिता।
भावितो अट्ठङ्गिको मग्गो, निरोधो फुसितो मया॥158॥
''माता पुत्तो पिता भाता, अय्यका च पुरे अहुं।
यथाभुच्चमजानन्ती, संसरिंहं अनिब्बिसं॥159॥
''दिट्ठो हि मे सो भगवा, अन्तिमोयं समुस्सयो।
विक्खीणो जातिसंसारो, नत्थि दानि पुनब्भवो॥160॥
''आरद्धवीरिये पहितत्ते, निच्चं दळ्हपरक्कमे।
समग्गे सावके पस्से, एसा बुद्धान वन्दना॥161॥

(संस्कृतच्छाया) -6. ''बुद्ध! वीर! नमस्तेऽस्तु, सर्वसत्त्वानामुत्तम।
यो मां दु:खात् प्रामुञ्चदन्यञ्च बहुकं जनम्॥157॥
''सर्वदु:खं परिज्ञातम्, हेतु तृष्णा विशोषिता।
भावित अष्टांगिको मार्ग:, निरोध: स्पृष्टो मया॥158॥
''माता पुत्र: पिता भ्राता, आर्यिका च पुरेऽभवन्।
यथाभूतमजानती, असार्षिमहमनिर्विशम्॥159॥
''दृष्टो हि मे स भगवान्, अन्तिमोऽयं समुच्छ्रय:।
विक्षीणो जातिसंसार:, नास्तीदानीं पुनर्भव:॥160॥
''आरब्धवीर्यान् प्रहितात्त्वान्, नित्यं दृढपराक्रमान्।
समग्रान् श्रावकान् पश्य, एषा बुद्धानां वन्दना॥161॥

(हिन्दी)- हे बुद्ध! हे वीर! हे सर्वोत्तम प्राणी! तुम्हें नमस्कार! जिसने मुझे और अन्य बहुत से प्राणियों को दु:ख से उबारा॥157॥

मेरे सब दु:ख दूर हो गये, मुझे पता चल गया कि दु:ख कैसे उत्पन्न होते हैं, अब उनके मूल हेतु तृष्णा को मैंने अपने अन्दर सुखा डाला है; आज मैंने दु:ख-निरोध-गामी आर्य-अष्टांगिक मार्ग को स्पर्श किया है, उसमें मैंने विचरण किया है॥158॥

माता, पुत्र, पिता, भाई, मातामही, मैं पूर्वजन्मों में अनेक बार बनती रही; वस्तुओं को उनके यथार्थ रूप में न जानती हुई मैं संसार में घूमती रही, और मुझे वह वस्तु कभी नहीं मिली, जिसकी मुझे चाह थी॥159॥

(अब इस जन्म में) मैंने भगवान् के दर्शन किए, मुझे अनुभव हुआ यह मेरा अन्तिम शरीर है! मेरा आवागमन क्षीण हो गया, अब मुझे फिर जन्म लेना नहीं है॥160॥

पुरुषार्थ में लीन, आत्म-संयमी, नित्य दृढ पराक्रम करने वाले, इन समग्रीभूत (एकताबद्ध) श्रावकों का अवलोकन करो— यह बुद्धों की वन्दना है॥161॥

''बहूनं वत अत्थाय, माया जनयि गोतमं।
ब्याधिमरणतुन्नानं, दुक्खक्खन्धं ब्यपानुदी''ति॥162॥

...महापजापतिगोतमी थेरी...।

7. गुत्ताथेरीगाथा-

''गुत्ते यदत्थं पब्बज्जा, हित्वा पुत्तं वसुं पियं।
तमेव अनुब्रूहेहि, मा चित्तस्स वसं गमि॥163॥
''चित्तेन वञ्चिता सत्ता, मारस्स विसये रता।
अनेकजातिसंसारं, सन्धावन्ति अविद्दसू॥164॥
''कामच्छन्दं च ब्यापादं, सक्कायदिट्ठिमेव च।
सीलब्बतपरामासं, विचिकिच्छं च पञ्चमं॥165॥
''संयोजनानि एतानि, पजहित्वान भिक्खुनी।
ओरम्भागमनीयानि, नयिदं पुनरेहिसि॥166॥

(संस्कृतच्छाया) -''बहूनां वतार्थाय, माया जज्ञे गौतमम्।
व्याधिमरणतुन्नानाम्, दु:खस्कन्धं व्यपानुदत्"इति॥162॥

7. ''गुप्ते! यदर्थं प्रव्रजिता, हित्वा पुत्रं वसुं प्रियम्।
तमेव अनुब्रूहि, मा चित्तस्य वशं गच्छ॥163॥
''चित्तेन वञ्चिता: सत्त्वा:, मारस्य विषये रता:।
अनेकजातिसंसारम्, सन्धावन्ति अविद्वांस:॥164॥
''कामच्छन्दञ्च व्यापादम्, सत्यकायदृष्टिमेव च।
शीलव्रतपरामर्शम्, विचिकित्साञ्च पञ्चमम्॥165॥
''संयोजनानि एतानि, प्रहाय भिक्षुणी।
अवरभागमनीयानि, नात्र पुनरेष्यसि॥166॥

(हिन्दी)- अहो! बहुतों के कल्याण के लिए ही (महा) माया ने गौतम को जना, जिसने व्याधि और मरण से पीड़ित प्राणियों के दु:ख- पुंज को काट दिया॥162॥

गुप्ता! पुत्र और (धन-) संग्रह आदि पार्थिव ऐश्वर्यों को छोड़ कर जिस प्रयोजन के लिए तूने प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी की वृद्धि करने में तू लग, विद्रोही चित्त के वश में न हो॥163॥

चित्त के द्वारा वंचित हुए मनुष्य मार के फंदे में पड़ते हैं, अज्ञानी लोग अनेक बार आवागमन के चक्र में घूमते हैं॥164॥

किन्तु भिक्षुणी! तेरा तो लक्ष्य ही दूसरा है! तू भोग-तृष्णा, द्रोह, सत्काय-दृष्टि (व्यक्तित्व सम्बन्धी मिथ्यादृष्टि), कर्मकाण्ड के प्रति आसक्ति, और संशय॥165॥

इन पाँच संयोजनों (बंधनों) को, जो तुझे जीवन के इस ओर के किनारे की ओर खींच रहे हैं, छोड़, इन्हें पार कर। फिर तुझे इस संसार में आना नहीं होगा॥166॥

''रागं मानं अविज्जं च, उद्धच्चं च विवज्जिय।
संयोजनानि छेत्वान, दुक्खस्सन्तं करिस्ससि॥167॥
''खेपेत्वा जातिसंसारं, परिञ्ञाय पुनब्भवं।
दिट्ठेव धम्मे निच्छाता, उपसन्ता चरिस्सती''ति॥168॥ ... गुत्ता थेरी...।

8. विजयाथेरीगाथा-

''चतुक्खत्तुं पञ्चक्खत्तुं, विहारा उपनिक्खमिं।
अलद्धा चेतसो सन्तिं, चित्ते अवसवत्तिनी॥169॥
''भिक्खुनिं उपसङ्कम्म, सक्कच्चं परिपुच्छहं।
सा मे धम्ममदेसेसि, धातुआयतनानि च॥170॥
''चत्तारि अरियसच्चानि, इन्द्रियानि बलानि च।
बोज्झङ्गट्ठङ्गिकं मग्गं, उत्तमत्थस्स पत्तिया॥171॥

(संस्कृतच्छाया) - ''रागं मानमविद्याञ्च, औद्धत्यञ्च विवर्जितम्।
संयोजनानि छित्वा, दु:खस्यान्तं करिष्यसि॥167॥
''क्षिप्त्वा जातिसंसारम्, परिज्ञाय पुनर्भवम्।
दृष्टे एव धर्मे निष्णाता, उपशान्ता चरिष्यति"इति॥168॥

8. ''चतुष्कृत्वा पञ्च कृत्वा, विहारात् उपनिष्क्रमिषम्।
अलब्धा चेतस: शान्तिम्, चित्तमवसवर्तिनी॥169॥
''भिक्षुणीमुपसङ्क्रम्य, सत्कृत्यं पर्यपृच्छम्।
सा मां धर्मं दिदेश, धातु: आयतनानि च॥170॥
''चत्वारि आर्यसत्यानि, इन्द्रियाणि बलानि च।
बोध्यंगाष्टांगिकम्, मार्गमुत्तमार्थस्य प्राप्तये॥171॥

(हिन्दी)- तू राग, द्वेष, मान, अविद्या और मानसिक चंचलता को छोड़ कर सारे बन्धनों को तोड़ डाल, तभी तू अपने दु:खों का अन्त करेगी॥167॥

जन्म और मरण की श्रृंखला को दूर फेंक; तू जानती ही है कि पुनर्भव क्या है, इस दृश्यमान वस्तु- जगत् में तू वासना से मुक्त हो जा, फिर तू शान्त होकर इस जीवन में विचरेगी॥168॥

चंचल चित्त को वश में न कर सकने के कारण, अप्राप्त चित्त-शान्ति को प्राप्त करने के लिए, मैं चार-पाँच बार विहार से निकल कर बाहर गई और घूमने लगी॥169॥

फिर उस भिक्षुणी (क्षेमा) के पास जाकर मैंने आदरपूर्वक उससे अपनी कठिनाई के विषय में प्रश्न पूछा, उसने मुझे परमार्थ की प्राप्ति के लिए धातु, आयतन॥170॥

चार आर्य सत्य, इन्द्रिय, बल, सात बोध्यग और आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश किया॥171॥

''तस्साहं वचनं सुत्वा, करोन्ती अनुसासनिं।
रत्तिया पुरिमे यामे, पुब्बजातिमनुस्सरिं॥172॥
''रत्तिया मज्झिमे यामे, दिब्बचक्खुं विसोधयिं।
रत्तिया पच्छिमे यामे, तमोखन्धं पदालयिं॥173॥
''पीतिसुखेन च कायं, फरित्वा विहरिं तदा।
सत्तमिया पादे पसारेसिं, तमोखन्धं पदालिया''ति॥174॥ ... विजया थेरी...।

छक्कनिपातो निट्ठितो।

7. सत्तकनिपातो

1. उत्तराथेरीगाथा-

''मुसलानि गहेत्वान, धञ्ञं कोट्टेन्ति माणवा।
पुत्तदारानि पोसेन्ता, धनं विन्दन्ति माणवा॥175॥
''घटेथ बुद्धसासने, यं कत्वा नानुतप्पति।
खिप्पं पादानि धोवित्वा, एकमन्तं निसीदथ॥176॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, कुर्वत्यनुशासनम्।
रात्रे: प्रथमे यामे, पूर्वजातिमन्वस्मरम्॥172॥
''रात्रे: मध्यमे यामे, दिव्यचक्षु: विशोधितम्।
रात्रे: अन्तिमे यामे, तमस्स्कन्धं प्रदारितम्॥173॥
''प्रीतिसुखेन च कायम्, स्फुरित्वा व्यहरम् तदा।
सप्तम्यां पादौ प्रासारयत्, तमस्स्कन्धं प्रदारिता" इति॥174॥

1. ''मुसलानि गृहीत्वा, धान्यं कुट्टन्ति मानवा:।
पुत्रदारा: पोषयन्त:, धनं विन्दन्ति मानवा:॥175॥
''घट्येत बुद्धशासनान्, यत् कृत्वा नानुतप्यते।
क्षिप्रं पादौ धावित्वा, एकान्ते न्यसीदत्॥176॥

(हिन्दी)- मैंने धर्मोपदेश सुनकर तदनुकूल आचरण किया, रात के प्रथम याम में मुझे पूर्वजन्मों का स्मरण हुआ॥172॥

रात के मध्यम याम में मैंने दिव्य चक्षुओं को विशोधित किया, रात के अंतिम याम में मैंने अंधकार को विदीर्ण कर दिया॥173॥

ध्यान से उत्पन्न सुख से मेरी काया भर गई, इसी प्रकार मैं आसन मारे ध्यान में बैठी रही। सातवें दिन जब मैंने आसन छोड़ा (अपने पैर पसारे), तो मेरा अज्ञानांधकार सर्वथा समुच्छिन्न हो चुका था॥174॥

मूसलों से अन्न को कूट-कूट कर मनुष्य वित्तार्जन करते और अपने स्त्री-पुत्रादि का पालन-पोषण करते हैं॥175॥

तो फिर तुम भी बुद्ध-शासन को करने में क्यों नहीं लग जातीं, जिसे करके पीछे पछताना नहीं होता; अभी शीघ्र पैर धोकर एकांत (ध्यान) में बैठ जाओ॥176॥

''चित्तं उपट्ठपेत्वान, एकग्गं सुसमाहितं।
पच्चवेक्खथ सङ्खारे, परतो नो च अत्ततो॥177॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, पटाचारानुसासनिं।
पादे पक्खालयित्वान, एकमन्ते उपाविसिं॥178॥
''रत्तिया पुरिमे यामे, पुब्बजातिमनुस्सरिं।
रत्तिया मज्झिमे यामे, दिब्बचक्खुं विसोधयिं॥179॥
''रत्तिया पच्छिमे यामे, तमोक्खन्धं पदालयिं।
तेविज्जा अथ वुट्ठासिं, कता ते अनुसासनी॥180॥
''सक्कंव देवा तिदसा, सङ्गामे अपराजितं।
पुरक्खत्वा विहस्सामि, तेविज्जाम्हि अनासवा''॥181॥ ... उत्तरा थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) - ''चित्तमुपस्थाप्य, एकाग्रं सुसमाहितम्।
प्रत्यवेक्षत संस्कारान्, परतः न चात्मनः॥177॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, पटाचारानुशासनम्।
पादौ प्रक्षाल्य, एकान्ते उपाविशम्॥178॥
''रात्रेः प्रथमे यामे, पूर्वजातिमन्वस्मरम्।
रात्रेः मध्यमे यामे, दिव्यचक्षुः विशोधितम्॥179॥
''रात्रेः पश्चिमे यामे, तमस्स्कन्धं प्रदारितम्।
त्रिविद्या अथ बुद्धास्मि, कृतानि तानि अनुशासनानि॥180॥
''शक्रमिव देवाः त्रिदशा, संग्रामे अपराजितम्।
पुरस्कृत्य विहरिष्यामि, त्रैविद्यास्मि अनास्रवा॥181॥

(हिन्दी)- चित्त को एकाग्र करो, अच्छी प्रकार समाधि में स्थित करो, फिर प्रत्यवेक्षण करो, कि ये सभी संस्कार (कृत वस्तुएँ) अनित्य हैं, दुःख हैं और अनात्म हैं, अपने नहीं हैं, पराये हैं॥177॥

उस भिक्षुणी पटाचारा के इस धर्मोपदेश को सुनकर मैं उसके अनुशासन के अनुसार आचरण करने में लग गई! पैर धोकर एकांत में ध्यान के लिए बैठ गई॥178॥

रात के प्रथम याम में मैंने अपने पूर्व-जन्मों को स्मरण किया, रात के मध्यम याम में मैंने दिव्य- चक्षुओं को विशोधित किया॥179॥

रात के अंतिम याम में मैंने अंधकार-पुंज को नष्ट कर दिया! जब मैं आसन से उठी तो मैं तीनों विद्याओं की पूर्ण ज्ञाता थी! हे देवि! मैंने तेरे अनुशासन को पूरा कर लिया॥180॥

संग्राम में विजयी देवेन्द्र शक्र की जैसे तीसों (त्रिदश) देवता वन्दना करते हैं, वैस ही मैं भी तुम्हारी सेवा करती हुई, तुम्हें अपनी अगुआ बनाकर, विचरूंगी! देवि! (तेरे अनुशासन के बल से) मैं तीनों विद्याओं की ज्ञाता हूँ, पूर्ण निष्पाप, चित्त-मल-विमुक्त हूँ॥181॥

2. चालाथेरीगाथा-

''सतिं उपट्ठपेत्वान, भिक्खुनी भावितिन्द्रिया।
पटिविज्झि पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं॥182॥
''कं नु उद्दिस्स मुण्डासि, समणी विय दिस्ससि।
न च रोचेसि पासण्डे, किमिदं चरसि मोमुहा॥183॥
''इतो बहिद्धा पासण्डा, दिट्ठियो उपनिस्सिता।
न ते धम्मं विजानन्ति, न ते धम्मस्स कोविदा॥184॥
''अत्थि सक्यकुले जातो, बुद्धो अप्पटिपुग्गलो।
सो मे धम्ममदेसेसि, दिट्ठीनं समतिक्कमं॥185॥
''दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥186॥

(संस्कृतच्छाया) -2. ''स्मृतिमुपस्थाप्य, भिक्षुणी भावितेन्द्रिया।
प्रतिविद्य पदं शान्तम्, संस्कारोपशं सुखम्॥182॥
''कं नु उद्दिश्य मुण्डितासि, श्रमणीव दृश्यसे।
न च रोचसे पाखण्डम्, किमिदम् आचरसि मोहमयम्॥183॥
''इत: बहिर्द्धा पाखण्डा:, दृष्ट्या उपनिश्रिता:।
न ते धर्मं विजानन्ति, न ते धर्मस्य कोविदा:॥184॥
''अस्ति शाक्यकुले जात:, बुद्धोऽप्रतिपुद्गल:।
स मां धर्ममदिशत्, दृष्टिं चैवसमतिक्रमन्॥185॥
''दु:खं दु:खसमुत्पादम्, दु:खस्य च अतिक्रमम्।
आर्यञ्चाष्टाङ्गिकं मार्गम्, दु:खोपशमगामिनम्॥186॥

(हिन्दी)- मुझ भिक्षुणी चाला ने स्मृति को सामने रख कर, (श्रद्धादि) आध्यात्मिक शक्तियों का विकास किया, फिर मैंने उस शांत पद का गहन साक्षात्कार किया, जहाँ सभी संस्कारों की पूर्ण शान्ति है, सुख है॥182॥

मार- चाला! किसलिए तूने सिर को मुँडा कर भिक्षुणी का वेश धारण कर लिया है। श्रमणी-सी दिखाई पड़ने वाली! तू क्यों यह मिथ्या विश्वास स्वीकार किये हुए है? बता, भिक्षुणी! क्यों तू यह मोहमय आचरण कर रही है?॥183॥

चाला- मिथ्या मार्ग का अवलम्बन करने वाले, मिथ्या दृष्टियों में फँसे हुए साधुओं से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। वे इस मार्ग से बहिर्भूत हैं। धर्म के सम्बन्ध में वे कुछ नहीं जानते॥184॥

किन्तु शाक्य-कुल में एक बुद्ध उत्पन्न हुए हैं, अप्रतिम पुरुष! उन्होंने मुझे धर्म का उपदेश दिया है, जिसे सुनकर मैंने मिथ्यादृष्टियों को पार किया है॥185॥

दु:ख क्या है, दु:ख की उत्पत्ति कैसे होती है और दु:ख का अतिक्रमण कैसे किया जाता है, इसके लिए दु:ख की ओर ले जाने वाले आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश उन भगवान् ने मुझे दिया है॥186॥

''तस्साहं वचनं सुत्वा, विहरिं सासने रता।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥187॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक''॥188॥ ... चाला थेरी...।

3. उपचालाथेरीगाथा-

''सतिमती चक्खुमती, भिक्खुनी भावितिन्द्रिया।
पटिविज्झिं पदं सन्तं, अकापुरिससेवितं॥189॥
''किं नु जातिं न रोचेसि, जातो कामानि भुञ्जति।
भुञ्जाहि कामरतियो, माहु पच्छानुतापिनी''॥190॥
''जातस्स मरणं होति, हत्थपादान छेदनं।
वधबन्धपरिक्लेसं, जातो दुक्खं निगच्छति॥191॥

(संस्कृतच्छाया) ''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, व्यहार्षं शासने रता।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥187॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानीहि पापिन्!, निहतः त्वमसि अन्तकः"॥188॥

3. ''स्मृतिमती चक्षुष्मती, भिक्षुणी भावितेन्द्रिया।
प्रत्यवेदिषं पदं शान्तम्, अकापुरुषसेवितम्॥189॥
''किं नु जातिं रोचसे, जातः कामानि भुज्यते।
भुङ्क्ष्व हि कामरतिम्, माभूः पश्चानुतापिनी॥190॥
''जातस्य मरणं भवति, हस्तपादानां छेदनम्।
वधबन्धपरिक्लेशम्, जातो दुःखं निर्गच्छति॥191॥

(हिन्दी)- उन भगवान् के उपदेश को सुनकर मैं उनके शासन के अभ्यास में लग गई, मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, बुद्ध के शासन को पूरा कर लिया॥187॥

सब जगह से तृष्णा नष्ट कर दी गई, अन्धकार-पुंज विदीर्ण कर दिया गया। पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। दुष्ट! तू नष्ट कर दिया गया॥188॥

उपचाला- मैं स्मृतिमती, चक्षुष्मती भिक्षुणी हूँ, श्रद्धादि आध्यात्मिक शक्तियों (इन्द्रियों) का अभ्यास कर, मैंने वीर पुरुषों के द्वारा सेवित शान्त पद का गम्भीर ज्ञान प्राप्त किया है॥189॥

मार- उपचाले! जन्म से विराग क्यों? जन्म प्राप्त करके ही तो भोगों का सुख अनुभव किया जाता है। तू भोगों का आनन्द ले, अन्यथा पीछे पछतायेगी॥190॥

उपचाला- जन्म का परिणाम मृत्यु है। जन्म लेने वाले की कभी न कभी मृत्यु होती ही है। जन्म होने से ही हाथ और पैरों का काटा जाना होता है। बध, बंधन और नाना क्लेश होते हैं; जिसने जन्म लिया है, वह दुःख पाता ही है॥191॥

''अत्थि सक्यकुले जातो, सम्बुद्धो अपराजितो।
सो मे धम्ममदेसेसि, जातिया समतिक्कमं॥192॥
''दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥193॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, विहरिं सासने रता।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥194॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक''॥195॥ ... उपचाला थेरी...।

सत्तकनिपातो निट्ठितो।

8. अट्ठकनिपातो

1. सीसूपचालाथेरीगाथा-

''भिक्खुनी सीलसम्पन्ना, इन्द्रियेसु सुसंवुता।
अधिगच्छे पदं सन्तं, असेचनकमोजवं॥196॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अस्ति शाक्यकुले जातः, सम्बुद्धोऽपराजितः।
स मां धर्मं दिदेश, जातिं समतिक्रमन्तम्॥192॥
''दुःखं दुःखसमुत्पादम्, दुःखस्य च अतिक्रमम्।
आर्यञ्चाष्टाङ्गिकं मार्गम्, दुःखोपशमगामिनम्॥193॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, व्यहरं शासने रता।
तिस्रः विद्याः अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥194॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानीहि पापिन्!, निहतः त्वमसि अन्तकः"॥195॥

1. ''भिक्षुणी शीलसम्पन्ना, इन्द्रियेषु सुसंवृता।
अध्यगमं पदं शान्तमासेचनकमोजस्वितम्॥196॥

(हिन्दी)- जन्म से अपराजित तो एकमात्र पुरुष सम्यक् संबुद्ध हैं, जिन्होंने शाक्य-कुल में जन्म लिया है, उन्होंने मुझे जन्म के अतिक्रमण करने वाले धर्म का उपदेश दिया है॥192॥

दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःखों का अतिक्रमण और दुःखों के अतिक्रमण का साधन आर्य अष्टांगिक मार्ग, यह उन भगवान् ने मुझे उपदेश किया है॥193॥

उन भगवान् के धर्मोपदेश को सुनकर मैं उसके अनुकूल अभ्यास में लग गई; मैंने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया, बुद्ध-शासन को पूरा कर लिया॥194॥

वासना का सब जगह से विनाश हो गया, अन्धकार-पुंज विदीर्ण हो गया। पापी मार! सब प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया। तू मार डाला गया॥195॥

शीर्षोपचाला- मैं सदाचार-सम्पन्न, संयतेन्द्रिय भिक्षुणी हूँ। ओजयुक्त, जीवन-संचारिणी सुधा के समान मैंने शांत पद (निर्वाण) का साक्षात्कार किया है॥196॥

''तावतिंसा च यामा च, तुसिता चापि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो।
तत्थ चित्तं पणीधेहि, यत्थ ते वुसितं पुरे॥197॥
''तावतिंसा च यामा च, तुसिता चापि देवता।
निम्मानरतिनो देवा, ये देवा वसवत्तिनो॥198॥
''कालं कालं भवाभवं, सक्कायस्मिं पुरक्खता।
अवीतिवत्ता सक्कायं, जातिमरणसारिनो॥199॥
''सब्बो आदीपितो लोको, सब्बो लोको पदीपितो।
सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो॥200॥
''अकम्पियं अतुलियं, अपुथुज्जनसेवितं।
बुद्धो धम्ममदेसेसि, तत्थ मे निरतो मनो॥201॥

(संस्कृतच्छाया) - ''त्रायस्त्रिंशा: च यामा: च, तुषिता: चापि देवता:।
निर्माणरतिन: देवा:, ये देवा: वशवर्तिन:।
तत्र चित्तं प्रणिधेहि, यत्र त्वया उषितं पुरे॥197॥
''त्रायस्त्रिंशा: च यामाश्च, तुषिता: चापि देवता:।
निर्माणरतिन: देवा:, ये देवा: वशवर्तिन:॥198॥
''काले काले भवाभवम्, सत्काये पुरस्कृता:।
अवीतवृत्ता: सत्कायम्, जातिमरणसारिण:॥199॥
''सर्व आदीप्त: लोक:, सर्व: लोक: प्रदीप्त:।
सर्व: प्रज्ज्वलितो लोक:, सर्व: लोक: प्रकम्पित:॥200॥
''अकम्पितमतुलितमपृथुजनसेवितम्।
बुद्ध: धर्मं दिदेश, तत्र मम निरतो मन:॥201॥

(हिन्दी)-*मार*- त्रायस्त्रिंश-लोक के देवगण, यम-लोक के देवगण, तुषित-लोक के देवगण, निर्माणरति के देवगण और वशवर्ती के देवगण, इन सब देव-योनियों के विषयों की तू चिंता कर; पहले तू यहाँ हो आयी है, अब भी तू इन्हीं के भोगों में अपने चित्त को लगा, इनकी अभिलाषा कर॥197॥

त्रायस्त्रिंश-लोक के देवगण, यम-लोक के, तुषित-लोक के, निर्माणरति और वशवर्ती लोक के देवगण॥198॥

ये सब किसी एक भव में, किसी समय दूसरे भव में, उत्पन्न होते और मरते रहते हैं। काया के सत् होने से मिथ्या विश्वास को वे जीत नहीं सके हैं, ये सब जन्म-मरण में चक्कर लगाते रहते हैं॥199॥

यह सब लोक आग से, लौ दे-दे कर जल रहा है, आग से यह प्रज्ज्वलित, प्रकम्पित हो रहा है॥200॥

न कँपने वाला तो वह अद्वितीय, अतुलनीय, केवलज्ञानी जनों द्वारा सेवित धर्म ही है, जिसका भगवान् बुद्ध ने मुझे उपदेश दिया है। मैंने उन भगवान् से इस उपदेश को सुनकर उसमें अपना मन लगाया॥201॥

''तस्साहं वचनं सुत्वा, विहरिं सासने रता।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥202॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तक''॥203॥...सीसूपचाला थेरी...।

अट्ठकनिपातो निट्ठितो।

9. नवकनिपातो

1. वड्ढमातुथेरीगाथा-

''मा सु ते वड्ढ लोकम्हि, वनथो आहु कुदाचनं।
मा पुत्तक पुनप्पुनं, अहो दुक्खस्स भागिमा॥204॥
''सुखञ्हि वड्ढ मुनयो, अनेजा छिन्नसंसया।
सीतिभूता दमप्पत्ता, विहरन्ति अनासवा॥205॥
''तेहानुचिण्णं इसीभि, मग्गं दस्सनपत्तिया।
दुक्खस्सन्तकिरियाय, त्वं वड्ढ अनुब्रूहय॥206॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, व्याहरं शासने रता।
तिस्रः विद्या अनुप्राप्ताः, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥202॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्धः प्रदारितः।
एवं जानाहि पापिन्!, निहतः त्वमसि अन्तकः"॥203॥

1. ''मा अस्तु वड्ढ! लोके, वनथः आहु कदाचित्।
मा पुत्रक! पुनः पुनः, भवतु दुःखस्य भागिमान्॥204॥
''सुखैः वड्ढ! मुनयः, अनेजाः छिन्नसंशयाः।
शीतिभूताः दमंप्राप्ताः, विहरन्ति अनास्रवाः॥205॥
''तेषां हि अनुचीर्णम् ऋषिभिः, मार्गंदर्शनप्राप्तये।
दुःखस्यान्तकरणाय, त्वं वड्ढ! अनुवर्धेथाः॥206॥

(हिन्दी)- मैंने शास्ता के शासन पर आचरण किया; फिर तीनों विद्याएं मैंने साक्षात्कार कर लीं, बुद्ध के शासन को पूरा कर लिया॥202॥

मेरी सम्पूर्ण वासना का मूलोच्छेद हो गया, अन्धकार-पुंज विदीर्ण हो गया। पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। पापी! तू मार डाला गया॥203॥

वत्स वड्ढ! इस लोक के तृष्णा-रूपी अरण्य में तू कभी प्रवेश मत करना; प्रिय पुत्र! बार-बार तू दुःख का भागी मत बनना॥204॥

वत्स वड्ढ! जिन मुनियों ने अपने समस्त संशयों को छिन्न कर दिया, जो चंचलता-रहित हो गए, तृष्णा का दमनकर उसकी वश्यता से जिन्होंने मुक्ति पा ली, जो शांत और निष्पाप हैं, वही वास्तव में सुखी हैं॥205॥

वत्स वड्ढ! तू भी दुःख का अन्त करने के लिए और सम्यक् दर्शन की प्राप्त के लिए, ऋषियों के द्वारा अनुभूत इस मार्ग का अभ्यास और विकास कर॥206॥

''विसारदाव भणसि, एतमत्थं जनेत्ति मे।
मञ्ञामि नून मामिके, वनथो ते न विज्जति॥207॥
''ये केचि वड्ढ सङ्खारा, हीना उक्कट्ठमज्झिमा।
अणूपि अणुमत्तोपि, वनथो मे न विज्जति॥208॥
''सब्बे मे आसवा खीणा, अप्पमत्तस्स झायतो।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥209॥
''उळारं वत मे माता, पतोदं समवस्सरि।
परमत्थसञ्हिता गाथा, यथापि अनुकम्पिका॥210॥
''तस्साहं वचनं सुत्वा, अनुसिट्ठिं जनयित्र्या।
धम्मसंवेगमापादिं, योगक्खेमस्स पत्तिया॥211॥

(संस्कृतच्छाया) - ''विसारदा इव भणसि, एतस्मात् जनयित्री मे।
मन्ये नूनं मामकम्, वनथ: तव न विद्यते॥207॥
''ये केचित् वड्ढ! संस्कारा:, हीना उत्कृष्टमध्यमा:।
अण्वप्यणुमात्रोऽपि, वनथो मे न विद्यते॥208॥
''सर्वे ममास्रवा: क्षीणा:, अप्रमत्तस्य ध्यायत:।
तिस्र: विद्या अनुप्राप्ता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥209॥
''उदारं वत मे माता, प्रतोदं समावसरत् ।
परमार्थसंहिता गाथा, यथाप्यनुकम्पिता॥210॥
''तस्याहं वचनं श्रुत्वा, अनुशिष्टिं जनयित्र्या:।
धर्मसंवेगमापादि, योगक्षेमस्य प्राप्तये॥211॥

(हिन्दी)- जननी! जो तू कहती है, अपने अन्तर की सत्य बात ही कहती है; मेरी माँ! मुझे विश्वास है,कि तृष्णा-रूपी अरण्य तेरे अन्दर नष्ट हो गया॥207॥

माता कहती है:– वत्स वड्ढ! हीन, मध्यम और उत्तम जितने भी संस्कार हैं, उनकी अणुमात्र भी तृष्णा मेरे अन्दर नहीं रही॥208॥

वत्स! मेरे सब चित्त-मल नष्ट हो गए, क्योंकि मैंने अध्यवसायपूर्वक ध्यान किया है। तीनों विद्याओं को मैंने प्राप्त किया है, बुद्ध शासन को पूरा किया है॥209॥

अहो! मेरी माता ने कितना उदार अंकुशाघात मेरे लिए प्रयुक्त किया! उस अनुकंपामयी ने परमार्थ की चेतना से युक्त गाथा के द्वारा मुझे दयामय दण्ड भी दिया॥210॥

माता के धर्मोपदेश को सुनकर और उसके उपदेश को हृदय में रखकर, योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्ति के लिए मैंने पदार्थों में वैराग्य अनुभव किया॥211॥

''सोहं पधानपहितत्तो, रत्तिन्दिवमतन्दितो।
मातरा चोदितो सन्तो, अफुसिं सन्तिमुत्तमं''॥212॥ ... वड्ढमाता थेरी...।

नवकनिपातो निट्ठितो।

10. एकादसनिपातो

1. किसागोतमीथेरीगाथा-

''कल्याणमित्तता मुनिना, लोकं आदिस्स वण्णिता।
कल्याणमित्ते भजमानो, अपि बालो पण्डितो अस्स॥213॥
''भजितब्बा सप्पुरिसा, पञ्ञा तथा वड्ढति भजन्तानं।
भजमानो सप्पुरिसे, सब्बेहिपि दुक्खेहि पमुच्चेय्य॥214॥
''दुक्खं च विजानेय्य, दुक्खस्स च समुदयं निरोधं।
अट्ठङ्गिकं च मग्गं, चत्तारिपि अरियसच्चानि॥215॥
''दुक्खो इत्थिभावो, अक्खातो पुरिसदम्मसारथिना।
सपत्तिकं पि हि दुक्खं, अप्पेकच्चा सकिं विजातायो॥216॥

(संस्कृतच्छाया) - ''साहं प्रधानप्रहितात्मा, रात्रिं दिवमतन्द्रितः।
मात्रा चोदितः शान्तः, अस्पृक्षं शान्तिमुत्तमम्"॥212॥

1. ''कल्याणमित्रता मुनिना, लोकमादिश्य वर्णिता।
कल्याणमित्रं भजन्तः, अपि बालः पण्डितो भवति॥213॥
''भजितव्याः सत्पुरुषाः, प्रज्ञा तथैव वर्ध्यते भजन्तानाम्।
भजन्तः सत्पुरुषाः, सर्वेभ्य अपि दुःखेभ्यः प्रमुञ्चेयुः॥214॥
''दुःखञ्च विजानीयात्, दुःखस्य च समुदयं निरोधम्।
अष्टाङ्गिकञ्च मार्गम्, चत्वार्यप्यार्यसत्यानि॥215॥
''दुःखः स्त्रीभाव आख्यातः पुरुषदम्यसारथिना।
सपत्नीकमपि हि दुःखमप्येकत्र ताः किं विजाताः॥216॥

(हिन्दी)- फिर आत्म-संयमी होकर रात-दिन अ-तंद्रित रहकर मैं तीव्र अभ्यास में लग गयी। माता से प्रताड़ित होकर मैं आज उपशान्त हो गयी, मैंने उत्तम शांति (निर्वाण) को स्पर्श किया है॥212॥

लोक को लक्ष्य कर सन्मित्रता (कल्याणमित्रता) की मुनि (बुद्ध) ने प्रशंसा की है, कल्याणकारी पुरुषों का सत्संग करने से मूर्ख भी पंडित हो जाते हैं॥213॥

सत्पुरुषों की सेवा करो, इससे ज्ञान की वृद्धि होगी, सत्पुरुषों की सेवा करने से सब दुःखों से मुक्ति मिलती॥214॥

सत्संग से मनुष्य को चार आर्य सत्यों का ज्ञान होता है— दुःख का, दुःख के समुदय का, दुःख के निरोध का और दुःख के निरोध की ओर ले जाने वाले आर्य आष्टांगिक मार्ग का भी॥215॥

"स्त्री होना दुःख है", ऐसी मनुष्यों के चित्त को संयमी बनाने वाले उन सारथी-स्वरूप (भगवान् बुद्ध) ने कहा है। (विद्वेषी) सपत्नियों के साथ एक घर में रहना दुःख है; बच्चों को (तीव्र पीड़ा में) जनना दुःख है॥216॥

''गलके अपि कन्तन्ति, सुखुमालिनियो विसानि खादन्ति।
जनमारकमज्झगता, उभोपि ब्यसनानि अनुभोन्ति॥217॥
''उपविजञ्ञा गच्छन्ती, अद्दसाहं पतिं मतं।
पन्थम्हि विजायित्वान, अप्पत्ताव सकं घरं॥218॥
''द्वे पुत्ता कालकता, पती च पन्थे मतो कपणिकाय।
माता पिता च भाता, डय्हन्ति च एकचितकायं॥219॥
''खीणकुलीने कपणे, अनुभूतं ते दुखं अपरिमाणं।
अस्सू च ते पवत्तं, बहूनि च जातिसहस्सानि॥220॥
''वसिता सुसानमज्झे, अथोपि खादितानि पुत्तमंसानि।
हतकुलिका सब्बगरहिता, मतपतिका अमतमधिगच्छिं॥221॥

(संस्कृतच्छाया) - ''ग्रीवापि कर्तन्ति, सुकुमार्यः विषं खादन्ति।
जनमारकमध्यगताः, उभावापि व्यसनानि अनुभवन्ति॥217॥
''उपविजन्याः गच्छन्ती, अद्राक्षमहं पतिं मृतम्।
पन्थि विजाय, अप्यैव स्वकंगृहम्॥218॥
''द्वौ पुत्रौ कालकृतौ, पतिश्च पथि मृतः कृपणकायः।
माता पिता च भ्राता, दग्धाः च एकस्मिन् चितायाम्॥219॥
''क्षीणकुलीने कृपणे, अनुभूतं त्वया दुःखमपरिमाणम्।
अश्रु च तेन प्रवर्त्तितम्, बहूनि च जातिसहस्राणि॥220॥
''उषिता श्मशानमध्ये, अथापि खादितानि पुत्रमांसानि।
हतकुलिका सर्वगर्हिता, मृतपतिका अमृतमध्यगच्छम्॥221॥

(हिन्दी)- कोई-कोई जनने वाली माताएं एक बार ही मृत्यु चाहती हुई अपना गला काट लेती है, ताकि दुबारा यह दु:ख न सहना पड़े। कुछ सुकुमारियां विष खा लेती हैं; बच्चा जब पैदा नहीं होता और गर्भ में रुक जाता है, तो भ्रूण मातृघातक बन जाता है और जच्चा और बच्चा दोनों की विपत्ति अनुभव करते हैं॥217॥

प्रसव के लिए मैं अपने घर की ओर चली आ रही थी कि रास्ते में मैंने अपने मृत पति को देखा; प्रसव के समय मैं अपने घर जाने में भी असमर्थ हो गई॥218॥

हतभाग्य नारी! तेरे दो पुत्र काल-कवलित हो गए, मार्ग में तूने मृत पति को देखा; अपने माता, पिता और भाई को तूने एक ही चिता में जलाये जाते देखा॥219॥

भाग्यहीन नारी! तूने असंख्य जन्मों में इस प्रकार का अपरिमित दु:ख अनुभव किया है, तूने सहस्रों जन्मों में अपार आँसुओं को बहाया है॥220॥

श्मशान में अनेक बार पुत्रों के मांसों को (वन्य पशुओं के द्वारा) खाए जाते हुए तू ने देखा है! हाय! तेरा सब कुछ लुट गया! सबने तुझे छोड़ दिया, पति भी तुझे छोड़कर चला गया। अहो! आश्चर्य! इस अवस्था में भी मैं उस स्थान पर पहुँची हूँ, जहाँ मृत्यु नहीं है, मैंने अमृत (निर्वाण) को पा लिया है॥221॥

''भावितो मे मग्गो, अरियो अट्ठङ्गिको अमतगामी।
निब्बानं सच्छिकतं, धम्मादासं अवेक्खिहं॥222॥
''अहमम्हि कन्तसल्ला, ओहितभारा कतञ्हि करणीयं।
किसा गोतमी थेरी, विमुत्तचित्ता इमं भणी''ति॥223॥

... किसा गोतमी थेरी...।
एकादसनिपातो निट्ठितो।

11. द्वादसकनिपातो

1.उप्पलवण्णाथेरीगाथा-

''उभो माता च धीता च, मयं आसुं सपत्तियो।
तस्सा मे अहु संवेगो, अब्भुतो लोमहंसनो॥224॥
''धिरत्थु कामा असुची, दुग्गन्धा बहुकण्टका।
यत्थ माता च धीता च, सभरिया मयं अहुं॥225॥
''कामेस्वादीनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दट्ठु खेमतो।
सा पब्बज्जिं राजगहे, अगारस्मानगारियं॥226॥

(संस्कृतच्छाया) - ''भावितो मया मार्ग:, आर्याष्टांगिक अमृतगामी।
निर्वाणं साक्षीकृतम्, धर्मादर्शमवैक्षमहम्॥222॥
''अहमस्मिन् कृन्तशल्या, अपहृतभारा कृतं हि करणीयम्।
कृशा गौतमी थेरी, विमुक्तचित्ता इदं भणति" इति॥223॥

1. ''उभौ माता च दुहिता च, वयम् आसं सापत्न्यम्।
तस्या: मम अभूत् संवेग:, अद्भुत: लोमहर्षण:॥224॥
''धिगस्तु! काम: अशुचि:, दुर्गन्ध: बहुकण्टक:।
यत्र माता च दुहिता च, सभार्या वयम् अभूम॥225॥
''कामेष्वादीनवं दृष्ट्वा, नैष्क्रम्यं द्रष्टुं क्षेमत:।
सा प्रव्रज्जिता राजगृहम्, अगारादनगारिकम्॥226॥

(हिन्दी)- अमरता-गामी आर्य अष्टांगिक मार्ग का मैंने अभ्यास किया है, निर्वाण का मैंने साक्षात्कार किया है, धर्म के दर्पण में मैंने देखा है॥222॥

आज मेरा वेदना का तीर निकल गया, सभी बोझों को मैंने दूर फेंक दिया है। मेरे सब कर्तव्य पूरे हो गए, सभी बन्धनों से मेरा चित्त विमुक्त हो गया। मैं कृशा गौतमी भिक्षुणी यह कहती हूँ॥223॥

एक पतित माता की कथा का उद्धरण— माता और पुत्री, हम दोनों सपत्नी का दूषित जीवन बिताती थीं; बाद में इस जीवन के प्रति अद्भुत, रोमांचकारी उदासीनता मुझे प्राप्त हुई॥224॥

हाय! इस इन्द्रिय-लालसा को धिक्कार! इस अपवित्र, दुर्गन्धमय, काँटों से भरी हुई, विषय-वासना को धिक्कार! इस विषय-वासना के कारण हम माता और पुत्री दोनों सौतें हो गई॥225॥

विषय-भोगों के दोषों और दुष्परिणामों को देखकर मैंने सोचा— निष्कामता में ही दृढ़ मंगल है। अत: घर से बेघर हो राजगृह में जाकर मैं प्रव्रजित हो गई॥226॥

''पुब्बेनिवासं जानामि, दिब्बचक्खुं विसोधितं।
चेतोपरिच्चञाणं च, सोतधातु विसोधिता॥227॥
''इद्धीपि मे सच्छिकता, पत्तो मे आसवक्खयो।
छळभिञ्ञा सच्छिकता, कतं बुद्धस्स सासनं॥228॥
''इद्धिया अभिनिम्मित्वा, चतुरस्सं रथं अहं।
बुद्धस्स पादे वन्दित्वा, लोकनाथस्स तादिनो''॥229॥
''सुपुप्फितग्गं उपगम्म पादपं, एका तुवं तिट्ठसि सालमूले।
न चापि ते दुतियो अत्थि कोचि, न त्वं बाले भायसधुत्तकानं॥230॥
''सतं सहस्सानिपि धुत्तकानं, समागता एदिसका भवेय्युं।
लोमं न इञ्जे नपि सम्पवेधे, किं मे तुवं मार करिस्ससेको॥231॥

(संस्कृतच्छाया) - ''पूर्वेनिवासं जानामि, दिव्यचक्षु: विशोधितम्।
चेतोपरीत्यज्ञानञ्च, श्रोत्रधातु: विशोधिता॥227॥
''ऋद्धि अपि मया साक्षीकृता, प्राप्त: मया आस्रवक्षय:।
षडभिज्ञा: साक्षीकृता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥228॥
''ऋद्ध्या अभिनिर्मीय, चतुरश्वं रथमहम्।
बुद्धस्य पादौ वन्दित्वा, लोकनाथस्य तादिन:॥229॥
''सुपुष्पिताग्रमुपगम्य पादपम्, एका त्वं तिष्ठसि शालमूले।
न चापि तव द्वितीयोऽस्ति कश्चित्, न त्वं बाले बिभेषि धूर्तेभ्य:॥230॥
''शतं सहस्राणि अपि धूर्ताणाम्, समागता एतादृशा: भवेयु:।
रोमं न एजे नापि सम्प्रवेधेत्, किं मे त्वं मार: करिष्यस्येक:॥231॥

(हिन्दी)- अपनी योग-सिद्धि की प्राप्ति के उल्लास में उत्पलवर्णा कहती है— मुझे अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हुआ, चक्षु दिव्य और विशोधित हुए, पर-चित्त-ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ, मेरी श्रोत-इन्द्रिय विशोधित हुई॥227॥

ऋद्धि (योग-सिद्धि) भी मैंने साक्षात्कार की, चित्त-मलों का क्षय भी मैंने प्राप्त किया, अभिज्ञाएँ (गूढ ज्ञान) मैंने साक्षात्कार कीं, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा कर लिया॥228॥

योग-बल से निर्मित, चार घोड़ों के रथ में बैठकर मैं आयी, और उन श्री-सम्पन्न लोकनाथ (भगवान् बुद्ध) की मैंने पाद-वंदना की॥229॥

मार- इस सुपुष्पित वृक्ष के नीचे तू अकेली बैठी हुई है, मूढ़े! यहाँ कोई दूसरा (साथी) नहीं है। यह स्थान निर्जन है। तू अरक्षित है। क्या तुझे धूर्तों से भय नहीं॥230॥

भिक्षुणी- तेरे सदृश एक लाख धूर्त भी यदि आ जायँ तो मेरे एक रोयें को भी नहीं हिला सकते, मुझे प्रकम्पित नहीं कर सकते। तेरी एक की तो गिनती ही क्या है?॥231॥

''एसा अन्तरधायामि, कुच्छिं वा पविसामि ते।
भमुकन्तरे तिट्ठामि, तिट्ठन्तिं मं न दक्खसि॥232॥
''चित्तम्हि वसीभूताहं, इद्धिपादा सुभाविता।
छळभिञ्ञा सच्छिकता, कतं बुद्धस्स सासनं॥233॥
''सत्तिसूलूपमा कामा, खन्धासं अधिकुट्टना।
यं त्वं 'कामरतिं' ब्रूसि, 'अरती' दानि सा मम॥234॥
''सब्बत्थ विहता नन्दी, तमोखन्धो पदालितो।
एवं जानाहि पापिम, निहतो त्वमसि अन्तका''ति॥235॥

... उप्पलवण्णा थेरी...।
द्वादसनिपातो निट्ठितो।

12. सोळसनिपातो

1. पुण्णाथेरीगाथा-

''उदहारी अहं सीते, सदा उदकमोतरिं।
अय्यानं दण्डभयभीता, वाचादोसभयट्टिता॥236॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एषा अन्तर्ध्यायामि, कुक्षिं वा प्रविष्यामि ते।
भ्रुवोऽन्तरे तिष्ठामि, तिष्ठन्तं मां न द्रक्ष्यसि॥232॥
''चित्तं वशीभूतं मया, ऋद्धिपादा: सुभाविता:।
षडभिज्ञा: साक्षीकृता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥233॥
''शक्तिशूलोपमा: कामा:, स्कन्धा अधिकुट्टना।
यां त्वं 'कामरति:' ब्रूषे, 'अरति' इदानीं सा मम॥234॥
''सर्वत्र विहता नन्दी, तमस्स्कन्ध: प्रदारित:।
एवं जानीहि पापिन्!, निहत: त्वमसि अन्तक:"इति॥235॥

1. ''उदकहारिणी अहं शीते, सदा उदकमवातरम्।
आर्याणां दण्डभयभीता, वाग्दोषभयार्तिता॥236॥

(हिन्दी)- *मार-* मैं अभी अदृश्य होकर तेरी कोख में प्रवेश किए जाता हूँ! देख, मैं अभी तेरी भौंहों में अदृश्य होकर छिपा जाता हूँ। तू मुझे देख भी नहीं सकेगी॥232॥

भिक्षुणी- मेरा चित्त वशीभूत है, ऋद्धि पादों की मैंने अच्छी प्रकार भावना की है, छह अभिज्ञाओं का मैंने साक्षात्कार किया है, बुद्ध के शासन को मैंने पूरा किया है॥233॥

काम-तृष्णा भाले के समान विद्ध करने वाली है, स्कन्ध-समूह जल्लाद के तख्ते के समान हैं। जिसे तू भोगों का आनन्द कहता है, वह मेरे लिए विरतिकर है, घृणा का कारण है॥234॥

वासना का सब जगह से उच्छेदन कर मैंने अज्ञानांधकार को विदीर्ण कर दिया है। पापी मार! प्राणियों का अन्त करने वाले! समझ ले, आज तेरा ही अन्त कर दिया गया। तू मारा डाला गया॥235॥

मैं पनिहारिन थी। सदा पानी भरना ही मेरा काम था; स्वामिनियों के दण्ड के भय से, उनके क्रोध- भरे कुवाच्यों से पीड़ित होकर, मुझे कड़ी सर्दी में भी सदा पानी में उतरना पड़ता॥236॥

''कस्स ब्राह्मण त्वं भीतो, सदा उदकमोतरि।
वेधमानेहि गत्तेहि, सीतं वेदयसे भुसं॥237॥
''जानन्ती वत मं भोति, पुण्णिके परिपुच्छसि।
करोन्तं कुसलं कम्मं, रुन्धन्तं कतपापकं॥238॥
''यो च वुड्ढो दहरो वा, पापकम्मं पकुब्बति।
दकाभिसेचना सोपि, पापकम्मा पमुच्चति॥239॥
''को नु ते इदमक्खासि, अजानन्तस्स अजानको।
दकाभिसेचना नाम, पापकम्मा पमुच्चति॥240॥
''सग्गं नून गमिस्सन्ति, सब्बे मण्डूककच्छपा।
नागा च सुसुमारा च, ये चञ्ञे उदके चरा॥241॥
''ओरब्भिका सूकरिका, मच्छिका मिगबन्धका।

(संस्कृतच्छाया) - ''कस्मात् ब्राह्मण! त्वं भीतः, सदा उदकमवातरः।
व्यथमानैर्गात्रैः, शीतं वेत्सि भृशम्॥237॥
''जानतीं वत मां भवती, पूर्णिके परिपृच्छति।
कुर्वन्तं कुशलं कर्मम्, रुन्धन्तं कृतपापकम्॥238॥
''यश्च वृद्धो दहरो वा, पापकर्म प्रकरोति।
उदकाभिषेचनात् सोऽपि, पापकर्मणः प्रमुच्यते॥239॥
''को नु ते इदमाचष्ट, अज्ञानान्तस्य अजानतः।
उदकाभिषेचनात् नाम, पापकर्मणः प्रमुच्यते॥240॥
''स्वर्गं नूनं गमिष्यन्ति, सर्वे मण्डूककच्छपाः।
नागाश्च शिशुमाराश्च, ये चान्ये उदके चराः॥241॥
''औरभ्रिकाः शूकरिकाः, मात्स्यकाः मृगबन्धकाः।

(हिन्दी)- ब्राह्मण! तू किसके भय से भयभीत होकर, इस कड़ी सर्दी में गहरी नदी में उतरता है और काँपते हुए शरीर से निरन्तर सर्दी की कठिन पीड़ा को सहता है?॥237॥

पूर्णिके! तू जानती हुई भी मुझसे कारण पूछती है। क्या तू नहीं जानती कि मैं पाप-कर्मों के फल का अवरोध करने के लिए यह पुण्य कर्म करता हूँ॥238॥

जो भी बुरे कर्म युवा या वृद्ध मनुष्य करता है, स्नान-शुद्धि से वह उन सबसे मुक्त हो जाता है॥239॥

स्नान-शुद्धि से पाप-मुक्ति होती है, यह तुझसे किसने कहा? यह तो अज्ञान मूढ का अज्ञानी मूढ के प्रति उपदेश है॥240॥

यदि जल से ही शुद्धि होती, तब तो मेढक, कछुए, जल के सर्प, मगर और अन्य जल-चरों का स्वर्ग गमन निश्चित है॥241॥

यदि जल-स्नान से पाप-मुक्ति होती है, तो फिर भेड़-बकरी, सूअर और मृगों को मारने वाले, या उनका मांस

चोरा च वज्झघाता च, ये चञ्ञे पापकम्मिनो।
दकाभिसेचना तेपि, पापकम्मा पमुच्चरे॥242॥
''सचे इमा नदियो ते, पापं पुब्बे कतं वहुं।
पुञ्ञम्पिमा वहेय्युं ते, तेन त्वं परिबाहिरो॥243॥
''यस्स ब्राह्मण त्वं भीतो, सदा उदकमोतरि।
तमेव ब्रह्मे मा कासि, मा ते सीतं छविं हने''॥244॥
''कुम्मग्गपटिपन्नं मं, अरियमग्गं समानयि।
दकाभिसेचना भोति, इमं साटं ददामि ते''॥245॥
''तुय्हेव साटको होतु, नाहमिच्छामि साटकं।
सचे भायसि दुक्खस्स, सचे ते दुक्खमप्पियं॥246॥

(संस्कृतच्छाया) - चौराश्च वध्यघाताश्च, ये चान्ये पापकर्मिणः।
उदकाभिषेचनात् तेऽपि, पापकर्मणः प्रमुच्यन्ते॥242॥
''सचेत् इमाः नद्यस्ते, पापं पूर्वं कृतं वाहयेयुः।
पुण्यमपि इमा वाहयेयुः ते, तेन त्वं (अपि) परिवाहितः॥243॥
''यस्मात् ब्राह्मण! त्वं भीतः, सदा उदकमवातरः।
तदेव ब्रह्मन्! मा कार्षीः, मा ते शीते छविं हन्याः॥244॥
''कुमार्गप्रतिपन्नं माम्, आर्यमार्गं समानैषीत्।
उदकाभिषेचनात् भवती, इमं शाटं ददामि ते॥245॥
''तवैव शाटको भवतु, नाहमिच्छामि शाटकम्।
सचेत् बिभेषि दुःखेभ्यः, सचेत् ते दुःखमप्रियम्॥246॥

(हिन्दी)-बेचने वाले, मछुए, चोर, जल्लाद और अन्य पापी लोग, सभी पाप-कर्म करने के बाद जल में स्नान कर, क्या पाप-मुक्त नहीं हो जायेंगे॥242॥

फिर यदि इस नदी में नहाने से पूर्व के पाप-कर्म धुल जाते हैं, तो क्या फिर उनके साथ ही तेरे पुण्य-कर्म भी न धुल जायेंगे? ब्राह्मण! फिर तेरे पास क्या रहेगा॥243॥

ब्राह्मण! यदि ब्रह्म (ब्रह्मा) के भय से या अन्य किसी के भय से तू इस कड़ी सर्दी के दुःख को सहता है, तो भी उस भय को तू छोड़; शीत से अपनी त्वचा की रक्षा कर, उसे पीड़ित मत कर॥244॥

मैं कुमार्ग में पतित था, तूने मुझे आर्य-मार्ग में लगाया; देवी! इन स्नान-वस्त्रों को मैं तुझे दान करता हूँ॥245॥

"ये तेरे वस्त्र तेरे ही पास रहें, मुझे इनकी इच्छा नहीं है, हाँ, यदि दुःख से तुझे भय है, यदि दुःख तुझे प्रिय नहीं लगता॥246॥

''माकासि पापकं कम्मं, आवि वा यदि वा रहो।
सचे च पापकं कम्मं, करिस्ससि करोसि वा॥247॥
''न ते दुक्खा पमुत्यत्थि, उपेच्चापि पलायतो।
सचे भायसि दुक्खस्स, सचे ते दुक्खमप्पियं॥248॥
'उपेहि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घं च तादिनं।
समादियाहि सीलानि, तं ते अत्थाय हेहिति''॥249॥
''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घञ्च तादिनं।
समादियामि सीलानि, तं मे अत्थाय हेहिति॥250॥
''ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं, अज्जम्हि सच्चब्राह्मणो।
तेविज्जो वेदसम्पन्नो, सोत्तियो चम्हि न्हातको''ति॥251॥ ... पुण्णा थेरी...।

सोळसनिपातो निट्ठितो।

(संस्कृतच्छाया) - ''माकार्षीत् पापकं कर्म, आविर् वा यदि वा रहः।
सचेत् च पापकं कर्म, करिष्यसि करोषि वा॥247॥
''न ते दुःखात्प्रमुक्तिरस्ति, उपैत्यापि पलायतः।
सचेत् बिभेषि दुःखस्य, सचेत् ते दुःखमप्रियम्॥248॥
''उपैहि शरणं बुद्धम्, धर्मं सङ्घञ्च *तादिनम्* ।
समाद्रियाहि शीलानि, तं ते अर्थाय भविष्यति"॥249॥
''उपैमि शरणं बुद्धम्, धर्मं सङ्घञ्च *तादिनम्* ।
समाद्रियामि शीलानि, तत् मे अर्थाय भविष्यति॥250॥
''ब्रह्मबन्धु पुरे अभवम्, अद्यास्मिन् सत्यब्राह्मणः।
त्रैविद्यः वेदसम्पन्नः श्रोत्रियः, चास्मि स्नातकः'इति॥251॥

(हिन्दी)- तो प्रकट में या छिपकर पाप-कर्म न करना। वर्तमान या भविष्य में यदि तू पाप-कर्म करेगा॥247॥
तो दुःख से तेरी मुक्ति सम्भव नहीं, चाहे कहीं जाना या भागना, पर दुःख से मुक्ति न होगी। यदि दुःख से तुझे भय है, यदि दुःख तुझे प्रिय नहीं लगता॥248॥
तो तू उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जा, सदाचरण का पालन कर, तेरा मंगल होगा॥249॥
मैं उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लूँगा, सदाचरण का पालन करूँगा, वह मेरे लिए मंगलकारी हो॥250॥
पहले मैं नाममात्र का, पतित ब्राह्मण था, इस समय मैं सच्चा ब्राह्मण हूँ, तीनों विद्याओं का ज्ञाता और वेदज्ञ ब्राह्मण हूँ, आज मैं सच्चे अर्थों में श्रोत्रिय हूँ, स्नातक हूँ॥251॥

13. वीसतिनिपातो

1. अम्बपालीथेरीगाथा-

''काळका भमरवण्णसादिसा, वेल्लितग्गा मम मुद्धजा अहुं।
ते जराय साणवाकसादिसा, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥252॥
''वासितोव सुरभी करण्डको, पुप्फपूर मम उत्तमङ्गजो।
तं जरायथ सलोमगन्धिकं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥253॥
''काननंव सहितं सुरोपितं, कोच्छसूचिविचितग्गसोभितं।
तं जराय विरलं तहिं तहिं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥254॥
''कण्हखन्धकसुवण्णमण्डितं, सोभते सुवेणीहिलङ्कतं।
तं जराय खलितं सिरं कतं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥255॥
''चित्तकारसुकताव लेखिका, सोभरे सु भमुका पुरे मम।
ता जराय वलिभिप्पलम्बिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥256॥

(संस्कृतच्छाया) -1. ''कालका भ्रमरवर्णसदृशा:, वेल्लिताग्रा: मम मूर्धजा अभूत्।
ते जरया साणवकसदृशा:, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥252॥
''वासित इव सुरभि: करण्डक:, पुष्पपूर: ममोत्तमाङ्गज:।
तं जरयाथ सलोमगन्धिकम्, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥253॥
''काननमिव सहितं सुरोपितम्, कूर्चसूचिविचिताग्रशोभितम्।
तं जरया विरलं तत्र तत्र, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥254॥
''कृष्णस्कन्धकसुवर्णमण्डितम्, शोभते सुवेणिभि अलंकृतम्।
तं जरया क्षरितं शिर: कृतम्, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥255॥
''चित्रकारसुकृतेव लेखिका, शोभेते सुभ्रुवौ पुरे मम।
ते जरया बल्यभिप्रलम्बिते, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥256॥

(हिन्दी)- काले, भौंरे के रंग के समान, जिनके अग्र भाग घुँघराले हैं, ऐसे किसी समय मेरे बाल थे, वही आज जरावस्था में सन की छाल जैसे हो गये हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥252॥

पुष्पों से गुँथा हुआ मेरा केशपाश कभी सुगन्ध की पिटारी की भाँति महकता था, उसी में से आज जरा के कारण खरहे के रोओं की-सी दुर्गन्ध आती है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥253॥

कंघों और चिमटियों से सजा हुआ मेरा सुविन्यस्त जूड़ा कभी अच्छे रोपे हुए सघन उपवन के सदृश शोभा पाता था, वही आज जराग्रस्त होकर जहाँ-तहाँ से बाल टूटने के कारण विरल हो गया है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥254॥

सोने से सुसज्जित, भीनी-भीनी गन्ध से महकता हुआ, सुन्दर चोटियों से अलंकृत, कभी मेरा सिर रहता था, वही आज जरावस्था में बालों के झड़ जाने से गंजा हो गया है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥255॥

चित्रकार के हाथ से कुशलतापूर्वक अंकित की हुई जैसे मेरी दोनों भौंहें थीं, वही आज जरावस्था में झुर्रियाँ पड़कर नीचे लटकी हुई हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥256॥

''भस्सरा सुरुचिरा यथा मणी, नेत्तहेसुमभिनीलमायता।
ते जरायभिहता न सोभरे, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥257॥
''सण्हतुङ्गसदिसी च नासिका, सोभते सु अभियोब्बनं पति।
सा जराय उपकूलिता विय, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥258॥
''कङ्कणं व सुकतं सुनिट्ठितं, सोभरे सु मम कण्णपाळियो।
ता जराय वलिभिप्पलम्बिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥259॥
''पत्तलीमकुलवण्णसादिसा, सोभरे सु दन्ता पुरे मम।
ते जराय खण्डिता चासिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥260॥
''काननम्हि वनसण्डचारिनी, कोकिलाव मधुरं निकूजिहं।
तं जराय खलितं तहिं तहिं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥261॥

(संस्कृतच्छाया) - ''भास्वरे सुरुचिरे यथा मणिः, नेत्रहेसुमभिनीलमायता।
ते जरयाभिहते न शोभेते, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥257॥
''श्लक्ष्णतुङ्गसदृशी च नासिका, शोभते सु अभियौवनं प्रति।
सा जरया उपकूलिता इव, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥258॥
''कङ्कणमिव सुकृतं सुनिष्ठितम्, शोभन्ते मम सुकर्णबाल्याः।
ताः जरया बलिभिप्रलम्बिताः, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥259॥
''पत्रलीमकुलवर्णसदृशाः, शोभन्ते सुदन्ताः पुरे मम।
ते जरया खण्डिताः चासिताः, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥260॥
''कानने वनसण्डचारिणी, कोकिलेव मधुरं न्यकूजमहम्।
तत् जरया स्खलितं तत्र तत्र, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥261॥

(हिन्दी)- गहरे नीले रंग की दो उज्ज्वल, सुन्दर मणियों के समान कभी मेरी दोनों आयत आँखें थीं, वही आज बुढापे से अभिहत हुई भद्दी और आभाहीन हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥257॥

नवयौवन की अवस्था के अनुरूप मेरी वह सुकोमल, उन्नत और समरूप नासिका थी, वही आज जरावस्था में सिकुड़ी और पिचकी हुई है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥258॥

पूरी कारीगरी के साथ बनाए हुए, सुगठित कंकण के समान कभी मेरी कर्ण-रेखाएँ थीं, वही आज जरावस्था में झुर्रियाँ पड़कर नीचे लटकी हुई हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥259॥

कदली पुष्प की खिलती हुई कली के समान रंग वाले किसी समय मेरे सुन्दर दाँत थे, वही आज जरावस्था में खंडित होकर जौ के समान पीले रंग वाले हो गये हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥260॥

वनचारिणी कोकिला की मधुर कूक के समान किसी समय मेरी प्यारी मीठी बोली थी, वही आज जरावस्था में स्खलित और भर्रायी हुई थी— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥261॥

''सण्हकम्बुरिव सुप्पमज्जिता, सोभते सु गीवा पुरे मम।
सा जराय भग्गा विनामिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥262॥
''वट्टपलिघसदिसोपमा उभो, सोभरे सु बाहा पुरे मम।
ता जराय यथ पाटलिब्बलिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥263॥
''सण्हमुद्दिकसुवण्णमण्डिता, सोभरे सु हत्था पुरे मम।
ते जराय यथा मूलमूलिका, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥264॥
''पीनवट्टसहितुग्गता उभो, सोभरे सु थनका पुरे मम।
थेविकीव लम्बन्ति नोदका, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥265॥
''कञ्चनस्सफलकंव सम्मट्ठं, सोभते सु कायो पुरे मम।
सो वलीहि सुखुमाहि ओततो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥266॥

(संस्कृतच्छाया) - ''श्लक्ष्णकम्बुरिव सुप्रमार्जिता, शोभते सुग्रीवा पुरे मम।
सा जरया भग्ना विनमिता, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥262॥
''वृत्तपरिघसदृशोपमौ उभौ, शोभेते सु बाहू पुरे मम।
तौ जरया यथा पाटलिबलितौ, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥263॥
''श्लक्ष्णमुद्रिकासुवर्णमण्डितौ, शोभितौ सुहस्तौ पुरे मम।
तौ जरया यथा मूलमूलिकौ, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥264॥
''पीनवृत्तसहितोग्रतौ उभौ, शोभेते सुस्तनकौ पुरे मम।
थिन लम्बेते नोदकौ, सत्यवादिचनमनन्यथा॥265॥
''कञ्चनस्य फलकमिव समृद्धम्, शोभते सुकायः पुरे मम।
स वलिभिः सूक्ष्मै अवततः, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥266॥

(हिन्दी)- सुमार्जित, चिकने शंख के समान, किसी समय मेरी सुन्दर ग्रीवा थी, वही आज जरावस्था में भग्न और विनमित है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥262॥

सुन्दर, गोलाकार गदा के समान किसी समय मेरी दोनों सुन्दर बांहें थीं, वही आज जरावस्था में दुर्बल पाडर वृक्ष की शाखाओं के समान हो गई हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥263॥

सुन्दर मुंदरी और स्वर्णालंकारों से विभूषित पहले मेरे हाथ रहते थे, वही आज जरावस्था में जड़ों की तरह गाँठ-गठीले हो गये हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥264॥

स्थूल, सुगोल, उन्नत, कभी मेरे दोनों स्तन सुशोभित होते थे, वही आज जरावस्था में पानी से रहित, लटकी हुई चमड़े की थैलियों के सदृश हो गये हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥265॥

सुन्दर, सुमार्जित, स्वर्ण-फलक के समान कभी मेरा शरीर चमकता था, वही आज जरावस्था में सूक्ष्म झुर्रियों से भरा हुआ है— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥266॥

''नागभोगसदिसोपमा ऊभो, सोभरे सु ऊरू पुरे मम।
ते जराय यथा वेळुनाळियो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥267॥
''सण्हनूपुरसुवण्णमण्डिता , सोभरे सु जङ्घा पुरे मम।
ता जराय तिलदण्डकारिव, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥268॥
''तूलपुण्णसदिसोपमा ऊभो, सोभरे सु पादा पुरे मम।
ते जराय फुटिता वलीमता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा॥269॥
''एदिसो अहु अयं समुस्सयो, जज्जरो बहुदुक्खानमालयो।
सोपलेपपतितो जराघरो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा'' ॥270॥

...अम्बपाली थेरी...।

2. रोहिनीथेरीगाथा-

''समणा'ति भोति सुपि,'समणा' ति पबुज्झसि।
समणानेव कित्तेसि, समणी नून भविस्ससि॥271॥

(संस्कृतच्छाया) - ''नागभोगसदृशोपमौ ऊभौ, शोभेते सुरूरु पुरे मम।
ते जरया यथा वेणुनाडिके, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥267॥
''श्लक्ष्णनूपुरसुवर्णमण्डिते, शोभेते सुजङ्घे पुरे मम।
ते जरया तिलदण्डिकेव, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥268॥
"तूलपुष्पसदृशोपमौ ऊभौ, शोभेते सुपादौ पुरे मम।
तौ जरया स्फुटितौ वलीमतौ, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥269॥
''एतादृश: अभूदयं समुच्छ्रय:, जर्जरो बहुदु:खस्यालय:।
सुप्रलेपपतितो जरागृह:, सत्यवादिवचनमनन्यथा॥270॥

2. '' 'श्रमण' इति भवती स्वपिति, श्रमणेति प्रबुद्ध्यसे।
श्रमणानामेव कीर्तयसि, श्रमणी नूनं भविष्यसि॥271॥

(हिन्दी)- हाथी की सूँड़ के समान किसी समय मेरी दोनों जांघें सुशोभित होती थीं, वही आज जरावस्था में बाँस की पोली नलियों के समान हो गई हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥267॥

सुन्दर घुंघरूओं और स्वर्णालंकारों से सजी हुई कभी मेरी पिंडलियां रहा करती थीं, वही आज जरा के कारण तिल के सूखे डंठल के समान हो गई हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥268॥

मेरे दोनों सुकोमल पैर कभी रुई की पिच्छी के समान (या रुई जैसे भरे हुए) हलके थे, वही आज जरावस्था में सम्पुटित होकर (चिचुक कर) झुर्रियों से भरे हुए हैं— सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥269॥

एक समय यह शरीर ऐसा था। इस समय यह जर्जर और अनेक दु:खों का आलय है। ऐसे जीर्ण घर के समान, जिसकी लीपन टूट-टूटकर नीचे गिर गई है। बिना लेपादि के यह जरा का घर शीघ्र ही इस प्रकार गिर जायगा, जैसे टूटी हुई लीपन वाला जीर्ण घर! —सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कभी मिथ्या नहीं होते॥270॥

रोहिणी! तेरे मुख में सदा यही रहता है, 'अहो! ये श्रमण!' तू मुझे सोते से भी जगा कर कहती है, 'पिताजी! इन श्रमणों को देख।' जब देखो, तू श्रमणों के ही गीत गाया करती है। क्या तू भी श्रमणी बनेगी?॥271॥

''विपुलं अन्नं च पानं च, समणानं पवेच्चसि।
रोहिनी दानि पुच्छामि, केन ते समणा पिया॥272॥
''अकम्मकामा अलसा, परदत्तूपजीविनो।
आसंसुका सादुकामा, केन ते समणा पिया''॥273॥
''चिरस्सं वत मं तात, समणानं परिपुच्छसि।
तेसं ते कित्तयिस्सामि, पञ्ञासीलपरक्कमं॥274॥
''कम्मकामा अनलसा, कम्मसेट्ठस्स कारका।
रागं दोसं पजहन्ति, तेन मे समणा पिया॥275॥
''तीणि पापस्स मूलानि, धुनन्ति सुचिकारिनो।
सब्बं पापं पहीनेसं, तेन मे समणा पिया॥276॥

(संस्कृतच्छाया) - ''विपुलम् अन्नञ्च पानञ्च, श्रमणानां प्रयच्छसि।
रोहिणी! इदानीं पृच्छामि, केन ते श्रमणा: प्रिया:॥272॥
''अकर्मकामा अलसा:, परदत्तोपजीविन:।
आशंसुका: स्वादुकामा:, केन ते श्रमणा: प्रिया:॥273॥
''चिरेण वत मां तात!, श्रमणानां परिपृच्छसि।
तेषां तं कीर्तिष्यामि, पञ्चशीलपराक्रमम्॥274॥
''कर्मकामा अनलसा:, कर्मश्रेष्ठस्य कारका:।
रागं दोषं प्रजहन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥275॥
''त्रीणि पापस्य मूलानि, धुनन्ति शुचिकारिण:।
सर्वं पापं प्रहीणमेतेषाम्, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥276॥

(हिन्दी)- श्रमणों को तू बहुत अन्नपानादि दान करती है। रोहिणी! मैं तुझसे पूछता हूँ— श्रमण जन तुझे इतने प्रिय क्यों हैं॥272॥

देख, ये भिक्षु कर्म (श्रम) नहीं करते, आलसी हैं, दूसरों के दिये अन्न पर जीने वाले हैं, दूसरों की आस कराने वाले हैं, स्वादिष्ट भोजन के लालची हैं, फिर भी ये श्रमण तुझे क्यों प्रिय हैं॥273॥

पिताजी! आपने बहुत बार मुझसे श्रमणों के विषय में पूछा है। आज मैं आपके सामने उनके ज्ञान, सदाचार और उनकी कर्मतत्परता का वर्णन करूँगी॥274॥

वे बहुत कर्म करने वाले हैं, अप्रमादी हैं, श्रेष्ठ कर्म को करने वाले हैं, राग-द्वेष को दूर हटाते हैं, इसीलिए श्रमणजन मुझे प्रिय हैं॥275॥

पाप के तीनों मूलों (राग, द्वेष, मोह) को वे धुनते हैं, हिलाते हैं, नष्ट करते हैं, वे शुचि कर्म करने वाले हैं, सब पाप उनके प्रहीण हो गए हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥276॥

''कायकम्मं सुचि नेसं, वचीकम्मं च तादिसं।
मनोकम्मं सुचि नेसं, तेन मे समणा पिया॥277॥
''विमला सङ्खमुत्ताव, सुद्धा सन्तरबाहिरा।
पुण्णा सुक्कान धम्मानं, तेन मे समणा पिया॥278॥
''बहुस्सुता धम्मधरा, अरिया धम्मजीविनो।
अत्थं धम्मं च देसेन्ति, तेन मे समणा पिया॥279॥
''बहुस्सुता धम्मधरा, अरिया धम्मजीविनो।
एकग्गचित्ता सतिमन्तो, तेन मे समणा पिया॥280॥
''दूरङ्गमा सतिमन्तो, मन्तभाणी अनुद्धता।
दुक्खस्सन्तं पजानन्ति, तेन मे समणा पिया॥281॥

(संस्कृतच्छाया) - ''कायकर्म शुचि: तेषाम्, वाचीकर्मञ्च तादृशम्।
मन: कर्म शुचि: तेषाम्, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥277॥
''विमला: शङ्खमुक्तैव, शुद्धा: सान्तरबाह्या:।
पूर्णा: शुक्लै: धर्मै:, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥278॥
''बहुश्रुता: धर्मधरा:, आर्या: धर्मजीविन:।
अर्थं धर्मञ्च उपदिशन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥279॥
''बहुश्रुता: धर्मधरा:, आर्या: धर्मजीविन:।
एकाग्रचित्ता: स्मृतिमन्त:, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥280॥
''दूरङ्गमा: स्मृतिमन्त:, मन्त्रभाणी अनुद्धता।
दु:खस्यान्तं प्रजानन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥281॥

(हिन्दी)- कायिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, वाचिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, मानसिक कर्म उनके विशुद्ध हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥277॥

शंख या मोती के समान वे विमल हैं; उनका बाहर भी विमल है, भीतर भी विमल है, सब सद्गुणों से वे पूर्ण हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥278॥

वे बहुश्रुत हैं, धर्मात्मा हैं, आर्य हैं, धर्माभ्यास ही उनकी उपजीविका है, धर्म और परमार्थ का वे उपदेश करते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥279॥

वे बहुश्रुत हैं, धर्मात्मा हैं, आर्य हैं, धर्माभ्यास ही उनकी उपजीविका है, वे एकाग्रचित्त और स्मृतिमान् (सावधान) हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥280॥

वे दूर-दूरांतर तक (उपदेश के लिए) जाने वाले हैं, स्मृतिमान् हैं, ज्ञान की बात बोलने वाले हैं और अचंचल हैं; दु:ख के अन्त को जानने वाले हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥281॥

''यस्मा गामा पक्कमन्ति, न विलोकेन्ति किञ्चनं।
अनपेक्खाव गच्छन्ति, तेन मे समणा पिया॥282॥
''न तेसं कोट्ठे ओपेन्ति, न कुम्भिं न खळोपियं।
परिनिट्ठितमेसाना, तेन मे समणा पिया॥283॥
''न ते हिरञ्ञं गण्हन्ति, न सुवण्णं न रूपियं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन मे समणा पिया॥284॥
''नानाकुला पब्बजिता, नानाजनपदेहि च।
अञ्ञमञ्ञं पियायन्ति, तेन मे समणा पिया''॥285॥
''अत्थाय वत नो भोति, कुले जातासि रोहिनी।
सद्धा बुद्धे च धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा॥286॥

(संस्कृतच्छाया) - ''यस्मात् ग्रामात् प्रक्रामन्ति, न विलोकयन्ति किञ्चनम्।
अनपेक्षा इव गच्छन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥282॥
"न तेषां कोष्ठे अवापयन्ति, न कुम्भिं न खलो प्रियम्।
परिनिष्ठितमैषणा:, तेन मे श्रमणा: प्रिया:"॥283॥
''न ते हिरण्यं गृह्णन्ति, न सुवर्णं न रुप्यम्।
प्रत्युत्पन्नेन यापयन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥284॥
''नानाकुला: प्रव्रजिता:, नानाजनपदैश्च।
अन्यमन्यं प्रीणयन्ति, तेन मे श्रमणा: प्रिया:॥285॥
''अर्थाय वत नो भवती!, कुले जातासि रोहिणी।
श्रद्धा बुद्धे च धर्मे च, सङ्घे च तीव्रगौरव:॥286॥

(हिन्दी)- जिस किसी गाँव में होकर वे गुजरते हैं, तो वे वहाँ अपने इधर-उधर कुछ नहीं देखते, पूर्ण अनासक्ति के साथ वे गमन करते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥282॥

(पार्थिव सम्पत्ति को इकट्ठा करने के लिए) उनके पास कोठे नहीं हैं, यहाँ तक कि घड़े और टोकरी आदि भी वे नहीं रखते। उनकी सारी एषणाएँ पूर्ण हो चुकी हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥283॥

अशर्फी, सोना, रुपया वे कुछ ग्रहण नहीं करते। भूत और भविष्य की चिन्ता छोड़ वे केवल वर्तमान में रमते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥284॥

नाना कुलों, नाना जनपदों से उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की है, फिर भी एक-दूसरे के साथ वे प्रेम से बरतते हैं, इसीलिए श्रमण-जन मुझे प्रिय हैं॥285॥

रोहिणी! मेरे मंगल के लिए ही तूने इस घर में जन्म लिया। बुद्ध, धर्म और संघ में तेरी श्रद्धा अत्यन्त गौरववती है॥286॥

''तुवं हेतं पजानासि, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं।
अम्हम्पि एते समणा, पटिगण्हन्ति दक्खिणं''॥287॥
''पतिट्ठितो हेत्थ यञ्ञो, विपुलो नो भविस्सति।
सचे भायसि दुक्खस्स, सचे ते दुक्खमप्पियं॥288॥
''उपेहि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घं च तादिनं।
समादियाहि सीलानि, तं ते अत्थाय हेहिति''॥289॥
''उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घं च तादिनं।
समादियामि सीलानि, तं मे अत्थाय हेहिति॥290॥
''ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं, सो इदानिम्हि ब्राह्मणो।
तेविज्जो सोत्तियो चम्हि, वेदगू चम्हि न्हातको''॥291॥ ... रोहिनी थेरी...।

(संस्कृतच्छाया) - ''त्वं हि एतं प्रजानासि, पुण्यक्षेत्रमनुत्तरम्।
वयमपि एते श्रमणाः, प्रतिगृह्णन्ति दक्षिणाम्॥287॥
''प्रतिष्ठितो हि अत्र यज्ञः, विपुलो नो भविष्यति।
सचेत् बिभेषि दुःखात्, सचेत् ते दुःखमप्रियम्॥288॥
उपेहि शरणं बुद्धम्, धर्मं सङ्घञ्च तादिनम्।
समाद्रियाहि शीलानि, तं ते अर्थाय भविष्यति॥289॥
''उपेमि शरणं बुद्धम्, धर्मं सङ्घञ्च तादिनम्।
समाद्रियामि शीलानि, तत् मे अर्थाय भविष्यति॥290॥
''ब्रह्मबन्धुः पुरे अभूवम्, स इदानीमहं ब्राह्मणः।
त्रैविद्यः श्रोत्रियः चास्मि, वेदगुः चास्मि स्नातकः॥291॥

(हिन्दी)- इसीलिए ये पुण्य के सर्वोत्तम क्षेत्र (भिक्षु-गण) तुझे विदित हैं। आज से मैं भी इन श्रमणों की सेवा में रत रहूँगा, ताकि ये मेरी दक्षिणा ग्रहण करें॥287॥

पिताजी! इनको दिया हुआ यज्ञ दान वृद्धि ही प्राप्त करेगा, यदि दुःख से आपको भय है, यदि दुःख आपको प्रिय नहीं है॥288॥

तो उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण लीजिए। शील-पालन का व्रत लीजिए, आपका मंगल होगा॥289॥

आज मैं उन सदृश (अद्वितीय गुणों वाले) बुद्ध, धर्म और संघ की शरण जाता हूँ, शील-पालन का व्रत लेता हूँ। यह मेरे लिए मंगलकारी हो॥290॥

पहले मैं नाम-मात्र का ब्राह्मण था, इस समय मैं सचमुच ब्राह्मण हूँ। आज मैं तीनों विद्याओं का ज्ञाता हूँ, श्रोत्रिय हूँ, वेदज्ञ हूँ, सच्चे अर्थों में स्नातक हूँ॥291॥

3. चापाथेरीगाथा-

''लट्ठिहत्थो पुरे आसि, सो दानि मिगलुद्दको।
आसाय पलिपा घोरा, नासक्खि पारमेतवे॥292॥
''सुमत्तं मं मञ्ञमाना, चापा पुत्तमतोसयि।
चापाय बन्धनं छेत्वा, पब्बजिस्सं पुनोपहं॥293॥
''मा मे कुज्झि महावीर, मा मे कुज्झि महामुनि।
न हि कोधपरेतस्स, सुद्धि अत्थि कुतो तपो॥294॥
''पक्कमिस्सञ्च नाळातो, कोध नाळाय वच्छति।
बन्धन्ती इत्थिरूपेन, समणे धम्मजीविनो''॥295॥
''एहि काळ निवत्तस्सु, भुञ्ज कामे यथा पुरे।
अहं च ते वसीकता, ये च मे सन्ति ञातका''॥296॥

(संस्कृतच्छाया) -3. ''लकुटहस्थः पुरे अभूवम्, स इदानीं मृगलुब्धकः।
आशायाः प्रलिप्तः घोरायाः, नाशक्यं पारहेतवे॥292॥
''सुमत्तां मां मन्यमाना, चापा पुत्रमतोषयत्।
चापायाः बन्धनं छेत्वा, प्रव्रजिष्यामि पुनरप्यहम्॥293॥
''मा मयि क्रुध्यतु महावीर!, मा क्रुध्यतु महामुनेः।
न हि क्रोधपरेतस्य, शुद्धिः अस्ति कुतः तपः॥294॥
''प्रक्रमिष्यामि च नालातः, कोऽत्र नालायां वाञ्छति।
बध्नन्ति स्त्रीरूपेण, श्रमणान् धर्मजीविनः॥295॥
''एहि काल! निवर्तस्व, भुङ्क्ष्व कामान् यथा पूर्वे।
अहञ्च तव वशीकृता, ये च मे सन्ति ज्ञातकाः॥296॥

(हिन्दी)- *उपक-* पहले का दंडधारी तपस्वी, आज मैं बहेलिया हूँ- - निश्चय ही तृष्णा के महापंक में पड़ कर मैं उससे पार निकलने में असमर्थ हुआ॥292॥

मुझे अपने सौंदर्य में मुग्ध समझकर, चापा अपने पुत्र को खिलाने के बहाने मेरा उपहास करती।चापा के बंधन को उच्छिन्न कर मैंने फिर प्रव्रज्या की शरण ली॥293॥

चापा- हे महावीर! हे महामुनि! मुझ पर क्रोधित मत होओ। क्रोध के वश में हुए पुरुष को शुद्धि प्राप्त नहीं होती, तप तो प्राप्त होगा ही कैसे॥294॥

मैं इस 'नाला' जगह को आज छोड़ दूँगी, अब कौन इस नाला गाँव में रहेगा? जहाँ धर्मजीवी संन्यासी स्त्री के सौंदर्य-पाश में बद्ध हो गए॥295॥

हे मेरे काले स्वामी (काल)! लौट जाओ! पहले की तरह ही कामों का भोग करो। मैं तुम्हारी दासी हूँ, मेरे भाई-बंधु भी तुम्हारा दासत्व करेंगे॥296॥

''एत्तो चापे चतुब्भागं, यथा भाससि त्वं च मे।
तयि रत्तस्स पोसस्स, उळारं वत तं सिया''॥297॥
''काळङ्गिनिंव तक्कारिं, पुप्फितं गिरिमुद्धनि।
फुल्लं दालिमलट्ठिंव, अन्तोदीपेव पाटलिं॥298॥
''हरिचन्दनलित्तङ्गिं, कासिकुत्तमधारिनिं।
तं मं रूपवतिं सन्तिं, कस्स ओहाय गच्छसि''॥299॥
''साकुन्तिकोव सकुणिं, यथा बन्धितुमिच्छति।
आहरिमेन रूपेन, न मं त्वं बाधयिस्ससि''॥300॥
''इमं च मे पुत्तफलं, काळ उप्पादितं तया।
तं मं पुत्तवतिं सन्तिं, कस्स ओहाय गच्छसि''॥301॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एतस्य चापे! चतुर्भागम्, यथा भाषसे त्वञ्च मम।
त्वयि रक्तस्य पुरुषस्य, उदारं वत तव स्यात्॥297॥
''काल! अङ्गिनीव *तक्कारिम्*, पुष्पितं गिरिमूर्धनि।
पुष्पितं दाडिमलकुटिकमिव, अन्तः दीपे इव पाटलिम्॥298॥
''हरिचन्दनलिप्ताङ्गिकाम्, काशिकोत्तमधारिणीम्।
तां मां रूपवतीं शान्तिम्, कस्मै त्यक्त्वा गच्छसि"॥299॥
''शाकुन्तिकेव शाकुनिकम्, यथा बन्धितुमिच्छति।
आहार्येण रूपेण, न मां त्वं बाधयिष्यसि॥300॥
''इदञ्च मे पुत्रफलम्, काल! उत्पादितं त्वया।
त्वमिमां पुत्रवतीं शान्तिम्, कस्मै उज्झित्वा गच्छसि॥301॥

(हिन्दी)- *उपक-* चापा! तू मुझे जितना देने को कहती है, उसका चतुर्थांश भी यदि तेरे प्रेम को चाहने वाला पुरुष पाए, तो उससे ही वह अपने को धन्य मानेगा॥297॥

चापा- हे मेरे काले स्वामी, गिरि-शिखर पर पुष्पित तक्कारि (जंगल जलेबी) वृक्ष के समान, या फूली दाड़िम वृक्ष की शाखा के समान, या द्वीप में उत्पन्न पाटलि (गुलाब) पुष्प के समान, मैं सौंदर्य और यौवन में परिपूर्ण हूँ॥298॥

तुम्हारे लिए मैं शरीर में पीत चन्दन का लेप करुँगी, काशी के बने रेशमी वस्त्र धारण करुँगी। स्वामी! इतनी रूपवती को छोड़कर तुम कहाँ जाओगे॥299॥

चापा! जिस तरह बहेलिया पक्षी के धर पकड़ने की चेष्टा करता है, उसी तरह तेरा सौन्दर्य रूप अब मुझे पहले की तरह बाँध नहीं सकेगा, तू अपने रूप का कितना ही प्रदर्शन कर ले॥300॥

हे मेरे काले स्वामी ! यह मेरा पुत्र रूपी फल है, देख इसका पिता तू ही है। इस पुत्र वाली को छोडकर तू कैसे जायेगा॥301॥

''जहन्ति पुत्ते सप्पञ्ञा, ततो ञाती ततो धनं।
पब्बजन्ति महावीरा, नागो छेत्वाव बन्धनं''॥302॥
''इदानि ते इमं पुत्तं, दण्डेन छुरिकाय वा।
भूमियं वा निसुम्भिस्सं, पुत्तसोका न गच्छसि''॥303॥
''सचे पुत्तं सिङ्गालानं, कुक्कुरानं पदाहिसि।
न मं पुत्तकत्ते जम्मि, पुनरावत्तयिस्ससि''॥304॥
''हन्द खो दानि भद्दन्ते, कुहिं काळ गमिस्ससि।
कतमं गामनिगमं, नगरं राजधानियो''॥305॥
''अहुम्ह पुब्बे गणिनो, अस्समणा समणमानिनो।
गामेन गामं विचरिम्ह, नगरे राजधानियो॥306॥

(संस्कृतच्छाया) - ''जहन्ति पुत्रान् सप्रज्ञाः, ततः ज्ञातयः ततो धनम्।
प्रव्रजन्ति महावीराः, नागः छेत्वेव बन्धनम्"॥302॥
''इदानीं तव अमुं पुत्रम्, दण्डेन छुरिकया वा।
भूमौ वा निस्वभ्रंसिष्ये, पुत्रशोकात् न गच्छसि॥303॥
''सचेत् पुत्रं श्रृगालेभ्यः, कुक्कुरेभ्यः प्रादास्यत्।
न मां पुत्रकृते यस्मै, पुनरावर्तिष्यसि॥304॥
''हन्त खलु इदानीं भदन्ते!, कुत्र कालं गमिष्यसि।
कतमं ग्रामनिगमम्, नगरं राजधान्यः॥305॥
''वयं पूर्वे गणिनः, अश्रमणाः श्रमणमानिनः।
ग्रामेण ग्रामं व्यचरम्, नगरे राजधानीषु॥306॥

(हिन्दी)- *उपक-* ज्ञानी जन सुत, धन, जन सबको छोड़ कर प्रव्रज्या ले लेते हैं, महावीर पुरुष इस संसार को इस प्रकार छोड़ जाते हैं, जैसे हाथी बंधनों को तोड़ कर मुक्त हो जाता है॥302॥

चापा- इसी क्षण मैं तेरे इस पुत्र को यदि डंडे या छुरी से मार कर धरती पर गिरा दूँ, तब तो पुत्र- शोक के भय से तू जा न सकेगा?॥303॥

उपनिष्ठुर नारी! यदि तू इस पुत्र को गीदड़ या शिकारी कुत्तों के मुख में भी डाल दे, तो भी मुझे लौटाने में समर्थ नहीं होगी॥304॥

चापा- हाय! यदि ऐसा ही है तो मेरे काले स्वामी! जाओ! तुम्हारा मंगल हो। पर यह तो बता जाओ कि तुम कहाँ जाओगे? किस गाँव में, किस नगर में या किस राजधानी में॥305॥

उपक- पहले मैं श्रमण न होते हुए भी अपने को श्रमण मानता था, और गाँव से गाँव, नगर से नगर और राजधानी से राजधानी में विचरण करता था॥306॥

''एसो हि भगवा बुद्धो, नदिं नेरञ्जरं पति।
सब्बदुक्खप्पहानाय, धम्मं देसेति पाणिनं।
तस्साहं सन्तिकं गच्छं, सो मे सत्था भविस्सति''॥307॥
''वन्दनं दानि वज्जासि, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणं च कत्वान, आदिसेय्यासि दक्खिणं''॥308॥
''एतं खो लब्भमम्हेहि, यथा भाससि त्वं च मे।
वन्दनं दानि ते वज्जं, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणं च कत्वान, आदिसिस्सामि दक्खिणं''॥309॥
''ततो च काळो पक्कामि, नदिं नेरञ्जरं पति।
सो अद्दसासि सम्बुद्धं, देसेन्तं अमतं पदं॥310॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एषः हि भगवान् बुद्धः, नदीं नैरञ्जनां प्रति।
सर्वदुःखप्रहाणाय, धर्मं देशयति प्राणिभिः।
तस्याहं सानिध्यं गमिष्यामि, स मे शास्ता भविष्यति॥307॥
''वन्दनमिदानीं वर्ज्यमसि, लोकनाथमनुत्तरम्।
प्रदक्षिणाञ्च कृत्वा, आदिशे दक्षिणम्॥308॥
''एतं खलु लब्धं अस्माभिः, यथा भाषसे त्वञ्च माम्।
वन्दनमिदानीं ते वर्ज्यम्, लोकनाथमनुत्तरम्।
प्रदक्षिणञ्च कृत्वा, आदेक्ष्यामि दक्षिणम्॥309॥
''ततश्च कालः प्रक्रमीत्, नदीं नेरञ्जनां प्रति।
स अद्राक्षीत् सम्बुद्धम्, देशयन्तममृतं पदम्॥310॥

(हिन्दी)- अब मैंने सुना है— उन भगवानृ बुद्ध ने नैरंजना (नेरंजना) नदी के तट पर प्राणिमात्र को सम्पूर्ण दु:ख-विमोचनकारी धर्म का उपदेश दिया है, मैं उन्हीं के पास जाऊँगा, वे मेरे शास्ता होंगे॥307॥

चापा- तो उन अद्वितीय, लोक-स्वामी के चरणों में मेरी भी वन्दना विज्ञापित करना। फिर लोक- स्वामी की प्रदक्षिणा कर, मेरी भी दक्षिणा उनके चरणों में अर्पित कर देना॥308॥

चापा! तेरी प्रार्थना को पूरा करना मेरा कर्त्तव्य है! तू जैसा कहती है, मैं वैसा ही करूँगा। अद्वितीय लोक-स्वामी को तेरी ओर से वन्दना विज्ञापित करूँगा। फिर उनकी प्रदक्षिणा कर मैं तेरी भी भेंट उनके चरणों में अर्पित कर दूँगा॥309॥

तदुपरान्त उपक नेरंजना नदी के किनारे पर गया। उसने देखा कि भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध अमृत (निर्वाण) पद का उपदेश कर रहे हैं॥310॥

''दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥311॥
''तस्स पादानि वन्दित्वा, कत्वान नं पदक्खिणं।
चापाय आदिसित्वान, पब्बजिं अनगारियं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥312॥ ... चापा थेरी...।

4. सुन्दरीथेरीगाथा-

''पेतानि भोति पुत्तानि, खादमाना तुवं पुरे।
तुवं दिवा च रत्तो च, अतीव परितप्पसि॥313॥
''साज्ज सब्बानि खादित्वा, सतपुत्तानि ब्राह्मणी।
वासेट्ठि केन वण्णेन, न बाळ्हं परितप्पसि''॥314॥
''बहूनि पुत्तसतानि, ञातिसङ्घसतानि च।
खादितानि अतीतंसे, मम तुय्हञ्च ब्राह्मण॥315॥

(संस्कृतच्छाया) - ''दु:खं दु:खसमुत्पादम्, दु:खस्य च अतिक्रमम्।
आर्यञ्चाष्टांगिकं मार्गम्, दु:खोपशमगामिनम्॥311॥
''तस्य पादौ वन्दित्वा, कृत्वा तं (सुगतं) प्रदक्षिणम्।
चापाया आदेशित्वात्, प्राव्राजिषमानगारिकम्।
तिस्रो विद्या अनुप्राप्ता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥312॥

4. ''प्रेतानि भवती! पुत्राणि, खादती त्वं पुरे।
त्वं दिवा च रात्रिश्च, अतीवं परितप्यसे॥313॥
''साद्य सर्वान् खादित्वा, शतपुत्रान् ब्राह्मणी।
वासिष्ठि! केन वर्णेन, न बाढं परितप्यसे"॥314॥
''बहूनि पुत्रशतानि, ज्ञातिसङ्घशतानि च।
खादितानि अतीते, मम तव च ब्राह्मण!॥315॥

(हिन्दी)- दु:ख का, दु:ख के हेतु का, दु:ख की निवृत्ति का और दु:ख-निवृत्ति के शमन-रूपी आर्य अष्टांगिक मार्ग का, उपदेश करते तथागत को उसने देखा॥311॥

उपक ने भगवान् के चरणों की वन्दना की। फिर उनकी प्रदक्षिणा कर उसने चापा की ओर से भी भगवान् की प्रदक्षिणा की और उन्हें प्रणाम अर्पित कर दिया तदुपरान्त भगवान् से प्रव्रज्या लेकर वह तीनों विद्याओं का ज्ञाता हो गया, उसने बुद्ध-शासन को पूरा किया॥312॥

सुन्दरी- सुजात-ब्राह्मणी वाशिष्ठी! पहले तू अपने पुत्रों को खाकर दिन-रात रोया करती थी,मृत पुत्रों के लिए आर्तनाद किया करती थी॥313॥

आज तू अपने सब सातों पुत्रों को खाकर भी शोक से अभिभूत क्यों नहीं होती?॥314॥

ब्राह्मण! तुम्हारे और मेरे दोनों के ही अतीत-काल में सैकड़ों पुत्र हुए और मर गए, सैकड़ों बंधु-बांधव हुए और मर गए॥315॥

''साहं निस्सरणं ञत्वा, जातिया मरणस्स च।
न सोचामि न रोदामि, न चापि परितप्पयिं''॥316॥
''अब्भुतं वत वासेट्ठि, वाचं भाससि एदिसिं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, गिरं भाससि एदिसिं''॥317॥
''एस ब्राह्मण सम्बुद्धो, नगरं मिथिलं पति।
सब्बदुक्खप्पहानाय, धम्मं देसेसि पाणिनं॥318॥
''तस्स ब्रह्मे अरहतो, धम्मं सुत्वा निरूपधिं।
तत्थ विञ्ञातसद्धम्मा, पुत्तसोकं ब्यपानुदिं''॥319॥
''सो अहम्पि गमिस्सामि, नगरं मिथिलं पति।
अप्पेव मं सो भगवा, सब्बदुक्खा पमोचये''॥320॥

(संस्कृतच्छाया) - ''साऽहं निःशरणं ज्ञात्वा, जात्याः मरणस्य च।
न शोचामि न रोदिमि, न चापि पर्यताप्सम्॥316॥
''अद्भुतं वत वासिष्ठि!, वाचं भाषसे एतादृशीम्।
कस्य त्वं धर्मं ज्ञात्वा, गिरं भाषसे एतादृशीम्॥317॥
''एषः ब्राह्मणः सम्बुद्धः, नगरी मिथिलां प्रति।
सर्वदुःखप्रहाणाय, धर्ममादिशत् प्राणिनः॥318॥
''तस्य ब्राह्मण! अर्हतो, धर्मं श्रुत्वा निरुपधिम्।
तत्र विज्ञातसद्धर्म, पुत्रशोकं ब्यपनुदम्॥319॥
''सोऽहमपि गमिष्यामि, नगरी मिथिलां प्रति।
अप्येव मां स भगवान्, सर्वदुःखात् प्रमोचयेत्॥320॥

(हिन्दी)- किन्तु जन्म और मरण की मुक्ति का मार्ग अब मुझे ज्ञात हुआ है, अतः अब मुझे न और शोक करना है, न विलाप करना है, और न करुण क्रंदन॥316॥

सुजात- वाशिष्ठी! तू बड़ी अद्भुत बात कह रही है। किससे उपदेश प्राप्त कर तू ऐसी वाणी कह रही है?॥317॥

वाशिष्ठी- ब्राह्मण! मिथिला नगर में उन भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध ने प्राणियों को सब दुःखों से मुक्ति देने वाला उपदेश दिया है॥318॥

उन्हीं पूर्ण पुरुष भगवान् के आवागमन-निरोधक उपदेश को सुनकर मुझे सद्धर्म का ज्ञान हुआ। उसी क्षण से मेरा पुत्र-शोक दूर हुआ॥319॥

सुजात! मैं भी मिथिला नगर जाऊँगा। कदाचित् वे भगवान् मेरे भी सब दुःखों को दूर कर दें॥320॥

''अद्दस ब्राह्मणो बुद्धं, विप्पमुत्तं निरूपधिं।
स्वस्स धम्ममदेसेसि, मुनि दुक्खस्स पारगू॥321॥
''दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं॥322॥
''तत्थ विञ्ञातसद्धम्मो, पब्बज्जं समरोचयि।
सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जा अफस्सयि॥323॥
''एहि सारथि गच्छाहि, रथं निय्यादयाहिमं।
आरोग्यं ब्राह्मणिं वज्ज, 'पब्बजि दानि ब्राह्मणो।
सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जा अफस्सयि''॥324॥
''ततो च रथमादाय, सहस्सञ्चापि सारथि।
आरोग्यं ब्राह्मणिवोच, ''पब्बजि दानि ब्राह्मणो।
सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जा अफस्सयि''॥325॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अद्राक्षीत् ब्राह्मणो बुद्धम्, विप्रमुक्तं निरूपधिम्।
स्वस्य धर्ममदिशत्, मुनिः दुःखस्य पारगम्॥321॥
''दुःखं दुःखसमुत्पादम्, दुःखस्य चातिक्रमम्।
आर्याष्टाङ्गिकं मार्गम्, दुःखोपशमगामिनम्॥322॥
''तत्र विज्ञातसद्धर्मः, प्रव्रज्यां समरोचत्।
सुजातः त्रिभिः रात्रिभिः, तिस्रो विद्या अस्पृशत्॥323॥
''एहि सारथि! गच्छाहि, रथं निर्यादय अमुम्।
आरोग्यं ब्राह्मणीं वर्ज, प्रव्रजित इदानीं ब्राह्मणः।
सुजातः त्रिभिः रात्रिभिः, तिस्रो विद्या अस्पृशत्॥324॥
''ततश्च रथमादाय, सहस्रञ्चापि सारथिः।
आरोग्यं ब्राह्मणिम् उवाच, प्राव्रजतेदानीं ब्राह्मणः।
सुजातः त्रिभिः रात्रिभिः, तिस्रो विद्या अस्पृशत्॥325॥

(हिन्दी)- मिथिला जाकर ब्राह्मण ने भगवान् बुद्ध का दर्शन प्राप्त किया, बुद्ध जो कि मुक्त हो गए हैं, और जिन्हें आवागमन नहीं है। सब दुःखों से पार गए उन मुनि ने उस ब्राह्मण को धर्मोपदेश दिया॥321॥

दुःख, दुःख की उत्पत्ति, दुःख के शमन और दुःख के शमनकारी आर्य अष्टांगिक मार्ग का उपदेश भगवान् ने दिया॥322॥

उससे ब्राह्मण को सद्धर्म का ज्ञान हुआ, उसने प्रव्रज्या का अवलम्बन लिया। तीन रातों के अन्दर ही (ध्यान कर) सुजात ने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया॥323॥

सारथि! रथ लेकर घर लौट जाओ। ब्राह्मणी को कुशल-मंगल कहना और मेरी ओर से बताना कि सुजात ब्राह्मण संसार त्याग कर विरक्त हो गया है और तीन रातों के अन्दर ही उसने तीनों विद्याएँ प्राप्त कर ली हैं॥324॥

तब सारथि रथ और सहस्र सम्पत्ति को लेकर घर लौट आया और ब्राह्मणी से कुशल-क्षेम कहने के बाद उसने कहा कि ब्राह्मण प्रव्रजित हो गया है। तीन रातों के अन्दर ही सुजात ने तीनों विद्याएँ स्पर्श(प्राप्त)कर ली॥325॥

''एतञ्चाहं अस्सरथं, सहस्सञ्चापि सारथि।
तेविज्जं ब्राह्मणं सुत्वा, पुण्णपत्तं ददामि ते''॥326॥
''तुय्हेव होत्वस्सरथो, सहस्सञ्चापि ब्राह्मणि।
अहम्पि पब्बजिस्सामि, वरपञ्ञस्स सन्तिके''॥327॥
''हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च, फीतञ्चिमं गहविभवं पहाय।
पिता पब्बजितो तुय्हं, भुञ्ज भोगानि सुन्दरि। तुवं दायादिका कुले''॥328॥
''हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च, रम्मं चिमं गहविभवं पहाय।
पिता पब्बजितो मय्हं, पुत्तसोकेन अट्टितो।
अहम्पि पब्बजिस्सामि, भातुसोकेन अट्टिता''॥329॥
''सो ते इज्झतु सङ्कप्पो, यं त्वं पत्थेसि सुन्दरी।
उत्तिट्ठपिण्डो उञ्छो च, पंसुकूलञ्च चीवरं।
एतानि अभिसम्भोन्ती, परलोके अनासवा''॥330॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एतञ्चाहमश्वरथम्, सहस्रञ्चापि सारथि!
त्रैविद्यं ब्राह्मणं श्रुत्वा, पुर्णपात्रं ददामि ते॥326॥
''तवैव भवतु अश्वरथः, सहस्रञ्चापि ब्राह्मणि!
अहमपि प्रव्रजिस्यामि, वरप्रज्ञस्य सन्तिके॥327॥
''हस्तिनं गाम् अश्वं मणिकुण्डलञ्च, स्फीतमिदं गृहविभवं प्रहाय।
पिता प्रव्रजित तव, भुङ्क्ष्वभोगान् सुन्दरि! त्वमेव दामादिका कुले॥328॥
''हस्तिनं गाम् अश्वं मणिकुण्डलञ्च, रम्यञ्चेदं गृहविभवं प्रहाय।
पिता प्रव्रजित मम, पुत्रशोकेन अर्तितः।
अहमपि प्रव्रजिस्यामि, भ्रातृशोकेन अर्तितः॥329॥
''स तव सिध्यतु सङ्कल्पो, यं त्वं प्रार्थयसे सुन्दरी।
उच्छिष्टपिण्डं भिक्षाञ्च, पांशुकूलञ्च चीवरम्।
एतानि अभिसम्भवन्ती, परलोके अनास्रवा॥330॥

(हिन्दी)- *सुन्दरी की माता-* सारथि! यह समाचार सुनकर कि ब्राह्मण ने तीनों विद्याओं को प्राप्त कर लिया है, मैं तुझे पूर्ण (दान) पात्र देती हूँ, इस अश्व, रथ और सहस्र धन, सबको मैं तुझे दान करती हूँ॥326॥

सारथी- ब्राह्मणी! ये अश्व, रथ और सहस्र धन आपके ही पास रहें। मैं भी श्रेष्ठ ज्ञानी के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करूँगा॥327॥

सुन्दरी की माता- सुन्दरी! हाथी, गौ और मणि- कुण्डलों से भरे इस घर को छोड़ कर तेरे पिता ने प्रव्रज्या ग्रहण की है। सुन्दरी! इस समय यह सभी सम्पत्ति तेरी है। तू ही इसकी एकमात्र उत्तराधिकारिणी है। तू इसका उपभोग कर॥328॥

सुन्दरी- हाथी, गौ और मणि-कुण्डलों आदि से भरे हुए इस सुरम्य घर और विस्तृत जायदाद को पुत्र-शोक से दुःखी होकर मेरे पिता ने त्याग दिया और प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। मैं भी अपने भाई की मृत्यु के शोक में प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी॥329॥

सुन्दरी की माता- सुन्दरी! तेरी इच्छा पूर्ण हो! तेरा अभिलषित संकल्प सफल हो, दूसरों के भोजन से बची हुई भिक्षा और धूल-धूलसरित चीवर (भिक्षुणी-वस्त्र) तुझे चित्त-मलों से मुक्त करेंगे, परलोक में शान्ति देंगे॥330॥

''सिक्खमानाय मे अय्ये, दिब्बचक्खु विसोधितं।
पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे॥331॥
''तुवं निस्साय कल्याणी, थेरी सङ्घस्स सोभने।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं॥332॥
''अनुजानाहि मे अय्ये, इच्छे सावत्थि गन्तवे।
सीहनादं नदिस्सामि, बुद्धसेट्ठस्स सन्तिके''॥333॥
''पस्स सुन्दरि सत्थारं, हेमवण्णं हरित्तचं।
अदन्तानं दमेतारं, सम्बुद्धमकुतोभयं''॥334॥
''पस्स सुन्दरिमायन्तिं, विप्पमुत्तं निरूपधिं।
वीतरागं विसंयुत्तं, कतकिच्चमनासवं॥335॥
''बाराणसीतो निक्खम्म, तव सन्तिकमागता।
साविका ते महावीर, पादे वन्दति सुन्दरी''॥336॥

(संस्कृतच्छाया) - ''शिक्षमानाया: माम आर्ये!, दिव्यचक्षु: विशोधितम्।
पूर्वं निवासं जानामि, यत्र मया ऽशितं पुरे॥331॥
''त्वां नि:स्राय कल्याणी, थेरी सङ्घस्य शोभने।
तिस्र: विद्या अनुप्राप्ता:, कृतं बुद्धस्य शासनम्॥332॥
''अनुजानीहि मामार्ये, इच्छामि श्रावस्तीं गन्तुम्।
सिंहनादं नदिष्यामि, बुद्धश्रेष्ठस्य सन्तिके॥333॥
''पश्य सुन्दरि! शास्तारम्, हेमवर्णं हरित्वचम्।
अदान्तानां दमयितारम्, सम्बुद्धमकुतोभयम्॥334॥
''पश्य सुन्दरीमागताम्, विप्रमुक्तां निरुपधिम्।
वीतरागां विसंयुक्ताम्, कृतकृत्यामनास्रवाम्॥335॥
''वाराणसीत: निष्क्रमन्, तव सन्तिकमागता।
श्राविका तस्मै महावीर!, पादौ वन्दति सुन्दरी॥336॥

(हिन्दी)- *सुन्दरी-* आर्ये! तीनों जिज्ञासाओं से मैं शिक्षित हूँ। मेरे शोधित हुए दिव्य चक्षु हैं। पूर्वजन्म के निवासों को, जहाँ-जहाँ मुझे रहना पड़ा मैं जानती हूँ॥331॥

मंगलमयी देवि! तू भाणी-संघ की भूषण-स्वरूपा है! तेरा ही आश्रय लेकर मैं तीनों विद्याओं की ज्ञाता हुई और बुद्ध-शासन को मैंने पूरा कर लिया॥332॥

आर्ये! अनुमति दो! मैं श्रावस्ती जाने की इच्छुका हूँ। सर्वोत्तम बुद्ध के समीप जाकर मैं सिंहनाद करुँगी॥333॥

सुन्दरी! देख, ये सोने की-सी कान्ति वाले, पर्यवदात शरीर-छवि वाले, त्रिलोकी के शिक्षक हैं। ये असंयतों को बनाने वाले, पूर्ण निर्भय पुरुष, भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध हैं॥334॥

देव! सुन्दरी आयी है। अवलोकन करो, यह सुन्दरी जन्म-मृत्यु से पूर्ण मुक्त है, यह राग-मुक्त है, सब कर्तव्यों को पूरा कर चुकी है। यह पूर्ण अनासक्त और निष्काम हो गई है॥335॥

हे महावीर! मैं सुन्दरी, वाराणसी से आपके पास आयी हूँ। मैं शिष्या आपकी वन्दना करती हूँ॥336॥

''तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुय्हं धीताम्हि ब्राह्मण।
ओरसा मुखतो जाता, कतकिच्चा अनासवा''॥337॥
''तस्सा ते स्वागतं भद्दे, ततो ते अदुरागतं।
एवञ्हि दन्ता आयन्ति, सत्थु पादानि वन्दिका।
वीतरागा विसंयुत्ता, कतकिच्चा अनासवा''॥338॥... सुन्दरी थेरी...।

5. सुभाकम्मारधीतुथेरीगाथा-

''दहराहं सुद्धवसना, यं पुरे धम्ममस्सुणिं।
तस्सा मे अप्पमत्ताय, सच्चाभिसमयो अहु॥339॥
''ततोहं सब्बकामेसु, भुसं अरतिमज्झगं।
सक्कायस्मिं भयं दिस्वा, नेक्खम्ममेव पीहये॥340॥
''हित्वानहं ञातिगणं, दासकम्मकरानि च।
गामखेत्तानि फीतानि, रमणीये पमोदिते॥341॥

(संस्कृतच्छाया) - ''त्वं बुद्धः त्वं शास्ता, तव दुहितास्मि ब्राह्मण!
औरसा मुखतः जाता, कृतकृत्या अनास्रवा॥337॥
''तस्मात् तव स्वागतं भद्रे!, ततः त्वाम् अदुरादागताम्।
एवं हि दान्ता आयान्ति, शास्तुः पादौ वन्दिका।
वीतरागा विसंयुक्ता, कृतकृत्या अनास्रवाः॥338॥

5. ''तरुण्यहं शुद्धवसना, यत् पुरा धर्ममश्रौषम्।
तस्याः मम अप्रमत्तायाः, सत्याभिसमयोऽभवत्॥339॥
''ततोऽहं सर्वकामेषु, भृशं अरतिमध्यगम्।
सत्यकाये भयं दृष्ट्वा, निष्कर्म्यममेव प्रैच्छत्॥340॥
''हित्वा अहं ज्ञातिगणम्, दासकर्मकरान् च।
ग्रामक्षेत्राणि स्फीतानि, रमणीये प्रमोदितम्॥341॥

(हिन्दी)- आप बुद्ध हैं, त्रिलोकी के शास्ता हैं, ज्ञानी ब्राह्मण हैं। मैं आपकी दुहिता हूँ! आपके हृदय से उत्पन्न! आपके मुख से उत्पन्न! मैं आपकी सगी पुत्री हूँ। मैं सम्पूर्ण कर्त्तव्यों को समाप्त कर निष्पाप हो गई हूँ॥337॥
कल्याणी! आ, तेरा स्वागत है। तू अ-दूर से हो आयी है। जो आत्म-संयमी हैं, राग-मुक्त हैं, अनासक्त हैं,जिनके कर्तव्य-कर्म पूरे हो गए, वे ही इसप्रकार आकर शास्ता के चरणों की वन्दना करते हैं॥338॥
मुझ तरुणी, निर्मल-वासना ने जिस दिन धर्म का श्रवण किया, उसी दिन इस अप्रमादिनी को सत्य का वास्तविक साक्षात्कार प्राप्त हो गया॥339॥
उसी दिन से मुझे विषय-भोगों में गम्भीर अनासक्ति पैदा हुई। काया (व्यक्तित्व) को सत्य मानने के मिथ्या विचार में भय देखकर मैं निष्कामता में मन लगाने वाली हुई॥340॥
भाई-बन्धु, सम्बन्धी जनों, दास, सेवक, ग्राम, विस्तृत और समृद्ध खेत, जीवन की सभी रमणीय और प्रमोदकारी वस्तुएँ और विपुल सम्पत्ति, सबको छोड़कर मैं प्रव्रजित हो गई॥341॥

''पहायहं पब्बजिता, सापतेय्यमनप्पकं।
एवं सद्धाय निक्खम्म, सद्धम्मे सुप्पवेदिते॥342॥
''नेतं अस्स पतिरूपं, आकिञ्चञ्ञम्हि पत्थये।
यो जातरूपं रजतं, छड्डेत्वा पुनरागमे॥343॥
''रजतं जातरूपं वा, न बोधाय न सन्तिया।
नेतं समणसारुप्पं, न एतं अरियद्धनं॥344॥
''लोभनं मदनञ्चेतं, मोहनं रजवड्ढनं।
सासङ्कं बहुआयासं, नत्थि चेत्थ धुवं ठिति॥345॥
''एत्थ रत्ता पमत्ता च, सङ्किलिट्ठमना नरा।
अञ्ञमञ्ञेन ब्यारुद्धा, पुथु कुब्बन्ति मेधगं॥346॥

(संस्कृतच्छाया) - ''प्रहायाहं प्रव्रजिता, स्वापतेयमनल्पकम्।
एवं श्रद्धया निष्क्रम्य, सद्धर्मे सुप्रवेदिते॥342॥
''नैतद् अस्य प्रतिरूपमाकिञ्चन्यमस्मिन् प्रार्थये।
यः जातरूपं रजतम्, त्यक्त्वा पुनरागमे॥343॥
''रजतं जातरूपं वा, न बोधाय न शान्त्यै।
नैतद् श्रमणसारूप्यम्, नैतद् आर्यधनम्॥344॥
''लोभनं मदनञ्चैत्, मोहनं रजोवर्धनम्।
साशङ्कां बहु आयासम्, नास्ति चात्र ध्रुवं स्थितिः॥345॥
''अत्र रताः प्रमत्ताश्च, शंक्लिश्यमानाः नराः।
अन्योऽन्यं व्यारुद्धः, पृथु कुर्वन्ति मेधगं (कलहम्)॥346॥

(हिन्दी)- पूर्ण श्रद्धा से मैंने संसार का त्याग कर सद्धर्म का वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया। सोने-चाँदी से मिलने वाले सब भोगों को छोड़कर मैंने अकिंचनता में मन लगाया॥342॥

मुझे कोई सांसारिक अभिलाषाएँ नहीं रहीं। अब मेरे लिए यह उचित नहीं कि इस सब को छोड़कर मैं तुम्हारे बीच में आकर रहूँ॥343॥

सोने और चाँदी, न ज्ञान के लिए हैं और न शान्ति के लिए, न ये श्रमणों के अनुकूल ही हैं और न ये श्रेष्ठ (आर्य) धन ही हैं॥344॥

इनके प्राप्त होने पर लोभ, मोह विषयेच्छा और रजोगुण ही बढ़ते हैं। आशांकाएँ और हैरानी- परेशानियाँ पैदा होती हैं, फिर ये सदा स्थिर भी नहीं रहते॥345॥

सोने-चाँदी में आसक्त मनुष्य इच्छाओं में मतवाले हो जाते हैं। उनके चित्त में क्लेश पैदा हो जाते हैं। भोग-लालायित मनुष्य एक-दूसरे से संघर्ष करते हुए आपस में बड़ी शत्रुता भी बाँध लेते हैं॥346॥

''वधो बन्धो परिक्लेसो, जानि सोकपरिद्दवो।
कामेसु अधिपन्नानं, दिस्सते ब्यसनं बहुं॥347॥
''तं मं ञाती अमित्ताव, किं वो कामेसु युञ्जथ।
जानाथ मं पब्बजितं, कामेसु भयदस्सिनिं॥348॥
''न हिरञ्ञसुवण्णेन, परिक्खीयन्ति आसवा।
अमित्ता वधका कामा, सपत्ता सल्लबन्धना॥349॥
''तं मं ञाती अमित्ताव, किं वो कामेसु युञ्जथ।
जानाथ मं पब्बजितं, मुण्डं सङ्घाटिपारुतं॥350॥
''उत्तिट्ठपिण्डो उञ्छो च, पंसुकूलञ्च चीवरं।
एतं खो मम सारुप्पं, अनगारूपनिस्सयो॥351॥

(संस्कृतच्छाया) - ''वधो बन्धः परिक्लेशः, जानीहि शोकपरिद्रवः।
कामेषु अधिपन्नानाम्, दृश्यते व्यसनं बहु॥347॥
''त्वां मां ज्ञाती अमित्रतैव, किं वो कामेषु युञ्जत।
जानीत मां प्रव्रजिताम्, कामेषु भयदर्शिनीम्॥348॥
''न हिरण्यसुवर्णेन, परिक्षीयन्ति आस्रवाः।
अमित्रताः वधकाः कामाः, सपत्नाः शूलबन्धनाः॥349॥
''त्वां मां ज्ञाती अमित्रैव, किं वो कामेषु युञ्जत।
जानीत मां प्रव्रजिताम्, मुण्डं सङ्घाटिपारुताम्॥350॥
''उच्छिष्टपिण्ड उञ्छश्च, पांशुकूलञ्च चीवरम्।
एतत् खलु मम सारूपमनागारोपनिश्रयः॥351॥

(हिन्दी)- वध, बंधन, पीड़ा क्लेश, शोक एवं विनाश— कामासक्त मनुष्यों की यही गति है। कामासक्त मनुष्य बहुत पीड़ाएँ भुगतते देखे जाते हैं॥347॥

तो फिर मेरे भाई-बन्धुओं! किसलिए तुम मेरे शत्रु बनकर मुझे विषयों में लगाना चाहते हो? क्या तुम नहीं जानते कि विषयों में भय और अमंगल देखकर ही मैं प्रव्रजित हुई हूँ॥348॥

सोने चाँदी के द्वारा चित्त-मल नाश नहीं किए जा सकते। निश्चय ही भोग-समूह बड़े शत्रु, निर्दय, प्राणहारी हैं। मनुष्य को जैसे शर-बिद्ध करके डाल देते हैं, उसे बंधनदशा में ले जाते हैं॥349॥

तो फिर मेरे भाई-बन्धुओं! किसलिए तुम मेरे शत्रु बनकर मुझे विषयों में लगाना चाहते हो? जानते नहीं, मैं मुँड़े हुए सिर वाली हूँ, चीवर वसना हूँ, प्रव्रजित हूँ॥350॥

दूसरों से बचे हुए अन्न को जहाँ-तहाँ से भिक्षा में पाना और म्लान चीवर पहनना, यही मेरे लिए अनुकूल है। अनागारिक जीवन की यही उचित सामग्री है॥351॥

''वन्ता महेसीहि कामा, ये दिब्बा ये च मानुसा।
खेमट्ठाने विमुत्ता ते, पत्ता ते अचलं सुखं॥352॥
''माहं कामेहि सङ्गच्छिं, येसु ताणं न विज्जति।
अमित्ता वधका कामा, अग्गिक्खन्धूपमा दुखा॥353॥
''परिपन्थो एस भयो, सविघातो सकण्टको।
गेधो सुविसमो चेसो, महन्तो मोहनामुखो॥354॥
''उपसग्गो भीमरूपो, कामा सप्पसिरूपमा।
ये बाला अभिनन्दन्ति, अन्धभूता पुथुज्जना॥355॥
''कामपङ्केन सत्ता हि, बहू लोके अविद्दसू।
परियन्तं न जानन्ति, जातिया मरणस्स च॥356॥

(संस्कृतच्छाया) - ''*वन्ता* (वमनम्) महर्षिभिः कामाः, ये दिव्याः ये च मानुषाः।
क्षेमस्थाने विमुक्ताः ते, प्राप्ताः ते अचलं सुखम्॥352॥
''माहं कामेभ्यः सङ्गत्य, येषु त्राणं न विद्यते।
अमित्रताः वधकाः कामाः, अग्निस्कन्धोपमाः दुःखाः॥353॥
''परिपन्थ एष भयः, सविघातः सकण्टकः।
गेधः सुविषमः चैषः, महन्तः मोहनामुखः॥354॥
''उपसर्गः भीमरूपः, कामाः सर्पशिरोपमाः।
ये बाला अभिनन्दन्ति, अन्धभूताः पृथुज्जनाः॥355॥
''कामपङ्केन सत्त्वाः हि, बहु लोके अविद्वत्।
पर्यन्तं न जानन्ति, जात्याः मरणस्य च॥356॥

(हिन्दी)- जितने भी मानुषी या स्वर्गीय भोग हैं, जिन महर्षियों ने उनकी तृष्णा को छोड़ दिया, उन्हें वमन की तरह फेंक दिया, वही शांत और विमुक्त हैं, उन्होंने ही अचल सुख को पाया है॥352॥

मुझे भोगों में मत ललचाओ, भोगों में पड़ कर मनुष्य का त्राण नहीं है। भोग-समूह प्राणहारी शत्रु हैं, हत्यारे हैं; प्रज्वलित अग्निपुंज के समान दुःखदायी हैं॥353॥

भोग-समूह विघ्नों से भरे हुए हैं, भोगजनक हैं, जुगुप्सा-मूलक हैं, कंटकाकीर्ण हैं।वे विषम, अन्धी गुफा के समान हैं, मनुष्यों के ज्ञान का नाश करने वाले हैं॥354॥

भोग-समूह भीषण भय हैं, ऊँचे फन उठाए हुए सर्प की तरह इन भोगों का भी डसना बड़ा भयंकर है। केवल निर्बोध, अज्ञानांध और संसारासक्त प्राणियों को ही ये प्रीतिकर दिखाई पड़ते हैं॥355॥

लोक के बहुसंख्यक ज्ञान-हीन मनुष्य जो विषय-रूपी कीचड़ में लिपटते रहते हैं, जन्म और मृत्यु के मुक्ति-मार्ग को नहीं जानते॥356॥

''दुग्गतिगमनं मग्गं, मनुस्सा कामहेतुकं।
बहुं वे पटिपज्जन्ति, अत्तनो रोगमावहं॥357॥
''एवममित्तजनना, तापना संकिलेसिका।
लोकामिसा बन्धनीया, कामा मरणबन्धना॥358॥
''उम्मादना उल्लपना:, कामा चित्तप्पमद्दिनो।
सत्तानं सङ्किलेसाय, खिप्पं मारेन ओड्डितं॥359॥
''अनन्तादीनवा कामा, बहुदुक्खा महाविसा।
अप्पस्सादा रणकरा, सुक्कपक्खविसोसना॥360॥
''साहं एतादिसं कत्वा, ब्यसनं कामहेतुकं।
न तं पच्चागमिस्सामि, निब्बानाभिरता सदा॥361॥

(संस्कृतच्छाया) - ''दुर्गतिगमनं मार्गम्, मनुष्या: कामहेतुकम्।
बहु वै प्रतिपद्यन्ते, आत्मने रोगमावाहम्॥357॥
ए''वममित्रजनना:, तापना: संक्लेशिका:।
लोकामृषा: बन्धनीया:, कामा: मरणबन्धना:॥358॥
''उन्मादना उल्लपना, कामा: चित्तप्रमर्दिन:।
सत्त्वानां संक्लेशाय, क्षिप्रं मारेण अपदृतम्॥359॥
''अनन्तादीनवा: कामा:, बहुदु:खा: महाविषा:।
अप्रसादा: रणकरा:, शुक्लपक्षविशोषणा:॥360॥
''साहं एतादृशं कृत्वा, व्यसनं कामहेतुकम्।
न तं प्रति आगमिष्यामि, निर्वाणाभिरता: सदा॥361॥

(हिन्दी)- भोग-तृष्णा से ही मनुष्य दुर्गति-गामी मार्ग में पड़ते हैं। मनुष्य अपने बहुत से रोगों को अपने आप ही बुलाते हैं॥357॥

भोग-तृष्ण ही से शत्रु प्राप्त होते हैं, चित्त-संताप पैदा होते हैं, क्लेश पैदा होते हैं; भोग-समूह ही मनुष्य को जन्म और मृत्यु के बन्धन में डालते हैं॥358॥

भोग-तृष्णा से ही उन्मत्तता और प्रलाप की उत्पत्ति है। यही चित्त को मथ डालती है। प्राणियों के क्लेश के लिए यही मार का पाश फैलाती है॥359॥

भोग-समूह अनंत दुष्परिणामों के आकर हैं, बहुत दु:खों से भरे हुए हैं, महा विष वाले हैं। ये अशांतिकर,लड़ाई-झगड़ा कराने वाले और (मानव-जीवन के) उज्वल पक्ष का शोषण करने वाले हैं॥360॥

इसलिए इतनी दूर अग्रसर होकर, अब मैं तो तृष्णा-जनित व्यसन में फिर पड़ूँगी नहीं। निर्वाण में ही अभिरत रहने में मुझे आनन्द है॥361॥

''रणं करित्वा कामानं, सीतिभावाभिकङ्खिनी।
अप्पमत्ता विहस्सामि, सब्बसंयोजनक्खये॥362॥
''असोकं विरजं खेमं, अरियट्ठङ्गिकं उजुं।
तं मग्गं अनुगच्छामि, येन तिण्णा महेसिनो''॥363॥
''इमं पस्सथ धम्मट्ठं, सुभं कम्मारधीतरं।
अनेजं उपसम्पज्ज, रुक्खमूलम्हि झायति॥364॥
''अज्जट्ठमी पब्बजिता, सद्धा सद्धम्मसोभना।
विनीतुप्पलवण्णाय, तेविज्जा मच्चुहायिनी॥365॥
''सायं भुजिस्सा अनणा, भिक्खुनी भावितिन्द्रिया।
सब्बयोगविसंयुत्ता, कतकिच्चा अनासवा॥366॥

(संस्कृतच्छाया) - ''रणं कृत्वा कामाणाम्, शीतिभावाभिकाँक्षिणी।
अप्रमत्ता: विहष्यामि, सर्वसंयोजनक्षये॥362॥
''अशोकं विरजं क्षेममार्याष्टाङ्गिकम् ऋजुम्।
तं मार्गम् अनुगच्छामि, येन तीर्णा: महर्षिन:॥363॥
''इमं पश्यत धर्मार्थम्, शुभं कर्मारधीतरम्।
अनेजम् उपसम्पद्य, वृक्षमूले ध्यायति॥364॥
''अद्याष्टमी प्रव्रजिता, श्रद्धा सद्धर्मशोभना।
विनीतोत्पलवर्णया, त्रैविद्या मृत्युहारिणी॥365॥
''सेयं भुजिस्या अनऋणा:, भिक्षुणी भावितेन्द्रिया।
सर्वयोगविसंयुक्ता, कृतकृत्या अनास्रवा॥366॥

(हिन्दी)- विषय-वासनाओं के साथ युद्ध करती हुई अब तो मैं परम शांति की इच्छका हूँ। एकाग्रचित्त और अप्रमादिनी होकर अब तो मैं संयोजनों (बंधनों) के उच्छिन्न करने में ही लगी हूँ॥362॥

इस मार्ग में शोक नहीं है, मल नहीं है, अमंगल नहीं है। जिस ऋजु, विमल, मंगलकारी आर्य अष्टांगिक मार्ग के द्वारा महर्षि लोग संसार से पार चले गए, उसी के अनुसरण में मैं लगी हूँ॥363॥

देखो! यह सुनार-कन्या शुभा धर्म में स्थित होकर, वासनारहित, वृक्ष के नीचे ध्यान-लीन बैठी है॥364॥

जिस दिन इसने श्रद्धापूर्वक उत्पलवर्णा से विनीत होकर प्रव्रज्या ग्रहण की और सद्धर्म की शोभा को बढ़ाया, उसका यह आठवाँ दिन है, जबकि इसने तीनों विद्याओं का साक्षात्कार कर लिया, मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली॥365॥

अब यह भिक्षुणी मुक्त और अनृणी हुई! क्योंकि श्रद्धादि आध्यात्मिक शक्तियों का इसने पूर्ण विकास कर लिया, सब आसक्तियों से यह मुक्त हुई, इसके सब कर्तव्य पूरे हुए, यह आस्रव-विमुक्त हुई॥366॥

''तं सक्को देवसङ्घेन, उपसङ्कम्म इद्धिया।
नमस्सति भूतपति, सुभं कम्मारधीतरन्ति॥367॥

... सुभा कम्मारधीता थेरी...।

वीसतिनिपातो निट्ठितो।

14. तिंसनिपातो

1. सुभाजीवकम्बवनिकाथेरीगाथा-

''जीवकम्बवनं रम्मं, गच्छन्तिं भिक्खुनिं सुभं।
धुत्तको सन्निवारेसि, तमेनं अब्रवी सुभा॥368॥
''किं ते अपराधितं मया, यं मं ओवरियान तिट्ठसि।
न हि पब्बजिताय आवुसो, पुरिसो सम्फुसनाय कप्पति॥369॥
''गरुके मम सत्थुसासने, या सिक्खा सुगतेन देसिता।
परिसुद्धपदं अनङ्गणं, किं मं ओवरियान तिट्ठसि॥370॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तं शक्र: देवसङ्घेन, उपसङ्क्रम्य ऋद्ध्या।
नमस्यति भूतपति:, शुभां कर्मारधीतरमिति॥367॥

1. ''जीवकाम्रवनं रम्यम्, गच्छन्तीं भिक्षुणीं शुभाम्।
धूर्तक: सन्न्यवारयत्, तामेनाम् अब्रवीत् शुभा॥368॥
''किं तव अपराधितं मया, येन मम अपवार्य तिष्ठसि।
न हि प्रव्रजिताया आयुष्मन्!, पुरुष: संस्पर्शनाय कल्पते॥369॥
''गम्भीरे मम शास्तृशासने, या शिक्षा सुगतेन देशिता।
परिशुद्धपदं अनङ्गणम्, किं मम अपवार्य तिष्ठसि॥370॥

(हिन्दी)- देखो, भूपति इन्द्र अपने समग्र ऐश्वर्य के साथ, देवगणों के सहित आकर इस सुनार-कन्या शुभा की वन्दना कर रहा है॥367॥

जीवके के सुरम्य आम्रवन की ओर जाती हुई शुभा नाम की भिक्षुणी को मार्ग में एक लम्पट पुरुष ने रोका। शुभा ने उससे कहा—॥368॥

भाई! मैंने तेरा क्या अपराध किया है जो तू मुझे रास्ते में रोकता है? क्या तू नहीं जानता कि विरक्त भिक्षुणियों को स्पर्श करना पुरुषों के लिए अनुचित है?॥369॥

भगवान् बुद्ध के उपदेश से शिक्षित होकर मैं शास्ता के गौरववान् शासन में स्थित हूँ; सुगत ने मुझे शिक्षा दी है। मेरा पद निर्मल और पवित्र है; तू मेरा मार्ग क्यों रोकता है?॥370॥

''आविलचित्तो अनाविलं, सरजो वीतरजं अनङ्गणं।
सब्बत्थ विमुत्तमानसं, किं मं ओवरियान तिट्ठसि''॥371॥
''दहरा च अपापिका चसि, किं ते पब्बज्जा करिस्सति।
निक्खिप कासायचीवरं, एहि रमाम सुपुप्फिते वने॥372॥
''मधुरञ्च पवन्ति सब्बसो, कुसुमरजेन समुट्ठिता दुमा।
पठमवसन्तो सुखो ऽतु, एहि रमाम सुपुप्फिते वने॥373॥
''कुसुमितसिखरा च पादपा, अभिगज्जन्तिव मालुतेरिता।
का तुय्हं रति भविस्सति, यदि एका वनमोगहिस्ससि॥374॥
''वाळमिगसङ्घसेवितं , कुञ्जरमत्तकरेणुलोळितं।
असहायिका गन्तुमिच्छसि, रहितं भिंसनकं महावनं॥375॥

(संस्कृतच्छाया) - ''आविलचित्त: अनाविलम्, सरज: वीतरजम् अनङ्गणम्।
सर्वत्र विमुक्तमानसम्, किं मम अपवार्य तिष्ठसि॥371॥
''तरुणा चापापिका चासि, किं तव प्रव्रज्या करिष्यति।
निक्षिप्य कषायचीवरम्, एहि! रमावहे सुपुष्पिते वने॥372॥
''मधुरञ्च प्रवहन्ति सर्वत:, कुसुमरजेन समुत्थिता: द्रुमा:।
प्रथमवसन्त: सुख- ऋतु:, एहि! रमावहे सुपुष्पिते वने॥373॥
''कुसुमितशिखराश्च पादपा:, अभिगर्जन्तीव मारुतेरिता:।
का तव रति: भविष्यति, यदि एका वनमवगाहिष्यसि॥374॥
''व्याडमृगसङ्घसेवितम्, कुञ्जरमत्तकरेणुलोलितम्।
असहायिका गन्तुमिच्छसि, रहितं भीषणकं महावनम्॥375॥

(हिन्दी)- तू कलुषित चित्त है, मैं निर्मल चित्तवाली हूँ; तू राग-युक्त है, मैं राग-हीन हूँ, तू मलिन है, मैं मलिनताशून्य हूँ; सब जगह से मेरा चित्त विमुक्त है; तू मेरे मार्ग में आकर क्यों खड़ा होता है?॥371॥

तू तरुणी है, निष्पाप है। प्रव्रज्या तेरे लिए क्या करेगी? इस काषाय वस्त्र को तू दूर फेंक। चल, इस पुष्पित वन में हम रमण करें॥372॥

पुष्प-रेणुओं से मस्त हुए वृक्ष चारों ओर मधुर गंध विकीर्ण कर रहे हैं; यह वसन्त के प्रारम्भ का सुखकारी समय है। चल, इस पुष्पित वन में हम रमण करें॥373॥

पुष्पों को सिर पर धारण किए ये वृक्ष वायु से प्रकम्पित होकर कैसी सुन्दर मर्म ध्वनि कर रहे हैं! बता, इस वन में अकेली घूमती हुई तू क्या तृप्ति प्राप्त करेगी?॥374॥

हिंस्र जन्तुओं से भरे हुए, मस्त और जंगली हाथियों से रौंदे हुए, इस निर्जन, भयानक, विशाल वन में, बिना सहायक के, बता, तू अकेली कैसे जा सकेगी?॥375॥

''तपनीयकताव धीतिका, विचरसि चित्तलतेव अच्छरा।
कासिकसुखुमेहि वग्गुभि, सोभसी सुवसनेहि नूपमे॥376॥
''अहं तव वसानुगो सियं, यदि विहरेमसे काननन्तरे।
न हि मत्थि तया पियत्तरो, पाणो किन्नरिमन्दलोचने॥377॥
''यदि मे वचनं करिस्ससि, सुखिता एहि अगारमावस।
पासादनिवातवासिनी, परिकम्मं ते करोन्तु नारियो॥378॥
''कासिकसुखुमानि धारय, अभिरोपेहि च मालवण्णकं।
कञ्चनमणिमुत्तकं बहुं, विविधं आभरणं करोमि ते॥379॥
''सुधोतरजपच्छदं सुभं, गोणकतूलिकसन्थतं नवं।
अभिरुह सयनं महारहं, चन्दनमण्डितसारगन्धिकं॥380॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तपनीयकृता इव धृतिका, विचरसि चित्रलतेव अप्सरा।
काशिकासूक्ष्मै: वल्गुभि:, शोभसे सुवसनै: न्वनुपमे॥376॥
''अहं तव वशानुगम: सेयम्, यदि विहरति काननान्तरे।
न हि मेऽस्ति त्वया प्रियतर:, प्राण: किन्नरीमन्दलोचने॥377॥
''यदि मम वचनं करिष्यसि, सुखिता एहि! अगारमवसताम्।
प्रासादनिवातवासिनी, परिकर्म तव कुर्वन्तु नार्य:॥378॥
''काशिकासुक्ष्माणि धारय, अभिरोपय च मालवर्णकम्।
कञ्चनमणिकमुक्तकं बहु, विविधं आभरणं करोमि तव॥379॥
''सुधौतरजप्रच्छदं शुभम्, गोणिकतूलिकसन्यस्तं नवम्।
अभिरुह्य शयनं महार्घम्, चन्दनमण्डितसारगन्धिकम्॥380॥

(हिन्दी)- सोने की पुतली के समान तू इस वन में विचरण कर रही है। अथवा तू कुबेर के उद्यान (स्वर्ग-कानन) की अप्सरा ही है। तू काशी के सुन्दर, सूक्ष्म रेशमी वस्त्रों से सुशोभित होने योग्य है॥376॥

इस वन-भूमक में मैं सदा तेरा दास होकर तेरी सेवा करूँगा, यदि तू इसके भीतर चलकर मेरे साथ रमण करे। हे किन्नरी के समान मन्द लोचन वाली! पृथ्वी में तेरे समान मुझे और कोई प्रिय नहीं है॥377॥

यदि मेरी बात को तू स्वीकार करे, तो चल, हम दोनों गृहवास स्वीकार करें। शान्त और सुरक्षित प्रासाद में तू सुखपूर्वक रहेगी, जहाँ अनेक नारियां (दासियां) तेरी सेवा करेंगी॥378॥

काशी के सुकोमल वस्त्रों को तू पहनेगी, सुगन्धित पुष्पमालाओं को धारण करेगी, अंग- लेपों से अपने शरीर को सुशोभित करेगी। सुन्दरी! मैं तेरे लिए सोने, मणियों और मोतियों के अनेक आभरण बनवाऊँगा॥379॥

तू मूल्यवान् पलंगों पर सोयेगी, जो चन्दन की लकड़ी से मण्डित हैं, इत्रों की सुगन्ध से सुवासित हैं, जिन पर नये तकिए लगे हुए हैं, जिन पर ऊनी, मुलायम चादरें पड़ी हुई हैं और जिनके ऊपर स्वच्छ, सुन्दर, घुले हुए चंदवे तने हुए हैं॥380॥

''उप्पलं चुदका समुग्गतं, यथा तं अमनुस्ससेवितं।
एवं त्वं ब्रह्मचारिनी, सकेसङ्गेसु जरं गमिस्ससि''॥381॥
''किं ते इध सारसम्मतं, कुणपपूरम्हि सुसानवड्ढने।
भेदनधम्मे कळेवरे, यं दिस्वा विमनो उदिक्खसि''॥382॥
''अक्खीनि च तुरियारिव, किन्नरियारिव पब्बतन्तरे।
तव मे नयनानि दक्खिय, भिय्यो कामरती पवड्ढति॥383॥
''उप्पलसिखरोपमानि ते, विमले हाटकसन्निभे मुखे।
तव मे नयनानि दक्खिय, भिय्यो कामगुणो पवड्ढति॥384॥
''अपि दूरगता सरम्हसे, आयतपम्हे विसुद्धदस्सने।
न हि मत्थि तया पियत्तरा, नयना किन्नरिमन्दलोचने''॥385॥

(संस्कृतच्छाया) - ''उत्पलञ्च चोदकात् समुद्गतम्, यथा तममनुष्यसेवितम्।
एवं त्वं ब्रह्मचारिणी, स्वाङ्गेषु जरां गमिष्यसि॥381॥
''किं तव अत्र सारसम्मतम्, कुणपपूरे श्मशानवर्धने।
भेदनधर्मे कलेवरे, यं दृष्ट्वा विमन उदीक्षसे॥382॥
''अक्षिणी च त्वर्य इव, किन्नर्यः इव पर्वतान्तरे।
तव मम नयने दृष्ट्वा, भूयसः कामरतिः प्रवर्धते॥383॥
''उत्पलशिखरोमानि तव, विमलं हाटकसन्निभे मुखे।
तव मम नयने दृष्ट्वा, भूयसः कामगुणः प्रवर्धते॥384॥
''अपि दूरगतां स्मरामि, आयतपक्ष्मे विशुद्धदर्शने।
न हि मेऽस्ति त्वत्तः प्रियतरा, नयना किन्नरिमन्दलोचने॥385॥

(हिन्दी)- अन्यथा हे ब्रह्मचारिणि! तू इस कमल के समान, जिसका अब तक किसी मनुष्य ने सेवन नहीं किया और जो जल से बाहर निकाल लिया गया है, अपने विशुद्ध और अब तक किसी के द्वारा न छुए हुए शरीर में वार्द्ध को प्राप्त करेगी॥381॥

मूढ! जिस देह को देखकर तू इतना मुग्ध हुआ है, वह तो मांसादि गन्दगियों से भरी हुई केवल लाश है, श्मशान को बढ़ाने वाली है, क्षणभंगुर है। इस देह में ऐसा क्या सार है जिसको देखकर तू ऐसा विमुग्ध दिखाई दे रहा है॥382॥

सुन्दरी! हिरणी के नेत्रों के समान अथवा पर्वतों के बीच में बैठी हुई किन्नरी के नेत्रों के समान तेरे दोनों सुन्दर नेत्र हैं।ये तेरे दोनों नेत्र ही मेरी काम-वासना को उद्दीप्त कर रहे हैं। इन्हें देखकर ही मैं तुझ पर आसक्त हुआ हूँ॥383॥

कमल-कोश को भी मात करने वाले, तेरे विमल, स्वर्ण- सदृश, मुखमण्डल में स्थित इन दोनों नेत्रों को देखकर मेरी काम-वासना बहुत बढ़ रही है। हे किन्नरी जैसे मन्द लोचन वाली! हे प्रियदर्शिनी! तेरी दोनों भौंहें कितनी विस्तीर्ण हैं, तेरे नेत्र कितने मादक हैं॥384॥

यदि तू मुझसे दूर भी रहे तो भी मैं तुझे कैसे भूल सकता हूँ? तेरे दोनों सुन्दर नेत्रों के समान प्रिय वस्तु मेरे लिए संसार में और कोई नहीं है॥385॥

''अपथेन पयातुमिच्छसि, चन्दं कीळनकं गवेससि।
मेरुं लङ्घेतुमिच्छसि, यो त्वं बुद्धसुतं मग्गयसि॥386॥
''नत्थि हि लोके सदेवके, रागो यत्थपि दानि मे सिया।
नपि नं जानामि कीरिसो, अथ मग्गेन हतो समूलको॥387॥
''इङ्गालकुयाव ठज्झितो, विसपत्तोरिव अग्गितो कतो।
नपि नं पस्सामि कीरिसो, अथ मग्गेन हतो समूलको॥388॥
''यस्सा सिया अपच्चवेक्खितं, सत्था वा अनुपासितो सिया।
त्वं तादिसिकं पलोभय, जानन्तिं सो इमं विहञ्ञसि॥389॥
''मय्हञ्हि अक्कुट्ठवन्दिते, सुखदुक्खे च सती ठपट्ठिता।
सङ्खतमसुभन्ति जानिय, सब्बत्थेव मनो न लिम्पति॥390॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अपथेन पलायतुमिच्छसि, चन्द्रं क्रीडनकं गवेषयसि।
मेरुं लङ्घेतुमिच्छसि, यः त्वं बुद्धसुतां मार्गयसि॥386॥
''नास्ति हि लोके सदेवके, रागः यत्रापि इदानीं मम स्यात्।
नापि तं जानामि कीदृशः, यतो मार्गेन हतः समूलकः॥387॥
''अङ्गारकूपेव ठत्क्षिप्तः, विषपात्रमिव अग्नितः कृतः।
नापि तं पश्यामि कीदृशः, यतो मार्गेन हतः समूलकः॥388॥
''या स्यात् अप्रत्यवेक्षितम्, शास्ता वा अनुपासिता स्यात्।
त्वं तादृशकां प्रलोभय, जानन्तीं स इमां व्यहनिष्यत्॥389॥
''मयि आकृष्टवन्दिते, सुखदुःखे च स्मृतिरुपस्थिता।
संस्कृतमशुभमिति ज्ञात्वा, सर्वत्रैव मनो न लिम्पति॥390॥

(हिन्दी)- दुष्ट! जहाँ जाने का मार्ग ही नहीं है, वहाँ तू जाना चाहता है। मानो चन्द्रमा को खिलौना बनाने के लिए तू ठसे खोजने निकला है। मूढ! तू सुमेरु को ही लांघना चाहता है, जबकि तू बुद्ध की पुत्री के पीछे इस प्रकार लगता है और ठसे पाना चाहता है॥386॥

देख, स्वर्ग-लोक और मनुष्य-लोक में ऐसा कुछ भी नहीं है जो मेरे अन्दर राग का ठद्वेग कर सके। राग किस प्रकार का होता है, यह भी मैं नहीं जानती। आर्य-मार्ग में स्थित होकर मैंने ठसका समूल नाश ही कर डाला है॥387॥

हाथ से दूर फेंके हुए दहकते अंगारे के समान अथवा ठड़ेले हुए विष के प्याले के समान, मेरा राग न जाने कहाँ अदृश्य हो गया है? मैं जानती भी नहीं कि वह कैसा होता है? आर्य-मार्ग में स्थित होकर मैंने ठसका समूल नाश ही कर डाला है॥388॥

जिस स्त्री ने सत्य का दर्शन किया हो अथवा शास्ता के जिसने ठपदेश न पाया हो, ठसी को तू जाकर लुभा। मैं तो ज्ञान की शक्ति से सम्पन्न हूँ, समझने वाली हूँ; मुझसे तू पराजित ही होगा॥389॥

निन्दा और स्तुति में, दुःख और सुख में, मुझे सदा स्मृति (कायिक-मानसिक जागरूकता) ठपस्थित रहती है। जो कुछ संस्कृत है, सब अशुभ है, ऐसा जानकर संस्कारों से मैं पूर्णतः अनासक्त हो चुकी हूँ, मेरा मन इस संसार में कहीं भी लिप्त नहीं होता॥390॥

''साहं सुगतस्स साविका, मग्गट्ठङ्गिकयानयायिनी।
उद्धटसल्ला अनासवा, सुञ्ञागारगता रमामहं॥391॥
''दिट्ठा हि मया सुचित्तिता, सोम्भा दारुकपिल्लकानि वा।
तन्तीहि च खीलकेहि च, विनिबद्धा विविधं पनच्चका॥392॥
''तम्हुद्धटे तन्तिखीलके, विस्सट्ठे विकले परिक्खिते।
न विन्देय्य खण्डसो कते, किम्हि तत्थ मनं निवेसये॥393॥
''तथूपमा देहकानि मं, तेहि धम्मेहि विना न वत्तन्ति।
धम्मेहि विना न वत्तति, किम्हि तत्थ मनं निवेसये॥394॥
''यथा हरितालेन मक्खितं, अद्दस चित्तिकं भित्तिया कतं।
तम्हि ते विपरीतदस्सनं, सञ्ञा मानुसिका निरत्थिका॥395॥

(संस्कृतच्छाया) - ''साहं सुगतस्य श्राविका, मार्गाष्टाङ्गिकयानयायिनी।
उद्धतशल्या अनास्रवा, शून्यागारगता रमाम्यहम्॥391॥
''दृष्टा हि मया सुचित्रिता:, श्वभ्रा: दारुकपिल्लकानि वा।
तन्त्रिभिश्च कीलकाभिश्च, विनिबद्धा विविधं प्रनृत्यका:॥392॥
''तस्मिन्नुद्धृते तन्त्रिकीलके, विसृष्टे विकले परिपक्षिते।
न विन्देत् खण्डस: कृते, किं हि तत्र मनो निवेशयेत्॥393॥
''तथोपमा देह: मम, तै: धर्मै: विना न वर्तते।
धर्मै: विना न वर्तते, किं हि (कस्मिन्) तत्र मनो निवेशयेत्॥394॥
''यथा हरितालेन मक्षितम्, अपश्यत् चित्रकं भित्त्यां कृतम्।
तस्मिन् ते विपरीतदर्शनम्, संज्ञा मनुष्यस्य निरर्थिका॥395॥

(हिन्दी)- क्या तू यह नहीं जानता कि मैं सुगत (बुद्ध) की शिष्या हूँ, आर्य अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने वाली हूँ, मैंने (वासना के) तीर को निकाल फेंका है; वेदनाओं और चित्त-मलों से रहित होकर मैं सूने स्थानों में जाकर ध्यान करती हूँ, इसी में मेरा आनन्द है॥391॥

एक समय मैंने देखा था— सुन्दर, नयी, लकड़ी की खूंटियों से बनी हुई एक सुचित्रित कठपुतली, धागों और तकुओं से कुलतापूर्वक बांधी हुई, नाना प्रकार के सुन्दर नाच दिखा रही थी॥392॥

तकुओं और धागों के हटा लेने पर कठपुतली छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़ी, उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये; बता, इस भग्नावशेष पुतली का कौन-सा अंग तेरे मन को मोहित करता है?॥393॥

यही हाल मनुष्य की देह का है, उसका संचालन इसी प्रकार हो रहा है, उसके विविध अवयव और क्रियाएँ धर्मों (अवस्थाओं) के आधार पर चल रही हैं। यदि ये अवस्थाएँ उत्पन्न न हों, तो उसके अवयव भी छिन्न-भिन्न हो जाएंगे। इन छिन्न-भिन्न अवयवों में बता कौन-सा अवयव तेरे मन को आसक्त कर सकता है॥394॥

यह शरीर तो दीवाल पर बने एक चित्र के समान है, जिस पर हरताल (पीला रंग) पोत दी गई है। तू उसे वास्तविक समझ बैठा है! मूर्ख! यह तेरी अज्ञानी जनोचित, विपरीत दृष्टि ही है, निरर्थक, मिथ्या ज्ञान ही है। स्वप्न में स्वर्ण वृक्ष को देखकर तू अन्धा होकर उसके पीछे दौड़ रहा है। हे अन्धे! तू माया के पीछे दौड़ रहा है॥395॥

''मायं विय अग्गतो कतं, सुपिनन्तेव सुवण्णपादपं।
उपगच्छसि अन्ध रित्तकं, जनमज्झेरिव रुप्परूपकं॥396॥
''वट्टनिरिव कोटरोहिता, मज्झे पुब्बुळका सअस्सुका।
पीळकोळिका चेत्थ जायति, विविधा चक्खुविधा च पिण्डिता''॥397॥
''उप्पाटिय चारुदस्सना, न च पज्जित्थ असङ्गमानसा।
''हन्द ते चक्खुं हरस्सु तं'', तस्स नरस्स अदासि तावदे॥398॥
तस्स च विरमासि तावदे, रागो तत्थ खमापयी च नं।
''सोत्थि सिया ब्रह्मचारिनी, न पुनो एदिसकं भविस्सति''॥399॥
''आसादिय एदिसं जनं, अग्गिं पज्जलितं व लिङ्गिय।
गण्हिय आसीविसं विय, अपि नु सोत्थि सिया खमेहि नो''॥400॥

(संस्कृतच्छाया) - ''मायामिव अग्रत: कृतम्, स्वप्नन्तेव सुवर्णपादपम्।
उपगच्छसि अन्ध: रिक्तम्, जनमध्येरिव रूपरूपकम्॥396॥
''वर्तनिरिव कोटरहिता, मध्ये पूर्वोदका साश्रुका।
पीतकोड़िका चात्र जायते, विविधा: चक्षुविधाश्च पिण्डिता॥397॥
''उत्पात्य चारुदर्शना, न च पश्यस्व असङ्गमानसा:।
हन्त ते चक्षुं हरस्व तं, तस्मै नराय अददात् तावदेव॥398॥
''तस्य च व्यरमत् तावदेव, राग: तत्र क्षमापयी च तम्।
स्वस्ति स्यात् ब्रह्मचारिणीय, न पुन: एतादृशकं भविष्यति॥399॥
''आसाद्य ईदृशं जनम्, अग्निं प्रज्ज्वलितमिव आलिङ्गिय।
गृहीत्वा आशीविषं इव, अपि नु स्वस्ति स्यात् क्षमेहि नो॥400॥

(हिन्दी)- आदमियों की भीड़ में जादूगर के द्वारा दिखाए गए मिथ्या, तुच्छ जादू को देखकर तू उसके पीछे दौड़ रहा है, उसे सच और मूल्यवान् समझ रहा है॥396॥

आँखें क्या हैं? दो गड्ढों में स्थित, अश्रुओं से सिंचित, तरल बुद्बुद मात्र! वृक्ष के कोटर में स्थित जैसे एक छोटी-सी गोलक जिसमें से लसदार पदार्थ (पतला कीचड़) निकलता रहता है। इन्हीं आँसुओं, कीचड़ आदि का मिश्रित पिंड ही चक्षु कहलाता है, इससे अधिक वह कुछ नहीं है॥397॥

यह कहकर उस प्रिदर्शिनी ने अत्यन्त निर्विकार चित्त से उसी क्षण अपनी आँख फोड़कर उस मनुष्य को देते हुए कहा, "यह मेरी आँख है, ले!॥398॥

उसी क्षण उस दुष्ट मनुष्य की काम-पिपासा अन्तर्हित हो गई। भिक्षुणी से क्षमा-याचना करते हुए उसने कहा, "ब्रह्मचारिणि! तेरा मंगल हो। मैं फिर इस प्रकार का अपकर्म नहीं करूँगा॥399॥

देवी! तूने मेरे पाप पर कड़ी चोट की है। मैं प्रज्वलित अग्नि का आलिंगन करने चला था, विषाक्त सर्प को स्पर्श करने चला था! देवी! तू स्वास्थ्य-लाभ कर! मुझे क्षमा कर, तेरा मंगल हो!॥400॥

''मुत्ता च ततो सा भिक्खुनी, अगमी बुद्धवरस्स सन्तिकं।
पस्सिय वरपुञ्ञलक्खणं, चक्खु आसि यथा पुराणकन्ति॥401॥

... सुभा जीवकम्बवनिका थेरी...।

तिंसनिपातो निट्ठितो।

15. चत्तालीसनिपातो

1. इसिदासीथेरीगाथा-

''नगरम्हि कुसुमनामे, पाटलिपुत्तम्हि पथविया मण्डे।
सक्यकुलकुलीनायो, द्वे भिक्खुनियो हि गुणवतियो॥402॥
''इसिदासी तत्थ एका, दुतिया बोधीति सीलसम्पन्ना च।
झानज्झायनरतायो, बहुस्सुतायो धुतकिलेसायो॥403॥
''ता पिण्डाय चरित्वा, भत्तत्थं करिय धोतपत्तायो।
रहितम्हि सुखनिसिन्ना, इमा गिरा अब्भुदीरेसुं॥404॥
''पासादिकासि अय्ये, इसिदासि वयोपि ते अपरिहीनो।
किं दिस्वान ब्यालिकं, अथासि नेक्खम्ममनुयुत्ता''॥405॥

(संस्कृतच्छाया) - ''मुक्ता च तत: सा भिक्षुणी, अगच्छत् बुद्धवरस्यान्तिकम्।
पश्य वरपुण्यलक्षणम्, चक्षु: आसीत् यथा पुराणकमिति॥401॥

1. ''नगरे कुसुमनामे, पाटलिपुत्रे पृथ्वीमण्डले।
शाक्यकुलकुलीने, द्वे भिक्षुण्यौ हि गुणवत्यौ॥402॥
''ऋषिदासी तत्र एका, द्वितीया बोधिरिति शीलसम्पन्ने च।
ज्ञानाध्यानरते, बहुश्रुते धुतक्लेशे॥403॥
''ते पिण्डाय चरित्वा, भक्तार्थं कृत्वा धौतपात्रे।
रहिते सुखनिषन्ने, इमा गिरा अभ्युदीरयन्ति॥404॥
"प्रासादिकाऽसि आर्ये!, ऋषिदासि! वयोऽपि ते अपरिहीन:।
किं दृष्ट्वा व्यालीकम्, अथासि नैष्क्रम्यमनुयुक्ता"॥405॥

(हिन्दी)- इस प्रकार उस धूर्त से मुक्त होकर भिक्षुणी बुद्ध के पास गई, जो ज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। पुण्यलक्षण महापुरुष (बुद्ध) के दर्शन करते ही उसकी आँख पहले की तरह ही (स्वस्थ) हो गई॥401॥

पाटलि नामक कुसुम के नाम वाले कुसुमपुर अर्थात् पाटलिपुत्र नगर में शाक्यकुलोद्भूत दो कुलीन, गुणवती भिक्षुणियाँ थीं॥402॥

उनमें से एक का नाम था ऋषिदासी, दूसरी का नाम था बोधि। दोनों ही सदाचारिणी, ध्यान में रत, बहुश्रुता और चित्तमल-रहित थीं॥403॥

एक दिन भिक्षा के बाद भोजन कर और बर्तनों को मांज-धोकर, दोनों एकान्त में सुखपूर्वक बैठकर, इस प्रकार संलाप करने लगीं॥404॥

देवी ऋषिदासी! तू प्रसन्नमुख और यौवन-सम्पन्ना है। तेरी उम्र अभी ढली नहीं है। तो बता, किस अभाव को देखकर तूने संसार से आसक्ति छोड़कर प्रव्रज्या ली और आज ऐसा निष्काम जीवन बिता रही है॥405॥

''एवमनुयुञ्जियमाना सा, रहिते धम्मदेसनाकुसला।
इसिदासी वचनमब्रवि, ''सुण बोधि यथाम्हि पब्बजिता॥406॥
''उज्जेनिया पुरवरे, मय्हं पिता सीलसंवुतो सेट्ठि।
तस्सम्हि एकधीता, पिया मनापा च दयिता च॥407॥
''अथ मे साकेततो वरका, आगच्छुमुत्तमकुलीना।
सेट्ठी पहूतरतनो, तस्स ममं सुण्हमदासि तातो॥408॥
''सस्सुया सस्सुरस्स च, सायं पातं पणाममुपगम्म।
सिरसा करोमि पादे, वन्दामि यथाम्हि अनुसिट्ठा॥409॥
''या मय्हं सामिकस्स, भगिनियो भातुनो परिजनो वा।
तमेकवरकम्पि दिस्वा, उब्बिग्गा आसनं देमि॥410॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एवमनुयुज्यमाना सा, रहिते धर्मदेशनकुशला।
ऋषिदासी वचनमब्रबीत्, "शृणु बोधे! यथास्मि प्रव्रजिता॥406॥
"उज्जयिनीयपुरवरे, मम पिता शीलसंवृत: श्रेष्ठि:।
तस्याहमेकधीता, प्रिया मनापा च दयिता च॥407॥
''अथ मे साकेतत: वरका, आगच्छमुत्तमकुलीना।
श्रेष्ठी प्रभूतरत्न:, तस्मै मम स्नुषामददत् तात:॥408॥
''श्वश्रू: श्वशुरस्य च, सायं प्रात: प्रणाममुपगम्य।
शिरसा करोमि पादौ, वन्दामि यथाम्यनुशिष्टा॥409॥
''या मम स्वामिन:, भगिन्यो भ्रातर: परिजनो वा।
तमेकवरकमपि दृष्ट्वा, उद्विग्ना आसनं ददामि॥410॥

(हिन्दी)- इस प्रकार पूछे जाने पर ऋषिदासी ने, जो धर्मोपदेश करने में बड़ी कुशल थी, उस एकान्त स्थान में ऐसा कहा: "बोधि ! जिस प्रकार मैंने प्रव्रज्या ली, उसे सुन॥406॥

मेरे पिता उज्जयिनी के एक धर्मात्मा, सदाचारी सेठ थे। मैं उनकी इकलौती, प्यारी, अनुकूल कन्या थी॥407॥

साकेत नगर से आया हुआ एक अन्य बड़ा उच्चकुलीन, धनवान्, बहुरत्नसम्पन्न सेठ था। उसके पुत्र के साथ मेरे पिता ने मेरा विवाह कर दिया। मै उस सेठ की पुत्रवधू के रूप में दे दी गई॥408॥

अपने घर में पायी हुई शिक्षा के अनुसार मैं प्रतिदिन सायंकाल और प्रात:काल सास और ससुर को प्रणाम करती, नतमस्तक होकर उनकी चरण-वन्दना करती॥409॥

पति की भगिनियों, भाइयों और परिजनों को देखकर, एक बार ही (एकदम) देखते ही, मैं उद्विग्नतापूर्वक उनके लिए आसन देती॥410॥

''अन्नेन च पानेन च, खज्जेन च यञ्च तत्थ सन्निहितं।
छादेमि उपनयामि च, देमि च यं यस्स पतिरूपं॥411॥
''कालेन उपट्ठहित्वा, घरं समुपगमामि उम्मारे।
धोवन्ती हत्थपादे, पञ्जलिका सामिकमुपेमि॥412॥
''कोच्छं पसादं अञ्जनिञ्च, आदासकञ्च गण्हित्वा।
परिकम्मकारिका विय, सयमेव पतिं विभूसेमि॥413॥
''सयमेव ओदनं साधयामि, सयमेव भाजनं धोवन्ती।
माताव एकपुत्तकं, तथा भत्तारं परिचरामि॥414॥
''एवं मं भत्तिकतं, अनुरत्तं कारिकं निहतमानं।
उट्ठायिकं अनलसं, सीलवतिं दुस्सते भत्ता॥415॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अन्नेन च पानेन च, खाद्येन च यच्च तत्र सन्निहितम्।
छादयामि उपनयामि च, ददामि च यद् यस्य प्रतिरूपम्॥411॥
''कालेन उपस्थाप्य, गृहं समुपगच्छामि *उम्मारे* (द्वारे)।
प्रक्षालयन्ती हस्तपादौ, प्राञ्जलिका स्वामिकमुपैमि॥412॥
''कूर्चं प्रसादम् अञ्जनिञ्च, आदासकञ्च गृहीत्वा।
परिकर्म्यकारिकेव, स्वयमेव पतिं विभूषयामि॥413॥
''स्वयमेव ओदनं साधयामि, स्वयमेव भाजनं प्रक्षालयन्ती।
माता इव एकपुत्रकम्, तथा भर्तारं परिचरामि॥414॥
''एवं मां भक्तिकृत्याम्, अनुरक्तां कारिकां निहतमानाम्।
उतिष्ठापिकाम् अनलसाम्, शीलवतीं दुष्यति भर्ता॥415॥

(हिन्दी)- अन्न, पान, खाद्यादि से, जो भी घर में प्रस्तुत होता, मैं सबकी यथायोग्य सेवा करती; जिसको जैसा चाहिए, उसको वैसा ही ले जाकर देती, सबको प्रसन्न रखती॥411॥

ठीक समय पर (चारपाई से) उठकर घर की देहली पर जाती (झाड़ू-बुहारी लगाती), फिर हाथ-पैर धोकर, अंजलि बाँधकर, पति के पास जाती॥412॥

कंघी, प्रसाद (प्रसाधन-विशेष), अंजना और दर्पण लेकर मैं दासी के समान स्वयं अपने हाथ से पति का श्रृंगार करती॥413॥

मैं अपने हाथ से ही चावल पकाती, अपने हाथ से ही बर्तन धोती; जैसे माता अपने एकमात्र पुत्र की सेवा करे, वैसे ही मैं अपने पति की सेवा करती॥414॥

किन्तु मेरे समान पति में भक्ति रखने वाली, अतिशय विनम्र, सबेरे जल्दी उठ जाने वाली, निरालस, उत्तम सेवा करने वाली और शीलवती पत्नी की ओर से भी मेरे स्वामी का चित्त हट गया, वह मुझे दोष देने लगा और मेरा अपमान करने लगा॥415॥

''सो मातरञ्च पितरञ्च, भणति 'आपुच्छहं गमिस्सामि।
इसिदासिया न सह वच्छं, एकागारेहं सह वत्थुं'॥416॥
''मा एवं पुत्त अवच, इसिदासी पण्डिता परिब्यत्ता।
उट्ठायिका अनलसा, किं तुय्हं न रोचते पुत्त'॥417॥
''न च मे हिंसति किञ्चि, न चहं इसिदासिया सह वच्छं।
देस्साव मे अलं मे, अपुच्छाहं गमिस्सामि'॥418॥
''तस्स वचनं सुणित्वा, सस्सु ससुरो च मं अपुच्छिंसु।
किस्स तया अपरद्धं, भण विस्सट्ठा यथाभूतं'॥419॥
''नपिहं अपरज्झं किञ्चि, नपि हिंसेमि न भणामि दुब्बचनं।
किं सक्का कातुय्ये, यं मं विद्वेस्सते भत्ता'॥420॥

(संस्कृतच्छाया) - ''स मातरञ्च पितरञ्च, भणति आपुच्छियाहं गमिष्यामि।
ऋषिदास्या न सह अवत्स्यम्, एकागारेऽहं सह वस्तुम्॥416॥
''मा एवं पुत्र! अवद, ऋषिदासी पण्डिता परिव्रता।
उत्तिष्ठायिका अनलसा, किं तुभ्यं न रोचते पुत्र!॥417॥
''न च मे हिंसति किञ्चित्, न चाहं ऋषिदास्या सह वत्स्यामि।
द्वेषेव मम अलम् मे, अपृच्छाहं गमिष्यामि॥418॥
''तस्य वचनं श्रुत्वा, श्वश्रूः श्वशुरश्च माम् अप्राक्षम्।
किमपि त्वया अपराद्धम्, वद विसृष्टा यथाभूतम्॥419॥
''नाप्यहमपराधं किञ्चित्, नापि हिनस्मि न भणामि दुर्वचनम्।
किं शक्ता कर्तुम्, यत् मां विदुष्यति भर्ता॥420॥

(हिन्दी)- उसने अपने माता-पिता से कह दिया, "मुझे घर छोड़कर जाने की अनुमति दो। मैं ऋषिदासी के साथ एक घर में नहीं रह सकता॥416॥

पुत्र! ऐसा मत कहो। ऋषिदासी बुद्धिमति स्त्री है, कुशल और साफ दिल वाली है, सबेरे जल्दी उठने वाली है, आलस्य रहित है, सदाचारिणी है। तेरा चित उस पर से क्यों हट गया है? पुत्र! तुझे वह क्यों नहीं अच्छी लगती?॥417॥

ऋषिदासी ने मेरा कोई अनिष्ट नहीं किया है, किन्तु मैं उसके साथ एक घर में नहीं रह सकता। मुझे तो तुम घर छोड़कर जाने की ही अनुमति दो॥418॥

मेरे पति के ऐसे वचन सुनकर सास और ससुर ने मुझसे पूछा, "पुत्री! क्या तुझसे इसका कोई अपराध बन पड़ा है? निस्संकोच होकर यथार्थ बात कह"॥419॥

मुझसे इनका कोई अपराध नहीं बन पड़ा है। मैंने इनका कभी दिल भी नहीं दुखाया है। कभी कोई दुर्वचन भी इन्हें नहीं बोला है। फिर भी मेरे स्वामी मुझे नहीं चाहते, दोष देते हैं। मैं नहीं जानती कि मैं क्या करूँ॥420॥

''ते मं पितुघरं पटिनयिंसु, विमना दुखेन अधिभूता।
'पुत्तमनुरक्खमाना, जिताम्हसे रूपिनिं लक्खिं'॥421॥
''अथ मं अदासि तातो, अड्ढस्स घरम्हि दुतियकुलिकस्स।
ततो उपड्ढसुङ्केन, येन मं विन्दथ सेट्ठि॥422॥
''तस्सपि घरम्हि मासं, अवसिं अथ सोपि मं पटिच्छरयि।
दासीव उपट्ठहन्तिं, अदूसिकं सीलसम्पन्नं॥423॥
''भिक्खाय च विचरन्तं, दमकं दन्तं मे पिता भणति।
'होहिसि मे जामाता, निक्खिप पोट्ठिञ्च घटिकञ्च'॥424॥
''सोपि वसित्वा पक्खं, अथ तातं भणति 'देहि मे पोट्ठिं।
घटिकञ्च मल्लकञ्च, पुनपि भिक्खं चरिस्सामि'॥425॥

(संस्कृतच्छाया) - ''ते मां पितु: गृहम् प्रत्यनयन्, विमनसा दु:खेन अधिभूता।
पुत्रमनुरक्षमाना, अजेष्याम रूपिणीं लक्ष्मीम्॥421॥
''अथ माम् अददत् तात:, धनाढ्यस्य गृहे द्वितीयकुलिकाय।
तत उपार्धशुल्केन, येन माम् अविन्दत श्रेष्ठी॥422॥
''तस्यापि गृहे मासमवात्सं अथ सोऽपि मां प्रत्यक्षिपत्।
दासीव उपस्थयन्तीम्, अदूषिकां शीलसम्पन्नाम्॥423॥
"भिक्षायै च विचरन्तम्, दमकं दान्तं मे पिता भणति।
'भविष्यसि मम जमाता, निक्षिप्स पुस्तञ्च घटिकाञ्च॥424॥
''सोऽपि उषित्वा पक्षम्, अथ तातं भणति 'देहि मे पुस्तम्।
घटिकाञ्च मल्लकाञ्च, पुनरपि भिक्षां चरिष्यामि॥425॥

(हिन्दी)- मेरे सास-ससुर दु:खी और उदासीन हो गए, किन्तु अपने पुत्र की प्राण-रक्षा के लिए वे मुझे मेरे पिता के घर ले गए और दु:खी होकर कहने लगे, "आज हम रूपवती लक्ष्मी से रहित हो गए॥421॥

तदुपरांत मेरे पिता ने एक अन्य कुल वाले धनाढ्य पुरुष से मेरा पुनर्विवाह कर दिया, और पहले सेठ (मेरे भूतपूर्व श्वसुर) ने जितने धन से प्राप्त किया था, उसका आधा परिमाण धन भी मेरे पिता ने उससे लिया॥422॥

इस घर में एक मास सुखपूर्वक वास करने के उपरान्त मैं वहाँ से भी बहिष्कृत हो गई, यद्यपि वहाँ भी सर्वथा निर्दोष और सदाचारिणी होकर मैंने दासी के समान सबकी सेवा की॥423॥

एक दिन एक संयमपरायण, जितेन्द्रिय, शांतचित्त साधु को भिक्षा के लिए घूमते देखकर मेरे पिता ने उससे कहा, "यदि तू इस अपनी गुदड़ी और घड़िया (मिट्टी के भिक्षापात्र) को दूर फेंक दे, तो तू मेरा जामाता हो सकता है"॥424॥

इस पति के साथ मैं पन्द्रह दिन वास कर पायी थी कि उसने भी मेरे पिता के पास आकर कहा, "मेरी गुदड़ी, घड़िया और (पानी पीने के) मलरे को मुझे वापस करो। मैं फिर भिक्षाचर्या करूंगा"॥425॥

''अथ नं भणती तातो, अम्मा सब्बो च मे ञातिगणवग्गो।
किं ते न कीरति इध, भण खिप्पं तं ते करिहि'ति॥426॥
''एवं भणितो भणति, 'यदि मे अत्ता सक्कोति अलं मय्हं।
इसिदासिया न सह वच्छं, एकघरेहं सह वत्थुं॥427॥
''विस्सज्जितो गतो सो, अहम्पि एकाकिनी विचिन्तेमि।
आपुच्छितून गच्छं, मरितुये वा पब्बजिस्सं वा॥428॥
''अथ अय्या जिनदत्ता, आगच्छी गोचराय चरमाना।
तातकुलं विनयधरी, बहुस्सुता सीलसम्पन्ना॥429॥
''तं दिस्वान अम्हाकं, उट्ठायासनं तस्सा पञ्ञापयिं।
निसिन्नाय च पादे, वन्दित्वा भोजनमदासिं॥430॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अथ तं भणति तातः, अम्बा सर्वश्च मे ज्ञातिगणवर्गः।
किं त्वं न किरसि इह, भण क्षिप्रं तत् तव करोमि" इति॥426॥
''एवं भणिते भणति, 'यदि मे आत्मा शक्नोति अलं मह्यम्।
ऋषिदास्या न सह वत्स्यामि, एकस्मिन् गृहे अहं सह उषितुम्॥427॥
''विसर्जितो गतः सः, अहमपि एकाकी विचिन्तयामि।
आप्रक्ष्यामि गत्वा, मरितुं वा प्राव्रजिष्यामि वा॥428॥
''अथ आर्या जिनदत्ता, आगच्छत् गोचराय चरमाणा।
तातकुलं विनयधरी, बहुश्रुता शीलसम्पन्ना॥429॥
''तां दृष्ट्वा अहम्, उत्थायासनात् तस्यै प्रज्ञापितम्।
निषिण्णाय च, पादौ वन्दित्वा भोजनमदाम्॥430॥

(हिन्दी)- यह सुनकर मेरे माता-पिता और सब कुटुम्बियों ने उससे कहा, "यहाँ तुझे वास करना क्यों अच्छा नहीं लगता? शीघ्र बता, हम तेरे लिये क्या करें, जिससे तू प्रसन्न हो?"॥426॥

यह सुनकर उसने कहा, "अकेले रहने में ही मुझे सुख है। ऋषिदासी के सहित मैं एक घर में वास नहीं करूँगी॥427॥

उसने विदाई ली। मैं अकेली सोचने लगी: "अब मैं अपने माता-पिता के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण करने की या मरने की अनुमति माँगूँगी"॥428॥

अकस्मात् उसी समय विनय-पिटक की पंडिता, बहुश्रुता, सदाचारिणी, आर्या जिनदत्ता नाम की भिक्षुणी मेरे पिता के घर भिक्षा के लिए आयी॥429॥

उसको देखकर मैं आसन छोड़कर खड़ी हो गई और आदरपूर्वक उसे आसन प्रदान किया। जब भिक्षुणी सुख से बैठ गई तो मैंने उसकी पाद-वन्दना की और उसे भोजन दिया॥430॥

''अन्नेन च पानेन च, खज्जेन च यञ्च तत्थ सन्निहितं।
सन्तप्पयित्वा अवचं, 'अय्ये इच्छामि पब्बजितुं'॥431॥
''अथ मं भणती तातो, 'इधेव पुत्तक चराहि त्वं धम्मं।
अन्नेन च पानेन च, तप्पय समणे द्विजाती च'॥432॥
''अथहं भणामि तातं, रोदन्ती अञ्जलिं पणामेत्वा।
'पापञ्हि मया पकतं, कम्मं तं निज्जरेस्सामि'॥433॥
''अथ मं भणती तातो, 'पापुण बोधिञ्च अग्गधम्मञ्च।
निब्बानञ्च लभस्सु, यं सच्छिकरी द्विपदसेट्ठो'॥434॥
''मातापितू अभिवादयित्वा, सब्बञ्च ञातिगणवग्गं।
सत्ताहं पब्बजिता, तिस्सो विज्जा अफस्सयिं॥435॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अन्नेन च पानेन च, खाद्येन च यच्च तत्र सन्निहितम्।
सन्तर्प्य अवदम्, 'आर्ये ! इच्छामि प्रव्रजितुम्॥431॥
''अथ मां भणितवान्तातः, 'इहैव पुत्रक चर त्वं धर्मम्।
अन्नेन च पानेन च, तर्पयेः श्रमणान् द्विजातीश्च॥432॥
''अथाहं भणामि स्म तातम्, रुदन्ति अञ्जलिना प्रणम्य।
पापं हि मया प्रकृतम्, कर्म तत् निर्जरिष्यामि॥433॥
''अथ मां भणतिवान् तातः, प्राप्नोतु बोधिञ्च अग्रधर्मञ्च।
निर्वाणञ्च लभस्व, यं साक्षात्कृतवान् द्विपदश्रेष्ठः॥434॥
''मातापितरौ अभिवाद्य, सर्वञ्च ज्ञातिगणवर्गम्।
सप्ताहं प्रव्रजिता, तिस्रो विद्या अस्पृशम्॥435॥

(हिन्दी)- अन्न, पान, खाद्य, जो कुछ भी उस समय घर में प्रस्तुत था, उससे जब मैं उसे तृप्त कर चुकी, तो मैंने उससे प्रार्थना की, 'आर्ये! मैं प्रव्रज्या ग्रहण करने की इच्छुक हूँ॥431॥

पिता ने मुझसे कहा, "पुत्र! तू यहीं रहकर धर्माचरण कर। अन्न-पानादि दान देकर तू यहीं रहकर ब्राह्मणों और श्रमणों की सेवा कर॥432॥

मैंने विलाप करते हुए दोनों हाथ जोड़कर पिता को प्रणाम करते हुए निवेदन किया, "पिताजी! मैं अपने किए हुए पाप-कर्मों को (तपस्या द्वारा) नष्ट (जीर्ण) करूँगी॥433॥

तब पिता ने मुझसे कहा, "पुत्री! तू श्रेष्ठ वस्तु बोधि को प्राप्त कर। तू उस परम पद निर्वाण का लाभ कर, जिसका मनुष्य- श्रेष्ठ बुद्ध ने साक्षात्कार किया॥434॥

माता-पिता और सब भाई-बन्धुओं से विदाई लेकर और उन्हें प्रणाम कर मैं प्रव्रजित हो गई और सात दिन के अन्दर ही मैंने तीनों विद्याओं का स्पर्श किया॥435॥

''जानामि अत्तनो सत्त, जातियो यस्सयं फलविपाको।
तं तव आचिक्खिस्सं, तं एकमना निसामेहि॥436॥
''नगरम्हि एरकच्छे, सुवण्णकारो अहं पहूतधनो।
योब्बनमदेन मत्तो सो, परदारं असेविहं॥437॥
''सोहं ततो चवित्वा, निरयम्हि अपच्चिसं चिरं।
पक्को ततो च उट्ठहित्वा, मक्कटिया कुच्छिमोक्कमिं॥438॥
''सत्ताहजातकं मं, महाकपि यूथपो निल्लच्छेसि।
तस्सेतं कम्मफलं, यथापि गन्त्वान परदारं॥439॥
''सोहं ततो चवित्वा, कालं करित्वा सिन्धवारञ्ञे।
काणाय च खञ्जाय च, एळकिया कुच्छिमोक्कमिं॥440॥

(संस्कृतच्छाया) - ''जानामि आत्मन: सप्तजन्मन: यस्यायं फलविपाक:।
तं तव आचक्षिष्यामि, तं एकमना निशायाम् हि॥436॥
''नगरे एरककक्षे, सुवर्णकारोऽहं प्रभूतधन:।
यौवनमदेन मत्त: स:, परदारान् असेवेऽहम्॥437॥
''सोऽहं ततश्च्युतो भूत्वा, निरये अपतं चिरम्।
पक्व: ततश्च उत्थाय, मर्कट्या: कुक्षौ अक्रामम्॥438॥
''सप्ताहजातकं माम्, महाकपि: यूथपो निरलक्षयत्।
तस्यैतत् कर्मफलम्, यथापि गमनं परदारान्॥439॥
''सोऽहं ततश्च्युतो भूत्वा, कालं कृत्वा सैन्धवारण्ये।
काण्या: च खञ्जायाश्च, एडकाया: कुक्षौ अक्रामम्॥440॥

(हिन्दी)- एक-एक करके मैंने अपने सात पूर्व-जन्मों की घटनाओं और कर्म-विपाकों को स्मरण किया; मैंने क्या-क्या कर्म किये और उनके क्या-क्या फल पाये, यह सब मैंने स्मरण किया। यह कहानी मैं तुझसे आज कहूँगी, मनोयोगपूर्वक सुनो॥436॥

एरककक्ष नामक नगर में मैं एक धनवान् सुनार थी। यौवन के मद में मस्त होकर मैं वहाँ परस्त्री-रत हो गई॥436॥

मरण के उपरान्त बहुल काल तक मैं नरक में पचती रही, वहाँ बहुत दु:ख पा-पाकर मैं एक वानरी के गर्भ में उत्पन्न हुई॥438॥

जन्म के सात दिन बाद ही वानर-यूथों के स्वामी ने मेरे अंडकोषों को चीर दिया। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया॥439॥

मरण के बाद सिन्धु नदी के समीप अरण्य (सैन्धवारण्य) में एक कानी और लंगड़ी बकरी के कोख में मैंने जन्म पाया॥440॥

''द्वादस वस्सानि अहं, निल्लच्छितो दारके परिवहित्वा।
किमिनावट्टो अकल्लो, यथापि गन्त्वान परदारं॥441॥
''सोहं ततो चवित्वा, गोवाणिजकस्स गाविया जातो।
वच्छो लाखातम्बो, निल्लच्छितो द्वादसे मासे॥442॥
''वोढून नङ्गलमहं, सकटञ्च धारयामि।
अन्धोवट्टो अकल्लो, यथापि गन्त्वान परदारं॥443॥
''सोहं ततो चवित्वा, वीथिया दासिया घरे जातो।
नेव महिला न पुरिसो, यथापि गन्त्वान परदारं॥444॥
''तिंसतिवस्सम्हि मतो, साकटिककुलम्हि दारिका जाता।
कपणम्हि अप्पभोगे, धनिक पुरिसपातबहुलम्हि॥445॥

(संस्कृतच्छाया) - ''द्वादश वर्षाणि अहम्, निर्लुञ्चिता: दारकान् पर्यूढ्वा।
कृमिणावृत अकलित:, यथापि गतवान् परदारान्॥441॥
''सोऽहं ततश्च्युतो भूत्वा, गौवणिज: गोसुत: जात:।
वत्स: लाक्षाताम्र:, निर्लुञ्चिता: द्वादशे मासे॥442॥
''वहनं नङ्गलमहम्, शकटञ्च धारयामि।
अन्धवृत अकलित:, यथापि गतवान् परदारान्॥443॥
''सोऽहं ततश्च्युतो भूत्वा, वीथीदास्या: गृहे जात:।
नैव महिला न पुरुष:, तथापि गत: परदारान्॥444॥
''त्रिंशद्वर्षे मृत:, शाकटिककुले दारिका जाता।
कृपणे अल्पभोगे, धनिकपुरुषपातबहुले॥445॥

(हिन्दी)- वहाँ भी मेरे मुष्कछिन्न, कीड़ों ने मुझे काटा, इस प्रकार बारह वर्ष तक मैं कड़ी यातना पाती रही। बालक-बालिकाओं को पीठ पर लेकर ढोना- यही मेरा वहाँ दैनिक काम था। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया॥441॥

वहाँ से भी मरकर मैंने एक पशुओं के व्यापारी की गाय के पेट में लाख के समान (लाल) वर्ण वाले बछड़े के रूप में जन्म पाया। वहाँ भी बारह मास बाद मैं मुष्कछिन्न की गई॥442॥

हल जोतना और गाड़ी में हँकना, यही मेरा वहाँ काम था, बाद में अन्धा और अकर्मण्य हो गया। परस्त्री-गमन का यह फल मैंने पाया!॥443॥

वहाँ से भी मरण के उपरान्त मैं गलियों में फिरने वाली (गृहहीन) एक दासी के घर उत्पन्न हुई। मैं स्त्री भी नहीं थी, पुरुष भी नहीं थी। यही परिणाम मैंने परस्त्री-गमन का पाया॥444॥

तीस वर्ष की अवस्था में मेरी मृत्यु हो गई। मृत्यु के उपरान्त एक अतिशय दरिद्र, दु:ख-ग्रस्त, धनिक पुरुषों के विपुल ऋण-भार से पीड़ित, गाड़ीवान के घर में मैं उसकी कन्या होकर पैदा हुई॥445॥

''तं मं ततो सत्थवाहो, उस्सन्नाय विपुलाय वड्ढिया।
ओकड्ढति विलपन्तिं, अच्छिन्दित्वा कुलघरस्मा॥446॥
''अथ सोळसमे वस्से, दिस्वा मं पत्तयोब्बनं कञ्ञं।
ओरुन्धतस्स पुत्तो, गिरिदासो नाम नामेन॥447॥
''तस्सपि अञ्ञा भरिया, सीलवती गुणवती यसवती च।
अनुरत्ता भत्तारं, तस्साहं विद्वेसनमकासिं॥448॥
''तस्सेतं कम्मफलं, यं मं अपकीरितून गच्छन्ति।
दासीव उपट्ठहन्तिं, तस्सपि अन्तो कतो मया''ति॥449॥

... इसिदासी थेरी...।
चत्तालीसनिपातो निट्ठितो।

16. महानिपातो

1. सुमेधाथेरीगाथा-

''मन्तावतिया नगरे, रञ्ञो कोञ्चस्स अग्गमहेसिया।
धीता आसिं सुमेधा, पसादिता सासनकरेहि॥450॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तां मां ततः सार्थवाहः, उत्सेधस्य विपुलतया वर्धितस्य।
अपाकर्षत् विलापयन्ती, आछिद्य कुलगृहात्॥446॥
''अथ षोडषतमे वर्षे, दृष्ट्वा मां प्राप्तयौवनां कन्याम्।
औरन्धतस्य पुत्रः, गिरिदासः नाम परिणीतवान्॥447॥
''तस्यापि अन्या भार्या, शीलवती गुणवती यशस्विनी च।
अनुरक्ता भर्तारम्, तस्याहं विद्वेषनीमकार्षम्॥448॥
''तस्यैतत् कर्मफलम्, यदहमपकीर्तिम् गच्छन्ति।
दासीव उपतिष्ठिता अहं, तस्यापि अन्तः कृतः मया" इति॥449॥

1. ''मन्त्रावतीनगरे, राज्ञः क्रौञ्चस्य अग्रमहिष्याः।
दुहिता अभवत् सुमेधा, प्रसादिता शासनकरैः॥450॥

(हिन्दी)- एक धनवान् व्यापारी (काफिलों की सरदार) का मेरे पिता पर विपुल ऋण था, जो ब्याज के कारण और भी निरन्तर बढ़ता जाता था। उसने उसे चुकाने के रूप में मुझ पर (बलात्) अधिकार कर लिया। मैं विलाप करते-करते अपने पिता के घर से खींचकर बाहर ले जायी गई॥446॥

सोलह वर्ष की अवस्था में मैंने यौवन में पदार्पण किया; तब उस व्यापारी के पुत्र ने, जिसका नाम गिरिदास था, मुझे स्त्री बना कर रख लिया॥447॥

गिरिदास की एक पत्नी पहले से भी थी, वह गुणवती, शीलवती, यशस्विनी और पतिव्रता थी; मैं उस स्त्री के प्रति ईर्ष्या और द्वेष करने लगी॥448॥

यह उसी कर्म का फल था कि दासी के समान तन्मय होकर भी जिस-जिस पुरुष की मैंने सेवा की, उसी ने मुझसे घृणा की, मुझे तिरस्कारपूर्वक छोड़ा। किन्तु आज मैंने उसका भी अन्त कर दिया॥449॥

मंतावती नगरी के राजा क्रौंच की पटरानी के गर्भ से उत्पन्न कन्या सुमेधा, बुद्ध-शासन का पालन करने वाली अर्हतों में बड़ी श्रद्धावती थी॥450॥

''सीलवती चित्तकथा, बहुस्सुता बुद्धसासने विनीता।
मातापितरो उपगम्म, भणति ''उभयो निसामेथ॥451॥
''निब्बानाभिरताहं, असस्सतं भवगतं यदिपि दिब्बं।
किमङ्गं पन तुच्छा कामा, अप्पस्सादा बहुविघाता॥452॥
''कामा कटुका आसीविसूपमा, येसु मुच्छिता बाला।
ते दीघरत्तं निरये, समप्पिता हञ्ञन्ते दुक्खिता॥453॥
''सोचन्ति पापकम्मा, विनिपाते पापवद्धिनो सदा।
कायेन च वाचाय च, मनसा च असंवुता बाला॥454॥
''बाला ते दुप्पञ्ञा, अचेतना दुक्खसमुदयोरुद्धा।
देसन्ते अजानन्ता, न बुज्झरे अरियसच्चानि॥455॥

(संस्कृतच्छाया) - ''शीलवती चित्रकथा, बहुश्रुता बुद्धशासने विनीता।
मातापित्रो: उपागम्य, भणति उभौ निशामेथ॥451॥
''निर्वाणाभिरताहमशाश्वतं भवगतं यद्यपि दिव्यम्।
किमङ्गं पुन: तुच्छा: कामा:, अप्रसादा: बहुविधाता:॥452॥
''कामा: कटुका: सन्ति विषोपमा, येषु मूर्छिता: बाला:।
ते दीर्घतरं निरये, समर्पिता: हन्यन्ते दु:खिता:॥453॥
''शोचयन्ति पापकर्माण:, विनिपाते पापवर्द्धिन: सदा।
कायेन च वाचेन च, मनसा चासंवृता: बाला:॥454॥
''बालास्ते दुष्प्रज्ञा:, अचेतना दु:खसमुदये रुद्धा:।
उपदिष्टा: (अपि) न ज्ञापते, न बुध्यन्ते आर्यसत्यानि॥455॥

(हिन्दी)- वह शीलवती, वाग्मिनी, बहुश्रुत और बुद्ध-शासन के अनुसार शिक्षा पायी हुई थी; एक दिन अपने माता-पिता के पास जाकर उसने कहा, आप दोनों सुनें॥451॥

मेरा मन निर्वाण में लगा है; इस भव में जो कुछ है, वह सब अशाश्वत है। यह देह यदि देव- स्वभाव को प्राप्त कर दिव्य भी हो जाय, तो भी यह नश्वर है, अशाश्वत है। इन विघ्नों से भरे हुए, तुच्छ, दु:खद ऐन्द्रिय भोगों को लेकर मैं क्या करूँ॥452॥

ये विषय तो सर्प के विष के समान ही बड़े जहरीले और कटु हैं; किन्तु मूर्ख लोग इन्हीं में आसक्त होकर नरक-गामी होते हैं और चिर-काल तक बड़े भारी दु:ख का अनुभव करते हैं॥453॥

पाप-कर्मों में आसक्त, दुर्बुद्धि मनुष्य नरक में पड़ कर, बड़े दु:ख में तप्त होते हैं; ज्ञान-हीन जन सदा कर्म में असंयत, वाणी में असंयत और विचार में असंयत होते हैं॥454॥

मूढजन बुद्धि और चेतना से हीन होते हैं; दु:ख की उत्पत्ति का कारण उन्हें ज्ञात नहीं होता; उपदेश दिए जाने पर भी वे उपदेश को ग्रहण नहीं करते, (चार) आर्य सत्यों को समझने में वे असमर्थ होते हैं॥455॥

''सच्चानि अम्म बुद्धवरदेसितानि, ते बहुतरा अजानन्ता ये।
अभिनन्दन्ति भवगतं, पिहेन्ति देवेसु उपपत्तिं॥456॥
''देवेसुपि उपपत्ति, असस्सता भवगते अनिच्चम्हि।
न च सन्तसन्ति बाला, पुनप्पुनं जायितब्बस्स॥457॥
''चत्तारो विनिपाता, दुवे च गतियो कथञ्चि लब्भन्ति।
न च विनिपातगतानं, पब्बज्जा अत्थि निरयेसु॥458॥
''अनुजानाथ मं उभयो, पब्बजितुं दसबलस्स पावचने।
अप्पोस्सुक्का घटिस्सं, जातिमरणप्पहानाय॥459॥
''किं भवगते अभिनन्दितेन, कायकलिना असारेन।
भवतण्हाय निरोधा, अनुजानाथ पब्बजिस्सामि॥460॥

(संस्कृतच्छाया) - ''सत्यानि अम्बे! बुद्धवरदेशितानि, ते बहुतराः न अजानन्तो ये।
अभिनन्दन्ति भवगतम्, स्पृहन्ते देवेषु उपपत्तिम्॥456॥
''देवेष्वपि उपपत्तिः, अशाश्वता भवगते अनित्ये।
न च शान्तास्सन्ति बालाः, पुनर्पुनः जानितव्यस्य॥457॥
''चत्वारः विनिपाताः, द्वे च गती कथञ्च लभ्यन्ते।
न च विनिपातगतानाम्, प्रव्रज्या अस्ति निरयेषु॥458॥
''अनुजानीहि माम् उभौ, प्रव्रजितुं दशबलस्य प्रवचने।
अल्पोत्सुकाः घटयिष्यामि, जातिमरणप्रहाणाय॥459॥
''किं भवगतेन अभिनन्दितेन, कायकलिना असारेण।
भवतृष्णायाः निरोधाय, अनुजानीहि प्रव्रज्यिष्यामि॥460॥

(हिन्दी)- माता! श्रेष्ठ सम्यक् सम्बुद्ध का दिया हुआ सत्य का उपदेश अधिकांश जनता को अज्ञात है; वह तो भव का ही अभिनन्दन करती है, या देव-लोक में जन्म पाने की अभिलाषिणी है॥456॥

किन्तु देव-लोक में जन्म भी तो नश्वर है, अशाश्वत है। इस संसार की अनित्यता का तो कहना ही क्या? फिर भी मूढजन पुनर्जन्म में भय का दर्शन नहीं करते॥457॥

चार प्रकार की दुर्गतियाँ और दो प्रकार की सुगतियाँ हैं, उनमें से दोनों प्रकार की सुगतियों को पाना तो बड़ा कठिन है; और दुर्गतियों और नरक में पड़े हुए प्राणियों के लिए वहाँ से प्रव्रज्या (निष्क्रमण) का तो कोई मार्ग ही नहीं है॥458॥

अतः मैं आप दोनों से ही कहती हूँ— मैं इस संसार से प्रव्रज्या लूँगी और दशबल भगवान् तथागत की अनुगामिनी बनकर, अनासक्त, अविचल चित्त से जन्म-मृत्यु के प्रहाण के लिए यत्न करूँगी। आप मुझे अनुमति दें॥459॥

मैं इस भव का अभिनन्दन कर सकती; बार-बार जन्म लेने में मुझे कुछ भी आनन्द दिखाई नहीं पड़ता; इस असार, क्षीण देह को धारण करने से अब मुझे कोई प्रयोजन नहीं रहा; भव-तृष्णा के निरोध के लिए अब मैं प्रव्रज्या लूँगी। मुझे अनुमति दो॥460॥

''बुद्धानं उप्पादो विवज्जितो, अक्खणो खणो लद्धो।
सीलानि ब्रह्मचरियं, यावजीवं न दूसेय्यं''॥461॥
''एवं भणति सुमेधा, मातापितरो ''न ताव आहारं।
आहरिस्सं गहट्ठा, मरणवसं गताव हेस्सामि''॥462॥
''माता दुक्खिता रोदति पिता च, अस्सा सब्बसो समभिहतो।
घटेन्ति सञ्ञापेतुं, पासादतले छमापतितं॥463॥
''उट्ठेहि पुत्तक किं सोचितेन, दिन्नासि वारणवतिम्हि।
राजा अनीकरत्तो, अभिरूपो तस्स त्वं दिन्ना॥464॥
''अग्गमहेसी भविस्ससि, अनिकरत्तस्स राजिनो भरिया।
सीलानि ब्रह्मचरियं, पब्बज्जा दुक्करा पुत्तक॥465॥

(संस्कृतच्छाया) - ''बुद्धानां उपपदो विवर्जित:, अक्षण: क्षणो लब्ध:।
शीलानि ब्रह्मचर्यञ्च, यावज्जीवं न दूष्यामि॥461॥
''एवं भणति सुमेधा, मातापितरौ न तावदाहारम्।
आहरिष्यामि गृहस्था, मरणवशं गता एव हरिष्यामि॥462॥
''माता दु:खिता रोदिति च पिता, अस्या सर्वश: समभिहत:।
घटयन्ति संज्ञापयन्ति, प्रासादतले क्षमापतिताम्॥463॥
''उतिष्ठ पुत्रक! किं शोचितेन, दत्तासि वारणवत्याम्।
राज्ञे अनिकरत्ताय, अभिरूपाय तस्मै त्वं दत्ता॥464॥
''अग्रमहिषी भविष्यसि, अनिकरत्तस्य राज्ञ: भार्या।
शीलानि ब्रह्मचर्यम्, प्रव्रज्या दुष्करा: पुत्रक!॥465॥

(हिन्दी)- यह बुद्धों के आविर्भाव का युग है! मैंने अवसर पाया है। ऐसा सुअवसर बड़े भाग्य से मिलता है। मैं इसे जाने न दूँगी; जीवन-पर्यन्त शील और ब्रह्मचर्य के आचरण से मैं भ्रष्ट न होऊँगी, उन्हें दूषित न करूँगी॥461॥

सुमेधा ने माता-पिता से पुन: यह कहा, "मैं इसी स्थान पर पड़ी-पड़ी अनाहार करके मर जाऊँगी और यह मेरे लिए श्रेयस्कर भी होगा, किन्तु गृह-वास में रहकर मैं पुन: आहार ग्रहण नहीं करूँगी॥462॥

शोकार्ता होकर सुमेधा की माता विलाप करने लगी; पिता भी सब प्रकार दु:ख से अभिभूत हो गया। प्रासाद के फर्श पर, धरती में, पड़ी कन्या को दोनों समझाने और प्रव्रज्या लेने से निवृत्त करने के लिए कहने लगे॥463॥

हे पुत्र! उठ। शोक किसके लिए? हमने तुझे वारणवती के राजा अनिकरत्त को प्रदान किया है; वह प्रियदर्शन है, सुन्दर है, तरुण है॥464॥

तू राजा अनिकरत्त की प्रधान महिषी बनेगी। वत्से! शील और ब्रह्मचर्य का जीवन एवं प्रव्रज्या, बड़े कष्टकर मार्ग हैं॥465॥

''रज्जे आणाधनमिस्सरियं, भोगा सुखा दहरिकासि।
भुञ्जाहि कामभोगे, वारेय्यं होतु ते पुत्त''॥466॥
''अथ ने भणति सुमेधा, ''मा एदिसिकानि भवगतमसारं।
पब्बज्जा वा होहिति, मरणं वा मे न चेव वारेय्यं॥467॥
''किमिव पूतिकायमसुचिं, सवनगन्धं भयानकं कुणपं।
अभिसंविसेय्यं भस्तं, असकिं पग्घरितं असुचिपुण्णं॥468॥
''किमिव ताहं जानन्ती, विकुलकं मंससोणितुपलित्तं।
किमिकुलालयं सकुणभत्तं, कळेवरं किस्स दिय्यति॥469॥
''निब्बुय्हति सुसानं, अचिरं कायो अपेतविञ्ञाणो।
छुद्धो कळिङ्गरं विय, जिगुच्छमानेहि ञातीहि॥470॥

(संस्कृतच्छाया) - ''राज्ये आज्ञाधनमैश्वर्यम्, भोगान् सुखानि च दहरिकासि।
भुङ्क्ष्व कामभोगान्, वारणीयं भवतु ते पुत्रि!॥466॥
''अथ ते भणति सुमेधा, मा ईदृशानि भवगतमसारम्।
प्रव्रज्या वा भविष्यति, मरणं वा मे न चैव वरणीयम्॥467॥
''कृमीव पूतिकायमशुचिम्, शवनगन्धं भयानकं कुणपम्।
अभिसंवासितां भस्त्राम्, असकृत् प्रक्षरन्तम् अशुचिपूर्णम्॥468॥
''कृमीव तमहं जानामि, विकुल्कं मांसश्रोणितपालितम्।
कृमीवकुलालयं सकुणभक्तम्, कलेवरं कस्मै दीयेत॥469॥
''निर्वहति श्मशानम्, अचिरं कायः अपेतविज्ञानः।
क्षिप्यते कलिङ्गरमिव, जुगुप्समानैः ज्ञातिभिः॥470॥

(हिन्दी)- तू रानी बनकर प्रभूत धन और ऐश्वर्य का उपभोग कर; तू तरुणी है, सब सुख तेरे अधिकार में हैं; तू जीवन के सुखों का उपभोग कर। आ वत्से! स्वामी का वरण कर॥466॥

यह सुनकर सुमेधा उनसे (अपने माता-पिता से) कहा : "यह नहीं हो सकता! इस भव में (बार-बार जन्म लेने में) सार वस्तु कुछ भी नहीं है। मैं या तो प्रव्रज्या लूँगी या फिर मेरा मरण ही होगा। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ वरण करना नहीं है॥467॥

इस कलुषित, अपवित्र, दुर्गन्ध-मय भय देने वाली, गन्दगियों से भरी हुई, चमड़े से ढँकी हुई, घृणित लाश जैसी, मल-पूर्ण काया का क्या मूल्य?॥468॥

मांस और रक्त के लेप से आच्छादित, तुच्छ, कीटाणुओं का घर, पक्षियों का खाद्य, यह शरीर है। इसको जानने वाली मेरे सामने इसका क्या मूल्य है? कौन इसे चाहेगा? तुम किसको इसे दोगे?॥469॥

जब इस देह से जीव (विज्ञान) निकल जाता है, तो यह शीघ्र ही श्मशान पहुँचा दी जाती है; जुगप्सापूर्वक उसे स्वजन बेकार काठ के समान वहीं छोड़कर चले आते हैं॥470॥

''छड्डून नं सुसाने, परभत्तं न्हायन्ति जिगुच्छन्ता।
नियका मातापितरो, किं पन साधारणा जनता॥471॥
''अज्झोसिता असारे, कळेवरे अट्ठिन्हारुसङ्घाते।
खेळस्सुच्चारस्सव, परिपुण्णे पूतिकायम्हि॥472॥
''यो नं विनिब्भुजित्वा, अब्भन्तरमस्स बाहिरं कयिरा।
गन्धस्स असहमाना, सकापि माता जिगुच्छेय्य॥473॥
''खन्धधातुआयतनं, सङ्खतं जातिमूलकं दुक्खं।
योनिसो अनुविचिनन्ती, वारेय्यं किस्स इच्छेय्यं॥474॥
''दिवसे दिवसे तिसत्ति, सतानि नवनवा पतेय्युं कायम्हि।
वस्ससतम्पि च घातो, सेय्यो दुक्खस्स चेवं खयो॥475॥

(संस्कृतच्छाया) - ''उच्छ्रनं तं श्मशाने, परान् भोक्तुमिव स्नान्ति जिगुप्सिता:।
निजकौ मातापितरौ, किं पुन: साधारणजनस्य॥471॥
''अध्यवसिता असारे, कलेवरे अस्थिस्नायुसंघाते।
क्ष्वेडश्लेश्मास्रवे, परिपूर्णे पूतिकाये॥472॥
''यदितं विनिर्भिद्य, अभ्यन्तरमस्य बाह्यं कृत्वा।
गन्धस्य असहमाना, स्वकीयापि माता जुगुप्सेत्॥473॥
''स्कन्धधात्वायतनम्, संख्यातं जातिमूलकं दु:खम्।
योनिश: विचिन्वन्ती, वरितुं कस्मिनिच्छेयम्॥474॥
''दिवसे दिवसे त्रिशक्ति:, शतानि नवनव: पतेयु: काये।
वर्षशतमपि च घात:, श्रेयस: दु:खस्य चैवं क्षय:॥475॥

(हिन्दी)- श्मशान में छोड़ी हुई लाश दूसरों का खाद्य बनती है। उनको छोड़कर निज के माता-पिता भी चले आते हैं और जुगुप्सापूर्वक स्नान करते हैं, दूसरे लोगों की तो बात ही क्या?॥471॥

मनुष्य का कलेवर अस्थियों और मांस-पेशियों का समूह मात्र है, सब प्रकार की गन्दगियों से भरा हुआ है, गन्दे मांस और रक्त का आकार है; थूक, कफ आदि गन्दगियाँ इससे स्रवित होती रहती हैं; किन्तु फिर भी मूर्खजन इसमें आसक्त हैं॥472॥

यदि इस देह को खोलकर इसके भीतर को बाहर करके दिखाया जाय तो इसकी असह्य दुर्गन्ध से किसी की अपनी माता भी घृणा कर दूर हट जायगी॥473॥

स्कन्ध, धातुओं और आयतनों का मिलन-मन्दिर, एक क्षणिक सम्मिश्रण, जिसका जन्म मूल (कारण) है, यह शरीर दु:खों की योनि है। इससे मेरा कोई अनुराग नहीं।अब इस शरीर से मैं किसको वरण करने की इच्छा करूँ?॥474॥

यदि प्रतिदिन सौ-सौ भालों के नवीन आघातों से भी सौ वर्ष तक कठिन यातना देकर मृत्यु मेरा आलिंगन करे, तो वह भी मेरे लिए श्रेयस्कर होगा, यदि वह आघात ही मेरे सब दु:खों का चरम अवसान हो जाय॥475॥

''अज्झुपगच्छे घातं, यो विञ्ञायेवं सत्थुनो वचनं।
'दीघो तेसं संसारो, पुनप्पुनं हञ्ञमानानं'॥476॥
''देवेसु मनुस्सेसु च, तिरच्छानयोनिया असुरकाये।
पेतेसु च निरयेसु च, अपरिमिता दिस्सरे घाता॥477॥
''घाता निरयेसु बहू, विनिपातगतस्स पीळियमानस्स।
देवेसुपि अत्ताणं, निब्बानसुखा परं नत्थि॥478॥
''पत्ता ते निब्बानं, ये युत्ता दसबलस्स पावचने।
अप्पोस्सुक्का घटेन्ति, जातिमरणप्पहानाय॥479॥
''अज्जेव तातभिनिक्खमिस्सं, भोगेहि किं असारेहि।
निब्बिन्ना मे कामा, वन्तसमा तालवत्थुकता''॥480॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अध्युपगच्छं घातम्, यो विज्ञायैवं शास्तु: वचनम्।
'दीर्घ: तेषां संसार:, पुनर्पुन: हन्यमानानाम्'॥476॥
''देवेषु मनुष्येषु च, तिर्यकञ्चयोन्यामसुरकाये।
प्रेतेषु च निरयेषु च, अपरिमिता: दृश्यते घाता:॥477॥
''घाता: निरयेषु बहव:, विनिपातगतस्य पीड्यमानस्य।
देवेषु अपि अत्राणम्, निर्वाणसुखात् परं नास्ति॥478॥
''प्राप्ता: ते निर्वाणम्, ये युक्ता: दशबलस्य प्रवचने।
अल्पोत्सुका घटयन्ति, जातिमरणप्रहाणाय॥479॥
''अद्यैव ताता! अभिनिष्क्रमिष्यामि, भोगै: किमसारै:।
निर्वृत्ता: मम कामा:, वमनसमा: ताड़वस्तुकृता:॥480॥

(हिन्दी)- शास्ता का वचन है कि जो ज्ञानी हैं, वे तो इस प्रकार के घात को स्वीकार कर लेते हैं; किन्तु जो अज्ञानी हैं उन्हें तो बार-बार मृत्यु की चोटें सहकर दीर्घ काल तक संसार में आना ही पड़ता है॥476॥

देव-लोक में, मनुष्य-लोक में, पशु-योनि में, असुर-योनि में, प्रेत-योनि में एवं नरक-योनि में, असंख्य बार मृत्यु के मुख में पड़-पड़ कर प्राणी असह्य दु:ख सहते हैं॥477॥

अधम योनियों में पड़-पड़ कर अनेक क्लेशों के शिकार बनते हैं, यहाँ तक कि देव-लोक में भी उन्हें निस्तार नहीं मिलता; निर्वाण-सुख की अपेक्षा श्रेष्ठतर सुख और कोई नहीं है॥478॥

वही मनुष्य निर्वाण-प्राप्त हैं जो अनासक्त हैं और जिन्होंने अविचलित चित्त से जन्म-मरण के प्रहाण के लिए दशबल (भगवान् बुद्ध) के शासन का अभ्यास किया है॥479॥

पिताजी! मैं आज ही प्रव्रजित होऊँगी। मुझे सारहीन भोगों से कोई प्रयोजन नहीं। उनकी मुझे कोई इच्छा भी नहीं। जड़ से काट डाले गये ताड़ वृक्ष के समान मेरी काम-वासनाएँ जड़ से विनष्ट हो गई हैं, मैंने उन्हें वमन की तरह छोड़ दिया है॥480॥

''सा चेवं भणति पितरमनीकरत्तो च यस्स सा दिन्ना।
उपयासि वारणवते, वारेय्यमुपट्ठिते काले॥481॥
''अथ असितनिचितमुदुके, केसे खग्गेन छिन्दिय सुमेधा।
पासादं पिदहित्वा, पठमज्झानं समापज्जि॥482॥
''सा च तहिं समापन्ना, अनीकरत्तो च आगतो नगरं।
पासादे च सुमेधा, अनिच्चसञ्ञं सुभावेति॥483॥
''सा च मनसि करोति, अनीकरत्तो च आरुही तुरितं।
मणिकनकभूसितङ्गो, कतञ्जली याचति सुमेधं॥484॥
''रज्जे आणाधनमिस्सरियं, भोगा सुखा दहरिकासि।
भुञ्जाहि कामभोगे, कामसुखा दुल्लभा लोके॥485॥

(संस्कृतच्छाया) - ''सा चैवं भणति पितरमनीकरत्तश्च यस्मै सा दत्ता।
उपायाते वारणव्रते, वारायोपस्थिते काले॥481॥
''अथ असितनिचितमृदुकान्, केशान् खडगेन छिन्द्य सुमेधा।
प्रासादं पिधाय, प्रथमध्यानं समापादि॥482॥
''सा च तर्हि समापन्ना, अनीकरत्तश्च आगत: नगरम्।
प्रासादे च सुमेधा, अनित्यसंज्ञां सुभावयति॥483॥
''सा च मनसि करोति, अनीकरत्तश्च आरोहत् त्वरितम्।
मणिकनकभूषिताङ्ग:, कृताञ्जलि: याचते सुमेधाम्॥484॥
''राज्ये आज्ञाधनमैश्वर्यम्, भोगा: सुखा: दहरिका असि।
भुङ्क्ष्व कामभोगान्, कामसुखा: दुर्लभा: लोके॥485॥

(हिन्दी)- उसने पिता से ऐसा कहा। उधर राजा अनिकरत्त भी, जिसके लिए वह दी गई थी, भावी वधू की सम्मति प्राप्त करने के लिए वरण-काल के उपस्थित होने पर वहाँ आ पहुँचा॥481॥

किन्तु सुमेधा तो अपने काले, घने, सुकोमल केशों को तलवार से काटकर, अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर, ध्यान में लीन बैठी थी। उसने अभी प्रथम ध्यान में प्रवेश किया था॥482॥

जिस समय अनिकरत्त नगर में आया, सुमेधा प्रासाद में बैठी हुई अनित्य-संज्ञा पर ध्यान कर रही थी।। जब वह ध्यान कर रही थी तो सोने के गहनों और मणियों से अपनी देह को विभूषित किए हुए॥483॥

अनिकरत्त सीढ़ियों पर चढ़कर उसके प्रासाद में गया और हाथ जोड़ कर उसके पाणि-ग्रहण के लिए वह उससे याचना करने लगा॥484॥

रमणी! राज्य-सिंहासन पर बैठकर तू धन, ऐश्वर्य और प्रभुता का उपभोग कर। भोग सुखकारी है और तू भी तरुणी है। तू जीवन के उस काम-सुख का उपभोग कर जो इस लोक में बड़ा दुर्लभ है॥485॥

''निस्सट्ठं ते रज्जं, भोगे भुञ्जस्सु देहि दानानि।
मा दुम्मना अहोसि, मातापितरो ते दुक्खिता''॥486॥
तं तं भणति सुमेधा, कामेहि अनत्थिका विगतमोहा।
''मा कामे अभिनन्दि, कामेस्वादीनवं पस्स॥487॥
''चातुद्दीपो राजा मन्धाता, आसि कामभोगिन मग्गो।
अतित्तो कालङ्कतो, न चस्स परिपूरिता इच्छा॥488॥
''सत्त रतनानि वस्सेय्य, वुट्ठिमा दसदिसा समन्तेन।
न चत्थि तित्ति कामानं, अतित्ताव मरन्ति नरा॥489॥
''असिसूनूपमा कामा, कामा सप्पसिरोपमा।
उक्कोपमा अनुदहन्ति, अट्ठिकङ्कल सन्निभा॥490॥

(संस्कृतच्छाया) - ''निःसृष्टं तुभ्यं राज्यम्, भोगान् भुङ्क्ष्व देहि दानानि।
मा दुर्मना भव, मातापितरौ तव दुःखितौ॥486॥
''तत्तद् भणति सुमेधा, कामेभ्यः अनर्थकेभ्यः विगतमोहा।
मा कामे अभिनन्दितः, कामेषु आदीनवं पश्य॥487॥
''चतुष्द्वीपानां राजा मन्धाता, आसीत् कामभोगिनो मार्गः।
अतृप्तः कालङ्गतः, न चास्य परिपूरिता इच्छा॥488॥
''सप्त रत्नानि वर्षेत्, वृष्टिमादशदिशां समन्तात्।
न चास्ति तृप्तिः कामेभ्यः, अतृप्ता एव म्रियन्ते नराः॥489॥
''असिशूनोपमाः कामाः, कामाः सर्पशिरोपमाः।
उल्कोपमा अनुदहन्ति, अस्थिकङ्कालसन्निभाः॥490॥

(हिन्दी)- मेरा सब राज्य तेरे लिए अर्पित है। तू इच्छानुसार भोग कर, इच्छानुसार दान कर। देख, उदास मन मत हो। तेरे माता-पिता दुःखी हो रहे हैं॥486॥

तब सुमेधा ने राजा से कहा : "भोग-तृष्णा से अब मेरा कोई प्रयोजन नहीं रहा, मैं मोह-हीन हूँ। तू भी कामोपभोग में आनन्द मत मान। कामोपभो मे दुष्परिणामों का अवलोकन कर। उनमें अशुभ की भावना कर॥487॥

देख, चारों महाद्वीपों का राजा मान्धाता काम-भोगियों में अद्वितीय था, किन्तु वह भी अतृप्त (वासनाओं को लेकर) ही मरा उसकी इच्छाएँ पूरी नहीं हुईं॥488॥

आकाश से यदि सातों प्रकार के रत्नों की दशों दिशाओं को भरने वाली वृष्टि भी हो, तो भी उससे मनुष्य की तृष्णा की तृप्ति नहीं होगी॥489॥

विषय-भोग तो तलवार की तेज धार के समान हैं, विषधारी सर्प के उठे हुए फन के समान हैं, उद्दीप्त उल्का के समान वे जलाने वाले हैं, अस्थि कंकाल के समान वे भयंकर हैं॥490॥

''अनिच्चा अद्धुवा कामा, बहुदुक्खा महाविसा।
अयोगुळोव सन्तत्तो, अघमूला दुखप्फला॥491॥
''रुक्खप्फलूपमा कामा, मंसपेसूपमा दुखा।
सुपिनोपमा वञ्चनिया, कामा याचितकूपमा॥492॥
''सत्तिसूलूपमा कामा, रोगो गण्डो अघं निघं।
अङ्गारकासुसदिसा, अघमूलं भयं वधो॥493॥
''एवं बहुदुक्खा कामा, अक्खाता अन्तरायिका।
गच्छथ न मे भवगते, विस्सासो अत्थि अत्तनो॥494॥
''किं मम परो करिस्सति, अत्तनो सीसम्हि डय्हमानम्हि।
अनुबन्धे जरामरणे, तस्स घाताय घटितब्बं''॥495॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अनित्या अध्रुवा: कामा:, बहुदु:खा: महाविषा:।
अयोगोलकमिव सन्तप्ता:, अघमूला: दु:खफला:॥491॥
''वृक्षफलोपमा: कामा:, मांसपेस्योपमा: दु:खा:।
स्वप्नोपमा: वञ्चनीया:, कामा: याचितकोपमा:॥492॥
''शक्तिशूलोपमा: कामा:, रोगो गण्डोऽघं निघम्।
अङ्गारकाशसदृशा:, अघमूलं भयं वध:॥493॥
''एवं बहुदु:खा: कामा:, आख्याता अन्तरायिका:।
गच्छत न मे भवगते, विश्वासोऽस्ति आत्मन:॥494॥
''किं मम पर: करिष्यति, आत्मन: शिरसि दह्यमाने।
अनुबन्धे जरामरणे, तस्य घाताय घटितव्यम्॥495॥

(हिन्दी)- विषय-भोग अनित्य हैं, अध्रुव हैं, बहुत दु:खों को पैदा करने वाले हैं, महाविष से भरे हुए हैं। पाप के मूल हैं, दु:ख ही उनका परिणाम है। संतप्त लोहे के गोले के समान वे भयंकर हैं॥491॥

विषय-भोग वृक्ष-फल के समान (दु:खद) हैं, मांसपेशी के समान अशुभ हैं, स्वप्न के समान धोखा देने वाले हैं, माँगी हुई चीज के समान (तुच्छ) हैं॥492॥

विषय-भोग भाले के तेज-प्रहार के समान हैं, रोग के समान हैं, फोड़े के समान हैं, पाप-रूप हैं। वे जलते हुए अंगारों के समान हैं, अघमूल हैं, भय और वध से भरे हुए हैं॥493॥

इस प्रकार ये विषय-भोग बहुत दु:खों वाले और विघ्नकारी हैं। तुम लौट जाओ। भव की किसी वस्तु में मेरी कोई आस्था नहीं रही॥494॥

दूसरा मेरे लिए क्या करेगा? मेरे सिर में तो आग लग रही है। जरा और मरण मेरे पीछे लगे हुए हैं। इनके विनाश करने के लिए मुझे स्वयं ही प्रयास करना होगा॥495॥

''द्वारं अपापुरित्वानहं , मातापितरो अनीकरत्तञ्च।
दिस्वान छमं निसिन्ने, रोदन्ते इदमवोचं॥496॥
''दीघो बालानं संसारो, पुनप्पुनञ्च रोदतं।
अनमतग्गे पितु मरणे, भातु वधे अत्तनो च वधे॥497॥
''अस्सु थञ्ञं रुधिरं, संसारं अनमतग्गतो सरथ।
सत्तानं संसरतं, सराहि अट्ठीनञ्च सन्निचयं॥498॥
''सर चतुरोदधी , उपनीते अस्सुथञ्ञरुधिरम्हि।
सर एककप्पमट्ठीनं, सञ्चयं विपुलेन समं॥499॥
''अनमतग्गे संसरतो, महिं जम्बुदीपमुपनीतं।
कोलट्ठिमत्तगुळिका, माता मातुस्वेव नप्पहोन्ति॥500॥

(संस्कृतच्छाया) - ''द्वारमपापूर्य अहम्, मातापितरौ अनीकरत्तञ्च।
दृष्टवती क्षमां निषण्णान्, रोदन्तान् इदमवदम्॥496॥
''दीर्घः बालानां संसारः, पुनर्पुनश्च रोदनम्।
अनन्तिममग्रे पितुः मरणे, भ्रातुः वधे आत्मनश्च वधे॥497॥
''अश्रुस्तन्यं रुधिरम्, संसारम् अनन्तिममग्रे स्मरथ।
सत्वानां संसरतम्, स्मर अस्थीनाञ्च सञ्चयम्॥498॥
''स्मर चतुरुदधेः, उपानीते अश्रुस्तनरुधिरे।
स्मर एककल्पमस्थीनाम्, सञ्चयं विपुलेन समम्॥499॥
''अनन्तिममग्रे संसरतः, महीम् जम्बुदीपमुपनीताम्।
बदरीफलगुलिकाः, मातृः मातुं न प्रभवन्ति॥500॥

(हिन्दी)- कमरे का दरवाजा खोलकर सुमेधा ने देखा कि उसके माता-पिता और अनिकरत्त वहीं फर्श पर बैठे रो रहे हैं। उसने उनसे कहा—॥496॥

जो अज्ञानी हैं, उनका संसार दीर्घ है, और बार-बार जन्म-मरण और रोना-धोना है। कभी पिता का मरण, कभी भाई का मरण, कभी अपना मरण, यह सब अनादि हैं। ॥497॥

अश्रु, स्तन्य और रुधिर से सिक्त यह संसार अनादि है। इसके आदि का पता नहीं चलता। यह परम अज्ञात है। इस तथ्य का तुम स्मरण करो। आवागमन में चक्कर लगाते हुए प्राणियों की अस्थियों से जो विशाल स्तूप बनेंगे, उनका तनिक चिन्तन करो॥498॥

चारों महासमुद्रों की जलराशि के समान अपरिमित अश्रु, स्तन्य और रुधिर का स्मरण करो। सिर्फ एक ही कल्प की इकट्ठी की हुई किसी मनुष्य की हड्डियों का स्तूप कितना बड़ा बनेगा, (राजगृह के) विपुल पर्वत के समान! इसका चिन्तन करो॥499॥

इस अज्ञात, अविदित परम, संसार में चक्कर लगाते हुए प्राणियों के माता-पिताओं की संख्या की गणना करने के लिए समस्त जम्बुद्वीप की मिट्टी भी पर्याप्त न होगी। यदि कोई पुरुष सारी महापृथ्वी की मिट्टी को बेर के बराबर कर-करके फेंकता जाय, यह मेरी माता हुई, यह मेरे पिता हुए, तो यह माता- पिताओं का क्रम समाप्त न होगा और महा पृथ्वी की सारी मिट्टी ही समाप्त हो जायेगी॥500॥

''तिणकट्ठसाखापलासं , उपनीतं अनमतग्गतो सर।
चतुरङ्गुलिका घटिका, पितुपितुस्वेव नप्पहोन्ति॥501॥
''सर काणकच्छपं पुब्बसमुद्दे, अपरतो च युगछिद्दं।
सिरं तस्स च पटिमुक्कं, मनुस्सलाभम्हि ओपम्मं॥502॥
''सर रूपं फेणपिण्डोपमस्स, कायकलिनो असारस्स।
खन्धे पस्स अनिच्चे, सराहि निरये बहुविघाते॥503॥
''सर कटसिं वड्ढेन्ते, पुनप्पुनं तासु तासु जातीसु।
सर कुम्भीलभयानि च, सराहि चत्तारि सच्चानि॥504॥
''अमतम्हि विज्जमाने, किं तव पञ्चकटुकेन पीतेन।
सब्बा हि कामरतियो, कटुकतरा पञ्चकटुकेन॥505॥

(संस्कृतच्छाया) - ''तृणकाष्टशाखापलाशम्, उपानीतम् अनन्तिममग्र: स्मर।
चतुरङ्गुलिका: घटिका:, पितु: पितुरिव न प्रभवन्ति॥501॥
''स्मरतु काणकच्छपं पूर्वसमुद्रे, अपरतश्च युगच्छिद्रम्।
शिरस्तस्य च प्रतिमुक्तम्, मनुष्यलाभे औपम्यम्॥502॥
''स्मर रूपं फेनपिण्डोपमस्य, कायकवलिन: असारस्य।
स्कन्धान् पश्य अनित्यान्, स्मर निरये बहुविघातान्॥503॥
''स्मर श्मशानभूमिं वर्धितान्, पुनर्पुन: तासु तासु जातिषु।
स्मर कुम्भीलभयानि च, स्मर चत्वारि सत्यानि॥504॥
''अमृते विद्यमाने, किं तव पञ्चकटुकेन पीतेन।
सर्वा: हि कामरतय:, कटुकतरा: पञ्चकटुकेभ्य:॥505॥

(हिन्दी)- समस्त पृथ्वी के तृण, काष्ठ, शाखा और पत्तों आदि को इकट्ठा करके भी रख दिया जाय और उसमें से कोई चार-चार अंगुल के टुकड़े कर-करके फेंकता जाय, यह मेरे पिता हुए, यह मेरे पिता के पिता हुए, तो यह पूर्वजों का क्रम समाप्त न होगा, किन्तु इस सारे जम्बुद्वीप के तृण, काष्ठ आदि समाप्त हो जायेंगे। इस अज्ञात, अविदित परम संसार में चक्कर लगाते हुए प्राणियों के पिताओं की संख्या का निर्णय किया जा सकता है। इस सत्य का तु स्मरण करो॥501॥

पूर्वी समुद्र या अन्य किसी समुद्र के अन्दर पड़े हुए काने कछुए की उपमा को स्मरण करो। कहाँ समुद्र! कहाँ उस कछुए के लिये, जो सैकड़ों वर्षों में कभी एक बार अपने सिर को उठाये और पानी के ऊपर उतराते (उसमें पड़े) एक जुए के छेद में अपने सिर को फँसाये॥502॥

इस असार एवं पाप पूर्ण शरीर को फेणपिण्ड समझें। इसके पाँचों स्कन्धों की अनित्यता पर भी विचार करें, साथ ही अत्यधिक दुःखमय नरकयोनि पर भी विचार करें॥503॥

इसका भी स्मरण कर लें कि हमने वे वे जन्म लेकर कब कब श्मशान की शोभा बढायी है। और प्रव्रज्या में चार कुम्भील भय के समान चार विघ्नों को भी स्मरण कर ले।। साथ ही चार आर्यसत्यों की महत्ता भी समझ लें॥504॥

अमृत के विद्यमान रहते हुए, पंचकटुक रस पीने से तुमको क्या लाभ मिलेगा। ये सभी कामभोग पंचकटुक के रसपान के समान ही हैं॥505॥

''अमतम्हि विज्जमाने, किं तव कामेहि ये परिळाहा।
सब्बा हि कामरतियो, जलिता कुथिता कम्पिता सन्तापिता॥506॥
''असपत्तम्हि समाने, किं तव कामेहि ये बहुसपत्ता।
राजग्गिचोरउदकप्पियेहि, साधारणा कामा बहुसपत्ता॥507॥
''मोक्खम्हि विज्जमाने, किं तव कामेहि येसु वधबन्धो।
कामेसु हि असकामा, वधबन्धदुखानि अनुभोन्ति॥508॥
''आदीपिता तिणुक्का, गण्हन्तं दहन्ति नेव मुञ्चन्तं।
उक्कोपमा हि कामा, दहन्ति ये ते न मुञ्चन्ति॥509॥
''मा अप्पकस्स हेतु, कामसुखस्स विपुलं जही सुखं।
मा पुथुलोमोव बळिसं, गिलित्वा पच्छा विहञ्ञसि॥510॥

(संस्कृतच्छाया) - ''अमृते विद्यमाने, किं तव कामैः ये परिदाहाः।
सर्वाः हि कामरतयः, ज्वलिताः कुत्सिताः कम्पिताः सन्तापिताः॥506॥
''असपत्ने समाने, किं तव कामैः ये बहुसपत्नाः।
राजाऽग्निचोरोदकप्रियैः, साधारणाः कामाः बहु असपत्नाः॥507॥
''मोक्षे विद्यमाने, किं तव कामैः येषु वधबन्धः।
कामेषु हि असकामाः, वधबन्धदुःखानि अनुभावयन्ति॥508॥
''आदीप्ता तृणकाः, गृह्णन्तं दहन्ति नैव मुञ्चन्तम्।
उल्कोपमा हि कामाः, दहन्ति ये तान् न मुञ्चन्ति॥509॥
''मा अल्पकस्य हेतोः, कामसुखस्य विपुलं जहि सुखम्।
मा पृथुलोम इव बडिसम्, गिलित्वा पश्चात् विहन्यते॥510॥

(हिन्दी)- अमृत के विद्यमान रहते हुए, कामभोगों की ज्वाला से प्रज्ज्वलन का क्या लाभ? क्योंकि ये सभी कामरतियाँ जलाने वाली, कुढ़ाने वाली, कँपाने वाली एवं दुःखी करने वाली हैं॥506॥

जब तुम शत्रुरहित जीवन बिता सकते हो तो तुमको ये कामभोग शत्रु उत्पन्न करने से क्या लाभ मिलेगा? इन कामभागो के राजा, अग्नि, चोर, उदक एवं प्रिय सम्बन्धिजन आदि बहुत से शत्रु हैं॥507॥

मुक्ति के विद्यमान रहते इन कामभोगों के वध-बन्धन में फँसने से तुमको क्या मिलेगा! क्योंकि इन कामभोगों के साथ अनेक प्रकार के वध बन्धन एवं दुःख भी सम्पृक्त रहते हैं॥508॥

ये कामभोग प्रज्ज्वलित तृणराशि के समान हैं। ये ग्रहण करने वाले को ही कष्ट देते हैं, त्यागने वाले को नहीं। अतः इन कामभोगों को उल्का के समान समझो। ये उसको अवश्य जलाते हैं जो इनको छोड़ते नहीं हैं॥509॥

तुम इस अल्प कामसुख के लिये अतिशय (निर्वाण) सुख का त्याग न करो। तुम वह मछली न बनो, जो थोड़ा सा अन्न लगे काँटे को निगलने का प्रयास करती है॥510॥

''कामं कामेसु दमस्सु, ताव सुनखोव सङ्खलाबद्धो।
काहिन्ति खु तं कामा, छाता सुनखंव चण्डाला॥511॥
''अपरिमितञ्च दुक्खं, बहूनि च चित्तदोमनस्सानि।
अनुभोहिसि कामयुत्तो, पटिनिस्सज अद्धुवे कामे॥512॥
''अजरम्हि विज्जमाने, किं तव कामेहि येसु जरा।
मरणब्याधिगहिता, सब्बा सब्बत्थ जातियो॥513॥
''इदमजरमिदममरं, इदमजरामरं पदमसोकं।
असपत्तमसम्बाधं, अखलितमभयं निरुपतापं॥514॥
''अधिगतमिदं बहूहि, अमतं अज्जापि च लभनीयमिदं।
यो योनिसो पयुञ्जति, न च सक्का अघटमानेन''॥515॥

(संस्कृतच्छाया) - ''कामं कामेषु दमस्व, तावत् श्वान इव श्रृङ्खलाबद्धः।
कदर्थयन्ति खलु तं कामाः, क्षुधिताः श्वानमिव चाण्डालाः॥511॥
''अपरिमितञ्च दुःखम्, बहूनि च चित्तदौर्मनस्यानि।
अनुभविष्यसि कामयुक्तः, प्रतिनिसृज्यते अध्रुवाः कामाः॥512॥
''अजरे विद्यमाने, किं तव कामैः येषु जराः।
मरणव्याधिगृहीताः, सर्वाः सर्वत्र जातयः॥513॥
''इदमजरमिदममरम्, इदमजरामरं पदमशोकम्।
असपत्नमसम्बाधम्, अस्खलितमभयं निरूपताम्॥514॥
''अधिगतमिदं बहूभिः, अमृतम् अद्यापि च लाभनीयमिदम्।
यो योनिशः प्रयुञ्जते, न च शक्याः अघटमानेन॥515॥

(हिन्दी)- तुम अपने कामभोगों का उसी प्रकार दमन करो, जैसे साँकल बँधा कुत्ता अपने कामों का दमन करता है। अन्यथा ये चाण्डाल कामभोग उस गरीब कुत्ते को खा जायँगे॥511॥

भोगों में आसक्त होकर अनेक दुःख और मानसिक क्लेशों को तुम पाओगे। भोगासक्ति का परित्याग करो। भोग अध्रुव हैं, सदा ठहरने वाले नहीं हैं॥512॥

जब जराहीन निर्वाण तुम्हारे सामने हैं, तो जराशील भोगों से तुम्हें क्या प्रयोजन? सभी योनियाँ, सभी प्रकार से, व्याधि और मृत्यु से भरी हुई हैं॥513॥

यह (निर्वाण) अजर है, यह अमर है, यह अजरता और अमरता का स्थान है, यहाँ शोक नहीं है, यहाँ शत्रु नहीं है, विघ्न नहीं हैं। यह अचल है, अस्खलित है, भयहीन है, सन्तापहीन है॥514॥

बहुत जनों ने इस अमृत को प्राप्त किया है, आज भी वह प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु सम्पूर्ण अन्तःकरण से ठीक प्रकार जो उसके लिए यत्न करेंगे, वही उसे प्राप्त करेंगे, बिना प्रयास करने वालों के द्वारा वह प्राप्य नहीं है॥515॥

''एवं भणति सुमेधा, सङ्खारगते रतिं अलभमाना।
अनुनेन्ती अनिकरत्तं, केसे च छमं खिपि सुमेधा॥516॥
''उट्ठाय अनिकरत्तो, पञ्जलिको याचितस्सा पितरं सो।
विस्सज्जेथ सुमेधं, पब्बजितुं विमोक्खसच्चदस्सा''॥517॥
''विस्सज्जिता मातापितूहि, पब्बजि सोकभयभीता।
छ अभिञ्ञा सच्छिकता, अग्गफलं सिक्खमानाय॥518॥
''अच्छरियमब्भुतं तं, निब्बानं आसि राजकञ्ञाय।
पुब्बेनिवासचरितं, यथा ब्याकरि पच्छिमे काले॥519॥
''भगवति कोणागमने, सङ्घारामम्हि नवनिवेसम्हि।
सखियो तिस्सो जनियो, विहारदानं अदासिम्ह॥520॥

(संस्कृतच्छाया) - ''एवं भणति सुमेधा, संस्कारगते रतिम् अलाभमाना।
अनुनयन्ति अनीकरत्तम्, केशान् च क्षमायां क्षिप्तः सुमेधा॥516॥
''उत्थाय अनीकरत्तः, प्राञ्जलिकः अयाचित् पितरं सः।
विसर्जयेत् सुमेधाम्, प्रव्रजितुं विमोक्षसत्यदर्शनाय॥517॥
''विसर्जिता मातापितृभ्याम्, प्रव्रजिता शोकभयभीता।
षडोभिज्ञा साक्षिकृता, अग्रफलं शिक्षमानायाः॥518॥
''आश्चर्यमद्भुतं तत्, निर्वाणम् आसीत् राजकन्यायाः।
पूर्वनिवासचरितम्, यथा अवीवचत् पश्चिमे काले॥519॥
''भगवति कोणागमने, सङ्घरामे नवनिवेशे।
सखी तिस्रः जनाः, विहारदानं ददिम॥520॥

(हिन्दी)- सभी संस्कारों से विरक्त हुई सुमेधा ने ऐसा कह कर अनिकरत्त की अनुनय करते हुए अपने केशों से भूमि को स्पर्श किया॥516॥

अनिकरत्त ने भी खड़े होकर अंजलि बाँधी और सुमेधा के पिता से प्रार्थना की - "सत्य और मुक्ति के दर्शन के लिए आप सुमेधा को प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए अनुमति देकर विदा करें॥517॥

संसार के शोक और भय से व्यथित हुई सुमेधा माता-पिता से आज्ञा लेकर प्रव्रजित हो गई; शिक्षार्थिनी होने के समय ही उसने छह अभिज्ञाओं (गूढ ज्ञानों) को प्राप्त कर सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त कर लिया॥518॥

राजकन्या का यह निर्वाण प्राप्त करना अति आश्चर्यकारी है, अद्भुत् है! अपने इस अन्तिम जीवन में उसने अपने पूर्व-जन्मों का विवरण दिया है, जो इस प्रकार है॥519॥

जिस समय भगवान् कोणागमन बुद्ध संघाराम नामक नवीन विहार में निवास कर रहे थे, उस समय मैं और मेरी दो सखियों (क्षेमा और धनंजानी), इन तीनों जनियों ने, एक विहार निर्माण करवाकर उन्हें दान किया था॥520॥

''दसक्खत्तुं सतक्खत्तुं, दससतक्खत्तुं सतानि च सतक्खत्तुं।
देवेसु उप्पज्जिम्ह, को पन वादो मनुस्सेसु॥521॥
''देवेसु महिद्धिका अहुम्ह, मानुसकम्हि को पन वादो।
सत्तरतनस्स महेसी, इत्थिरतनं अहं आसिं॥522॥
''सो हेतु सो पभवो, तं मूलं साव सासने खन्ती।
तं पठमसमोधानं, तं धम्मरताय निब्बानं''॥523॥
''एवं करोन्ति ये सद्दहन्ति, वचनं अनोमपञ्ञस्स।
निब्बिन्दन्ति भवगते, निब्बिन्दित्वा विरज्जन्ती"ति॥524॥
इत्थं सुदं सुमेधा थेरी गाथायो अभासित्थाति।

महानिपातो निट्ठितो।
समत्ता थेरीगाथायो

गाथासतानि चत्तारि, असीति पुन चुद्दस।
थेरियेकुत्तरसता, सब्बा ता आसवक्खयाति॥

(संस्कृतच्छाया) - ''दशकृत्वा शतकृत्वा, दशशतकृत्वा शतानि च शतकृत्वा।
देवेषु जज्ञिमहे, कः पुनः वादो मनुष्येषु॥521॥
''देवेषु महिऋद्धिका अभूतहम्, मानुषके कः पुनः वादः।
सप्तरत्नस्य महिषी, स्त्रीरत्नमहमासम्॥522॥
''स हेतुः स प्रभवः, तत् मूलं सैव शासने शान्ति।
तत् प्रथमसमोधानम्, तत् धर्मरतायाः निर्वाणम्॥523॥
''एवं कुर्वन्ति ये श्रद्दधति, वचनम् अनुपमप्रज्ञस्य।
निर्वेदयन्ति भवगते, निर्वेद्य व्यरज्यन्तीति"॥524॥
इत्थं स्वित् सुमेधा स्थविरा गाथा अभाषतेति।
गाथा शतानि चत्वारि, अशीति पुनश्चतुर्दशः।
स्थविरैकोत्तरशताः, सर्वास्ता आस्रवक्षया इति।।

(हिन्दी)- उसके पुण्य-प्रभाव से हमने दस, सौ, हजार, लाख, असंख्य बार देवलोक में जन्म प्राप्त किया, मनुष्य-लोक का तो कहना ही क्या?॥521॥
देवलोक में भी हमारा बड़ा प्रभाव प्रतिष्ठित हो गया; मनुष्य-लोक की तो बात ही क्या? फिर स्त्री- रत्न होकर मैंने जन्म लिया और सात रत्नों से सम्पन्न चक्रवर्ती सम्राट की मैं प्रधान महिषी हुई॥522॥
बुद्ध-शासन में मेरी धैर्यमयी श्रद्धा ही इस सबका हेतु थी इस सबका स्रोत थी, इस सबका मूल कारण थी, वही इस सबका परम सामंजस्य थी, उसी से मुझ धर्मानुरागिणी की मुक्ति हुई॥523॥
उन अनुपम प्रजा वाले सम्यक् सम्बुद्ध के वचनों में जो श्रद्धा रखते हैं, और वैसा करते हैं, वे जीवन की तृष्णा से निर्वेद प्राप्त करते हैं, निर्वेद प्राप्त कर वे सब प्रकार की आसक्तियों से ही विरक्त हो जाते हैं।।
इस प्रकार सुमेधा भिक्षुणी ने ये गाथाएँ कहीं॥524॥
इस ग्रन्थ में चार सौ चौरानवें गाथाएँ हैं। एक सौ एक स्थविर भिक्षुणियों का वर्णन है। ये सभी आश्रवक्षय (निर्वाण) तक पहुँच चुकी थीं।।

टिप्पणी- इस ग्रन्थ में 524 गाथाएँ और 73 भिक्षुणियों के उद्गार प्राप्त हैं। **** थेरीगाथापालिनिट्ठिता ****

परिशिष्ट-

थेरगाथापालि

गाथानुक्कमणिका (गाथा नं॰ निर्दिष्ट है)

अक्कोधनोनुपनाही- 502,503,504,505,506
अक्कोधस्स कुतो कोधो- 441
अगारवो च कासावे- 966
अङ्गारिनो दानि दुमा भदन्ते- 526
अच्चयन्ति अहोरत्ता- 145
अच्चारद्धम्हि वीरियम्हि- 638
अच्छेरं वत बुद्धानं- 1088
अच्छोदिका पुथुसिला- 113,601,1073
अजरं जीरमानेन - 32
अजेगुच्छं विमुत्तेहि- 961
अज्ज पन्नरसे विसुद्धिया- 1243
अज्जतग्गे मं सोपाक- 485
अज्झत्तं मे समुट्ठाय- 755
अज्झत्तञ्च न जानाति- 471
अज्झत्तञ्च पजानाति- 472
अज्झत्तञ्च बहिद्धा च- 337,439
अज्झत्तञ्च न जानाति- 470
अज्झायकोपि चे अस्स- 1180
अञ्छामि नं न मुञ्चामि- 750
अञ्जनीव नवा चित्ता- 773,1023,1164
अञ्ञथा लोकनाथम्हि- 921
अञ्ञस्स भगवा बुद्धो- 995
अञ्ञाणमूलभेदाय - 419
अञ्ञातमानिनो धम्मे- 953
अट्ठपदकता केसा- 772,1022,1163
अट्ठिकङ्कलकुटिके- 1153
अट्ठिसङ्घातघटितो- 570
अड्ढा दलिद्दा च फुसन्ति फस्सं- 783
अतिमानो च ओमानो- 428
अतिसीतंअतिउण्हं-231
यो च सीतञ्च उण्हञ्च- 232
अतिहिता वीहि- 381
अत्थञ्च यो जानाति भासितस्स- 374
अत्थस्सायं विञ्ञापनी- 703
अत्थाय वत मे बुद्धो- 340
अथ पापानि कम्मानि- 146
अथ सट्ठिसिता सवितक्का- 1226
अथद्दसासिं सम्बुद्धं- 622,912
अथो सीदति सञ्ञुत्तं- 741
अद्धा न जानन्ति यतोध धम्मं- 188
अधिचेतसो अप्पमज्जतो- 68
अनङ्गणस्स पोसस्स- 652,1000
अनन्तरं हि जातस्स- 553
अनाकिण्णा गहट्ठेहि- 1072
अनागतं यो पटिकच्च पस्सति- 547
अनासन्नवरा एता- 34
अनिक्कसावो कासावं- 969
अनिच्चं दुक्खन्ति विपस्स योनिसो- 1120
अनिच्चा हि चला सद्धा- 247
अनिच्चा वत सङ्खारा- 1168
अनिच्चानि गहकानि- 183
अनिमित्तञ्च भावेहि- 1235
अनिस्सरणदस्सावी- 732
अनुकम्पाय मे सत्था- 560
अनुदिट्ठीनं अप्पहानं- 754
अनुद्धतो अचपलो- 682,1084
अनुप्पत्तो सच्छिकतो- 331
अनुवस्सिको पब्बजितो- 24
अनुसासि मं अरियवता- 334
अनुसासि महावीरो- 66
अनुस्सरन्तो सम्बुद्धं- 354
अनेकजातिसंसारं - 78
अन्तोवङ्कगतो आसि- 749
अन्धोहं हतनेत्तोस्मि- 95

अन्नभारो पुरे आसिं- 910
अपण्डरो अण्डसम्भवो- 599
अपि चे होति तेविज्जो- 129
अपुञ्ञं पसवी मारो- 1215
अप्पमत्तस्स मे सिक्खा- 333
अप्पस्सुतायं पुरिसो- 1028
अप्पिच्छता सप्पुरिसेहि वण्णिता- 1127
अप्पिच्छो चेव सन्तुट्ठो- 581
अप्पिच्छो सातातिको- 857
अब्बूळ्हं अघगतं विजितं- 321
अब्भतीतसहायस्स- 1038
अब्भोकासी सातातिको- 853
अब्भोकासे विहरसि- 385
अभिञ्ञापारमिप्पत्तो- 1271
अभिञ्ञेय्यं अभिञ्ञातं- 828
अभिभूतस्स दुक्खेन- 967
अभिवुट्ठा रम्मतला- 1068
अभिसत्तोव निपतति- 118
अमोघं दिवसं कयिरा- 451
अम्बपल्लवसङ्कासं- 197
अम्बिलं मधुरग्गञ्च- 733
अयञ्च दहरो भिक्खु- 1175
अयमाहु पुराणिया कुटि- 57
अयमिति कप्पटो कप्पटकुरो- 199
अयोगे युञ्जमत्तानं- 320
अयोनि सुद्धिमन्वेसं- 219
अयोनिसो मनसिकारा- 157
अरञ्ञे रुक्खमूलेसु- 925
अरञ्ञे रुक्खमूले वा- 887
अरतिञ्च रतिञ्च पहाय- 1223
अरहं सुगतो लोके- 185
अरहा दक्खिणेय्योम्हि- 336
अरूप दूरङ्गम एकचारि- 1125
अलं झायितुकामस्स- 1069
अलं मे फासुकामस्स- 1070
अलङ्कता सुवसना- 267,459
अलत्तकता पादा- 771,1021,1126
अलद्धा चित्तस्सेकग्गं- 406
अल्लं सुक्खं वा भुञ्जन्तो- 982
अवण्णञ्च अकित्तिञ्च- 611
अविज्जाय निवुतो कायो- 572
अवितक्कं समापन्नो- 650,998
असंसट्ठो सातातिको- 860
असंहीरं असंकुप्पं- 649
असक्खिं वत अत्तानं- 88
असङ्खेय्येसु कप्पेसु- 202
असल्लीनेन चित्तेन- 906
असुभाय चित्तं भावेहि- 1234
असेय्यो सेय्यसमानं- 1078
अस्सत्थे हरितोभासे- 217
अहं भिद्धेन पकतो- 271
अहं सकरणीयोम्हि- 1048
अहं खो वेळुगुम्बस्मिं- 23
अहिंसको'ति मे नामं- 879
अहु तुय्हं पुरे सद्धा- 246
अहु बुद्धस्स दायादो- 18
अहो बुद्धा अहो धम्मा- 201
आकासम्हि हलिद्दिया- 1158
आगच्छन्तग्गिखन्धाव- 450
आचारगोचरे युत्तो- 590
आजानीयेन आजञ्ञो- 433
आतुरं असुचिं पूतिं- 394
आदि सीलं पतिट्ठा च- 612
आनापानसती यस्स- 548
आबाधे मे समुप्पन्ने- 30
आयागो सब्बलोकस्स- 566
आरञ्ञकानि सेनासनानि- 592
आरञ्ञिका पिण्डपातिका- 1149,1150
आरञ्ञिको सातातिको- 851
आरञ्ञिको होहि च पिण्डपातिको- 1123
आरद्धवीरिया पहितत्ता- 156
आरद्धवीरिये पहितत्ते- 353

आरद्धवीरियो सातातिको- 861
आरम्भथ निक्कमथ- 256
आरम्मणे तं बलसा निबन्धिसं- 1144
आसन्दिं कुटिकं कत्वा- 55
आसाय कसते खेत्तं- 530
इच्चेव चोरो असिमावुधञ्च- 869
इट्ठा धम्मा अनिट्ठा च- 644
इति मारं अतज्जेसि- 1217
इतो सत्त ततो सत्त- 915
इतो बहिद्धा पुथु अञ्ञवादिनं- 86
इत्थिरूपे इत्थिसरे- 738
इत्थिसोतानि सब्बानि- 739
इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं- 1133
इदं भोन्तो निसामेथ- 832
इदं वत्वा सालवने- 948
इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं- 77
इधेव कित्तिं लभति- 618
इधेव निन्दं लभति- 617
इन्द्रियानि मनुस्सानं- 728
इन्द्रियानेव सारक्खं- 729
इमञ्च पस्स आयन्तं- 1185
इमे हञ्ञन्तु वज्झन्तु- 603,646
उक्कण्ठामि सरीरेन- 718
उक्कण्ठितोपि न वसे- 105
उक्खेपकतवच्छस्स- 65
उग्गपुत्ता महिस्सासा- 1219
उच्चावचेहुपायेहि- 743
उच्चे मण्डलिपाकारे- 863
उजुमग्गम्हि अक्खाते- 637
उज्झानसञ्ञिनो बाला- 958
उट्ठेहि निसीद कातियान- 411
उत्तमं धम्मतं पत्तो- 712
उत्तिट्ठपिण्डो आहारो- 1060
उत्तिण्णा पङ्कपलिपा- 89
उदकं हि नयन्ति नेतिका- 19,877
उदरावदेहकं भुत्वा- 935
उद्धच्चमेघथनितं- 760
उद्धता च भविस्सन्ति- 959
उद्धतो उन्नळो बालो- 973
उद्धतो चपलो भिक्खु- 681,1083
उन्नता सुखधम्मेन- 662
उन्नळस्स पमत्तस्स- 634
उपज्झायस्स उदकं- 430
उपज्झायो मं अवच- 14
उपट्ठापेन्ति परिसं- 942
उपधी ते समतिक्कन्ता- 840
उपधीसु जना गधितासे- 1225
उपसन्तं उपरतं- 1178
उपसन्तो अनायासो- 1007
उपसन्तो उपरतो- 2,1005,1006,1177
उपसम्पदा च मे लद्धा- 365
उपायकुसलेनाहं- 158
उपारम्भचित्तो दुम्मेधो- 360,361,362,363
उपासिता सप्पुरिसा- 179
उपेति गब्भञ्च परञ्च लोकं- 785
उप्पज्जे ते सचे कोधो- 445
उप्पतन्तेसु निपते- 76
उभयेन मिदं मरणमेव- 1003
उभयेनेव सम्पन्नो- 295
उभिन्नं तिकिच्छन्तं तं- 444
उभिन्नमत्थं चरति- 443
उमापुप्फेन समाना- 1071
उम्मग्गपथं मारस्स- 1251
एकंसं चीवरं कत्वा- 481
एकका मयं अरञ्ञे विहराम- 62
एकतिंसे इतो कप्पे- 218
एकपादेन अट्ठासिं- 284
एकपुत्तो अहं आसिं- 473
एकपुप्फं चजित्वान- 96
एकाकियो अदुतियो- 541
एकासनी सातातिको- 848
एकोपि सद्धो मेधावी- 240

एतं चे रुच्चति भोतो- 835
एतञ्च समतिक्कम्म- 894
एतमादीनं ञत्वा- 122,154,791
एतादिसं करित्वान- 285
एते पच्छिमका दानि- 907
एते सम्बहुला देवा- 1085,1187
एवं अनागतद्धानं- 977
एवं चे मं विहरन्तं- 1222
एवं दस्सनसम्पन्नं- 174
एवं नानप्पयातम्हि- 945
एवं पञ्ञाय ये तित्ता- 660
एवं मे कतुकामस्स- 542
एवं विहरमानस्स- 586
एवं सब्बङ्गसम्पन्नं- 1260
एवं सुदेसिते धम्मे- 1254
एवं मे भयजातस्स- 763
एवं विजितसङ्गामं- 1245
एवञ्चे तं जनो जञ्ञा- 1156
एवमेतं महावीर- 1157
एवमेते तथा वुत्ता- 1269
एवमेव तुवं मार - 1214
एवायं वत्तते कायो- 574
एस बन्धामि सन्नाहं- 543
एस भिय्यो पसीदामि- 673
एसावहिय्यसे पब्बतेन- 115
एहि नन्दक गच्छाम- 175
ओगय्हट्ठङ्गिकं सोतं- 349
ओघपासो दळ्हखिलो- 680
ओघस्स हि नितरणत्थं- 1252
ओट्ठप्पहतमत्तेन- 1077
ओदहि मिगवो पासं- 774,1165
ओदातं वत मे चित्तं- 549
ओभासजातं फलगं- 25
ओरं ओदनपाकम्हा- 317
ओलग्गेस्सामि ते चित्त- 355
ओवदेय्यानुसासेय्य- 994
कं नु तत्थ न रमेन्ति- 309
कच्चि नो वत्थपसुतो- 28
कटुकं मधुरस्सादं- 737
कदा अनिच्चं वधरोगनीळं- 1096
कदा नु कट्ठे च तिणे लता च- 1104
कदा नु गङ्गं यमुनं सरस्सतिं- 1107
कदा नु पञ्ञामयमुग्गतेजं- 1098
कदा नु मं तन्दि खुदा पिपासा- 1100
कदा नु मं पावुसकालमेघो- 1105
कदा नु रूपे अमिते च सद्दे- 1102
कदा नुहं दुब्बचनेन वुत्तो- 1103
कदा नुहं भयजननिं दुखावहं- 1097
कदा नुहं भिन्नपटन्धरो मुनि- 1095
कदा नुहं सब्भि समागमेसु- 1099
कदा इणट्टोव दलिद्दको निधिं- 1109
कदा नु खो यं विदितं महेसिना- 1101
कदा नु नागोव असङ्गचारी- 1108
कदा नुहं पब्बतकन्दरासु- 1094
कदा मयूरस्स सिखण्डिनो वने- 1106
कन्दन्ति नं ञाती पकिरिय केसे- 779
कप्पियं तं चे छादेति- 984
कम्मं कम्मन्ति ञत्वान- 422
कम्मं बहुकं न कारये- 494,1075,1076
करतो ते चीयते पापं - 1216
करेरिमालावितता- 1065
करोथ बुद्धवचनं- 403
कल्याणदस्सनो भिक्खु- 821
कस्स सेलूपमं चित्तं- 191
कस्सिन्द्रियानि समथङ्गतानि- 205
कामं भिज्जतुयं कायो- 312
कामकोपप्पहीना ये- 671
कामच्छन्दो च ब्यापादो- 74,1009
कामन्धा जालपच्छन्ना- 297
कामरागेन डय्हामि- 1232
कामा हि चित्रा मधुरा मनोरमा- 787,1115
कामे आदित्ततो दिस्वा- 790

कामेस्वादीनवं दिस्वा- 458
कायदुट्ठुल्लगरुनो- 114
कायमच्छेरगरुनो- 1036
कालपब्बङ्गसङ्कासो- 243,683
काले कालवसं पत्ता- 661
काळी इत्थी ब्रहती धङ्करूपा- 151
कावेय्यमत्ता विचरिम्ह पुब्बे- 1262
किं भदन्ते करित्वान- 721
किं तवत्थो वने तात- 597
किंछन्दा किमधिप्पाया- 950
किच्छा लद्धो अयं पुत्तो- 475
किमानुपुब्बं पुरिसो- 727
किमीव मीळ्हसल्लित्तो-- 1184
किलेसा झापिता मय्हं- 67
किलेसेहाभिभूता ते- 932
कीदिसो निरयो आसि- 1196
कुट्टमूलञ्च निस्साय - 1059
कुलम्हि मित्ते च पिये च ञातके- 1112
कुल्लो सिवथिकं गन्त्वा- 393
कुसलानञ्च धम्मानं- 929
केसे मे ओलिखिस्सन्ति- 169
को नु सेनापति भोतो- 826
को मे असत्थो अवणो- 757
को कुटिकायं भिक्खु कुटिकायं- 56
को सो पारङ्गतो लोके- 748
को हि तस्स जनेनत्थो- 150
कोटिसतसहस्सस्स- 1192
कोधना उपनाही च- 952
खतिया भोगी राजानो- 823
खन्त्या छन्दिकतो होति- 1032
खन्धा दिट्ठा यथाभूतं- 87
खन्धा मया परिञ्ञाता- 161
खलुपच्छाभत्ती सातातिको- 850
खिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं- 1279
खीणा हि मय्हं जाति- 135
खीणाय भवनेतिया- 708
खीणासवो विसञ्ञुत्तो- 1025
गच्छं वदेसि समण 'ट्ठितोम्हि'- 866
गतिमन्तो सतिमन्तो- 1052
गत्तानि परिमज्जित्वा- 272
गन्धं घत्वा सति मुट्ठा- 798
गम्भीरपञ्ञो मेधावी- 1240
गहकारक दिट्ठोसि- 184
गामे वा यदि वारञ्ञे- 991
गुणवन्तोपि सङ्घम्हि- 956
गुणहीनापि सङ्घम्हि- 955
गूथभस्ते तचोनद्धे- 1154
चक्कवत्ती यथा राजा- 1244
चक्कानुवत्तको थेरो- 1013
चक्खुं सरीरं उपहन्ति तेन- 555
चक्खुन्द्रियं चे रूपेसु- 730
चक्खुमास्स यथा अन्धो- 501
चतुब्बिपल्लासवसं अधिट्ठितं- 1146
चत्तारि अरियसच्चानि- 492
चत्तारो पञ्च आलोपे- 983
चत्तारो सतिपट्ठाने- 166
चन्दो यथा विगतवलाहके नभे- 1261
चरतो तिट्ठतो वापि- 452
चारित्तं अथ वारित्तं- 591
चाले उपचाले सीसूपचाले- 42
चित्तनिमित्तस्स कोविदो- 85
चिररत्तं वतातापी- 747
चिरसंकिलिट्ठं वत मं- 290
चिरस्सं वत मे महितो महेसी- 868
चिहचिहाभिनदिते- 49
चुता पतन्ति पतिता- 63
चुतूपपातं जानामि- 917
चेतसा अनुपरियेति- 1259
चोदितो भावितत्तेन- 1173
चोरो अहं पुरे आसिं- 880
चोरो यथा सन्धिमुखे गहीतो- 786
छद्दन्तो हि तदा दिस्वा- 968

छन्नमतिवस्सति - 447
छन्ना मे कुटिका सुखा निवाता- 1
छफस्सायतने हित्वा- 116
छविपापक चित्तभद्दक- 207
छिन्द नो विचिकिच्छं ब्रूहि मेतं- 1275
छिन्नो पासो मिगवस्स- 775,1166
जनो जनम्हि सम्बद्धो - 149
जातरूपेन सञ्छन्ना- 299
जातिमदेन मत्तोहं- 423
जातिया सत्तवस्सेन- 479
जातिया सत्तवस्सोहं- 485
जिगुच्छितो मनुस्सानं- 621
जिण्णञ्च दिस्वा दुखितञ्च ब्याधितं- 72
जीवते वापि सप्पञ्ञो- 499,550
जीवितञ्च अधम्मेन- 670
जीवितानं परिक्खारे- 924
झायाहि जिनाहि कातियान- 415
ठितो अहं अङ्गुलिमाल सब्बदा- 867
तं झायिनं सातातिकं- 1011
तं तथा देवकायेहि- 1089
तं न पस्सामि तेकिच्छं- 756
तं सावकं सक्क मयम्पि सब्बे- 1274
तं सुखेन सुखं लद्धं- 220
तं कामं अहमुज्झित्वा- 298
तं वो वदामि भद्दं वो- 402
तच्छन्तो आणिया आणिं- 744
तञ्च दिस्वान आयन्तिं- 300,463
तण्हं पजहेय्य मुनि- 596
तण्हक्खयाधिमुत्तस्स- 641
तण्हा अविज्जा च पियापियञ्च- 1128
तण्हाधनुसमुट्ठानं- 753
ततो कल्याणवाक्करणो- 368
ततो कारुणिको सत्था- 625
ततो चित्तं विमुच्चि मे- 70,274,302, 319,410,465
ततो पञ्हे अपुच्छि मं- 482
ततो मे पणिधी आसि- 514
ततो मे मनसीकारो- 269,273,301,318,409,464
ततो मे सत्था पाहेसि- 564
ततो रत्या विवसाने- 517,628
ततो सत्था निराकत्वा- 478
ततो दिस्वान मं सत्था- 630
ततो पासादिकं आसि- 927
तथा तु कस्सामि यथापि इस्सरो- 1141,1142
तथेव च लोके जातो- 701
तदाकाससमं चित्तं- 1159
तदासि यं भिंसनकं- 1049,1167
तदाहं पुत्तदारञ्च- 512
तदाहं खुरमादाय- 408
तपेन ब्रह्मचरियेन- 631
तमेव वाचं भासेय्य- 1236
तया सुदन्तेन अवट्ठितेन हि- 1143
तव सरीरं नवसोतं- 1155
तवेव हेतू असुरा भवामसे- 1131
तस्मा अखिलो इध पधानवा- 1231
तस्मा सद्धञ्च सीलञ्च- 509
तस्मा हि इच्छेय्य कुले वसन्ते- 556
तस्मा हि धम्मेसु करेय्य छन्दं- 305
तस्मा सद्धञ्च सीलञ्च- 204
तस्मा हि पञ्ञाव धनेन सेय्या- 784
तस्स तं वचनं सुत्वा- 720
तस्स ते नत्थि भीतत्तं- 706
तस्स ब्रह्मा वियाकासि- 1208
तस्स मेवं विहरतो- 224,314,515
तस्स वड्ढन्ति वेदना- 795,797,799,801,803,805
तस्स तं देसयन्तस्स- 1242
तस्स धम्मा इमे होन्ति- 900
तस्स मे अप्पमत्तस्स- 216
तस्स सम्मा विमुत्तस्स- 642
तस्सत्था परिपूरेन्ति- 294
तस्सत्था परिहायन्ति- 292

तस्साहं धम्ममञ्ञाय- 903
तस्साहं वचनं सुत्वा- 561,1264
तस्साहं वचनं सुत्वा- 561
तस्सेव तेन पापियो- 442
ता मतमदसङ्घसुप्पहीना- 310
तादिसं कम्मं कत्वान- 882
तादिसं भिक्खुं मासादि- 1182
ताहं चित्तकलिं ब्रूमि- 214
तिट्ठ मक्कट मा धावि- 126
तिणकट्ठसमं लोकं- 717
तिण्णं मे तालपत्तानं- 127
तुच्छो कायो अदिस्सित्थ- 170
तुवं बुद्धो तुवं सत्था- 839
ते अब्भतीता कालङ्कता- 242
ते किलेसा पवड्ढन्ता- 931
ते च मं अनुकम्पाय- 474
ते तथा सिक्खिता बाला- 976
ते पब्बजित्वा सुगतस्स सासने- 725
ते मे इज्झिंसु सङ्कप्पा- 60
तेचीवरी सातातिको- 846
तेनायं देसितो धम्मो- 723
तेलसण्ठेहि केसेहि- 960
तेविज्जोहं महाझायी- 112
तेसं खो वत अत्थाय- 1266
त्वं ओलग्गो न गच्छसि- 356
त्वञ्च मे मग्गमक्खाहि- 168
त्वञ्ञेव नो चित्त करोसि ब्राह्मणो- 1130
त्वान धम्मं महतो महारसं- 68
दण्डेनेके दमयन्ति- 878
दन्तपोनं कपित्थञ्च- 938
दन्धा मय्हं गती आसि- 557
दब्बं कुसं पोटकिलं- 27,233
दब्बो चिररत्तसमाहितो- 1227
दस्सनाय अभिक्कन्ते- 1040,1041
दायादका तस्स धनं हरन्ति- 781
दिट्ठा मया धम्मधरा उपासका- 187
दिट्ठिगहनपक्खन्दो- 342
दिवा विहारा निक्खम्म- 1250
दिसा हि मे खन्तिवादानं- 875
दिसापि मे धम्मकथं सुणन्तु- 874
दिस्वा विनायकं अग्गं- 426
दिस्वा पासादछायायं- 480
दिस्वान पाटिहीरानि- 375
दीघरत्तानुसयितं- 768
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं- 1268
दुक्खन्ति खन्धे पटिपस्स योनिसो- 1119
दुक्खा कामा एरक- 93
दुप्पब्बज्जं वे दुरधिवासा गेहा- 111
दुमप्फलानीव पतन्ति माणवा- 788
दुमव्हयाय उप्पन्नो- 64
दुमानि फुल्लानि मनोरमानि- 528
दुम्मेधेहि पसंसा च- 668
देवो च वस्सति देवो च गळगळायति- 189
द्वासीति बुद्धतो गण्हिं- 1027
द्विन्नं अन्तरवस्सानं- 128
द्विपादकोयं असुचि- 453
धनञ्च पुत्तं भरियञ्च- 934
धम्मं ञत्वा सति मुट्ठा- 804
धम्मता ममसा यस्स मे- 190
धम्मप्पति हि सो सेट्ठो- 758
धम्ममप्पमेय्यं अनुस्सर - 383
धम्मसेनापतिं वीरं- 1086
धम्मादासं गहेत्वान- 395
धम्मारामो धम्मरतो- 1035
धम्मेन च अलाभो यो- 666
धम्मो हवे रक्खति धम्मचारिं- 303
धरणी च सिञ्चति वाति- 50
धितिप्परं किं मम चित्त काहिसि- 1137
धिरत्थु पूरे दुग्गन्धे- 279
धीरा च पञ्ञोतकरा भवन्ति- 1278
धुवप्पयातो मरणाय- 571
न उक्खिपे नो च परिक्खिपे परे- 209

न कुलानि उपब्बजे मुनि- 1055
न ताव सुपितुं होति- 193
न ते इदं चित्त यथा पुराणकं- 1135
न दीघमायुं लभते धनेन- 782
न पक्खन्ति दिसा सब्बा- 1037
न पञ्चङ्गिकेन तुरियेन- 1074
न परस्सुपनिधाय- 496
न परे वचना चोरो- 497
न ब्राह्मणो बहिवण्णो- 140
न मे होति 'अहोसि'न्ति- 715
न विस्ससे एकतियेसु एवं- 1008
न वे अग्गि चेतयति- 1213
न सो उपवदे कञ्चि- 583
न सो रज्जति गन्धेसु- 810
न सो रज्जति धम्मेसु- 816
न सो रज्जति फस्सेसु- 814
न सो रज्जति रूपेसु- 806
न सो रज्जति सद्देसु- 808
न हि जातु सो ममं हिंसे- 876
न हेव लाभे नालाभे- 664
न गणेन पुरक्खतो चरे- 1054
न चीवरे न सयने- 1092
न तथा मतं सतरसं- 91
न नूनायं परमहितानुकम्पिनो- 109
न मय्हं कप्पते अज्ज- 487
न सो रज्जति रसेसु- 812
न हि सोचति भिक्खु कदाचि- 1230
न हेतदत्थाय मतस्स होति- 554
नगरं यथा पच्चन्तं- 653,1004
नगस्स पस्से आसीनं- 1258
नगा नगग्गेसु सुसंविरूळ्हा- 110
नगा समुद्दा सरिता वसुन्धरा- 1136
नत्थि चेतसिकं दुक्खं- 707
नत्थि दानि पुनावासो- 908
नत्थि कोचि भवो निच्चो- 121
नदन्ति एवं सप्पञ्ञा - 177
नदन्ति मोरा सुसिखा सुपेखुणा- 211
ननु अहं चित्त तयाम्हि याचितो- 1111
ननु दुब्भिस्ससि मं पुनप्पुनं- 1132
नमो ते पुरिसाजञ्ञ- 629,1187,1188
नमो हि तस्स भगवतो- 94
नमो ते बुद्ध वीरत्थु- 47
नयिदं सिथिलमारब्भ- 1174
नयिदं अनयेन जीवितं- 123
नरस्स हि सुजातस्स- 819
नहि धम्मो अधम्मो च- 304
नागं वो कित्तयिस्सामि- 693
नागनामो'सि भगवा- 1249
नात्तनो समकं कञ्चि- 424
नानाकुलमलसम्पुण्णो- 67
नानाजनपदं यन्ति- 37
नानुयुत्ता तथा एके- 944
नाभिनन्दामि मरणं- 196,606,607,654,655, 685,686,1001,1002
नायं अज्जतनो धम्मो- 552
नासिस्सं न पिविस्सामि- 223,313
नाहं अलक्ख्या अहिरिक्कताय वा- 1126
नाहं एतेन अत्थिको- 103
नाहं भयस्स भायामि- 21
नाहु अस्सासपस्सासा- 905
निक्खन्तं वत मं सन्तं - 1218
निक्खिपित्वान ब्याभङ्गिं- 623
निग्गय्ह अनुकम्पाय- 241
निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं- 1273
निधीनंव पवत्तारं- 993
निन्हातसब्बपापोम्हि- 348
निय्यानिको उत्तरणो- 418
नीचं मनं करित्वान- 579
नीचा निविट्ठा सुभरा- 926
नीचे कुलम्हि जातोहं- 620
नीलब्भकूटसदिसा- 1067
नीलब्भवण्णा रुचिरा- 13,1066

नीला सुगीवा सिखिनो- 22
नेकतिका वञ्चनिका- 940
नेक्खम्मे अधिमुत्तस्स- 640
नेव पुब्बेनिवासाय- 996
नेवातिसीतं न पनातिउण्हं- 529
नेसज्जिको सातातिको- 856
नेसो पस्सति सद्धम्मं- 1183
नो चे हि जातु पुरिसो किलेसे- 1277
पंसुकूली सातातिको- 844
पक्खन्दो मारविसये- 253
पङ्कोति हि नं अवेदयुं- 495,1056
पङ्कोति हि नं पवेदयुं- 124
पच्चति मुनिनो भत्तं- 248
पच्चवेक्खिं इमं कायं- 172
पज्जोतकरो अतिविज्झ- 1253
पज्जोतकरो परित्तरंसो- 416
पञ्च छिन्दे पञ्च जहे- 15,633
पञ्च नीवरणे हित्वा- 171
पञ्च कामगुणे हित्वा- 195
पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता- 90,120,440
पञ्चक्खन्धे परिञ्ञाय- 369
पञ्चङ्गिके समाधिम्हि- 916
पञ्चङ्गिकेन तुरियेन- 398
मनुजस्स पमत्तचारिनो- 399
पञ्चनीवरणे युत्तो- 573
पञ्चपञ्ञासवस्सानि- 283,904
पञ्चाहाहं पब्बजितो- 222
पञ्ञं इमं पस्स तथागतानं- 3
पञ्ञवन्तं तथा तादिं- 1080
पञ्ञा सुतविनिच्छिनी- 551
पञ्ञापारमितं पत्तो- 1014
पञ्ञाबली सीलवतूपपन्नो- 12
पञ्ञाय छेत्वा विपथानुसारिनं- 1145
पणीतं यदि वा लूखं- 923
पण्डितं वत मं सन्तं- 252
पण्णवीसतिवस्सानि- 405,1042,1043, 1044,1045,1046
पत्तपिण्डी सातातिको- 849
पनादो नाम सो राजा- 163
पब्बजिं जीविकत्थोहं- 311
पब्बजिं तुलयित्वान- 107
पब्बाजेत्वान मं सत्था- 477
पमादं भयतो दिस्वा- 980
पमादमनुयुञ्जन्ति- 883
पमादो रजो पमादो- 404
परिचिण्णो मया सत्था- 604,656,687,792,891, 918,1015,1053,1091, 1194
परिच्चजित्वा सद्धम्मं- 933
परित्तं दारुमारुय्ह- 147
परित्तं दारुमारुय्ह- 265
परिपुण्णकायो सुरुचि- 818
परियन्तकतं दुक्खं- 339
परे अम्बाटकारामे- 466
परे च नं गरहन्ति- 160
परे च नं पसंसन्ति- 159
परे च न विजानन्ति- 275,498
परोपरं अरियधम्मं विदित्वा- 1282
परोसहस्सं भिक्खूनं- 1247
पल्लङ्केन निसिन्नस्स- 985
पविवित्तेहि अरियेहि- 148,266
पविवित्तो सातातिको- 859
पसन्ननेत्तो सुमुखो- 820
पस्स चित्तकतं बिम्बं- 769,1019,1160,
पस्स चित्तकतं रूपं- 772,1020,1161
पस्सति पस्सो पस्सन्तं- 61
पस्सामि लोके सधने मनुस्से- 776
पस्सामि वीतिवत्तन्तं- 1209
पहाय मातापितरो- 892
पहीनजातिमरणं असेसं- 1280
पाचीनवंसदायम्हि- 155
पातो मज्झन्हिकं सायं- 345

पादुका ओरुहित्वान- 460
पापकानञ्च धम्मानं- 930
पापमित्ते विवज्जेत्वा- 264
पामोज्जबहुलो भिक्खु- 11
पारगू अनुपादानो- 711
पासादिके बहू दिस्वा- 949
पासादिकेन वत्तेन- 432
पिण्डपातपटिक्कन्तो- 896,1062,1063,1064,
पिण्डपाती सातातिको- 845
पिण्डिकाय पविट्ठोहं- 268
पियवाचमेव भासेय्य- 1237
पिसुणेन च कोधनेन च- 1017
पीतिसुखेन विपुलेन- 351,436
पुच्छामि सत्थारमनोमपञ्ञं- 1272
पुनप्पुनं चेव वपन्ति बीजं- 531
पुनप्पुनं याचनका चरन्ति- 532
पुब्बरुहिरसम्पुण्णो- 568
पुब्बलोहितसम्पुण्णं- 736
पुब्बापरञ्ञू अत्थञ्ञू- 1031
पुब्बे जटिलभूतस्स- 377
पुब्बे यञ्ञेन सन्तुट्ठो- 378
पुब्बे हनति अत्तानं- 139
पुब्बेनिवासं जानामि- 332,379,516,562,913
पुरतो पच्छतो वापि- 537
पुरा आगच्छते एतं- 978
पुरिमानि पमुञ्च बन्धनानि- 414
पूजितो पूजनेय्यानं- 186
पूजितो नरदेवेन- 1189
फस्सं फुस्स सति मुट्ठा- 802
फुट्ठो डंसेहि मकसेहि- 31,244,684
फुसिस्सं चतस्सो अप्पमञ्ञायो- 386
बहुदेव रत्तिं भगवा- 366
बहुस्सुतं उपासेय्य- 1030
बहुस्सुतं धम्मधरं- 1033
बहुस्सुतो अप्पस्सुतं- 1029
बहुस्सुतो च मेधावी- 988
बहुस्सुतो चित्तकथी- 1024
बहुस्सुतो धम्मधरो च होति- 373
बहुस्सुतो धम्मधरो- 1034,1050,1051
बहू आदीनवा लोके- 954
बहू सपत्ते लभति- 153
बहूनं वत अत्थाय- 1265
बहूनि लोके चित्रानि- 674
बहूनि वस्सानि तयाम्हि याचितो- 1110
बुद्धस्स चङ्कमन्तस्स- 1047
बुद्धस्स पुत्तोम्हि असय्हसाहिनो- 536
बुद्धानुबुद्धो यो थेरो- 679,1255
बुद्धेसु सगारवता- 589
बुद्धो च खो कारुणिको महेसि- 870
बुद्धो चे मे वरं दज्जा- 468
ब्रह्मजच्चो पुरे आसिं- 889
ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं- 221
ब्रह्मभूतं अतितुलं- 833
ब्रह्मभूतो अतितुलो- 831
ब्रह्मुनो पेक्खमानस्स- 182
ब्राह्मणा तिसता इमे- 836
भगवा तत्थ आगच्छि- 559
भवरागहतस्स मे सतो- 180
भावयित्वान बोज्झङ्गे- 672
भावेन्तो सतिपट्ठाने- 352
भावेन्तो सत्त बोज्झङ्गे- 437
भावेय्य च अनिच्चन्ति- 594
भावेय्य च बोज्झङ्गे- 595
भावेहि मग्गं अमतस्स पत्तिया- 1118
भावेहि झानानि च इन्द्रियानि च- 1117
भिक्खवो तिसता इमे- 841
भिक्खु सिवथिकं गन्त्वा- 315
भिक्खू च भिक्खुनियो च- 974
भुञ्जति अनवज्जानि- 698
भेसज्जेसु यथा वेज्जा- 939
मक्कटो पञ्चद्वारायं- 125
मक्खेन मक्खिता पजा- 1229

मच्चुनाब्भहतो लोको- 448,449
मज्झेसरस्मिं तिट्ठन्ति- 1199
मतं वा अम्म रोदन्ति- 44
मतञ्च दिस्वा गतमायुसङ्खयं- 73
मत्तिकं तेलचुण्णञ्च- 937
मनं चेतेहि धम्मेहि- 735
मनुस्सभूतं सम्बुद्धं- 689
मम सङ्कप्पमञ्ञाय- 376,901
मम सेलूपमं चित्तं- 192
ममेव एतं न हि त्वं परेसं- 1113
मया पवत्तितं चक्कं- 827
मयूरकोञ्चाभिरुतम्हि कानने- 1116
मय्हिन्द्रियानि समथङ्गतानि- 206
मरणे मे भयं नत्थि- 20
महप्पभं गणाचरियं- 288
महागिनि पज्जलितो- 702
महानागं महावीरं- 289
महानुभावो तेविज्जो- 1257
महारसो सुगम्भीरो- 421
महासमुद्दो पथवी- 1012
महिच्छो च असन्तुट्ठो- 898
मा पमादमनुयुञ्जेथ- 884
मा मे कदाचि पापिच्छो - 987
मा खो त्वं कप्पट पचालेसि- 200
मा पुराणं अमञ्ञित्थो- 280
मातरं पितरञ्चापि- 425
मानं पजहस्सु गोतम- 1228
मानं मदञ्च छड्डेत्वा- 427
मानुसोपि च भवोभिराधितो- 259
मानेन वञ्चितासे- 102
मालुते उपवायन्ते- 544
मिगं निलीनं कूटेन- 454
मिगो यथा सेरि सुचित्तकानने- 1147
मिच्छादिट्ठि पहीना मे- 343
मित्तं इध च कल्याणं- 588
मिद्धी यदा होति महग्घसो च- 17
मिलक्खुरजनं रत्तं- 965
मुण्डो विरूपो अभिसापमागतो- 1121
मेत्तचित्ता कारुणिका- 979
मेत्तञ्च अभिजानामि- 647
मोहा सब्बे पहीना मे- 344
यं आपदा उप्पतिता उळारा- 371
यं एसा सहते जम्मी- 400
यं करोति नरो कम्मं- 144
यं किच्चं दळ्हवीरियेन- 167
यं पत्थयानो धम्मेसु- 330
यं बुद्धो भासति वाचं- 1239
यं मनुस्सा नमस्सन्ति- 690
यं वो किच्चं सरीरेन- 719
यं किञ्चि सिथिलं कम्मं- 277
यं तं सरणमागम्ह - 838
यं मया पकतं कम्मं- 80
यं मया पकतं पापं- 81,346
यं सावकेन पत्तब्बं- 1256
यजिं उच्चावचे यञ्ञे- 341
यञ्च अञ्ञे न रक्खन्ति- 600
यञ्च अत्थेन सञ्जुत्तं- 742
यञ्च मे आसवा खीणा- 296
यञ्ञत्थं वा धनत्थं वा- 705
यञ्हि एके जिगुच्छन्ति- 316
यञ्हि कयिरा तञ्हि वदे- 226,262,322
यञ्हि किच्चं अपविद्धं - 635
यतो अहं पब्बजितो- 48,181
यत्थ एके विहञ्ञन्ति- 1061
यथा अगारं दुच्छन्नं- 133
यथा अगारं सुच्छन्नं- 134
यथा अब्भानि वेरम्भो- 598
यथा इदं तथा एतं- 396
यथा कण्टकट्ठानम्हि- 946
यथा कुञ्जरं अदन्तं- 357
यथा जळो व मूगो व- 582
यथा ब्रह्मा तथा एको- 245

यथा वरहयदमकुसलो- 358
यथा कळीरो सुसु वड्ढितग्गो- 71
यथा दिवा तथा रत्तिं- 397
यथाचारी यथासतो सतीमा- 981
यथापि उदके जातं- 700
यथापि पब्बतो सेलो- 651
यथापि पब्बतो सेलो- 999
यथापि भद्दो आजञ्ञो- 16,45,173,659
यथापि रुचिरं पुप्फं- 323,324
यथापि एकपुत्तस्मिं - 33
यथासन्थतिको सातातिको- 855
यथास्स पस्सतो रूपं- 807
यथास्स फुसतो फस्सं- 815
यथास्स सायरतो रसं- 813
यथास्स सुणतो सद्दं- 809
यथास्स घायतो गन्धं- 811
यथास्स विजानतो धम्मं- 817
यदत्थि सङ्गतं किञ्चि- 713
यदत्थिकं ब्रह्मचरियं अचरी- 1283
यदा असोकं विरजं असङ्खतं- 521
यदा जिण्णा भविस्साम- 462
यदा दुक्खस्सावहनिं विसत्तिकं- 519
यदा नदीनं कुसुमाकुलानं- 523
यदा नभे गज्जति मेघदुन्दुभि- 522
यदा पठममद्दक्खिं- 510
यदा बलाका सुचिपण्डरच्छदा- 307
यदा मे अहु सङ्कप्पो- 902
यदा सिवं द्वेचतुरङ्गगामिनं- 520
यदा अहं पब्बजितो- 645
यदा च अविजानन्ता- 276
यदा च मग्गमद्दक्खिं- 766
यदा दुक्खं जरामरणन्ति पण्डितो- 518
यदा नवो पब्बजितो- 429
यदा निसीथे रहितम्हि काननेे- 524
यदा बलाका सुविसुद्धपण्डरा- 308
यदा वितक्के उपरुन्धियत्तनो- 525
यदा सुखी मलखिलसोकनासनो- 526
यदाहं धम्ममस्सोसिं- 131
यमिध पथविञ्च वेहासं- 1224
यसो च अप्पबुद्धीनं- 667
यस्मिं पतिट्ठिता धम्मा- 1026
यस्मिं निवत्तते दुक्खं- 493
यस्स चत्थाय पब्बजितो- 380,605,688,1195
यस्स मुहुत्तेन सहस्सधा लोको- 1190
यस्स सक्करियमानस्स- 1010
यस्स सद्धा तथागते- 507
यस्स सब्रह्मचारीसु- 278,387,388,389,
390,391,392,1081
यस्स चत्थाय पब्बजितो- 657
यस्स पापं कतं कम्मं- 872
यस्स मुहुत्तेन सहस्सधा- 909
यस्सत्थाय पब्बजितो- 136,793
यस्सासवा परिक्खीणा- 92
यातं मे हत्थिगीवाय- 842
याय नो अनुकम्पाय- 176
यावता बुद्धखेत्तम्हि- 1090
याहु रट्ठे समुक्कट्ठो- 632
युवासि त्वं पब्बजितो- 461
ये केचि गन्था इध मोहमग्गा- 1276
ये खो ते वेठमिस्सेन- 143
ये च खो बाला दुम्मेधा- 281
ये च दुक्खे सुखस्मिञ्च- 663
ये च पस्सन्ति सङ्खारे- 1170
ये चित्तकथी बहुस्सुता- 234
ये पुराणा अतीता ते- 1039
ये ये अलाभिनो लाभं- 964
ये ये लाभं लभिस्सन्ति - 963
ये एता उपसेवन्ति- 456
ये चित्तकथी बहुस्सुता- 235
ये तुय्ह छन्देन वसेन वत्तिनो- 1148
ये मं रूपेन पामिंसु- 469
येन येन सुभिक्खानि- 82
येनेव मग्गेन गतो विपस्सी- 490

येमं कायं विवज्जेन्ति- 576
येमं कायं ममायन्ति- 575
येसं रागो च दोसो च- 282
येसं वे दुल्लभो लोके- 830
येसञ्च सुसमारद्धा- 636
येसञ्च हिरि ओत्तप्पं- 1082
यो एतमभिजानाति- 1198,1200,1202,1204, 1206,1210,1212
यो च जातिसतं गच्छे- 1179
यो च तुट्ठेन चित्तेन- 364
यो च पपञ्चं हित्वान- 990
यो च मेत्तेन चित्तेन- 238
यो च वन्तकासावस्स- 970
यो च सीलेन सम्पन्नो- 972
यो चेतं सहते जम्मिं- 401
यो चेता परिवज्जेति- 457
यो तं तथा पजानाति- 714
यो दन्धकाले तरति- 291
यो दन्धकाले दन्धेति- 293
यो दुद्दमियो दमेन दन्तो- 8
यो पपञ्चमनुयुत्तो- 989
यो पुब्बे करणीयानि- 225,261
यो ब्रह्मानं परिपुच्छति- 1207
यो मं इच्छति अन्वेतु- 834
यो महानेरुनो कूटं- 1211
यो वे अविद्वा उपधिं करोति- 152
यो वे बुद्धेन चोदितो- 1201
यो वे समुद्दोव ठितो अनेजो- 372
यो वेजयन्तपासादे- 1205
यो सुखं दुक्खतो अद्द- 986
यो सो अट्ठ विमोक्खानि- 1181
यो हवे दहरो भिक्खु- 873
यो इद्धिया सरभुं अट्ठपेसि- 38
यो इमस्मिं धम्मविनये- 257
यो च खो अन्नपानस्स- 130
यो च पुब्बे पमज्जित्वा- 871
यो च सेय्योहमस्मीति- 1079
यो दुद्दमियो दमेन दन्तो- 5
यो वे गरूनं वचनञ्जु धीरो- 370
यो वेजयन्तपासादं- 1203
यो सीतवनं उपगा भिक्खु - 6
यो हवे दहरो भिक्खु- 203
योगी-पीतिकरं रम्मं- 539
योध कोचि मनुस्सेसु- 237
योपानुदी मच्चुराजस्स सेनं- 7
रजतं जातरूपञ्च- 957
रजमुहतञ्च वातेन- 675
रत्तिया पठमं यामं- 627
रमणीया मे कुटिका- 58
रमणीयानि अरञ्ञानि- 992
रमन्तेके मुदिङ्गेहि- 467
रसं भोत्वा सति मुट्ठा- 800
रहदेहमस्मि ओगाळ्हो- 759
राजा च अञ्ञे च बहू मनुस्सा- 778
राजा अरहसि भवितुं- 822
राजा पसय्हप्पथविं विजेत्वा- 777
राजाहमस्मि सेल- 824
रुक्खमूलंव निस्साय- 997
रुक्खमूलगहनं पसक्किय- 119
रुक्खमूलिका सातातिका- 852,1151,1152
रूपं दिस्वा सति मुट्ठा- 98,794
रूपा सद्दा रसा गन्धा- 455,895
रोपेत्व रुक्खानि यथा फलेसी- 1124
लहुको वत मे कायो- 104
लाभकामा भविस्सन्ति- 962
लाभा अङ्गानं मगधानं- 484
लूखेनपि वा सन्तुस्से- 580
लेसकप्पे परियाये- 941
लोहितपाणि पुरे आसिं- 881
वज्जीनं वेळुवगामे- 919
वधं चरिम्ह ते काम- 138
वने कुसुमसञ्छन्ने- 545

वन्दित्वा सत्थुनो पादे- 565,624
वराहएणेय्यविगाळ्हसेविते- 1138
वसितं मे अरञ्ञेसु- 602
वस्सति देवो यथा सुगीतं- 51,52,53,54,325, 326,327,328,
वातरोगाभिनीतो त्वं- 350,435
विचिकिच्छाकङ्खागन्थितं- 752
विचिनी अग्गही धोवि- 897
विजानेय्य सकं अत्थं- 587
विनयस्सु मयि कङ्खं- 829
विपन्नसीलो दुम्मेधो- 971
विप्पमुत्तं किलेसेहि- 438
विप्फोटितो गण्डमूलो- 306
विवरमनुपतन्ति विज्जुता- 41,1176
विवित्तं अप्पनिग्घोसं- 577
विसल्लं खीणसंयोगं- 1186
विसारदा खो भगिनी- 338
विस्सज्जितेसु पञ्हेसु- 483
विहरि अपेक्खं इध वा हुरं वा - 10
वीततण्हा अनादाना- 491
वीततण्हो अनादानो- 890
वीतरागो वीतदोसो- 704
वीरियसातच्चसम्पन्नो- 585
वीरो हवे सत्तयुगं पुनेति- 533
वुट्ठम्हि देवे चतुरङ्गुले तिणे- 1140
वेदनानं विञ्ञापनो- 420
वेलं करोथ भद्दन्ते- 762
वेला च संवरं सीलं- 613
संयोजनं अणुं थूलं- 699
संसरं दीघमद्धानं- 215
संसरं हि निरयं अगच्छिस्सं- 258
स वीसवस्ससतिको- 108
स वे अच्चरुचि नागो- 692
सकलं समत्तं रोगं- 488
सक्खी हि मे सुतं एतं- 1221
सङ्कारपुञ्जा आहत्वा- 578
सङ्खित्तेनपि देसेति- 1241
सङ्घमप्पमेय्यं अनुस्सर- 384
सङ्घलाभस्स भण्डन्ति- 943
सङ्घे पसादो यस्सत्थि- 508
सचे धावति चित्तं ते- 446
सचेपि एत्तका भिय्यो - 1220
सच्चं वे अमता वाचा- 1238
सञ्ञाय विपरियेसा- 1233
सट्ठिकण्डरसम्बन्धो- 569
सतं आसि अयोसङ्कू- 1197
सतलिङ्गस्स अत्थस्स- 106
सति गीवा सिरो पञ्ञा- 695
सति च सम्पजञ्ञञ्च- 694
सतिपट्ठानगीवो सो- 1093
सतिपट्ठानपासादं- 765
सतिमा पञ्ञवा भि- 165
सतिया तं निबन्धिस्सं- 359
सतो च होति अप्पिच्छो- 899
सत्तक्खत्तुं मनुस्सिन्दो- 914
सत्तिया विय ओमट्ठो- 39,40,1171,1172
सत्थं वा आहरिस्सामि- 407
सत्थवाहे महावीरे- 132
सत्था च परिचिण्णो मे- 178
सत्था च मं पटिग्गय्ह- 476
सत्था हि विजेसि मग्गमेतं- 413
सत्था च मे लोकमिमं अधिट्ठहि- 1134
सद्दं सुत्वा सति मुट्ठा- 99,796
सद्धं वीरियं समाधिञ्च- 745
सद्धाय अभिनिक्खम्म- 249,250,251
सद्धायाहं पब्बजितो- 46,59,789
सद्धेन च पेसलेन च- 1018
सन्तुट्ठो सातातिको- 858
सन्थरित्वान सङ्घाटिं- 367
सपदानचारी सातातिको- 847
सब्बं सुणाति सोतेन- 500
सब्बकारुकसिप्पानि- 936

सब्बञ्ञू सब्बदस्सावी- 722
सब्बत्थ ते न लिम्पन्ति- 665
सब्बत्थ ते चित्त वचो कतं मया- 1129
सब्बमित्तो सब्बसखो- 648
सब्बरत्तिं सुपित्वान- 84
सब्बसंयोजनातीतं - 691
सब्बासवपरिक्खीणा- 928
सब्बे धम्मा अनत्ताति- 678
सब्बे भगवतो पुत्ता- 1246
सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति- 676
सब्बे सङ्खारा दुक्खाति- 677
सब्बे कामा पहीना मे- 254
सब्बो रागो पहीनो मे- 79
समणं ब्राह्मणं वा कं- 751
समणस्स अहु चिन्ता- 920
समणस्स अहु चिन्ता- 726
समथं पटिपादेसिं- 639
समाधिविज्जावसिपारमीगतो- 1193
समुन्नमयमत्तानं- 29
समेतो नच्चगीतेहि- 893
सम्पन्नवेय्याकरणं तवेदं- 1281
सम्पन्नसस्सा मगधा- 208
सम्पादेथप्पमादेन- 658,1016
सम्बुद्धो पटिजानासि- 825
सम्भवा सुविदिता असारका- 260
सम्भिरेव समासेथ- 4
सम्मप्पधानसम्पन्नो- 100
सयं समाहितो नागो- 697
सरणगमनं पस्स- 286
सरित्वा पुब्बके योगी- 947
सरे हत्थेहि भञ्जित्वा- 486
सल्लं अत्तसमुट्ठानं- 767
सवन्ति सब्बधि सोता- 761
सहस्सकण्डो सतगेण्डु - 164
सहस्सक्खत्तुमत्तानं - 563
सा गोतमी कालकता इतो चुता- 535
साधु सुविहितान दस्सनं- 75
साधु सुतं साधु चरितकं - 36
साधू हि किर मे माता- 335
सारिपुत्त इमं पस्स- 431
सारिपुत्तोव पञ्ञाय- 1191
सिक्खापेन्ता पि थेरेहि- 975
सिक्खासाजीवसम्पन्नो- 513
सिरिं हत्थेहि पादेहि- 511
सीतवातपरित्तानं- 922
सीलं बलं अप्पटिमं- 614
सीलं रक्खेय्य मेधावी- 609
सीलं सम्बलमेवग्गं- 616
सीलं सेतु महेसक्खो- 615
सीलक्खन्धे पतिट्ठाय- 865
सीलञ्च बाहुसच्चञ्च- 593
सीलमेव इध अग्गं- 69,619
सीलमेविध सिक्खेथ- 608
सीलवा हि बहू मित्ते- 610
सीहप्पमत्तो विहर- 83
सुकल्लरूपो सुमनस्स झायतं- 212
नन्दमानागतं चित्तं- 213
सुखं चे जीवितुं इच्छे- 228,229,230
सुखं सयामि ठायामि- 888
सुखं सुखत्थो लभते तदाचरं- 35
सुखं सुपन्ति मुनयो- 137
सुखञ्च काममयिकं- 669
सुखुमं ते पटिविज्झन्ति- 1169
सुग्गहीतनिमित्तस्स- 584
सुचिण्णं ब्रह्मचरियं मे- 709,710
सुणन्ति धम्मं विमलं- 1248
सुणाथ ञातयो सब्बे- 255
सुणोहि वचनं मय्हं- 951
सुत्वा सुभासितं वाचं- 26
सुत्वा सुभासितं वाचं- 347
सुत्वान चोरा इसिनो सुभासितं- 724
सुदेसिता चक्खुमता- 417,1267

सुद्धं धम्मसमुप्पादं- 716
सुद्धोदनो नाम पिता महेसिनो- 534
सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुना- 1139
सुपुप्फिते सीतवने- 540
सुभान्यप्पटिकूलानि- 734
सुभासितस्स सिक्खेथ- 239
सुमुत्तिको सुमुत्तिको साहु- 43
सुयुत्तवादी द्विपदानमुत्तमो- 1114
सुयुद्धेन सुयिट्ठेन- 236
सुविलित्तो सुवसनो- 117
सुसंवुतत्तो विसिखन्तरे चरं- 1122
सुसुखं वत निब्बानं- 227,263
सुसुखुमनिपुणत्थदस्सिना- 70,210
सुस्सूसा सुतवद्धनी- 141
सेनासनम्हा ओरुय्ह- 1057
सेय्यथापि महासमुद्दवेगो- 412
सेलो यथा एकघनो- 643
सेवेथ पन्तानि सेनासनानि- 142
सो अत्थवा सो धम्मट्ठो- 740,746
सो झायी अस्सासरतो- 696
सो डय्हति सूलेहि तुज्जमानो- 780
सो पत्वा परमं सन्तिं- 434
सो मे धम्ममदेसेसि- 1263
सो मे पक्केन हत्थेन- 1058
सोज्ज भद्दो अनुत्रासी- 864
सोज्ज भद्दो सातातिको- 843
सोतिन्द्रियं चे सद्देसु- 731
सोपाणं सुगतं सुद्धं- 764
सोम्हि सक्यकुले जातो- 911
सोसानिको सातातिको- 854
सोहं एको अरञ्ञस्मिं- 626
सोहं पणामितो सन्तो- 558
सोहं खन्धे परिञ्ञाय- 162
सोहं परिपुण्णसङ्कप्पो- 546
स्वाखातं ब्रह्मचरियं- 837
स्वागतं न दुरागतं - 9
स्वागतं नापगतं- 885,886
स्वागतं वत मे आसि- 287,1270
हत्थिक्खन्धतो ओरुय्ह- 198
हत्थिक्खन्धावपतितं- 194
हन्द एको गमिस्सामि- 538
हित्वा सतपलं कंसं- 97,862
हित्वा गिहितं अनवोसितत्तो- 101

थेरीगाथापालि

अकम्पियं अतुलियं- 201
अकम्मकामा अलसा- 273
अक्खीनि च तुरियारिव- 383
अगारस्मिं वसन्तीहं- 97
अग्गमहेसी भविस्ससि- 465
अग्गिं चन्दञ्च सूरियञ्च- 87
अच्छरियमब्भुतं तं- 519
अजरम्हि विज्जमाने- 513
अज्जट्ठमी पब्बजिता- 365
अज्जेव तातभिनिक्खमिस्सं- 480
अज्झुपगच्छे घातं- 476
अज्झोसिता असारे- 472
अत्थाय वत नो भोति- 286
अत्थि सक्यकुले जातो- 185,192
अथ अय्या जिनदत्ता- 429
अथ असितनिचितमुदुके- 482
अथ नं भणती तातो - 426
अथ निब्बिन्दहं काये- 86
अथ निब्बिन्दहं रूपे- 26
अथ ने भणति सुमेधा- 467
अथ मं अदासि तातो- 422
अथ मं भणती तातो- 432,434
अथ मे साकेततो वरका- 408
अथ सोळसमे वस्से - 447
अथद्दसासिं सुगतं- 135
अथहं भणामि तातं- 433
अथो जातिक्खयं पत्तो- 64
अद्दस ब्राह्मणो बुद्धं- 321
अधिगतमिदं बहूहि- 515
अनन्तादीनवा कामा - 360
अनमतग्गे संसरतो- 500
अनिच्चा अद्धुवा कामा- 491
अनिमित्तञ्च भावेमि- 20,105
अनुजानाथ मं उभयो- 459
अनुजानाहि मे अय्ये- 333
अन्नं पानञ्च आदाय- 146
अन्नेन च पानेन च- 411,431
अपथेन पयातुमिच्छसि- 386
अपरिमितञ्च दुक्खं- 512
अपि दूरगता सरम्हसे- 385
अप्पकं जीवितं मय्हं- 95
अब्बही वत मे सल्लं- 52,131
अब्भुतं वत वासेट्ठि - 317
अभये भिदुरो कायो - 35
अमतम्हि विज्जमाने- 505,506
अम्म जीवाति वनम्हि कन्दसि- 51
अयाचितो तातागच्छि- 129
अयोनिसो मनसिकारा- 77
अलङ्कता सुवसना- 145
अलद्धा चेतसो सन्तिं- 40,68
असपत्तम्हि समाने- 507
असिसूनूपमा कामा- 490
असोकं विरजं खेमं- 363
अस्सु थञ्ञं रुधिरं- 498
अहं तव वसानुगो सियं- 377
अहञ्च खो नमस्सन्ती- 144
अहमम्हि कन्तसल्ला- 223
अहुम्ह पुब्बे गणिनो - 306
आतुरं असुचिं पूतिं- 19,82
आदीपिता तिणुक्का- 509
आरद्धवीरिये पहितत्ते - 161
आविलचित्तो अनाविलं- 371
आसादिय एदिसं जनं- 400
इङ्गालकुयाव उज्झितो- 388
इतो बहिद्धा पासण्डा - 184
इत्थिभावो नो किं कयिरा- 61
इदमजरमिदममरंइ- 514
इदानि ते इमं पुत्तं- 303
इद्धिया अभिनिम्मित्वा- 229
इद्धीपि मे सच्छिकता- 228
इमं पस्सथ धम्मट्ठं- 364
इमञ्च मे पुत्तफलं- 301
इमिना पूतिकायेन - 140
इसिदासी तत्थ एका- 403
उच्चे कुले अहं जाता- 151
उज्जेनिया पुरवरे - 407
उट्ठाय अनिकरत्तो- 517

उट्ठाय पादे वन्दिंसु- 121
उट्ठेहि पुत्तक किं सोचितेन- 464
उत्तिट्ठपिण्डो उञ्छो च- 351
उदहारी अहं सीते- 236
उद्धं पादतला अम्म- 33
उपविजञ्ञा गच्छन्ती- 218
उपसग्गो भीमरूपो- 355
उपसमे तरे ओघं- 10
उपेमि सरणं बुद्धं- 249,250,289,290
उपोसथं उपागच्छिं- 32
उप्पलं चुदका समुग्गतं- 381
उप्पलसिखरोपमानि ते- 384
उप्पाटिय चारुदस्सना- 398
उभो माता च धीता च- 224
उम्मादना उल्लपना- 359
उळारं वत मे माता- 210
एतं खो लब्भमम्हेहि- 309
एतञ्चाहं अस्सरथं- 326
एत्तो चापे चतुब्भागं- 297
एत्थ रत्ता पमत्ता च- 346
एदिसो अहु अयं समुस्सयो- 270
एवं अमित्तजनना- 358
एवं करोन्ति ये सद्दहन्ति- 524
एवं बहुदुक्खा कामा- 494
एवं भणति सुमेधा- 462,516
एवं भणितो भणति- 427
एवं मं भत्तिकतं- 415
एवं विहरमानाय- 34
एवमनुयुञ्जियमाना सा- 406
एवमेतं अवेक्खन्ती- 84
एस ब्राह्मण सम्बुद्धो- 318
एसा अन्तरधायामि- 232
एसो हि भगवा बुद्धो- 307
एहि काळ निवत्तस्सु- 296
एहि सारथि गच्छाहि- 324
ओरब्भिका सूकरिका- 242
कं नु उद्दिस्स मुण्डासि- 183
कङ्कणं व सुकतं सुनिट्ठितं- 259
कञ्चनस्सफलकंव सम्मट्ठं- 266
कण्हखन्धकसुवण्णमण्डितं- 255
कम्मकामा अनलसा - 275
करोथ बुद्धसासनं- 13,118
कल्याणमित्तता मुनिना- 213
कस्स ब्राह्मण त्वं भीतो- 237
काननंव सहितं सुरोपितं- 254
काननम्हि वनसण्डचारिनी- 261
कामं कामेसु दमस्सु- 511
कामच्छन्दञ्च ब्यापादं- 165
कामपङ्केन सत्ता हि- 356
कामा कटुका आसीविसूपमा- 453
कामेस्वादीनवं दिस्वा- 226
कायकम्मं सुचि नेसं- 277
कायेन संवुता आसिं- 15
कालं कालं भवाभवं- 199
कालेन उपट्ठहित्वा- 412
काळका भमरवण्णसादिसा- 252
काळङ्गिनिंव तक्कारिं- 298
कासिकसुखुमानि धारय- 379
किं ते अपराधितं मया- 369
किं ते इध सारसम्मतं- 382
किं नु जातिं न रोचेसि- 190
किं भवगते अभिनन्दितेन- 460
किं मम परो करिस्सति- 495
किंमे कता राजगहे मनुस्सा- 54
किञ्चापि खोम्हि किसिका- 27
किञ्चापि खोम्हि दुक्खिता- 29
किमहं सीलसम्पन्ना- 113
किमिव ताहं जानन्ती- 469
किमिव पूतिकायमसुचिं- 468
किसा पण्डु विवण्णा च- 79
कुम्मग्गपटिपन्नं मं- 245
कुसुमितसिखरा च पादपा- 374

को नु ते इदमक्खासि- 240
कोच्छं पसादं अञ्जनिञ्च- 413
खन्धधातुआयतनं- 474
खीणकुलीने कपणे- 220
खेपेत्वा जातिसंसारं- 168
गरुके मम सत्थुसासने- 370
गलके अपि कन्तन्ति- 217
गुत्ते यदत्थं पब्बज्जा- 163
घटेथ बुद्धसासने- 176
घाता निरयेसु बहू- 478
चतुक्खतुं पञ्चक्खतुं- 37,42,169
चत्तारि अरियसच्चानि- 171
चत्तारो विनिपाता- 458
चातुद्दसिं पञ्चदसिं- 31
चातुद्दीपो राजा मन्धाता- 488
चिण्णा अङ्गा च मगधा- 110
चितं उपट्ठपेत्वान- 177
चितकारसुकताव लेखिका- 256
चित्तम्हि वसीभूताहं- 233
चित्तेन वञ्चिता सत्ता- 164
चिरस्सं वत मं तात- 274
चेतोपरिच्चञाणञ्च- 71
छन्दजाता अवसायी- 12
छुद्धून नं सुसाने- 471
जहन्ति पुत्ते सप्पञ्ञा- 302
जातस्स मरणं होति- 191
जानन्ती वत मं भोति- 238
जानामि अत्तनो सत्त- 436
जीवकम्बवनं रम्मं- 368
तं तं भणति सुमेधा- 487
तं दिस्वान अम्हाकं- 430
तं मं ञाती अमित्ताव- 348,350
तं मं ततो सत्थवाहो- 446
तं सक्को देवसङ्घेन- 367
तञ्च अप्पटिवानीयं- 55
ततो केसानि छेत्वान- 156
ततो च काळो पक्कामि- 310
ततो च रथमादाय- 325
ततो चितं समाधेसिं- 115
ततो रज्जुं गहेत्वान- 80
ततो विञ्ञातसद्धम्मा- 150
ततो सद्धं लभित्वान- 90
ततो सूचिं गहेत्वान- 116
ततोहं सब्बकामेसु- 340
तत्थ रमित्वा कीळित्वा- 147
तत्थ विञ्ञातसद्धम्मो- 323
तथूपमा देहकानि मं- 394
तथेव भद्दा कापिलानी- 65
तपनीयकताव धीतिका- 376
तम्हुद्धटे तन्तिखीलके- 393
तस्स च विरमासि तावदे- 399
तस्स धम्मं सुणित्वान- 44,70,137
तस्स पादानि वन्दित्वा- 312
तस्स ब्रह्मे अरहतो- 319
तस्स वचनं सुणित्वा- 419
तस्सपि अञ्ञा भरिया- 448
तस्सपि घरम्हि मासं- 423
तस्सा ता वचनं सुत्वा- 119
तस्सा ते स्वागतं भद्दे- 338
तस्सा मे अट्ठमी रत्ति- 38
तस्सा मे अप्पमत्ताय- 85
तस्सा मे अहु संवेगो- 94
तस्सा मे सिक्खमानाय- 104
तस्साहं वचनं सुत्वा- 126
तस्साहं वचनं सुत्वा- 172,178,187,194,202,211
तस्सेतं कम्मफलं- 449
ता पिण्डाय चरित्वा- 404
तावतिंसा च यामा च- 197,198
तिंसतिवस्सम्हि मतो- 445
तिणकट्ठसाखापलासं - 501
तिस्से युञ्जस्सु धम्मेहि- 5
तिस्से सिक्खस्सु सिक्खाय- 4

तीणि पापस्स मूलानि- 276
तुय्हेव साटको होतु- 246
तुय्हेव होत्वस्सरथो- 327
तुवं निस्साय कल्याणी- 332
तुवं बुद्धो तुवं सत्था- 337
तुवं हेतं पजानासि- 287
तूलपुण्णसदिसोपमा उभो- 269
ते मं पितुघरं पटिनयिंसु- 421
तेहानुचिण्णं इसीभि- 206
दळ्हपासं करित्वान- 81
दस पुत्ते विजायित्वा- 102
दसक्खतुं सतक्खतुं- 521
दहरा च अपापिका चसि- 372
दहरा त्वं रूपवती- 139
दहराहं सुद्धवसना- 339
दिट्ठा हि मया सुचिन्तिता- 392
दिट्ठो हि मे सो भगवा- 22,160
दिवसे दिवसे तिसत्ति - 475
दिवाविहारा निक्खम्म- 48,108
दिस्वा अदन्तं दमितं- 50
दिस्वा आदीनवं लोके- 66
दिस्वान लोकपज्जोतं- 148
दीघो बालानं संसारो- 497
दुक्खं दुक्खसमुप्पादं- 186,193,311,322
दुक्खञ्च विजानेय्य- 215
दुक्खो इत्थिभावो- 216
दुग्गताहं पुरे आसिं- 122
दुग्गतिगमनं मग्गं- 357
दूरङ्गमा सतिमन्तो- 281
देवेसु मनुस्सेसु च- 477
देवेसु महिद्धिका अहुम्ह- 522
देवेसुपि उपपत्ति- 457
द्वादस वस्सानि अहं- 441
द्वारं अपापुरित्वानहं - 496
द्वे पुत्ता कालकता- 219
धातुयो दुक्खतो दिस्वा- 14
धिरत्थु कामा असुची- 225
धीरे निरोधं फुसेहि- 6
न च मे हिंसति किञ्चि- 418
न ते दुक्खा पमुत्यत्थि- 248
न ते हिरञ्ञं गण्हन्ति- 284
न तेसं कोट्ठे ओपेन्ति- 283
न हिरञ्ञसुवण्णेन- 349
नक्खत्तानि नमस्सन्ता- 143
नगरम्हि एरकच्छे- 437
नगरम्हि कुसुमनामे- 402
नङ्गलेहि कसं खेत्तं- 112
नत्थि निस्सरणं लोके- 57
नत्थि हि लोके सदेवके- 387
नपिहं अपरज्झं किञ्चि- 420
नागभोगसदिसोपमा उभो- 267
नानाकुला पब्बजिता- 285
निक्खिपित्वान सङ्घाटिं- 30
निब्बानाभिरताहं- 452
निब्बुय्हति सुसानं- 470
निस्सट्ठं ते रज्जं- 486
निहच्च जाणुं वन्दित्वा- 109
नेतं अस्स पतिरूपं- 343
पक्कमिस्सञ्च नाळातो- 295
पञ्चक्खन्धा परिञ्ञाता- 106
पण्णवीसतिवस्सानि- 39,67
पतिट्ठितो हेत्थ यञ्ञो- 288
पत्तं दण्डञ्च गण्हित्वा- 123
पत्तलीमकुलवण्णसादिसा- 260
पत्ता ते निब्बानं- 479
पत्थिता राजपुत्तेहि- 152
परिपन्थो एस भयो- 354
परियुट्ठिता क्लेसेहि- 78
पस्स सुन्दरि सत्थारं- 334
पस्स सुन्दरिमायन्तिं- 335
पहायहं पब्बजिता- 342
पादे पक्खालयित्वा- 114

पासादिकासि अय्ये- 405
पिण्डपातं चरित्वान- 17
पिलन्धनं विदंसेन्ती- 74
पीतिसुखेन च कायं- 174
पीनवट्टसहितुग्गता उभो- 265
पुञ्ञं वत पसवि बहुं- 111
पुण्णे पूरस्सु धम्मेहि- 3
पुत्तसोकेनहं अट्टा- 133
पुत्तो बुद्धस्स दायादो- 63
पुब्बेनिवासं जानामि- 227
पुरिसो अङ्कुसमादाय- 49
पेतानि भोति पुत्तानि- 313
पेतो मनुस्सरूपेन- 130
बहुस्सुता धम्मधरा- 279,280
बहूनं वत अत्थाय- 162
बहूनि पुत्तसतानि- 315
बहूवतसमादाना- 88
बहूहि दुक्खधम्मेहि- 36,41
बाराणसीतो निक्खम्म- 336
बाला ते दुप्पञ्ञा- 455
बुद्ध वीर नमो त्यत्थु- 157
बुद्धानं उप्पादो विवज्जितो- 461
ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं- 251,291
भगवति कोणागमने- 520
भजितब्बा सप्पुरिसा- 214
भस्सरा सुरुचिरा यथा मणी- 257
भावितो मे मग्गो- 222
भिक्खाय च विचरन्तं- 424
भिक्खुनिं उपसङ्कम्म- 170
भिक्खुनिं पुन दिस्वान- 124
भिक्खुनी उपसम्पज्ज- 100
भिक्खुनी सीलसम्पन्ना- 196
मग्गञ्च खोस्स जानासि- 128
मत्ता वण्णेन रूपेन- 72
मधुरञ्च पवन्ति सब्बसो- 373
मन्तावतिया नगरे- 450
मय्हञ्हि अक्कुट्ठवन्दिते- 390
मा अप्पकस्स हेतु- 510
मा एवं पुत्त अवच- 416
मा मे कुज्झि महावीर- 294
मा सु ते वड्ढ लोकम्हि- 204
माकासि पापकं कम्मं- 247
माता दुक्खिता रोदति पिता च- 463
माता पुत्तो पिता भाता- 159
मातापितू अभिवादयित्वा- 435
मायं विय अग्गतो कतं- 396
माहं कामेहि सङ्गच्छिं- 353
मुत्ता च ततो सा भिक्खुनी- 401
मुत्ते मुच्चस्सु योगेहि- 2
मुसलानि गहेत्वान- 117
मुसलानि गहेत्वान- 175
मोक्खम्हि विज्जमाने- 508
यं तं इसीहि पत्तब्बं- 60
यत्तकं तुलिता एसा- 153
यथा इदं तथा एतं- 83
यथा हरितालेन मक्खितं- 395
यथाभूतमवेक्खन्ती- 96
यदि मे वचनं करिस्ससि- 378
यस्मा गामा पक्कमन्ति- 282
यस्स ब्राह्मण त्वं भीतो- 244
यस्स मग्गं न जानासि- 127
यस्सा सिया अपच्चवेक्खितं- 389
या मय्हं सामिकस्स- 410
याव कासिजनपदो- 25
ये इमे सत्त बोज्झङ्गा- 21,45
ये केचि वड्ढ सङ्खारा- 208
यो च वुड्ढो दहरो वा- 239
यो नं विनिब्भुजित्वा- 473
रजतं जातरूपं वा- 344
रज्जे आणाधनमिस्सरियं- 466,485
रणं करित्वा कामानं- 362
रतिया पच्छिमे यामे- 180

रत्तिया पुरिमे यामे- 120,179
रत्तिया मज्झिमे यामे- 173
रागं मानं अविज्जञ्च- 167
रागञ्च अहं दोसञ्च- 24
रिञ्चित्वा परमं अत्थं- 93
रुक्खप्फलूपमा कामा- 92
लट्ठिहत्थो पुरे आसि- 292
लूनकेसी पङ्कधरी- 107
लोभनं मदनञ्चेतं- 345
वट्टनिरिव कोटरोहिता- 397
वट्टपलिघसदिसोपमा उभो- 263
वधो बन्धो परिक्लेसो- 347
वन्ता महेसीहि कामा- 352
वन्दनं दानि वज्जासि- 308
वसिता सुसानमज्झे- 221
वाळमिगसङ्घसेवितं- 375
वासितोव सुरभी करण्ड- 253
विपुलं अन्नञ्च पानञ्च- 272
विभूसामण्डनरता- 89
विभूसेत्वा इमं कायं- 73
विमला सङ्खमुत्ताव- 278
विसारदाव भणसि- 207
विस्सज्जिता मातापितूहि- 518
विस्सज्जितो गतो सो- 428
वीथि सङ्कारकूटेसु- 134
वीरा वीरेहि धम्मेहि- 7
वोढून नङ्गलमहं- 443
संयोजनानि एतानि- 166
सक्कंव देवा तिदसा- 181
सग्गं नून गमिस्सन्ति- 241
सङ्खारे परतो दिस्वा- 101
सङ्घाटिं निक्खिपित्वान- 28
सचितं पटिलद्धान- 136
सचे इमा नदियो ते- 243
सचे पुत्तं सिङ्गालानं- 304
सच्चानि अम्म बुद्धवरदेसितानि- 456
सण्हकम्बुरिव सुप्पमज्जिता- 262
सण्हतुङ्गसदिसी च नासिका- 258
सण्हनूपुरसुवण्णमण्डिता - 268
सण्हमुद्दिकसुवण्णमण्डिता- 264
सतं सहस्सानिपि धुत्तकानं- 231
सतिं उपट्ठपेत्वान- 182
सतिमती चक्खुमती- 189
सत्त रतनानि वस्सेय्य- 489
सत्ताहजातकं मं- 439
सत्तिसूलूपमा कामा- 58,141,234,493
सद्धाय पब्बजित्वान- 8,9,92
सब्बत्थ विहता नन्दी- 59,62,142,188, 195,203,235
सब्बदुक्खं परिञ्ञातं- 158
सब्बे कामा समुच्छिन्ना- 47
सब्बे भवा समुच्छिन्ना- 91
सब्बे मे आसवा खीणा- 209
सब्बे योगा समुच्छिन्ना- 76
सब्बे सोका समुच्छिन्ना- 138
सब्बो आदीपितो लोको- 200
समणा'ति भोति सुपि- 271
सयमेव ओदनं साधयामि- 414
सर कटसिं वड्ढेन्ते- 504
सर काणकच्छपं पुब्बसमुद्दे- 502
सर चतुरोदधी- 499
सर रूपं फेणपिण्डोपमस्स- 503
सस्सुया सस्सुरस्स च- 409
सा च तहिं समापन्ना- 483
सा च मं अनुकम्पाय- 125
सा च मनसि करोति- 484
सा चेवं भणति पितरमनीकरत्तो- 481
सा भिक्खुनिं उपगच्छिं- 43,69
सा मे धम्ममदेसेसि- 103
साकुन्तिकोव सकुणिं- 300
साज्ज अब्बूळ्हसल्लाहं- 53,132
साज्ज पिण्डं चरित्वान- 75

साज्ज सब्बानि खादित्वा- 314
सायं भुजिस्सा अनणा- 366
साहं एतादिसं कत्वा- 361
साहं दिस्वान सम्बुद्धं- 154
साहं निस्सरणं ञत्वा- 316
साहं पुत्तं धीतरञ्च- 8
साहं सुगतस्स साविका- 391
सिक्खमाना अहं सन्ती- 99
सिक्खमानाय मे अय्ये- 331
सीलवती चित्तकथा- 451
सुक्का सुक्केहि धम्मेहि- 56
सुखं त्वं वुड्ढिके सेहि- 16
सुखं सुपाहि थेरिके- 1
सुखञ्हि वड्ढ मुनयो- 205
सुञ्ञतस्सानिमित्तस्स- 46
सुत्वा च खो महेसिस्स- 149
सुधोतरजपच्छदं सुभं- 380
सुपुप्फितग्गं उपगम्म पादपं- 230
सुमतं मं मञ्ञमाना- 293
सुमुत्ता साधुमुताम्हि- 11
सुमुत्तिका सुमुत्तिका- 23
सो अहम्पि गमिस्सामि- 320
सो ते इज्झतु सङ्कप्पो- 330
सो मातरञ्च पितरञ्च- 416
सो मे धम्ममदेसेसि- 155
सो हेतु सो पभवो- 523
सोचन्ति पापकम्मा- 454
सोपि वसित्वा पक्खं - 425
सोहं ततो चवित्वा- 438,440,442,444
सोहं पधानपहितत्तो- 212
हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च- 328
हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च- 329
हन्द खो दानि भद्दन्ते- 305
हरिचन्दनलित्तङ्गिं- 299
हित्वा घरे पब्बजित्वा- 18
हित्वानहं ञातिगणं- 341



पालि-अध्ययन-केन्द्रम्

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम् (मानित-विश्वविद्यालयः)
Accredited by 'NAAC' with 'A' Grade
(केन्द्रीय-मानव-संसाधन-विकास-मन्त्रालयाधीनम्)
लखनऊ-परिसरः